

एम. ए. हिंदी
(पूर्वार्द्ध)
MAHIND-401

INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

हिंदी साहित्य का इतिहास

हिंदी साहित्य का इतिहास

एम.ए. (हिंदी)

(पूर्वार्द्ध)

MAHIND-401

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Oken Lego, Head (i/c) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Devraj Dean, School of Translation and Interpretation Mahatma Gandhi Antarashtriya Hindi Vishwavidhyalaya Vardha Maharastra - 442 005	**External Member**
Dr. Harish Kr. Sharma Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. A. Tripathi Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Ashan Riddi Director, I.D.E Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
(हिंदी)
(हिंदी)
DEPARTMENT OF HINDI

Authors

Dr Urvija Sharma: Units (1-2-1.3, 1.5 - 1.7.2 2.2-2.4.2, 2.5, 2.7-2.10.1, 2.10.3, 2.11, 3.2, 3.4, 3.9, 4.4-4.8, 4.11, 5.7-5.9, 5.11, 5.16-5.25)
© Dr Urvija Sharma, 2013
Vikas Publishing House: Units (1.0-1.1, 1.4, 1.8 -1.15, 2.0-2.1, 2.4.3, 2.6, 2.10.2, 2.12-2.17, 3.0-3.1, 3.3, 3.5 -3.8, 3.10-3.23, 4.0-4.3.3, 4.9 - 4.10, 4.12-4.21, 5.0-5.6, 5.10, 5.12-5.15) © Reserved, 2013

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi 110 014
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

FOR PERSONAL USE ONLY
RAJIV GANDHI UNIVERSITY
Educational Publishing

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएम)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिंदी साहित्य का इतिहास

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां; हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा; हिंदी साहित्य का आरंभ; आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि; आदिकाल का नामकरण और सीमांकन; आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं; आदिकाल का गद्य साहित्य; आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां; आदिकालीन साहित्य की भाषा	इकाई 1 : साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां (पृष्ठ : 3–40)
इकाई 2 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन; भक्ति आंदोलन का विकास और व्याप्ति; भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, प्रवृत्तियां, प्रमुख रचनाएं और रचनाकार; भक्तिकाल का गद्य साहित्य; भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण; रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक; रीतिकाल का अभिप्राय; नामकरण और सीमांकन; रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियां; रीतिकालीन गद्य साहित्य; रीतिकालीन काव्य की काव्यभाषा	इकाई 2 : मध्यकालीन हिंदी साहित्य (पृष्ठ : 41–104)
इकाई 3 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि : सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक; आधुनिक काल का प्रारंभ और नामकरण; उन्नीसवीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नवजागरण; भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि–संत गंगादास एवं अन्य; हिंदी काव्य को भारतेंदु का अवदान; भारतेंदु मंडल के कवि तथा अन्य कवि; काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग; भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताएं; द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरूप; महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता; द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं; छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन; प्रमुख छायावादी कवि एवं उनका काव्य; छायावादकालीन अन्य कवि और उनका काव्य; छायावादी कविता के मान–मूल्य; छायावादकालीन काव्य का सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र; छायावादकालीन काव्य–भाषा का स्वरूप	इकाई 3 : आधुनिक काल की पृष्ठभूमि (पृष्ठ : 105–152)
इकाई 4 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप; प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएं; प्रगतिशील काव्य; प्रयोगवाद; नयी कविता; नवगीत; समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन; दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं; स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी गद्य साहित्य; देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य; स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य; दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य; स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य; जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य; भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य	इकाई 4 : उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना (पृष्ठ : 153–226)

इकाई 5
नाटक; निबंध; उपन्यास; कहानी; एकांकी; आलोचना; जीवनी; आत्मकथा; संस्मरण; रेखाचित्र; साक्षात्कार; यात्रा साहित्य; पत्र साहित्य; डायरी साहित्य; रिपोतार्ज; दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय; उर्दू साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय; हिंदी–उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध; हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास

इकाई 5 : हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का उद्भव और विकास
(पृष्ठ : 227–321)

CONTENTS

परिचय 1

इकाई 1 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां 3–40

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां
1.2.1 साहित्य का इतिहास
1.2.2 साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्ष
1.2.3 साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियां
1.3 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
1.4 हिंदी साहित्य का आरंभ
1.5 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
1.6 आदिकाल का नामकरण और सीमांकन
1.7 आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं
1.7.1 धर्म संबंधी काव्य
1.7.2 चारण काव्य : रासो साहित्य
1.7.3 लौकिक साहित्य
1.8 आदिकाल का गद्य साहित्य
1.9 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां
1.10 आदिकालीन साहित्य की भाषा
1.11 सारांश
1.12 मुख्य शब्दावली
1.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 मध्यकालीन हिंदी साहित्य 41–104

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन
2.3 भक्ति आंदोलन का विकास और व्याप्ति
2.4 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, प्रवृत्तियां, प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
2.4.1 निर्गुण काव्यधारा : संत काव्य, सूफी काव्य
2.4.2 सगुण काव्यधारा : कृष्णभक्ति काव्यधारा, रामभक्ति काव्यधारा
2.4.3 भक्तियेतर काव्य
2.5 भक्तिकाल का गद्य साहित्य
2.6 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण
2.7 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक
2.8 रीतिकाल का अभिप्राय
2.9 नामकरण और सीमांकन

2.10 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियां
2.10.1 रीतिबद्ध काव्यधारा
2.10.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा
2.10.3 रीतिमुक्त काव्यधारा
2.11 रीतिकालीन गद्य साहित्य
2.12 रीतिकालीन काव्य की काव्यभाषा
2.13 सारांश
2.14 मुख्य शब्दावली
2.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.16 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 आधुनिककाल की पृष्ठभूमि 105–152

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि : सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक
3.3 आधुनिक काल का प्रारंभ और नामकरण
3.4 उन्नीसवीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नवजागरण
3.5 भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि–संत गंगादास एवं अन्य
3.6 हिंदी काव्य को भारतेंदु का अवदान
3.7 भारतेंदु मंडल के कवि तथा अन्य कवि
3.8 काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग
3.9 भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताएं
3.10 द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरूप
3.11 महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता
3.12 द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं
3.13 छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन
3.14 प्रमुख छायावादी कवि एवं उनका काव्य
3.15 छायावादकालीन अन्य कवि और उनका काव्य
3.16 छायावादी कविता के मान–मूल्य
3.17 छायावादकालीन काव्य का सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र
3.18 छायावादकालीन काव्य–भाषा का स्वरूप
3.19 सारांश
3.20 मुख्य शब्दावली
3.21 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.22 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.23 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना 153–226

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप
4.3 प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएं
4.3.1 लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य
4.3.2 वैयक्तिक गीति काव्य
4.3.3 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा
4.4 प्रगतिशील काव्य
4.5 प्रयोगवाद
4.6 नयी कविता
4.7 नवगीत
4.8 समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन
4.9 दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं
4.9.1 निराला की कविता में दलित एवं जनजातीय चेतना
4.9.2 नागार्जुन एवं जनचेतना
4.9.3 डॉ. रामकुमार वर्मा एवं दलित चेतना
4.9.4 नरेश मेहता के काव्य में दलित–चेतना
4.9.5 जगदीश गुप्त का काव्य और दलित चेतना
4.9.6 रामधारी सिंह दिनकर और दलित तथा जनजातीय चेतना
4.9.7 सुभद्रा कुमारी चौहान एवं स्त्री चेतना
4.9.8 स्त्री चेतना और अरुण कमल की कविता
4.9.9 समकालीन अन्य कविताएं एवं चेतना के स्वर
4.10 स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी गद्य साहित्य
4.11 देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य
4.12 स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य
4.13 दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.14 स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.15 जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.15.1 जनजातीय चेतना का स्वरूप
4.15.2 हिंदी गद्य साहित्य में जनजातीय चेतना
4.16 भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य
4.17 सारांश
4.18 मुख्य शब्दावली
4.19 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.20 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.21 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का उद्‌भव और विकास 227–321

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 नाटक
5.3 निबंध
5.4 उपन्यास
5.5 कहानी
5.6 एकांकी
5.7 आलोचना
5.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना
5.7.2 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना
5.7.3 शुक्ल युग में आलोचना
5.7.4 शुक्लोत्तर युगीन आलोचना एवं आलोचना के प्रकार
5.7.5 नयी समीक्षा

5.8 जीवनी
5.9 आत्मकथा
5.10 संस्मरण
5.11 रेखाचित्र
5.12 साक्षात्कार
5.13 यात्रा साहित्य
5.14 पत्र साहित्य
5.15 डायरी साहित्य
5.16 रिपोतार्ज
5.17 दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय
5.17.1 दक्खिनी हिंदी साहित्य का स्वरूप
5.17.2 दक्खिनी का क्षेत्र
5.17.3 दक्खिनी का विकास
5.18 उर्दू साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय
5.18.1 उर्दू की उत्पत्ति एवं नामकरण
5.18.2 उर्दू का विकास
5.18.3 उर्दू की प्रमुख विशेषताएं
5.18.4 उर्दू के विविध काव्यरूप
5.19 हिंदी–उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध
5.20 हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास
5.21 सारांश
5.22 मुख्य शब्दावली
5.23 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.24 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.25 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। साहित्य एक ऐसा प्रवाह है जो अनवरत चलता रहता है। इसकी गतिशीलता ही इसकी नूतनता है। हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। आदिकाल से लेकर आज तक हिंदी साहित्य कई चरणों से गुजरा। प्रत्येक काल में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां बदलती गईं, तदनुसार साहित्य भी अपना आकार लेता चला गया। इतिहास लेखन की कई पद्धतियां विकसित हुईं। साहित्य समाज का प्रतिबिंब बनकर सामने आया।

हिंदी साहित्य की प्रारंभिक यात्रा अपभ्रंश साहित्य के समानांतर विकसित हुई। प्रारंभिक हिंदी साहित्य में अनेक बोलियां एवं लोकजीवन के राग–रंग समाहित हुए उसके बाद लौकिकता से अलौकिकता की ओर कदम बढ़ाकर हिंदी साहित्य भक्ति रस में डूब गया। तदोपरांत यह साहित्य शृंगार रस से भी सराबोर हुआ और दरबारी भी कहलाया और जब चेतना जागी तो उसने व्यक्ति और समाज दोनों को जाग्रत करने का बीड़ा भी उठाया।

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी साहित्य के इतिहास के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'गतिविधि' एवं 'क्या आप जानते हैं' के माध्यम से हिंदी साहित्य में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई हिंदी साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियों पर आधारित है, जिसमें आदिकाल की पृष्ठभूमि, काल विभाजन नामकरण एवं सीमांकन पर विचार किया गया है।

दूसरी इकाई में मध्यकालीन हिंदी साहित्य के स्वरूप का विवेचन किया गया है, जिसमें भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों एवं परिवेश को विस्तार से वर्णित करते हुए तत्कालीन साहित्य की मूल संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है।

तीसरी इकाई में आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए खड़ी बोली के प्रारंभिक साहित्य के रचयिता संत गंगादास से लेकर, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग तथा छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों और रचनाकारों का विस्तृत परिचय दिया गया है।

चौथी इकाई उत्तर छायावादी साहित्य चेतना का दिग्दर्शन कराती है, इसमें छायावादोत्तर कविता से लेकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, नवगीत एवं समकालीन कविता की विशेषताओं का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसके साथ ही स्वाधीनता आंदोलन के दौरान तथा उसके बाद लिखे गए स्त्री चेतना, दलित और जनजातीय चेतना को स्वर देने वाले गद्य साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है।

टिप्पणी

पांचवीं इकाई हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं के विकास पर केंद्रित है, जिसमें नाटक, निबंध, उपन्यास, कहानी, एकांकी, आलोचना, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, साक्षात्कार, यात्रा साहित्य, पत्र साहित्य, डायरी साहित्य एवं रिपोर्ताज के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में दक्खिनी हिंदी साहित्य और उर्दू साहित्य के इतिहास का परिचय भी दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी साहित्य के इतिहास का वर्णन सरल भाषा में रुचिकर ढंग से किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर, हिंदी साहित्य की प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां
  1.2.1 साहित्य का इतिहास
  1.2.2 साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्ष
  1.2.3 साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियां
1.3 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
1.4 हिंदी साहित्य का आरंभ
1.5 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
1.6 आदिकाल का नामकरण और सीमांकन
1.7 आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं
  1.7.1 धर्म संबंधी काव्य
  1.7.2 चारण काव्य : रासो साहित्य
  1.7.3 लौकिक साहित्य
1.8 आदिकाल का गद्य साहित्य
1.9 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां
1.10 आदिकालीन साहित्य की भाषा
1.11 सारांश
1.12 मुख्य शब्दावली
1.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

किसी भी साहित्य का अपना एक 'इतिहास' होता है। अतीत के यथार्थ स्वरूप का अनुशीलन ही इतिहास है। भारत यथार्थ की अपेक्षा आदर्श को अधिक महत्व देता रहा है। अतः इस देश में इतिहास लिखने की प्रवृत्ति कम रही। किंतु किसी भी देश के साहित्य के सम्यक मूल्यांकन में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरे शब्दों में, इतिहास की जानकारी के बिना साहित्य के क्रमिक विकास को समझा नहीं जा सकता। यह इतिहास ही है जो साहित्य की विभिन्न रचनाओं, परंपराओं और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है, साथ ही आगे की दिशा निर्देशित करता है। किसी भी साहित्य की प्रेरक शक्ति और बदलती हुई प्रवृत्तियों को समझने में इतिहास की सहायता लेनी पड़ती है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि 'इतिहास' एवं 'साहित्य के इतिहास' में क्या अंतर है। सामान्य अवधारणा के अनुसार, "इतिहास वह होता है जिसमें देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का वर्णन होता है। यह वर्णन अतीत में घटित घटनाओं से

सम्बद्ध होता है।" यहां हमारा अभिप्राय साहित्य के इतिहास से है जिसके अंतर्गत साहित्य विशेष का इतिहास प्रस्तुत करते समय भी तत्कालीन समाज की मदद ली जाती है, क्योंकि साहित्य भी समाज का ही प्रतिबिंब है। समाज साहित्य रूपी दर्पण में स्वयं को पहचानता है। इतिहास न केवल अतीत से हमें परिचित कसता है, बल्कि वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत का मूल्यांकन भी करता है। प्रस्तुत अध्याय में इतिहास और साहित्य में अंतर्संबंध, साहित्येतिहास की परंपरा एवं पद्धतियों को समझने का प्रयास है। साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार न केवल सामग्री का संकलन करता है वरन् उसे कालखंडों में विभक्त करके उसका नामकरण भी करता है। विभिन्न पद्धतियों पर विमर्श भी साहित्य के इतिहास लेखन का केंद्रबिंदु होता है। इस क्रम में लेखक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना होता है, यथा – साहित्य का आरंभ कब से माना जाए। साहित्य एवं साहित्यकार की प्रवृत्तियों को एक कालखंड में विभक्त करना भी उसका विषय होता है।

हम हिंदी साहित्य के इतिहास में 'काल-विभाजन व नामकरण' की समस्या पर विचार करेंगे। किसी भी विषयवस्तु का बौद्धिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए उसे कुछ काल्पनिक पक्षों, खंडों, वर्गों या तत्वों में विभक्त कर लिया जाता है जिससे कि उसके विभिन्न अवयवों को सम्यक रूप में ग्रहण किया जा सके। ऐसा न केवल सैद्धांतिक क्षेत्र में, अपितु व्यावहारिक क्षेत्र में भी किया जाता है।

गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं– "एक बहुत बड़े राज्य को सुशासित करने के लिए एक शासक उसे विभिन्न प्रदेशों एवं मंडलों में विभाजित कर देता है, यद्यपि यह विभाजन कृत्रिम होता है। इसी प्रकार, अन्य क्षेत्रों में भी संबंधित विषय को विभिन्न रूपों में विभक्त कर लिया जाता है। इतिहास में हम मुख्यतः देश के स्थान पर काल का अध्ययन करते हैं। अतः अध्ययन की सुव्यवस्था की दृष्टि से उसे विभिन्न कालखंडों में बांट लेना सुविधाजनक एवं उपयोगी सिद्ध होता है।"

प्रत्येक इतिहास में अतीत काल का अध्ययन किया जाता है, किंतु अध्ययन की सुविधा के लिए अतीत काल को कई कालखंडों या युगों में बांटा जाता है। साथ ही प्रत्येक काल को किसी–न–किसी नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रक्रिया को 'काल–विभाजन' और 'नामकरण' की प्रक्रिया कहा जाता है। काल–विभाजन का लक्ष्य अंततः इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकासक्रम को स्पष्ट करना होता है। साहित्येतिहास पर भी यह बात लागू होती है– साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, उसकी परंपराओं के उत्थान–पतन एवं उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा–परिवर्तन आदि में कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल–विभाजन का लक्ष्य होता है, अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नहीं।

हिंदी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए भी उसका काल–विभाजन और उसके कालखंडों का नामकरण किया गया है। पर यह नामकरण किस आधार पर किया जाता है? इसकी आवश्यकता व उपयोगिता क्या है? अलग–अलग विद्वानों ने जो काल–विभाजन किये हैं, वह कहां तक उचित हैं? इन प्रश्नों का समाधान अति आवश्यक है, जिससे काल–विभाजन एवं नामकरण की समस्या का

टिप्पणी

काल–विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न विद्वानों में काल–विभाजन को लेकर मतभेद हैं। अतः उन सब पर विचार किया जा रहा है।

हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल, जिसे आदिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध सामंत काल आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया गया है– हिंदी का सबसे अधिक विवादग्रस्त काल है। शायद ही भारत के साहित्य के इतिहास में इतने अंतर्विरोधों का युग कभी आया होगा। आदिकाल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े–बड़े कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएं अलंकृत काव्य परंपरा की चरम सीमा पर पहुंच गई थीं और दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि हुए जो अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में अपने मार्मिक भाव प्रकट करते थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान ने भी इस काल की जटिलताओं को स्वीकार करते हुए लिखा है, "इस काल की कहानी को स्पष्ट करने का प्रयत्न बहुत दिनों से किया जा रहा है तथापि उसका चेहरा अब भी अस्पष्ट ही रह गया है।"

आदिकाल में साहित्य की कई प्रवृत्तियां; जैसे– शृंगार, भक्ति, वीर तथा ऐतिहासिक, लौकिक, धार्मिक एवं सामाजिक आदि सभी एक साथ मिलती हैं। इन सभी प्रवृत्तियों के निर्माण, विकास तथा परिवर्तन–संवर्द्धन में बहुत–सी स्थितियों–परिस्थितियों ने अपना योगदान दिया है। साहित्य को प्रभावित करते हुए कभी ये परिस्थितियां उसकी विकास दिशा को प्रशस्त करती रही हैं, तो कभी साहित्यकार एवं साहित्य के मूल्यवान संदेश से प्रेरणा ग्रहण कर सजती–संवरती रही हैं। अपभ्रंश साहित्य की आठवीं से चौदहवीं शती तक अविरल गति से बहती धारा कैसे आदिकालीन साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों में घुलमिल गई तथा परिस्थितियों ने कैसे शृंगार, वीर या भक्ति आदि धाराओं को विकसित किया, रासो काव्यधारा या अन्य लौकिक–ऐतिहासिक और धार्मिक आदि साहित्य ग्रंथों के निर्माण में युगीन परिवेश और परिस्थितियों ने क्या–क्या भूमिका निभाई, ये परिस्थितियां साहित्य की उन प्रवृत्तियों में कहां–कहां और किस रूप में दृष्टिगोचर होती हैं– इन विषयों पर विचार आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में हम साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा, साहित्य और इतिहास के संबंधों का विश्लेषण करने के साथ ही हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल आदिकाल की परिस्थितियों, भाषाओं, प्रवृत्तियों और विचारधाराओं की समन्वित विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- साहित्य के इतिहास की विभिन्न पद्धतियों से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा को समझ पाएंगे;
- हिंदी साहित्य के आरंभ के बारे में जान पाएंगे;
- आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि से अवगत हो जाएंगे;
- आदिकाल के नामकरण और सीमांकन के बारे में जान पाएंगे;

टिप्पणी

टिप्पणी

- आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराओं से अवगत हो पाएंगे;
- आदिकाल के गद्य साहित्य के बारे में जान पाएंगे;
- आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों को समझ पाएंगे;
- आदिकालीन साहित्य की भाषा के बारे में जान पाएंगे।

1.2 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां

'इतिहास' संस्कृत भाषा के तीन शब्दों से मिलकर बना है–इति + ह + आस। 'इति' का अर्थ होता है 'ऐसा ही', 'ह' का अर्थ है 'निश्चित रूप से' और 'आस' का अर्थ होता है 'था'। इस प्रकार, इतिहास का शाब्दिक अर्थ हुआ – निश्चित रूप से ऐसा ही हुआ था, अर्थात जो घटनाएं भूतकाल में घटित हुई हैं, उन्हीं के क्रमबद्ध तथा विवेचनात्मक वर्णन को 'इतिहास' कहा जाता है।

व्यापक अर्थ में, इतिहास वह सामाजिक शास्त्र है जो हमें भूतकाल के लोगों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का परिचय कराता है। यह वर्णन क्रमबद्ध वैज्ञानिक विवेचन होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास में घटनाओं, परिस्थितियों या क्रियाकलापों और रचनाओं की व्याख्या कालक्रमानुसार होती है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि हम किसी भी विषय की घटनाओं या रचनाओं का विवरण कालक्रमानुसार कर दें तो वह 'इतिहास' की संज्ञा का अधिकारी हो जाएगा। वस्तुतः इतिहास का लक्ष्य घटनाओं या रचनाओं का विवरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं होता, अपितु वह उनमें घटित या रचित होने के कारणों एवं आधारभूत तथ्यों की खोज करता है। दूसरे शब्दों में, वह ऐतिहासिक घटनाओं या रचनाओं के उद्गम स्रोतों या प्रेरणास्रोतों की व्याख्या तर्कसम्मत ढंग से करता है। इतिहास का संबंध अतीत की घटनाओं से है, मूलरूप से उन घटनाओं से, जो वास्तविक एवं यथार्थ हों। इसमें किसी भी तथ्य, तत्व और प्रवृत्ति का वर्णन, विवेचन और विश्लेषण कालक्रम की दृष्टि से किया जाता है। इतिहास में घटनाएं होती हैं, तथ्य होते हैं, पर ये अपने–आप में इतिहास नहीं हैं। ये इतिहास का साधन मात्र हैं। इतिहास में तथ्यों के आधार पर युगविशेष का मूल्यांकन होता है। वस्तुतः इतिहास तथ्य और दृष्टिकोण, अनुसंधान और व्याख्या का सामंजस्य प्रस्तुत करता है। इतिहासकार तथ्यों का संकलन करके अपने तथा युग के दृष्टिकोण के अनुरूप व्याख्या करता है। इस प्रकार, शोध और व्याख्या में क्रिया–प्रतिक्रिया का संबंध रहता है।

इतिहास केवल अतीत ही नहीं है, वरन वर्तमान का पुनर्मूल्यांकन भी है। यह भविष्य की कल्पना भी है। इस प्रकार, यह वर्तमान और भविष्य का सेतु भी है। दूसरे शब्दों में, यदि यह कहें कि इतिहास मात्र बीते दिनों का लेखा–जोखा नहीं, अपितु वर्तमान का संवाद भी होता है, इस प्रकार सदैव प्रासंगिकता सिद्ध करता है, तो उचित ही होगा।

1.2.1 साहित्य का इतिहास

साहित्य के इतिहास में साहित्य की विकासमान परंपरा, उसके उद्भव से आज तक की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन

टिप्पणी

उल्लेखनीय है– "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चय है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"

जिस प्रकार इतिहास साहित्य से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य भी इतिहास से प्रभावित होता है। साहित्य का श्रेष्ठ इतिहास वही है, जिसमें साहित्य के इतिहास को देश के इतिहास का एक अंग–रूप समझकर साहित्य की प्रवृत्तियों तथा अन्य प्रवृत्तियों के साथ संगति बिठाई जाए और बाह्य प्रभावों तथा अन्य प्रेरक शक्तियों के साथ आंतरिक भावों और जीवन–रस का दिग्दर्शन कराया जाए। उसमें कवियों के काल संबंधी विवेचन के साथ–साथ उनके काव्य–सौंदर्य का विश्लेषण भी होना चाहिए।

साहित्य का इतिहास अतीत में लिखे गए साहित्य या साहित्यकार का ब्यौरा मात्र नहीं है। जिस प्रकार इतिहास आज राजाओं के जीवन–चरित्र एवं राजनीतिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, उसी प्रकार साहित्य का इतिहास मात्र रचनाओं और रचयिताओं का परिचय–ग्रंथ नहीं है। किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक परिस्थितियों का विवेचन–विश्लेषण ज़रूरी है। इसका कारण यह है कि किसी भी देश का साहित्य उस देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य की प्रवृत्तियां समाज की प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब होती हैं। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है– "साहित्य का इतिहास ग्रंथों और ग्रंथकारों के उद्भव और विलय की कहानी नहीं, वह कालस्रोत में बहे बीते हुए जीवंत समाज की विकास कथा है। ग्रंथकार और ग्रंथ उस प्राणधारा की ओर इशारा करते हैं। वे ही मुख्य नहीं हैं, मुख्य है वह प्राणधारा, जो नाना परिस्थितियों से गुजरती हुई आज हमारे भीतर अपने–आप को प्रकाशित कर रही है। साहित्य के इतिहास में हम अपने–आप को पढ़ने का सूत्र पाते हैं।"

वस्तुतः साहित्य की प्रगति, परंपरा, निरंतरता और विकास को व्याख्यायित करना ही साहित्य के इतिहास का लक्ष्य है। साहित्येतिहास साहित्य की विकासशील प्रक्रिया का उद्घाटन करता है और इस क्रम में नये और पुराने के संघर्ष को भी रेखांकित करता चलता है। साहित्य के इतिहास लेखन में अतीत को ठीक से परखने और समझने के लिए वर्तमान की सही समझ ज़रूरी है।

साहित्य के इतिहास में कृतियों का मूल्यांकन भी होता है। उसके विचार पक्ष और कला पक्ष पर विचार किया जाता है। साहित्य का इतिहास केवल रूप और वस्तु का इतिहास नहीं होता, वह रचना में व्यक्त रचनाकार की सृजनशील चेतना का भी इतिहास होता है। मगर साहित्य के इतिहास में एक ओर जनता की चित्तवृत्ति, परंपरा, नये–पुराने के संघर्ष का मूल्यांकन होता है तो दूसरी ओर, रचना और रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता को भी वर्तमान पर कसा जाता है।

साहित्य का इतिहास मानव चिंतनधारा के विकासक्रम को निरूपित करने के साथ–साथ अभिव्यंजना–शिल्प के क्रमिक विकास को भी दर्शाता है। उसमें युगविशेष के

टिप्पणी

व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है। जहां एक ओर जातीय जीवन की प्रामाणिक झांकी देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक मूल्यों का मूल्यांकन भी होता है। यह एक ऐसी विधा है, जिसमें शोध, इतिहास, समीक्षा सबके तत्व सम्मिलित होते हैं।

1.2.2 साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्ष

किसी भी साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को कई चरणों से गुजरना पड़ता है। इसमें स्रोत–सामग्री का संकलन प्रमुख है। तत्पश्चात वह विशिष्ट रचनाकारों और रचनाओं की पहचान करता है। परंपरा का वैज्ञानिक अनुशीलन करने के उपरांत काल–विभाजन व नामकरण की समस्या पर विचार करता है। इस हेतु वह विभिन्न प्रवृत्तियों का अवलोकन व विश्लेषण करता है। तदुपरांत वह युगविशेष और प्रवृत्ति के अंतर्संबंध का विश्लेषण करते हुए वर्तमान संदर्भ में उनका मूल्यांकन करता है। इस प्रकार उसे निम्न चरणों से गुजरना होता है –

- **सामग्री–संकलन–** किसी भी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए सामग्री–संकलन अति आवश्यक है। यह इतिहास लेखन की पूर्व पीठिका के रूप में काम करता है। तथ्य आधारभूत स्रोत के रूप में काम करते हैं। तथ्यों की खोज के क्रम में वह पुराने साहित्य और साहित्यकार संबंधी अनुसंधानों, कृतियों के प्रामाणिक और सुसंगठित संस्करणों, आकार, ग्रंथ सूची, शिष्ट और लोकसाहित्य की समुचित विवरणी और सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रमाणित इतिहास–ग्रंथों से गुजरता है।
- **काल–विभाजन और नामकरण–** इतिहास लेखक पूरे इतिहास को विभिन्न कालों और युगों में विभक्त करके काल–विभाजन करता है। यद्यपि काल का प्रवाह अविच्छिन्न है तथा भूत, वर्तमान व भविष्य एक–दूसरे में अनुस्यूत रहते हैं, किंतु काल–विभाजन से तत्कालीन साहित्य व समाज की दशा व दिशा निर्धारित की जा सकती है। काल–विभाजन का लक्ष्य अंततः इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकासक्रम को स्पष्ट करना होता है। साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, उसकी परंपराओं के उत्थान–पतन एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा–परिवर्तन आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल–विभाजन का लक्ष्य होता है।

साहित्य का काल–विभाजन करते समय साहित्यिक आधार पर किया काल–विभाजन सर्वश्रेष्ठ होता है। इस संदर्भ में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का कथन दृष्टव्य है– "यदि हम मानते हैं कि मनुष्य के राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक या भाषा–वैज्ञानिक विकास से संयुक्त रहते हुए साहित्य का स्वतंत्र विकास होता है और दूसरा पहले का निष्क्रिय प्रतिबिंब नहीं है, तो हम अनिवार्यतः इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि साहित्यिक युग विशुद्ध साहित्यिक मानदंड के सहारे निर्धारित होने चाहिए।"

इसी प्रकार डॉ. मैनेजर पांडेय ने कहा है– "साहित्य का इतिहास वर्तमान की चेतना के परिप्रेक्ष्य में ही अतीत की सार्थकता की व्याख्या करते हुए उसे उपयोगी और प्रासंगिक बनाता है।"

टिप्पणी

अतः काल–विभाजन और नामकरण यथासाध्य साहित्यिक आधार पर किया जाना चाहिए, यद्यपि यह साहित्यिक आधार परिवेशगत परिस्थितियों से पूर्णतः असंयुक्त नहीं हो सकता।

1.2.3 साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियां

"साहित्य सतत प्रवाहमान है, तथा साहित्येतिहास लेखन भी इससे विरल नहीं है। यह एक विकासशील विधा है। प्रत्येक चीज़ के विकास को परखने के लिए सिद्धांत एवं पद्धतियां अलग होती हैं। इसी प्रकार, साहित्य के इतिहास के लेखन की पद्धतियां भी समय–समय पर बदलती रही हैं। कभी वर्णमाला को आधार बनाया गया, तो कभी कालानुक्रम को आधार रखा गया। किसी इतिहासकार ने विधेयवादी पद्धति अपनाई, तो किसी ने वैज्ञानिक तरीके से वर्गीकरण किया। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक पद्धति में अपने गुण–दोष रहे हैं, इस कारण यह कहना अत्युक्ति नहीं कि कोई भी पद्धति निर्दोष नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इतिहासकार में सही ऐतिहासिक बोध अंतर्दृष्टि और विवेक का होना आवश्यक है।"

साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन यहां किया जा रहा है–

- **वर्णानुक्रमी पद्धति–** इस पद्धति में कृतिकार का परिचय वर्णमाला के अक्षरक्रम से दिया जाता है। प्रमुखतः गार्सा–द–तासी तथा शिवसिंह सेंगर ने इस पद्धति को अपनाया है। इस प्रकार लिखने में अपेक्षित सूचनाओं का अभाव रहता है। उक्त लेखक रचनाओं एवं रचनाकारों के समय के बारे में निश्चित नहीं थे। अतः कालक्रम के अनुसार कृतिकारों को प्रस्तुत नहीं कर सके। इस प्रणाली को पद्धति न कहकर 'कोरा–निर्माण' कहना अधिक उचित होगा। वर्तमान में कोई भी लेखक इस पद्धति से इतिहास–लेखन नहीं करता है।
- **कालानुक्रमी पद्धति–** इस पद्धति में ऐतिहासिक तिथिक्रम के आधार पर निर्धारण होता है। इसमें सबसे बड़ी समस्या रचनाकार के जन्म तथा रचना को लेकर होती है। रचनाकार की जन्मतिथि को आधार माना जाए या रचनातिथि को माना जाए– यह विवाद उत्पन्न करता है। हिंदी साहित्य के इतिहास–लेखन में डॉ. ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं ने यही पद्धति अपनाई है। उर्दू साहित्य में मुहम्मद हुसैन आज़ाद और अंग्रेजी में डॉ. जॉनसन ने यही पद्धति अपनाई। यहां प्रश्न यह है कि क्या केवल कालक्रम ही इतिहास निर्धारक हो सकता है। साहित्येतिहास का उद्देश्य कुछ प्रमुख रचनाकारों का परिचय मात्र नहीं, वरन तत्कालीन परिवेश को सामने लाना भी है, जिस कारण वह साहित्य रचित हुआ। जब तक युग की पृष्ठभूमि सामने नहीं आएगी, तब तक सही अर्थों में इतिहास लेखन संभव नहीं है। वृत्तसंग्रह मूलक प्रणाली, चाहे वह ऐतिहासिक तिथिक्रम से ही क्यों न नियोजित हो, साहित्य के इतिहास के इस व्यापक उद्देश्य की पूर्ति में समर्थ नहीं हो सकती। अतः यह पद्धति भी उतनी उपयोगी नहीं है।
- **वैज्ञानिक पद्धति–** वैज्ञानिक पद्धति, कालक्रमिक पद्धति से बिल्कुल भिन्न है। इसमें तथ्यों की प्रमुखता रहती है। यह प्रणाली मुख्यतः शोध पर आधारित है।

टिप्पणी

इसमें शोध द्वारा वैज्ञानिक तरीके से तथ्य प्रस्तुत होते हैं। किंतु मात्र तथ्य संकलन इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्य और व्याख्या का समन्वित रूप है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का कथन उल्लेखनीय है–"मानव इतिहास की प्रवाहमय धारा में धारा और किनारा सब कुछ मनुष्य ही है, तटस्थ कोई नहीं। जो विरोधी धाराओं के संघर्ष से घबराकर निष्पक्षता में विश्राम करना चाहता है, वह प्रवाह–पतित अनजाने ही इतिहास–विरोधी धारा में जा पड़ता है।" अतः यह प्रणाली भी पूर्ण नहीं है।

- **विधेयवादी पद्धति–** इस प्रणाली में असंबद्ध तथ्य एक होते हैं। इसके अनुसार साहित्य की व्याख्या भौतिक विज्ञान की प्रणालियों से, कार्य–कारण मीमांसा के आधार पर करनी चाहिए। इस पद्धति के जनक तौसा (Tausa) हैं। उन्होंने तीन शब्दों में इसे सूत्रबद्ध किया– जाति, वातावरण एवं क्षण। उनका मत है कि किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यही पद्धति अपनाई है। यह पद्धति अन्य पद्धतियों से श्रेष्ठ तो है, किंतु इसमें भी एकांगी दृष्टि ही है। वस्तुतः साहित्य, समाज का दर्पण तो है किंतु पूर्ण आधार नहीं, इसके लिए परंपरा का भी योगदान होता है। इस तरह साहित्य निर्माण में समाज और परंपरा का भी योगदान होता है और साहित्य निर्माण में ये दोनों आवश्यक हैं। अस्तु, यह भी पूर्णतः शुद्ध पद्धति नहीं है।
- **समाजशास्त्रीय पद्धति–** समाजशास्त्रीय पद्धति कार्ल मार्क्स के 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत पर आधारित है। समाज का द्वंद्व भी साहित्य से अछूता नहीं, अतः साहित्य भी एक सामाजिक सृष्टि है तथा इसमें भी दोनों प्रकार की भावनाएं मिलती हैं। इतिहासकार का कर्तव्य साहित्य का विश्लेषण कर उसे समाज की कसौटी पर कसना है। यह प्रणाली समाज व व्यक्ति की असंगतियों एवं अंतर्विरोधों को परखकर उन्हें उजागर करने का प्रयास करती है। यह पद्धति साहित्य मूल्यांकन की दृष्टि से उपादेय भी है।

वस्तुतः कोई भी पद्धति मूल्यांकन की दृष्टि से पूर्णतः उपयुक्त नहीं है। इस कारण दो–तीन पद्धतियों को सम्मिलित कर उनका मूल्यांकन उचित प्रतीत होता है। साहित्येतिहास के समग्र और संतुलित होने में इतिहासकार के इतिहास बोध और दृष्टिकोण का विशेष महत्व है। साहित्य का इतिहास लिखते समय ऐतिहासिक शोध और समाजशास्त्रीय सिद्धांत के साथ–साथ ही लेखक का इतिहास बोध, अंतर्दृष्टि तथा विवेक सबसे महत्वपूर्ण है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. इतिहास शब्द किस भाषा के तीन शब्दों से मिलकर बना है?
2. कौन पूरे इतिहास को विभिन्न कालों और युगों में विभक्त करके काल–विभाजन करता है?
3. साहित्य का किस आधार पर किया गया काल– विभाजन सर्वश्रेष्ठ होता है?
4. साहित्य लेखन की कौन–सी पद्धति कालक्रमिक पद्धति से बिल्कुल भिन्न है?

1.3 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

हिंदी साहित्येतिहास लेखन के लिए रुझान उन्नीसवीं शती के आरंभ से हुआ। यद्यपि इससे पूर्व भी यदा–कदा रचनाकारों के जीवनवृत्त व कृतित्व का परिचय देने की परंपरा रही, किंतु इसे पूरी तरह इतिहास–लेखन की संज्ञा नहीं दी गई। चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ वैष्णवन की वार्ता भक्तमाल, कविमाला, कालिदास–हजारा आदि ऐसे ही ग्रंथ हैं।

टिप्पणी

यदि हिंदी साहित्य पर दृष्टि डालें तो हिंदी साहित्य का सबसे पहला इतिहास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने *'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी'* नामक ग्रंथ लिखा था। उसका पहला भाग सन् 1839 में और दूसरा भाग सन् 1847 में छपा था। इसमें अंग्रेज़ी वर्णक्रम में लगभग सत्तर कवियों और कवयित्रियों का विवरण है। किंतु इसमें काल–विभाजन, युगीन–प्रवृत्तियों और परंपरा के विवेचन का कोई प्रयास नहीं किया गया है। अतः इसे 'इतिहास' की अपेक्षा 'वृत्त संग्रह' कहना अधिक संगत रहेगा।

इसके पश्चात जो महत्वपूर्ण ग्रंथ निकला वह शिवसिंह सेंगर का 'शिवसिंह सरोज' है। इसका रचनाकाल 1883 है। इसमें कवियों की संख्या में वृद्धि हुई। इसमें लगभग एक हज़ार कवियों की कविताएं सम्मिलित हैं। मूलतः यह एक काव्य संग्रह है, किंतु इसमें अनेक कवि व कविताओं को इकट्ठा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। बाद के कवियों के लिए यह स्रोत का काम करता है। परंतु यह दोनों संग्रह जीवनी रूप में ही रहे। इनमें विभिन्न कालों का विवेचन नहीं था।

जार्ज ग्रियर्सन ने पहली बार *द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान* में कवियों व लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया। साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया। ग्रियर्सन ने तत्कालीन युग के सांस्कृतिक परिवेश और प्रेरणास्रोतों के उद्घाटन का भी प्रयास किया। वस्तुतः इसे हिंदी साहित्य का पहला इतिहास ग्रंथ कहा जा सकता है। उन्होंने पथप्रदर्शक की भूमिका का निवर्हन किया।

क्रमबद्ध इतिहास के रूप में सबसे पहला ग्रंथ *मिश्रबंधु विनोद* (तीन–भाग) सन् 1900 में प्रकाशित हुआ। इसमें काल–विभाजन के साथ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज के निष्कर्षों का पूर्ण समावेश कर दिया गया। इसमें लगभग पांच हज़ार कवियों का उल्लेख है। यह ग्रंथ सूचनाओं का अपार भंडार है, जो आगामी साहित्यकारों के लिए बहुत उपयोगी रहा। हिंदी का सर्वाधिक व्यवस्थित इतिहास आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित *"हिंदी साहित्य का इतिहास"* है। उन्होंने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास–क्रम की व्याख्या करने का प्रयास किया है। शुक्ल जी ने जनता की चित्तवृत्ति के साथ–साथ साहित्य का संबंध जोड़ते हुए उसके क्रमिक विकास और परिवर्तन का आलेख प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उसमें विशेष कवियों के काव्य–गुणों व उनके महत्व का भी सोदाहरण विवेचन किया गया है।

श्यामसुंदर दास का *हिंदी भाषा और साहित्य* भी उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने कवियों के विकास का कलाओं के विकास के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन प्रस्तुत किया है, साथ ही ऐतिहासिक परिस्थितियों पर विशेष ध्यान दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद जी का 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप' नामक ग्रंथ उनके ग्रंथों में से विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें उनके पांच व्याख्यान संकलित हैं। इन व्याख्यानों में उन्होंने सबसे पहले 'मध्यकाल' से क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट किया है और फिर मध्यकालीन साहित्य बोध का विस्तार से विवेचन किया है। इस सारे विवेचन से न केवल मध्यकाल और मध्यकालीन बोध की अवधारणा को स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है बल्कि आधुनिक बोध को समझने में भी बड़ी सहायता मिलती है। जहां आचार्य शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों पर बल दिया, वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा को इतिहास–लेखन का आधार बनाया। द्विवेदी जी ने

टिप्पणी

परंपरापरक दृष्टिकोण को स्थापित करके हिंदी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक व्यापक और संतुलित इतिहास–दर्शन की भूमिका तैयार की।

गणपति चंद्र गुप्त ने अपने ग्रंथ 'साहित्यिक निबंध' में साहित्य के प्रायः सभी अंगों का विवेचन किया है। बड़े–से–बड़े आचार्यों द्वारा कही गई बात उन्हें ठीक नहीं जंची, तो उसके प्रति शंका करने में वे हिचके नहीं हैं। अपनी शंका को उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकट किया है।

बच्चन सिंह का 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ मूलतः साहित्यिक कृतियों पर आधारित है लेकिन उनका अपेक्षित पर्यावरण सर्वत्र दृष्टि में रखा गया है। इसमें शुरू से ही भविष्योन्मुखता को लक्ष्य में रखने के कारण श्रेष्ठ साहित्यकार अपने आप रेखांकित हो उठे हैं।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के अध्ययन–लेखन का प्रधान क्षेत्र रीतिकाल रहा है। संस्कृत और रीतिकालीन काव्य शास्त्र का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया। उन्होंने अपनी रचना 'हिंदी साहित्य का अतीत' में इतिहास को काव्य पर और काव्य को इतिहास पर आरोपित करने की बजाय रचनाओं के भीतर से ही ऐतिहासिक तथ्यों की समानता दिखाने का कार्य किया है, जो अत्यंत प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय कार्य है।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' नामक अपने ग्रंथ में साहित्य के विकास के साथ–साथ संवेदना के विकास को भी रेखांकित किया है। राम विलास शर्मा की इतिहास दृष्टि उक्त लेखकों से अलग रही है। वह मार्क्सवादी धारा के लेखक रहे हैं। उन्होंने हिंदी भाषा के गठन, निर्माण और विकास का प्रामाणिक विवेचन किया है। हिंदी भाषा और साहित्य के जातीय स्वरूप की पहचान और विशेषताओं के विकास का प्रश्न उनके इतिहास लेखन में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा हिंदी साहित्य का एक वृहत इतिहास सघन भागों में प्रकाशित हुआ।

साहित्य के इतिहास में नामों और तिथियों की अपेक्षा प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन अधिक आवश्यक है, क्योंकि उनके द्वारा ही विकासक्रम के सोपानों और स्तरों को सुगमता से समझा जा सकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए रुझान किस शती से आरंभ हुआ?
6. 'शिवसिंह सरोज' की रचना किस सन् में हुई थी?
7. 'मिश्रबंधु विनोद' नामक ग्रंथ कब प्रकाशित हुआ?
8. 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' नामक ग्रंथ के रचनाकार कौन हैं?

1.4 हिंदी साहित्य का आरंभ

हिंदी साहित्य के इतिहास को आरंभिक, मध्यकाल और आधुनिक काल में वर्गीकृत करने पर यह पता चलता है कि हिंदी साहित्य का इतिहास अति विस्तृत एवं प्राचीन है। सामान्यतः प्राकृत की अंतिम अप्रभंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं–आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारंभ हो गई थी। साहित्य की दृष्टि से जो पद्यबद्ध रचनाएं मिली हैं वे दोहा रूप में ही मिली हैं। राज कवि और चारणों की साहित्य रुचि का परिचय उनके द्वारा नीति, श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के किये गए वर्णनों से मिलता है। रचना की यह परंपरा आगे चलकर शैरसेनी अपभ्रंश अथवा प्राकृतभास हिंदी में कई वर्षों तक चलती रही। बोलचाल की देशी भाषा और

टिप्पणी

पुरानी अपभ्रंश भाषा का प्रयोग अधिक होने लगा था। विद्यापति ने इस भाषा को देसी भाषा कहा है। इस भाषा के लिए हिंदी शब्द का प्रयोग कब और किस देश में प्रारंभ हुआ यह कहना कठिन है।

आठवीं सदी में सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ। इन राज्यों में परस्पर लड़ाई होती रहती थी। इन्हें विदेशी मुसलमानों के आक्रमण का भी सामना करना पड़ता था। इसी समय उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं विकास बड़ी तेजी से हुआ था। बौद्ध धर्म की एक शाखा वज्रयान थी जो मुख्यतः तांत्रिक थे। इन्हें सिद्ध भी कहा जाता था। इन्होंने अपना प्रचार तत्कालीन लोकभाषा में ही किया। वज्रयानी सिद्धों ने हिंदी का प्राचीनतम साहित्य उस समय की लोकभाषा, पुरानी हिंदी में लिखा। इनके बाद नाथपंथी साधुओं का उद्भव हुआ जिन्होंने बौद्ध, तंत्र, शांकर, योग और शैव मतों को मिलाकर एक नये पंथ की स्थापना की। इस मत में सभी वर्णों और वर्गों के लिए धर्म के एक सामान्य मत का प्रतिपादन किया गया। इनकी अनेक धार्मिक रचनाएं मिलती हैं जो लोकप्रचलित पुरानी हिंदी में लिखी गई थीं। नाथपंथियों के बाद जैनियों की रचनाएं मिलती हैं। जैनियों की अनेक रचनाएं जीवन की सामान्य अनुभूतियों से संबद्ध हैं जबकि बौद्धों और नाथपंथियों की रचनाएं मुक्तक और केवल धार्मिक हैं। इस काल में 'संदेशरासक' नामक काव्य लिखा गया था। इस काव्य के रचनाकार का नाम अबुल रहमान है। इस काव्य में परवर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है।

यदि अपभ्रंश को स्वीकार करते हैं तो हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ 7वीं–8वीं शताब्दी से माना जाएगा और यदि अपभ्रंश की परवर्ती परंपरा को स्वीकारते हैं तो दसवीं शताब्दी हिंदी साहित्य का प्रस्थान बिंदु होगी। चंद्रधर शर्मा गुलेरी और राहुल सांकृत्यायन अपभ्रंश साहित्य को पुरानी हिंदी स्वीकार करते हैं। 'हिंदी के प्राचीन कवि और उनकी कविताएं' लेख में राहुल सांकृत्यायन ने हिंदी कविता का आदि रूप नालंदा और विक्रमशिला के सिद्धों द्वारा बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व के प्रचार की भाषा में सिद्ध किया है। द्विवेदी जी के मतानुसार, "इस प्रकार दसवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल, जिसे हिंदी का आदिकाल कहते हैं, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढ़ाव है। इसी अपभ्रंश के बढ़ाव को कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुरानी हिंदी। बारहवीं शताब्दी तक निश्चित रूप से अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिंदी के रूप में चलती थी, यद्यपि उसमें नये तत्सम शब्दों का आगमन शुरू हो गया था।" उनके इस कथन से पता चलता है कि वे उत्तर अपभ्रंश को हिंदी का ही आरंभिक रूप मानते हैं। डॉ. भोलाशंकर व्यास के अनुसार हिंदी के आरंभिक रूप को 'अवहट्ट' कहा जाना सही प्रतीत होता है क्योंकि यह 'अवहट्ट' अपभ्रंश का वही रूप है जिसमें हिंदी की सभी आरंभिक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। हिंदी साहित्य के आदिकाल की सामग्री में 'उत्तर अपभ्रंश' की सभी रचनाएं आ जाती हैं। अतः भाषा के विकास की आरंभिक स्थिति तथा उत्तरवर्ती धार्मिक चेतना के मूल रूप को ध्यान में रखकर सिद्ध–साहित्य से हिंदी साहित्य का आरंभ मानना पूर्णतः युक्तिसंगत लगता है। यदि अपभ्रंश को स्वीकार करते हैं तो हिंदी साहित्येतिहास का आंरभ 7वीं–8वीं शताब्दी माना जाएगा और यदि अपभ्रंश की परवर्ती परंपरा को स्वीकारते हैं तो दसवीं शताब्दी से हिंदी साहित्य का आरंभ माना

टिप्पणी

जाएगा। 7वीं शताब्दी मानने के पक्षधर विद्वान हैं– चंद्रधर शर्मा गुलेरी और राहलु सांकृत्यायन जो अपभ्रंश साहित्य को 'पुरानी हिंदी' स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 10वीं शताब्दी से हिंदी साहित्य का आरंभ मानते हैं। यह मत अधिक लोकप्रिय हुआ है।

1.5 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

साहित्य का मूल उत्स जीवन है और विभिन्न प्रकार की सामयिक स्थितियां–परिस्थितियां तथा परिवेश के घटनाचक्र मिलकर जीवन के सद्–असद् रूपों का सृजन करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि साहित्य अगर लोक–चेतना का संवाहक है तो लोक–चेतना युग–विशेष की राजनीति, धर्म, दर्शन संस्कृति तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को प्रभावित करती है। यही परिस्थितियां साहित्यकार को साहित्य–रचना हेतु प्रेरणा देती हैं। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आदिकाल की परिस्थितियों पर विचार आवश्यक है–

1. **ऐतिहासिक परिस्थितियां–** हिंदी साहित्य का जन्म ऐसे समय हुआ जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। राजपूत एवं हिंदू शासक स्वरक्षा में लगे हुए थे। हर्ष की मृत्यु के उपरांत भारत में केंद्रीय शक्ति का अभाव था। सातवीं–आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक के राजनीतिक घटनाचक्र ने हिंदी साहित्य को भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया। हर्ष की मृत्यु के बाद प्रतिहार, तोमर, गुर्जर, राठौर, चौहान, चंदेल, परमार आदि छोटे–छोटे राजवंश सत्ता–संघर्ष में लिप्त हो गए। इन राजवंशों के परस्पर युद्ध कलह एवं विघटन से सामंतवादी प्रथा को प्रोत्साहन मिला। निरंकुश शासन–प्रणाली से राजनीतिक चेतना और विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबला करने की शक्ति भी क्षीण होती चली गई। राष्ट्र बिखर गया। यही कारण है कि युग की चेतना और साहित्य के संदेश में राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की भावना का अभाव देखा गया है।

राजभक्ति प्रमुख होने लगी। परिणामतः राजभक्ति का शौर्य गान एवं प्रशस्ति का प्रचलन प्रारंभ हुआ। आदिकाल का विकास भी इसी परिवेश में हो रहा था। हिंदू शासकों में आपसी कलह, राज्यों का बिखराव, मान–अपमान व प्रतिष्ठा को लेकर हो रहे युद्ध आदि ने देश को खोखला और जर्जर बना दिया। ऐसे समय में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने देश की नींव हिला दी। वास्तव में, इस युग में व्यक्तिगत वीरता के तो कई उदाहरण मिल जाते हैं, किंतु संगठन शक्ति का अभाव दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि विलासिता, आपसी फूट एवं संघर्ष शक्ति के अभाव के कारण भारतीय शक्ति छिन्न–भिन्न दिखाई दी। ऐसे में रूढ़ियों और परंपराओं की जड़ें हिलने लगीं। जनसंपर्क के अभाव तथा दोषपूर्ण राजनीति से देश अपनी चेतना खो बैठा। क्षुद्रता, अहंकार, मिथ्याचार और बाह्य आडंबरों में डूबा भारत मुगलों की शक्ति के आगे नतमस्तक होने लगा। महमूद गजनवी के आक्रमणों ने शक्तिशाली राजपूतों की सत्ता को चुनौती दी, तत्पश्चात मुहम्मद गौरी ने भी राजपूतों की जड़ें हिला दीं। गौरी के पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत की सत्ता संभाली तथा लगभग सारे हिंदी प्रदेश पर राज्य किया। आदिकाल की काल सीमा में शासन करने वाले

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. अपभ्रंश के कई रूपों में पद्य रचना किस शताब्दी से प्रारंभ हो गई थी?
10. सम्राट हर्ष की मृत्यु किस सदी में हुई थी?
11. निश्चित रूप से किस शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिंदी के रूप में चलती थी?
12. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किस शताब्दी से हिंदी साहित्य का आरंभ मानते हैं?

टिप्पणी

तुर्क–अफगानों से हुए युद्ध–वर्णन उपलब्ध हैं। अव्यवस्था, लूटमार तथा बिखराव के इस युग में कवियों ने दरबारी आश्रय भी ग्रहण किया था और उनकी प्रशस्ति के गान लिखे थे। ऐसे परिवेश और राजनीतिक स्थिति में जन्मे आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति इसी कारण वीरता और शृंगार बनी। यद्यपि इस युग में नीति, शक्ति या धर्म और लोक को भी साहित्य में अपनाया गया, परंतु प्रधानता युद्ध वर्णनों और शौर्य गानों की रही। इस विषय में डॉ. राजनाथ शर्मा का कथन उल्लेखनीय है–

"हिंदी साहित्य के आरंभिक काल के रासो ग्रंथ प्रधानतः मध्यप्रदेश के समकालीन राजाओं के राजकवियों द्वारा रचे गए थे। प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को सर्वश्रेष्ठ योद्धा सिद्ध करना चाहता था, अतः अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की भरमार रही।"

एक विशेष बात यह है कि मुस्लिम शासकों के दरबार में हिंदू कवि थे तथा हिंदू शासकों के दरबार में मुस्लिम विद्वान थे। अतः परस्पर सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी था। आत्मरक्षा के लिए किये गए संघर्ष का परिणाम हमें पूर्व मध्ययुग की कविता में देखने को मिलता है। इस प्रकार राजपूतों के उदय तथा उनके अद्‌भुत शौर्य भरे कारनामे यदि युगीन साहित्य में समाहित हुए तो पराजित हिंदुओं के अहिंसक विश्वास को जैन–बौद्ध धर्म से संबद्ध साहित्य ने उजागर किया। चंदबरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो तथा अन्य कवियों के साहित्य में इसे सहज ही देखा जा सकता है।

2. **धार्मिक परिस्थितियां–** राजनीतिक दृष्टि से तो तत्कालीन भारत अस्त–व्यस्त था ही, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से भी उथल–पुथल बनी रही। यद्यपि भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांत वही रहे, किंतु उनका बाह्य आकार काफी परिवर्तित था। धर्म की दृष्टि से यह अराजकता का युग था। हर्ष के शासनकाल में बौद्ध धर्म को संरक्षण प्राप्त हुआ, साथ ही विभिन्न धर्मों में परस्पर समन्वय भी था। किंतु हर्ष की मृत्यु के बाद स्थिति परिवर्तित होती गई तथा धर्म में अराजकता का प्रवेश हो गया। धर्म में कर्मकांडों की प्रधानता हो गई। फलस्वरूप जादू–टोने, तंत्र–मंत्र का बाहुल्य हो गया। बौद्ध धर्म भी अनेक सिद्धांतों– हीनयान, महायान, वज्रयान, मंत्रयान, सहजयान में बंट गया। फलस्वरूप सिद्धांतों में भी परिवर्तन हुआ तथा हठयोग को भी विशेष स्थान प्राप्त हुआ। स्पष्ट है कि यह मत विकारों को प्रश्रय देने लगा था तथा वाममार्गी हो गया था। ये तंत्र–मंत्र, जादू–टोने तथा भोग–विलास को लेकर चलने वाले थे। वाममार्गी ही बौद्ध–सिद्ध कहलाए तथा दूसरी तरफ धर्म–नियम, संयम और हठयोग साधना के कठिन मार्ग को अपनाने वाले नाथ–सिद्ध के रूप में जाने गए। पर मूलतः दोनों बौद्ध ही थे। प्रत्येक धर्म एक–दूसरे को नीचा दिखाने में लगा था। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है– "इस काल के हिंदी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आसपास जैन धर्म बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, उमा–महेश्वर योग साधना, वामाचार, सिद्ध एवं नाथ पंथ, शैव मत, वैष्णव मत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त अदि संप्रदायों की प्रतिद्वंद्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही

टिप्पणी

थी। भीतरी विद्वेश से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गया। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद–भाव उत्पन्न करने के साधन बने।"

बौद्ध धर्म के समान ही इस काल की धार्मिक पृष्ठभूमि के निर्माण में जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इस काल में जैन धर्म एक नवीन रूप में ढल रहा था। जैन धर्म पर एक ओर तो बौद्धों की तांत्रिक–पद्धति का प्रभाव था, दूसरी ओर जैन मतावलंबी साहित्यकार अपनी रचनाओं में पौराणिक कथाओं का कुछ परिवर्तित रूप में समावेश कर रहे थे। इस काल की धार्मिक स्थिति का अध्ययन करते समय यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इस समय के शासक न केवल अलग–अलग धर्मों के अनुयायी थे बल्कि वे इस धर्म के प्रचार–प्रसार में सहायक भी थे। यथा पाल शासक बौद्ध थे और उन्होंने सहजयानी बौद्धों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया। इसके विपरीत सेन शासक वैदिक धर्मावलंबी थे, अतः उन्होंने ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय दिया। इस काल में पहले तो जैन, बौद्ध एवं वैदिक धर्म साथ–साथ प्रचलित थे, किंतु कालांतर में वैदिक धर्म अधिक लोकप्रिय हो गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमज़ोर पड़ गए। इसका कारण था, इन धर्मों की अहिंसा आधारित नीति, जो उस समय के युद्धकाल के अनुरूप नहीं थी। इसी कारण शैव मत अधिक लोकप्रिय हो गया। सेन शासन तथा मालवा के शासक वैदिक मतावलंबी थे। कलचुरि शासक शैव थे तथा गाहड़वार स्मार्त थे। अन्य अनेक राजपूत राजा भी किसी न किसी रूप में ब्राह्मण धर्म को ही मानते थे। दूसरी तरफ भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश तुर्कों, अफगानों के माध्यम से ही हुआ। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से, इस काल में दक्षिण में वैष्णव शक्ति का विकास तो हुआ, पर उसका प्रभाव उत्तर भारत पर इस समय न पड़ सका। इस युग में तंत्र–मंत्र, टोने–टोटके, इस्लाम की बढ़ती शक्ति, अनेक धार्मिक दल, सांप्रदायिक विद्वेष एक साथ देखने को मिलते हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप किसी के सामने स्पष्ट न था और न ही उसे स्पष्ट करने वाला कोई सद्गुरु ही था। इन विषम परिस्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया। इनके कर्मकांड और आडंबर यहां भी प्रवेश कर गए। धर्म के इस स्वरूप का प्रभाव भी आदिकाल के अधिकांश साहित्य पर दिखाई देता है।

3. **सांस्कृतिक परिस्थितियां–** सम्राट हर्ष के समय में भारत न केवल राजनीतिक रूप से सुदृढ़ था, वरन् भारतीय संस्कृति का यशगान भी जगतव्यापी था। भारत संसार के अत्यधिक सभ्य देशों में गिना जाता था तथा यहां की सभ्यता अति विकसित थी। तत्कालीन समाज की सभ्यता की झलक स्थापत्य, मूर्ति एवं संगीत कला में दिखती है। भुवनेश्वर, खजुराहो, सोमनाथ के मंदिर इसी कथन के प्रमाण हैं। हिंदी साहित्य के आदिकाल का प्रारंभ ऐसी ही अवस्था में हुआ जबकि आदिकाल के समापन के समय भारत पर मुस्लिम संस्कृति ने अपना प्रभाव छोड़ दिया था। भारत में मुस्लिम संस्कृति के परिवेश के समय यहां की विभिन्न जातियों, मतों, आचारों–विचारों आदि में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुंच रही थी।

टिप्पणी

स्पष्ट है कि यवन आक्रमण के फलस्वरूप इस्लाम की संस्कृति भारत आई, ऐसे में हिंदू एवं इस्लाम संस्कृति का एक–दूसरे से प्रभावित होना सहज ही था। यद्यपि प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियां एक–दूसरे की विरोधी एवं प्रतिद्वंदी बनी, किंतु बाद में भारत की कलाओं में इस्लाम की संस्कृति का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। वहीं मूर्तिकला के संदर्भ में भी मुस्लिम आक्रमणकारी विध्वंसक बनकर भारत आए तथा भारतीय शिल्प पर उनका प्रभाव स्वतः लक्षित है। अभिप्राय यह है कि आदिकाल संक्रमण काल ही था तथा दोनों संस्कृतियों ने किसी न किसी रूप में एक–दूसरे से प्रभाव ग्रहण किया था।

4. **सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां–** इस युग में निरंतर युद्धों ने जनजीवन को भी अस्थिर कर दिया था। जनता की ओर राजाओं का ध्यान नहीं गया। देश की राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों का प्रभाव सामाजिक व आर्थिक स्थिति पर भी पड़ा। इन्हीं के फलस्वरूप समाज कई वर्गों में विभक्त हो गया। कोई भी संगठित सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। धार्मिक अराजकता ने सामाजिक जीवन को आडंबरयुक्त बना दिया था। ब्राह्मणों का प्रभुत्व कम हुआ। राजपूत व क्षत्रिय जातियां प्रभावशाली होने लगीं। राजा अपनी शौर्यगाथाओं और प्रशस्तियों के आदी हो चुके थे। किंतु दुर्भाग्यवश उनका लक्ष्य राष्ट्रहित नहीं वरन् निजी स्वार्थ थे। वैयक्तिक स्पर्धाओं की मानो होड़ लगी थी। समाज में जातिप्रथा एवं वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर थी। सामाजिक रीतिरिवाज और विधि–विधानों का कट्टर–प्रचलन समाज को तोड़ रहा था। जनता निराश्रित थी, क्योंकि धर्म एवं शासन दोनों से ही उसे संबल नहीं मिल रहा था। युद्ध लिप्सा ने जनता को पूरी तरह से तोड़ दिया था। ईश्वर को लेकर भी मतभिन्नता थी। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की खाई और अधिक चौड़ी होती जा रही थी। नारी भोग्या बनकर स्वयंवर की शोभा बन रही थी। शिक्षा के अभाव के कारण सांप्रदायिक तनाव, सामाजिक कुरीतियां एवं अंधविश्वास अपने चरम पर थे। निर्धनता और महामारी सामाजिक जीवन को और अधिक विषम बना रही थी। इन विकट परिस्थितियों में भी आदिकालीन कवियों ने काव्य–रचना की सामग्री जुटाई। समाज में घटित चक्र साहित्य में भी प्रतिबिंबित होने लगा। अनेक वर्गों में विभाजित समाज अपने आदर्श खो चुका था। समाज की संकीर्णता अनेक प्रतिबंधों में अभिव्यक्ति पाने लगी थी। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन उल्लेखनीय है– "इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों में विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्लयुद्ध, द्यूतक्रीड़ा, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे। कवियों का विशेष आदर था। भुवनेश्वर, कोणार्क और पुरी के मंदिरों की अद्भुत कला के माध्यम द्वारा तत्कालीन जीवन की विविधतापूर्ण प्रेरणाएं स्पष्ट हो जाती हैं।"

आर्थिक स्थिति का अनुमान युगीन युद्धों से लगाया जा सकता है। विदेशी आक्रमणकारियों का एक उद्देश्य लूटपाट करना था। भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था, किंतु विदेशी आक्रांताओं ने यहां की संपत्ति यथा संभव लूट कर इसे आभाहीन कर दिया। उन्होंने यहां के मंदिरों, नगरों, गांवों तथा संग्रहालयों को

लूटा। प्रतिदिन की लूटपाट का दुष्प्रभाव अर्थ–व्यवस्था तथा सामाजिक–व्यवस्था पर काफी पड़ रहा था। जनता लूटमार से आक्रांत थी। अंधविश्वास, अपनी सीमा से बाहर जाकर निर्वाह किये जाने वाले रीतिरिवाज तथा तरह–तरह के विधि–विधान समाज को खोखला कर रहे थे। शासक वर्ग भोग–विलास में पड़े थे, आर्थिक–उद्धार तथा सामाजिक–कल्याण के लिए पूर्णतः निष्क्रिय थे।

अतः स्पष्ट है कि यह युग धर्म और संस्कृति की तरह सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी अराजकता का युग था। जमींदार, शासक, भूस्वामी के आधिपत्य का यह काल साहित्य में भी मुखर हुआ। भक्ति से शृंगार का मिश्रण, धर्म से अंधविश्वास और कुरीतियों का मिश्रण, जाति पांति, मानसिक अशांति का मिश्रण सब इसी तथ्य के साक्षी हैं। इन सब को सहज ही आदिकाल में देखा जा सकता है।

5. **साहित्यिक परिस्थितियां–** इस युग की साहित्यिक परिस्थिति अत्यंत समृद्ध रही। संस्कृत साहित्य अलंकृत साहित्य बन चुका था। साथ ही अपभ्रंश, प्राकृत साहित्य की धारा तथा हिंदी भाषा की साहित्य धारा प्रचलन में थी। इस काल में भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। संस्कृत काव्यधारा के लोकप्रिय कवि कुंतक, क्षेमेंद्र, अभिनव गुप्त, कुमारिल भट्ट, विश्वनाथ, श्रीहर्ष, जयदेव, भवभूति जैसे साहित्यकार एक साथ देखने को मिलते हैं।

दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य पर दृष्टि डालने पर भी उत्कृष्ट साहित्य की झलक दिखती है। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल जैसे कवियों ने उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाओं में प्राकृत–अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी का मिश्रित रूप मिलता है। दूसरी ओर सरहपा, लुइपा, कण्हपा तथा गोरक्षनाथ जैसे सिद्ध नाथ कवि अपभ्रंश के साथ लोकभाषा हिंदी का प्रयोग कर रहे थे। राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी', अमरुक का 'अमरुकशतक' तथा हाल की 'आर्या सप्तशती' अपभ्रंश की उत्तम कृतियां थीं। वास्तव में इस काल की तीन भाषाएं तीन तरह की रचना प्रवृत्तियों की सूचक बनीं। संस्कृत राज प्रवृत्ति की सूचक है तो प्राकृत व अपभ्रंश धर्मग्रंथों की भाषा है और हिंदी जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं को प्रतिनिधित्व देने वाली भाषा है।

संस्कृत में जहां आचार्य कवि हुए, जिनकी रचनाएं अनुकरणीय थीं, दूसरी तरफ अपभ्रंश में लिखा गया साहित्य था। अपभ्रंश की प्रमुख रचनाओं में संदेश–रासक 'पउमचरिउ' तथा 'परमात्म प्रकाश' जैसी रचनाएं थीं। यहां एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि प्राकृत अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय–भाषाओं का जन्म हुआ। अपभ्रंश के परवर्ती रूप को ही 'अवहट्ट' या 'पुरानी हिंदी' कहा जाता है। आदिकाल में वीरगाथाएं और प्रशस्तियां अधिक लिखी गईं जिसका कारण आश्रयदाता राजाओं के शौर्यगान की प्रवृत्ति रही है। विजयपाल रासो, हम्मीररासो, पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, बीसलदेव रासो आदि रचनाएं इसका प्रमाण हैं। इस युग में वीर, भक्ति तथा शृंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक साहित्य भी लिखा जाता रहा है। इस साहित्य सृजन का माध्यम बनने वाली भाषाओं में

वैदिक–संस्कृत, पालि–प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी भाषाएं अपना योगदान देती रहीं। आदिकाल में नरपति नाल्ह, जगनिक, अमीर खुसरो, चंदबरदाई जैसे साहित्यकार हुए। विविध काव्य रूपों और शैलियों में वीरगाथाओं को प्रस्तुत करते हुए युद्धों के सजीव वर्णन, शृंगारिक रचनाएं, प्रशस्तियां एवं शौर्य–गान के अतिशय चित्रण इस काल में प्रमुखता से हुए।

आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव

यह तो स्पष्ट ही है कि आदिकाल राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक बिखराव का काल है। इन परिस्थितियों ने उस युग के साहित्य और साहित्यकारों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। वस्तुतः समय एवं परिस्थिति ही साहित्य को आकार प्रदान करती है। साथ ही जनसामान्य को दिशा देने का काम करती है। शासक एवं जनसामान्य को ही साहित्य ने वाणी दी है। साहित्यिक सामग्री और साहित्यकारों की मानसिकता की द्योतक बनीं साहित्य–प्रवृत्तियां उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित और नियंत्रित होती रहीं। इस काल की विकट एवं उलझी हुई परिस्थितियों में एक भाषा का विकसित होना सहज नहीं था। अतः यही कारण है कि इस युग में एक साथ कई भाषाओं में और विविधतापूर्ण साहित्य रचा गया। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है–

"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ... जनता की चितवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।"

स्पष्ट है कि आदिकाल भी इन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा। चाहे वह वीरगाथा साहित्य हो या भक्ति, नीति और प्रकृति संबंधी हो, चाहे शृंगारपरक साहित्य हो अथवा प्रशस्ति साहित्य, सभी अपने युग को दर्शाते हैं। शासकों ने ही भाषा और साहित्य को आश्रय दिया, फलस्वरूप इसे दिशा भी मिली। अतः कहा जा सकता है कि युगीन परिवेश और परिस्थितियों से साहित्य नियमित एवं नियंत्रित हुआ।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. गौरी के पश्चात किसने भारत की सत्ता संभाली थी?
14. किस सम्राट के समय में भारत न केवल राजनीतिक रूप से सुदृढ़ था, वरन भारतीय संस्कृति का यशगान भी जगतव्यापी था?
15. भारत पर आक्रमण करने वाले आक्रमणकारियों का उद्देश्य क्या था?
16. 'कर्पूरमंजरी' किसकी कृति है?

1.6 आदिकाल का नामकरण और सीमांकन

आदिकाल की अनेक समस्याओं में से सर्वप्रथम तो उसके नामकरण की ही है। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने कालों के नामकरण का कार्य किया। तत्पश्चात मिश्रबंधुओं को यह श्रेय प्राप्त हुआ। इसके बाद रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अन्य परवर्ती विद्वानों ने नामकरण का प्रयास किया।

हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल – जिसे आदिकाल, वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध सामंत काल आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया गया है – हिंदी का सबसे अधिक विवादग्रस्त काल है। शायद ही भारत के साहित्य के इतिहास में इतने अंतर्विरोधों का युग

टिप्पणी

कभी आया हो। इसकी कालावधि 10वीं से 19वीं शताब्दी मानी गई है। विभिन्न विद्वानों ने इसका नामकरण इस प्रकार किया है–

1. ग्रियर्सन – चारणकाल
2. मिश्रबंधु – प्रारंभिक काल
3. रामचंद्र शुक्ल – आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल
4. राहुल सांकृत्यायन – सिद्ध सामंत काल
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी – बीजबपन काल
6. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – वीर काल
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी – आदिकाल
8. रामकुमार वर्मा – संधिकाल एवं चारणकाल

जार्ज ग्रियर्सन ने विभिन्न कालों के नामकरण का कार्य किया। उन्होंने आरंभिक काल को 'चारण काल' नाम दिया, पर इसके पक्ष में वे ठोस तर्क नहीं दे सके। वे हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 643 ई. से करते हैं, पर इसके पक्ष में किसी प्रवृत्ति का उल्लेख नहीं कर सके। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएं 1000 ई. के बाद से ही मिलती है। अतः यह नामकरण अनुपयुक्त प्रतीत होता है। मिश्रबंधुओं ने इस काल को 'प्रारंभिक काल' कहा तथा उन्होंने अपने ग्रंथ में हिंदी भाषा को आधार बनाते हुए इस कालखंड विशेष को 'पूर्व प्रारंभिक हिंदी', 'चंद्रपूर्व की हिंदी', 'रासो काल' 'उत्तर आरंभिक हिंदी' आदि नाम दिए हैं। पर इनमें कोई भी नाम इस संपूर्ण कालखंड का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। तत्पश्चात आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्येतिहास के इस कालखंड का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा। इस नाम के विषय में वे स्वयं लिखते हैं– "... आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच प्रथम डेढ़ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेषता का निश्चय नहीं होता है– धर्म, नीति, श्रृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती हैं। इन अनिर्दिष्ट लोकप्रवृत्ति के उपरांत जब से मुसलमानों की चढ़ाइयों का आरंभ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुए पाते हैं। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन करते थे। यही प्रबंध रासो के नाम से पाए जाते हैं जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने 'वीरगाथा काल' कहा है।" उन्होंने 12 पुस्तकों के आधार पर यह नाम दिया है। किंतु केवल इस आधार पर यह नाम देना उचित नहीं है। इस काल में वीरकाव्य के अतिरिक्त धार्मिक, श्रृंगारिक और लौकिक साहित्य की रचना हुई। वीरगाथा नाम देने से इन प्रवृत्तियों की उपेक्षा हो जाती है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के प्रथम काल का नाम बीजबपन काल रखा। उनका मानना था कि इस काल में पूर्ववर्ती अपभ्रंश की साहित्यिक कृतियों का ही विकास हुआ। परंतु तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए भी यह नाम उपयुक्त नहीं होगा। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा दिया गया नाम 'वीरकाल' भी इसी की पुनरावृत्ति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'आदिकाल' नाम दिया है। उन्होंने आदिकाल के अंतर्गत धार्मिक रचनाओं का भी समावेश किया है। उन्होंने इस काल की श्रृंगारिक प्रवृत्ति वाली रचनाओं व लौकिक काव्य के आधार पर आदिकाल नाम दिया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'आदिकाल' को दो खंडों में विभाजित किया – संधिकाल और

टिप्पणी

चारणकाल। संधिकाल जहां भाषा को आधार बनाकर दिया गया है, वहीं चारणकाल एक वर्गविशेष का बोध कराता है। इस नामकरण की कमज़ोरी यह है कि इसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। अतः यह नामकरण भी उचित नहीं।

राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश और हिंदी को एक ही भाषा मानते हुए इस काल का नामकरण 'सिद्ध–सामंत–युग' किया है। सिद्ध वज्रयानी सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं का प्रतीक है और 'सामंत' हिंदी के वीर रसात्मक साहित्य का सूचक। किंतु उनका मत स्वीकार करने योग्य नहीं है। एक तो अपभ्रंश और हिंदी को एक मानना अनुचित है, क्योंकि ऐसा करने पर अपभ्रंश से विकसित अन्य भाषाएं भी हिंदी की शाखाएं बन जाएंगी। दूसरे, यदि हिंदी और अपभ्रंश को एक कहा जाएगा तो प्राकृत व पाली को भी एक ही कहा जाएगा। अतः यह नाम भी यथातथ्य नहीं है। डॉ. श्याम सुंदर दास ने इस युग को 'आदियुग' मानते हुए इसका समय 1050 से 1400 तक माना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 1000 से 1400 तक के कालखंड को 'आदिकाल' कहना उचित समझा, साथ ही कहा– "वस्तुतः हिंदी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि वह काल कोई आदिम मनोभावपन्न, परंपरा–विनिर्मुक्त, काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा–प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सजग–सचेत, कवियों का काल है। यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं है।"

उक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि आदिकालीन साहित्य के लिए नामकरण तो भिन्न–भिन्न प्रस्तावित हुए किंतु समय–सीमा में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता। वैसे भी सर्वाधिक स्वीकृत नाम 'आदिकाल' ही रहा है। यद्यपि यह नाम भी इस काल की संपूर्ण साहित्यिक प्रवृतियों तथा लोक–चित्तवृत्तियों को प्रतिबिंबित नहीं करता किंतु यह तो स्पष्ट ही है कि "प्रारंभ काल" के नाम पर इसमें सभी कुछ समाहित हो जाता है। सभी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां, विशेषताएं तथा काव्य–धाराएं इसमें सहज ही समा जाती हैं। स्वयं शुक्ल जी ने भी यह स्वीकारा है। अतः समय सीमा और नामकरण के इस समग्र विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश विद्वत–साहित्य–समाज द्वारा स्वीकृत नाम 'आदिकाल' ही प्रामाणिक एवं समर्थ नाम है। किसी साहित्यिक प्रवृत्ति तथा लोक चित्तवृत्ति को प्रतिबिंबित न करके भी यही नाम स्वीकृत किया जा सकता है।

1.7 आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं

आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के बारे में जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि इस काल में किस प्रकार के साहित्य की रचना हुई। विषय की दृष्टि से इसे तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– धर्म संबंधी काव्य, चारण काव्य, जिसके अंतर्गत रासो साहित्य आता है तथा लौकिक साहित्य। धर्म संबंधी काव्य के अंतर्गत नाथ, सिद्ध तथा जैन साहित्य का विवेचन है। उक्त संप्रदायों का मुख्य विषय धर्म तथा साधना पक्ष का प्रचार–प्रसार काव्य के माध्यम से करना है। चारण कवियों द्वारा रचित 'रासो काव्य' वर्ग के अंतर्गत उस काल में 'रासो' के नाम से लिखे गए वीरगाथात्मक साहित्य का विवेचन किया गया है। रासो साहित्य की भी तीन प्रमुख प्रवृत्तियां हैं– वीरगाथात्मक रासो काव्य,

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. कालों के नामकरण का कार्य सर्वप्रथम किसने किया?
18. हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल की अवधि कब से कब तक मानी गई है?
19. हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल का संधिकाल एवं चारणकाल नामकरण किसने किया?
20. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किस कालखंड को आदिकाल कहना उचित समझा?

टिप्पणी

शृंगारपरक रासो काव्य, तथा धार्मिक रासो काव्य। 'लौकिक साहित्य' के अंतर्गत उन फुटकर कवियों तथा काव्य कृतियों का विश्लेषण किया गया है, जिनमें परंपरा से अलग कार्य है। इस वर्ग में अमीर खुसरो तथा विद्यापति प्रमुख हैं। अमीर खुसरो ने ही सर्वप्रथम खड़ी बोली को काव्य लेखन का माध्यम बनाया तथा खालिकबारी, पहेलियां, मुकरियां, दो सुखने, गज़ल आदि की रचना की। विद्यापति के लेखन में शृंगारिक काव्य प्रमुख है, जिसका चरम रूप रीतिकाल में दिखता है। धनपाल कृत 'भविसयत्तकहा' एक अलग प्रकार की काव्यकृति है जिसका नायक एक साधारण व्यक्ति है। इन्हीं प्रवृत्तियों की चर्चा हम आगामी पृष्ठों में करेंगे–

1.7.1 धर्म संबंधी काव्य

किसी मत अथवा संप्रदाय के प्रचार के उद्देश्य से लिखा साहित्य इस श्रेणी में आता है। इस वर्ग में सिद्ध, जैन तथा नाथ संप्रदाय की रचनाएं प्रमुख हैं। आचार्य शुक्ल इन रचनाओं को साहित्य की श्रेणी में नहीं रखना चाहते। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत इससे बिल्कुल अलग है। उनके अनुसार जैन अपभ्रंश की रचनाएं उत्तम काव्य है। वस्तुतः ये रचनाएं केवल धर्म का प्रचार मात्र नहीं थी अपितु इनमें कई श्रेष्ठ काव्य रचनाएं भी थीं। इन्हें हम निम्न शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं–

(क) सिद्ध साहित्य– सिद्ध संप्रदाय बौद्ध धर्म की ही परंपरा का एक आंदोलन था। सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था के कारण इन्हें सिद्ध कहा गया। उनमें से कुछ तो सहजयानी और कुछ वज्रयानी थे। सहजयान का प्रवर्तन वज्रयान में प्रचलित बाह्याचार के विरुद्ध जन्म लेने वाली प्रतिक्रिया की देन था। जीवन के सहज रूप को स्वीकार करने के कारण सहजयान में जीवन के भोग के लिए बहुत स्थान सुरक्षित था। वज्रयानियों ने भोग की इस प्रवृत्ति को घोर शृंगारिकता के समीप ला खड़ा किया था। प्रमुख सिद्ध कवि हैं सरहपा, शबरपा, कण्हपा, लुइपा, डोम्भिपा आदि। इन सभी सिद्धों के नाम के आगे लगा 'पा' शब्द सम्मानसूचक शब्द 'पाद' का ही विकृत रूप है। इनमें से 14 सिद्धों की रचनाएं ही उपलब्ध हैं। इन्हीं के द्वारा लिखा साहित्य 'सिद्ध साहित्य' कहलाता है। इनका रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती तक है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं मुख्यतः दो रूपों में मिलती हैं– 'दोहाकोश' तथा 'चर्यापद'। सिद्धाचार्यों द्वारा लिखित दोहों का संग्रह 'दोहाकोश' के नाम से जाना जाता है तथा उनके द्वारा रचित पद 'चर्यापद' या 'चर्यागीत'–नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिद्ध साहित्य भोग का समर्थक है। इसमें पाखंड एवं अनुष्ठानों का विरोध है। सिद्ध साहित्य में गुरु का विशेष महत्व है। उनका मत है कि ब्रह्म की प्राप्ति गुरु की कृपा से ही संभव है। आचार्य द्विवेदी जी के अनुसार सिद्ध साहित्य की "रचनाओं में प्रधान रूप से नैरात्म्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधिजन्य अवस्थाओं का वर्णन है।" सिद्धों की भाषा को 'संध्या भाषा' माना गया है जो कुछ स्पष्ट तथा कुछ अस्पष्ट होने के कारण तथा पुरानी हिंदी तथा अपभ्रंश के बीच की होने के कारण भी संध्या भाषा कही गई है।

टिप्पणी

प्रभाव– सिद्ध कवियों का लक्ष्य साहित्य रचना नहीं था। वे तो अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में लिखते थे। इनकी भाषा के अक्खड़पन का परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। इन्होंने सीधे शब्दों में अपनी बात न कहकर तंत्र–मंत्र के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति की। संत कवि कबीरदास पर इनका प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। इस संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन का मत है– "यही कवि हिंदी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे। नये–नये छंदों की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कवित्व था। इन्होंने दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि छंदों की सृष्टि की, जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है।" सिद्ध कवियों में सिद्ध सरहपा सबसे प्रमुख हैं। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं– 'कायाकोष, दोहाकोष, सरहपादगीतिका तथा 'चर्यागीति–दोहाकोष'। इन कृतियों की भाषा पर शौरसैनी अपभ्रंश का प्रभाव माना जाता है। कवि ने गुरु को प्रमुख स्थान दिया है तथा कहा है कि केवल शास्त्र ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। यथा–

सहजे चिर करि वारुणी सधा, जे अजरामर होई टिर कांधा।
दशमि दुआरत चिह्न रखइया, आइल गराहक अपणे बहिआ।।

सरहपा के अतिरिक्त शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, शन्तिपा आदि उल्लेखनीय सिद्ध कवि हैं। शबरपा को सरहपा का ही शिष्य माना जाता है। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध कृति है। इन्होंने स्वाभाविक जीवन पर बल देते हुए माया मोह का विरोध किया है। चौरासी सिद्धों में लुइपा का सर्वोच्च स्थान है। इनके काव्य में दर्शन एवं रहस्य भावना की प्रधानता है। डोम्भिपा ने 'डोम्बि गीतिका' की रचना की। इनके काव्य का मूल विषय भी साधना एवं गुरु का महत्व है। कण्हपा ने सर्वाधिक कृतियों की रचना की। इनमें 'दोहाकोष' प्रमुख है। इनके ग्रंथ दर्शन एवं तंत्र पर आधारित हैं। शान्तिपा ने मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है। उन्होंने गुरु को मार्गदर्शक माना। इन कवियों की रचनाओं का मूल विषय साधना का निरूपण तथा अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन था। इन कवियों का लक्ष्य अलंकार या काव्य सौंदर्य न होकर लोकभाषा का प्रचार करना था। इसके लिए उन्होंने प्रतीकात्मक शैली अपनाई।

(ख) जैन साहित्य– आदिकालीन साहित्य में जैन कवियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जैन शब्द 'जिन' से बना है जिसका अर्थ है– विजय पाने वाला। यह सांसारिक आकर्षणों पर होने वाली विजय है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक महावीर स्वामी थे। इसमें त्याग, अहिंसा एवं करुणा पर बल दिया गया है। यह त्याग केवल इंद्रिय निग्रह में ही नहीं अपितु सहिष्णुता में है। जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा में किया। यह अपभ्रंश प्रभावित हिंदी थी। इनकी अधिकांश रचनाएं धार्मिक हैं। इन कवि यों की कृतियां रास, फागु चरित्र आदि विविध काव्य रूपों में प्राप्त होती हैं। इन कृतियों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति मुख्य है, तथा घटनाओं का अभाव है। चरित काव्यों में प्रसिद्ध पुरुषों की कथा है, किंतु इनमें भी धार्मिक भावना प्रमुख है। लौकिक काव्य होने पर भी इनमें धार्मिकता प्रत्यक्ष देखी जा सकती है।

टिप्पणी

हिंदुओं की पौराणिक कथाओं को आधार बनाया गया है तथा रहस्यवादी काव्यों की भी सृष्टि की गई है। वास्तव में इन कृतियों की भाषा शिष्ट और परिनिष्ठित है। इनमें योगींदु मुनि रचित 'परमात्म प्रकाश' 'योगसार' तथा मुनि रामसिंह द्वारा रचित 'पाहुड़ दोहा' उल्लेखनीय है। जैन कवियों में रासो काव्यकारों के अतिरिक्त स्वयंभू एवं पुष्पदंत उल्लेखनीय हैं।

स्वयंभू को प्रथम जैन कवि माना जाता है। इनकी तीन प्रमुख कृतियां हैं, जिनके नाम हैं– 'रिट्ठणेमि चरिउ' 'पउमचरिउ' तथा 'स्वयंभू छंदस' (छंद शास्त्र से संबंधित)। पउमचरिउ सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है। यह जैन रामायण है तथा श्रीराम की कथा है। उन्होंने जैन धर्म की रीति–नीति के अनुसार रामकथा में परिवर्तन किया है। साथ ही कुछ नवीन प्रसंग भी जोड़े हैं। इस ग्रंथ में कवि ने प्रकृति वर्णन और युद्ध वर्णन का विराट अंकन किया है। अलंकारों का प्रसंगानुकूल एवं सशक्त प्रयोग किया गया है। वस्तुतः कवि की शैली परंपरागत रूढ़ियों से ओत–प्रोत है तथा भाषा में सहज प्रेषणीयता है। रिट्ठणेमि चरिउ में कृष्ण का चरित्र है तथा उन्हें महामानव के रूप में चित्रित किया गया है। यह कृति अपभ्रंश में रचित है। भाषा साहित्यिक तथा प्रवाहमय है।

दूसरे प्रधान कवि पुष्पदंत हैं। पहले ये शैव थे, किंतु बाद में उन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ले ली। इनकी प्रधान कृतियां 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणलंकार महापुराण' तथा 'णायकुमार चरिउ' हैं। प्रथम कृति दो खंडों में विभक्त है। आदिपुराण खंड में ऋषभदेव तथा 23 तीर्थंकरों का चित्रण है जबकि उत्तरपुराण खंड में रामायण तथा महाभारत की कथा वर्णित है। कवि ने स्वयं अपने इस महापुराण को महाकाव्य कहा है। कवि की शैली अलंकृत एवं क्लिष्ट है। इस ग्रंथ में लोकोक्तियों और मुहावरों का यथानुकूल प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त मेरुतुंग की 'प्रबंध चिंतामणि' तथा मुनि रामसिंह की 'पाहुड़ दोहा' तथा धनपाल की 'भविसयत्त कहा' भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियां हैं।

अपभ्रंश साहित्य की समृद्धि तथा हिंदी भाषा के विकास में जैन कवियों का उल्लेखनीय योगदान है। वस्तुतः अपभ्रंश ने हिंदी भाषा की पूर्वपीठिका के रूप में कार्य किया। हिंदी के प्रारंभिक स्वरूप की पहचान कराने में इस साहित्य का सर्वाधिक योगदान रहा। साथ ही अपभ्रंश के बाद की विकासशील लोकभाषा में भी जैन पुराण साहित्य तथा चरित काव्यों की रचना हुई, जिसका प्रभाव परवर्ती साहित्य की भाषा पर पड़ा।

(ग) नाथ साहित्य– सिद्धों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाथपंथी काव्य के रूप में एक ऐसी योगमार्गी धारा का विकास हुआ जो वाममार्गी भोग प्रधान सिद्धों की योग साधना के विरोध में उठ खड़ी हुई। नाथ साहित्य का प्रवर्तक गोरखनाथ को माना जाता है। इन्होंने पतंजलि के उच्च लक्ष्य ईश्वर–प्राप्ति को विशेष महत्व प्रदान किया। इन कवियों ने सिद्धों के विपरीत हठयोग साधना पर बल दिया। इन्होंने शैवमत को स्वीकार किया तथा शिव को आदिनाथ माना। इनके योगमार्ग में मूलतः संयम तथा सदाचार पर बल दिया गया। नाथ संप्रदाय को

टिप्पणी

अनेक नामों से पुकारा जाता है– सिद्धमत, योग मार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत आदि। इन कवियों के अनुसार मुक्ति का मार्ग सांसारिक आकर्षण एवं भोग विलास है। आचार्य शुक्ल के अनुसार इनकी संख्या नौ है। जो इस प्रकार हैं– नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पट, जलंधर और मलयार्जुन। नाथ संप्रदाय में 'नाथ' शब्द का अर्थ 'मुक्ति देने वाला' प्रचलित है। उन्होंने अपने साहित्य में स्पष्ट किया है कि यह मुक्ति सांसारिक आकर्षणों एवं भोग विलास से है। इस प्रकार इस संप्रदाय के योगियों ने निवृत्ति के मार्ग पर बल दिया तथा गुरु को मार्गदर्शक माना। उनके साहित्य में विविध साधना द्वारा कुंडलिनी जाग्रत कर परमानंद की क्रिया का विवरण मिलता है। इनके अनुसार गुरु द्वारा दिखाए मार्ग से वैराग्य प्राप्त हो सकता है। कुंडलिनी जागरण की इस प्रक्रिया से ही आनंदप्राप्ति संभव है। इस संप्रदाय में प्राण साधना से पहले इंद्रिय निग्रह पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत प्रथम शर्त नारी से विमुख रहने की प्रवृत्ति है क्योंकि इनके अनुसार नारी ही चारित्रिक पतन का प्रमुख कारण है।

नाथपंथ में गोरखनाथ को अन्यतम माना जाता है। उन्होंने लगभग 40 ग्रंथों की रचना की। जिनमें प्रमुख हैं– सबदी, पद, सिष्यादरसन, प्राण संकली, नरवै बोध, आत्मबोध आदि। इन ग्रंथों में गुरु महिमा, इंद्रिय निग्रह एवं प्राण साधना का विवेचन है। आगे चलकर कबीरदास ने इसी प्रवृत्ति को अपनाया। इसके अतिरिक्त अन्य संत कवियों पर भी नाथ प्रभाव कहा जा सकता है। नाथ साहित्य भी सिद्ध साहित्य की भांति सिद्धांत प्रतिपादन हेतु लिखा गया। अतः यह प्रतीकात्मक शैली में रचित है। इन्होंने अनेक प्रतीक यथा सूर्य, गगन, चंद्र, कमल आदि का प्रयोग किया। इनके यहां सूर्य 'ह' तथा चन्द्र 'ठ' में निहित है। सूर्य तथा चंद्र के मिलन को ही 'हठयोग' कहा गया है। योगसाधना का ज्ञान होने पर ही इन प्रतीकों को समझा जा सकता है। इनकी भाषा 'पुरानी हिंदी' है, जो अपभ्रंश से प्रभावित है तथा इसमें पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि शब्दों का सम्मिलन हो गया है। नाथ साहित्य में गोरखनाथ को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। तांत्रिक विधान की जानकारी इनके ग्रंथों में मिलती है। किंतु आचार्य शुक्ल इन्हें साहित्य की श्रेणी में नहीं स्वीकार करते क्योंकि उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सारणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं। वे सांप्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। इन रचनाओं की परंपरा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कह सकते। गोरखनाथ की हास्य व्यंग्यात्मक शैली प्रशंसनीय है–

दूधाधारी पर धरि चित्त, नागा लकड़ी चाहै मित्त।
मौनी कसै मयंत्र की आस, बिनु गुर गुदड़ी नहीं बेढास।।

गोरखनाथ के अतिरिक्त नाथ संप्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में चर्पटनाथ का भी उल्लेख किया जाता है। वे गोरखनाथ के शिष्य थे। इनकी वाणी में भी हठयोग साधना की झलक है।

टिप्पणी

प्रभाव–नाथ योगियों ने आचरण की शुद्धि और चारित्रिक सुदृढ़ता पर जोर दिया। उनके योग में संयम और सदाचार का बहुत महत्व था। कबीर और अन्य संत कवियों की शिक्षाओं में मुख्यतः हठयोग पर बल, नारी से विमुखता, कुंडलिनी जाग्रत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का ही है। आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा है– "इसने परवर्ती संतों के लिए श्रद्धाचरण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी।" परवर्ती हिंदी साहित्य में चरित्रगत दृढ़ता, आचरण–शुद्धि और मानसिक पवित्रता का जो स्वर सुनाई पड़ता है, उसका श्रेय भी इसी साहित्य को ही है।

1.7.2 चारण काव्य : रासो साहित्य

आदिकाल का काव्य मुख्य रूप से प्रबंध काव्य के रूप में मिलता है। आदिकाल में वीरगाथात्मक, धार्मिक तथा शृंगारिक तीनों प्रकार के काव्य 'रासो' या 'रास' नाम से लिखे गए। वीरगाथात्मक रासो ग्रंथों की श्रेणी में पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, विजयपाल रासो एवं खुमाण रासो आते हैं, जबकि धार्मिक रासो काव्य में चंदनबाला रास, भरतेश्वर बाहुबलि रास, उपदेश रसायन रास आते हैं। शृंगारिक रचनाओं में संदेश रासक तथा बीसलदेव रासो प्रमुख हैं। इनमें सभी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। ये कृतियां मुख्यतः चारण कवियों द्वारा रचित हैं। इनका लक्ष्य आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति करना था। इसी कारण इन कृतियों में कल्पना का बाहुल्य है तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इनमें ऐतिहासिकता का अभाव पाया जाता है।

- **रासो शब्द की व्युत्पत्ति**

रासो शब्द का प्रयोग मूलतः ब्रजभाषा तथा राजस्थानी में हुआ। इसे रासक, रास, रासा, रासऊ, रसायन, रासु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। डॉ. दशरथ शर्मा इन शब्दों को एक–दूसरे का पर्याय मानते हैं। किंतु नरोत्तम स्वामी की मान्यता है कि वीर रस प्रधान रचना 'रासो' है तथा वीर रसेतर रचनाओं को 'रास' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल 'रसायन' से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। गार्सा द तासी ने 'राजसूय' से उत्पत्ति स्वीकार की। गौरीशंकर ओझा संस्कृत के 'रास' या 'रासक' से उत्पत्ति मानते हैं। रामचंद्र वर्मा 'रहस्य' से मानते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'रासक' शब्द को इसकी व्युत्पत्ति का आधार मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि रसपूर्ण होने के कारण ये रचनाएं 'रासो' कहलाईं। आचार्य द्विवेदी मानते हैं कि 'रासो' तथा 'रासक' पर्याय हैं और वह मिश्रित गेय रूपक हैं। हिंदी साहित्य कोश में दो रूपों का संकेत किया गया है – (1) गीत नृत्यपरक (2) छंद वैविध्यपरक। रासो काव्य के वैविध्य को देखते हुए काव्य–विषय को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. वीरगाथात्मक रासो काव्य
2. शृंगारपरक रासो काव्य
3. धार्मिक एवं उपदेशमूलक रासो काव्य।

इनका विस्तृत विवेचन हम निम्न पंक्तियों में कर सकते हैं –

1. **वीरगाथात्मक रासो काव्य**– आदिकाल की सर्वप्रमुख विशेषता वीररस युक्त काव्य ग्रंथों की रचना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो इसी विशेषता के कारण इस

टिप्पणी

काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाओं का श्रेय चारण या भाटों को दिया जाता है, जिन्होंने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य लिखे। ये शौर्यगाथा एवं प्रशस्तियां हैं, इसी कारण काल्पनिक हैं तथा इनमें वास्तविकता का अभाव है।

इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर भी विद्वानों को संदेह है। इनमें कई कृतियां उपलब्ध ही नहीं हैं। जैसे परमाल रासो और हम्मीर रासो। प्राकृत पैंगलम में उपस्थित आठ छंदों के आधार पर ही 'हम्मीर रासो' को रासो कृति स्वीकार किया गया। इसी प्रकार 'परमाल रासो' का प्रकाशन भी आल्हा गायकों द्वारा गाए गए पद्यों के आधार पर किया गया। समय–समय पर इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगाए गए। कभी रचनाकाल तो कभी भाषा के कारण ये रचनाएं कटघरे में रहीं। इन ग्रंथों के कुछ अंशों को प्रामाणिक तथा कुछ को प्रक्षिप्त अंश माना गया। कुछ प्रमुख रासों ग्रंथों का वर्णन इस प्रकार है –

(क) **पृथ्वीराज रासो**– चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' रासो काव्य परंपरा का श्रेष्ठ ग्रंथ है। चंदबरदाई ने दिल्ली के शासक पृथवीराज की प्रशस्ति में यह ग्रंथ लिखा है। इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न है। किंतु यह श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसे हिंदी का प्रथम महाकाव्य भी स्वीकार किया जाता है। यह एक चरितकाव्य है, जिसके अंतर्गत पृथ्वीराज चौहान का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया गया है। कवि ने महाकाव्य के नियमों का पालन करते हुए शास्त्रीय दृष्टि से इसकी रचना की है– जैसे मंगलाचरण, विनय, सज्जन प्रशंसा, रचना का उद्देश्य आदि। इस ग्रंथ के चार संस्करण मिलते हैं। भावपक्ष की दृष्टि से इसमें मार्मिक प्रसंगों का स्वाभाविक वर्णन हुआ है।

एक उदाहरण दृष्टव्य है–

थकि रहे सूर कौलिग गिगन, रगन–मगर भई श्रोन धर।
हदि हरषि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगि नवरत्त वर।।

उक्त ग्रंथ में वर्णन प्रधानता है। युद्ध वर्णन, विवाह वर्णन, नगर–वर्णन तथा नखशिख वर्णन का कुशल चित्रण हुआ है। अलंकारों का भी व्यापक प्रयोग है। छंद की दृष्टि से वैविध्य है। राजस्थानी बोली और पिंगल का भी प्रयोग मिलता है। वस्तुतः इसकी भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी तथा ब्रजभाषा के शब्दों का सुंदर सम्मिश्रण दृष्टव्य है।

इस ग्रंथ को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में आचार्य शुक्ल, हीराचंद ओझा, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख हैं। इसको अप्रमाणिक मानने के पीछे कुछ तर्क हैं; यथा– इस ग्रंथ में दी गई तिथियों में 90 से 100 वर्षों का अंतर है। पृथ्वीराज अजमेर का शासक था न कि दिल्ली का, जैसा कि इस ग्रंथ में बताया गया है। दिल्ली का शासक गोविंदराय या खांडेराय था जिसने पृथ्वीराज की ओर से दो युद्ध लड़े थे और दूसरे युद्ध में वह मारा गया था। इस ग्रंथ में पृथ्वीराज की बहन का विवाह मेवाड़ के राणा

टिप्पणी

समरसिंह से हुआ बताया गया है जो कि गलत है। जयचंद के द्वारा डाहल के कर्ण को दो बार पराजित और बंदी बनाए जाने की बात भी गलत है क्योंकि यह घटना जयचंद से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व हुई थी। पृथ्वीराज की माता का नाम कमला बताया गया है जबकि उनका नाम कर्पूरी था। रासो के अनुसार पृथ्वीराज और गौरी के मध्य चार युद्ध हुए थे लेकिन मुसलमान इतिहासकारों ने केवल दो युद्ध होने की बात कही है। इस ग्रंथ में पृथ्वीराज के हाथों गुजरात के राजा भीमसिंह की हत्या, सोमेश्वर की हत्या और गौरी की हत्या का उल्लेख है जबकि इसकी पुष्टि इतिहास नहीं करता। इन अनैतिहासिक उल्लेखों और विवरणों के कारण कुछ विद्वान इसे प्रामाणिक नहीं मानते।

इस ग्रंथ को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में मिश्रबंधु व श्यामसुंदर दास हैं। इनका तर्क है कि घटनाओं में 90 से 100 वर्षों का जो अंतर है, वह संवत् की भिन्नता के कारण है। रासो काव्य रचना है न कि इतिहास–ग्रंथ, इसलिए उसके ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने पर इस रचना को अप्रामाणिक कहना सही नहीं होगा। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यह एक अर्धप्रामाणिक रचना है, जिसके रचयिता का मूल उद्देश्य काव्य रचना करना था, इतिहास रचना नहीं।

(ख) **परमाल रासो**– इस कृति को 'आल्हा खंड' के नाम से भी जाना जाता है। परमाल रासो लोकगीत शैली में लिखा गया एक वीरकाव्य है। इस कृति के रचयिता जगनिक थे जो परमार्दिदेव के आश्रित थे। परमार्दिदेव का ही दूसरा नाम परमाल मिलता है। इसी कारण इस कृति का नाम 'परमाल रासो' रखा गया। इसमें परमाल के दो सामंतों आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। वीरभाव का जितना प्रभावशाली रूप इस कृति में दृष्टिगत होता है उतना अन्य में नहीं। यह ग्रंथ 36 खंडों में विभक्त है। कवि ने छंदों का व्यापक प्रयोग किया है। इसकी गेयता के कारण इसे लोकगाथा की शैली में रखा जाता है। इसकी भाषा ब्रज है। चार्ल्स इलियट ने इसे 'आल्हा खंड' के रूप में प्रकाशित कराया। इसकी प्रामाणिकता को लेकर भी संदेह है।

(ग) **खुमान/खुमाण रासो**– इसके रचयिता 'दलपति विजय' है। इस काव्य में मेवाड़ के महाराजाओं, बप्पा रावल से महाराजा राजसिंह तक का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ की भाषा डिंगल है। इसकी घटनाएं काल्पनिक हैं तथा उनमें अलौकिकता पाई जाती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह ग्रंथ खुमाण की वंश परंपरा का वर्णन करने के उद्देश्य से लिखा गया और बाद में इसमें प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले गए।

(घ) **हम्मीर रासो**– यह ग्रंथ कवि शारंगधर द्वारा प्रणीत हैं। यह रचना उपलब्ध नहीं है, किंतु विविध साहित्य के इतिहासों में इस कृति का उल्लेख मिलता है। हम्मीर रासो के केवल आठ पद्य (प्राकृत पैंगलम) में विद्यमान हैं। इसकी

टिप्पणी

भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। इस कृति के उपलब्ध न होने के कारण इसकी प्रामाणिकता पर संदेह है। इसके रचयिता के नाम पर भी प्रश्नचिह्न लगाया जाता है।

(ङ) **विजयपाल रासो**– इस कृति के रचयिता नल्हसिंह हैं। यह एक चरित–काव्य है, जिसके नायक विजयपाल हैं। नल्हसिंह इनके आश्रित कवि थे। अब तक इस कृति के 42 छंद ही प्राप्त हुए हैं। इसमें विजयपाल के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है। काव्य रूप की दृष्टि से यह प्रबंधकाव्य है। इसकी भाषा ब्रज है। इस रचना की प्रमाणिकता पर भी संदेह है।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इन रचनाओं का मूल उद्देश्य चरितनायक की वीरता का गुणगान करना है।

2. **शृंगारपरक रासो काव्य**– इन रचनाओं में वीर रस तो है, पर शृंगार की अतिशयता है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। इस वर्ग में दो प्रमुख कृतियां हैं– संदेशरासक तथा बीसलदेव रासो। इन रचनाओं की विशेषता है कि इन दोनों कृतियों में संदेश–परंपरा का निर्वाह किया गया है। संस्कृत साहित्य में कालिदास तथा परवर्ती भक्ति साहित्य में जायसी में यही परंपरा मिलती है। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

(क) **संदेश रासक**– यह अपभ्रंश भाषा में रचित है। इसे अब्दुल रहमान ने लिखा है। इसमें विरहिणी नायिका का चित्रण है जिसका पति खंभात चला जाता है। वह पथिक के माध्यम से संदेश देती है, और अंततः उसका पति लौट आता है। इस प्रकार कार्यसिद्धि की कामना करते हुए कृति सम्पन्न होती है। यह खंडकाव्य है तथा छंदों की भरमार है। शृंगार के विरह पक्ष का सजीव अंकन हुआ है। कवि ने संदेश परंपरा का निर्वाह किया है।

(ख) **बीसलदेव रासो**– नरपति नाल्ह द्वारा रचित यह कृति भी शृंगारिक है। इसका चरित नायक विग्रहराज तृतीय है। विग्रहराज (बीसलदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह एवं वियोग का वर्णन है। राजमती की वाक्पटुता से रुष्ट बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है, तदुपरांत नायिका पंडित द्वारा संदेश देती है। और अंततः पुनर्मिलन होता है। यह रचना चार खंडों में विभक्त है तथा कुल 128 छंद हैं। इसमें आदि से अंत तक एक ही छंद का निर्वाह हुआ है। इसकी शैली वर्णनात्मक है तथा यह गेय काव्य रूप में है। इसमें भी संदेश परंपरा है। भाषा की दृष्टि से इसमें अपभ्रंश के साथ पुरानी हिंदी की झलक भी मिलती है। शृंगार का सफल निरूपण किया गया है।

3. **धार्मिक एवं उपदेशमूलक रासो काव्य**– इस वर्ग में जैन कवियों द्वारा रचित वे ग्रंथ हैं जो 'रास' या 'रासो' के नाम से लिखे गए। ये ग्रंथ धर्म एवं उपदेश पर आधारित हैं। इनमें भी वीर रस है, किंतु अंत शांत रस से हुआ है। इन ग्रंथों का उद्देश्य प्रशस्तिमूलक चरित काव्य लिखना नहीं है, अपितु धर्मोपदेश द्वारा कथा कहना ही है। ये ग्रंथ अग्रलिखित हैं–

टिप्पणी

(क) **उपदेश रसायन रास–** इसके रचयिता जिनदत्त सूरि हैं। इसमें कुल 80 पद हैं तथा धर्मोपदेश के उद्देश्य से रचित है। कवि ने गुरु द्वारा आत्मा के उद्धार का संदेश दिया है। गुरु महिमा के साथ–साथ गृहस्थों के लिए उपदेश भी हैं। यह गीतिकाव्य है तथा अपभ्रंश भाषा में रचित है।

(ख) **भरतेश्वर बाहुबलि रास–** यह ग्रंथ आचार्य शालिभद्र सूरि द्वारा प्रणीत है। मुनि जिनविजय इस कृति को जैन साहित्य की रास परंपरा का प्रणेता मानते हैं। इसका कथानक जैन पुराणों में प्रमुखता से उल्लिखित है। इसमें ऋषभदेव के दो पुत्रों भरत तथा बाहुबलि के युद्धों का वर्णन है। यह वीररस से ओत–प्रोत है, किंतु इसकी परिणति शांत रस में हुई है। इसमें कुल 205 छंद हैं। इस कृति की भाषा अपभ्रंश है, जिस पर प्राचीन राजस्थानी तथा गुजराती का प्रभाव है।

(ग) **चंदनबाला रास–** यह कृति आसगु द्वारा रचित है। यह एक लघु खंडकाव्य है, जिसमें कुल 35 छंद हैं। इसमें राजा दधिवाहन की पुत्री चंदनबाला की करुण कथा है। चंदनबाला भगवान महावीर से दीक्षित होकर मोक्ष प्राप्त करती है, यही कथासार है। यह जैन कृति करुण रस से परिपूर्ण है। यह अपभ्रंश में रचित है तथा इसमें चउपइ तथा दूहा छंदों का प्रयोग हुआ है।

- **रासो काव्य की विशेषताएं**

रासो काव्य मूलतः राजस्थान के शासकों के आश्रित चारण–कवियों द्वारा लिखे गए। इन काव्य ग्रंथों में इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण है। किंतु ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा नहीं हो सकी है। इसका एक कारण वर्णनात्मकता भी है। वर्णन प्रधान होने के कारण इन कवियों को सहज ही काल्पनिक घटनाओं और अत्युक्तियों का सहारा लेना पड़ता था। वस्तुतः ये ग्रंथ काव्यग्रंथ थे, अतः कल्पना का समावेश होना स्वाभाविक ही था। रासो काव्य के रचयिताओं ने अपने कथानक का प्रारंभ तो ऐतिहासिक घटनाओं से किया है। परंतु चरित नायक के अलौकिक कार्यों का उल्लेख करने हेतु काल्पनिक घटनाओं का अंकन किया है। रासो काव्य का प्रतिपाद्य विषय आश्रयदाता राजा के शौर्य और वीरता का यशोगान था। कवियों ने अपने चरित नायकों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इन कृतियों में शृंगार और वीर रस दोनों का सुंदर संयोजन हुआ है। शृंगार के दोनों पक्षों का अंकन, नखशिख वर्णन, संदेश परंपरा निर्वाह, विरह में चित्रण के साथ–साथ वीर रस का अतिरंजित वर्णन प्रमुख है। रासो काव्य में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्यरूप दृष्टव्य हैं। पृथ्वीराज रासो तथा विजयपाल रासो प्रबंध काव्य की कोटि में है। बीसलदेव रासो में एक ही छंद का प्रयोग है। 'उपदेश रसायन रास' मुक्तक काव्य है। इसमें नीति एवं धर्मोपदेश के पद हैं जबकि लोकगीत शैली में 'परमाल रासो' की रचना हुई। इस काव्य ग्रंथ को आल्हा शैली में रचित कहा गया है।

कला पक्ष

रासो काव्यों में भाषा के विविध रूप पाए जाते हैं। कवियों ने काव्य में डिंगल व पिंगल भाषा के कठोर एवं द्वित्वप्रधान शब्दों का प्रयोग किया है। डिंगल भाषा पर संस्कृत, अरबी, फारसी, प्राकृत, पंजाबी, ब्रज तथा अपभ्रंश का भी प्रभाव है। द्वित्व प्रधान वर्णों का प्रयोग भी बहुत स्थानों पर हुआ है। डिंगल एवं पिंगल के अतिरिक्त अन्य बोलियों एवं अन्य विविध भाषाओं का सम्मिश्रण है। व्याकरण की शुद्धता का प्रायः अभाव मिलता है। कई स्थानों पर कर्कश शब्दों का भी प्रयोग है, इसका कारण यह है कि वे उत्साह का संचार करना चाहते थे। काव्य में अलंकार का अधिक एवं सटीक प्रयोग किया गया है। अलंकार वस्तु तथा रूप की तीव्र व्यंजना करने में पूर्णतया सक्षम हैं। इन कवियों ने कहीं भी पांडित्य–प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की है। अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन इनकी विशेषता है।

मनहुं कला ससिभान, कला सोलह सी बन्निय।
बल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।

इन पंक्तियों में नारी के सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण है। रासो काव्यों में छंदों का बहुमुखी प्रयोग मिलता है। इन छंदों में दूहा, चउपइ, गाहा या गाथा, रोला, कुंडलियां उल्लाला पद्धरि आदि प्रमुख है। छंदों में प्रवाह एवं गतिशीलता है।

1.7.3 लौकिक साहित्य

आदिकाल की एक प्रवृत्ति लौकिक साहित्य की भी थी जिसका साहित्य इन प्रवृत्तियों से इतर था। इस साहित्य के अंतर्गत जनता के मनोरंजन हेतु अमीर खुसरो द्वारा मुकरियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया। दूसरी ओर भक्ति एवं शृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य रचना की। धनपाल भी इसी श्रेणी के कवि हैं। आदिकाल में खड़ी बोली में काव्य की रचना करने वाले अमीर खुसरो ही सर्वप्रथम कवि थे। उन्हें उर्दू भाषा का भी प्रथम कवि माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। अनेक मसनवियों का प्रणयन उन्होंने फारसी में किया है। अमीर खुसरो ने पहेलियों, मुकरियों, खालिक बारी, गजल आदि की रचना की। उन्होंने अपने साहित्य में खड़ी बोली को काव्य भाषा का रूप प्रदान करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उनकी पहेलियां अत्यंत प्रसिद्ध हैं–

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

(उत्तर – आकाश)

एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है–

बीसों का सिर काट दिया
ना मारा ना खून किया। (उत्तर – नाखून)

अमीर खुसरो ने हास्य विनोदमयी भाषा में रचना की। उनकी भाषा जनसाधारण की भाषा थी।

'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थान में जन जीवन में बसी हुई है जिसमें कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल के राजा पिंगल की रूपवती कन्या मारवाड़ी की प्रेमकथा है। यद्यपि मूल कथा का संबंध ऐतिहासिक व्यक्तियों से है, किंतु राजस्थान के लोक

जीवन से जुड़ने के कारण यह काव्य कृति पश्चिमी राजस्थान में अति लोकप्रिय है। यह एक लोकगाथा काव्य है जो राजस्थान में अत्यंत प्रसिद्ध है। राजस्थान में ढोला और मारवणी को प्रेम के प्रतीक के रूप में स्मरण किया जाता है। 'संदेश रासक' एवं 'बीसलदेव रासो' की भांति यह भी एक विरहकाव्य है।

हिंदी के आदिकाल की श्रेष्ठ रचना 'बीसलदेव रासो' के रचनाकार नर पति नाल्ह हैं। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग–वियोग के गीत गाए गए हैं। इस कृति में अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरल एवं सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। बीसलदेव रासो में शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सुंदर एवं हृदयग्राही वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। प्रेषितपतिका की विरह व्यंजना बड़ी मार्मिक बन गई है। बारहमासा वर्णन के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण बड़ा ही सजीव बन गया है। इस काव्य की नायिका राजमती विद्रोहिणी, अभिमानी और प्रखर है। उनका चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने विभिन्न प्रमाण देकर 'बसन्त विलास' का रचना–काल 13वीं–14वीं शती के मध्य का माना है। इस कृति के रचयिता का पता नहीं चल पाया है। यह एक अत्यधिक सरस साहित्यिक कृति है और आधुनिक भारतीय आर्य–भाषा साहित्य के आदिकाल के इतिहास में बेजोड़ है। इस रचना के चौरासी दोहों में बसंत ऋतु और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी वर्णन हुआ है। इस काव्य में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत्त रूप शृंगार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के शब्दों में– "स्त्री–पुरुष–प्रकृति – तीनों में अजस्त्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा वर्णन मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिंदी कवि भी नहीं कर सके। इसकी भाषा सरस ब्रजभाषा है जिसका विकास परवर्ती भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में और रीतिकाव्य में दिखाई देता है।"

मधुर गीतों के रचियता होने के कारण विद्यापति को अभिनव जयदेव के नाम से भी जाना जाता है। विद्यापति महान पंडित थे। उन्होंने अपनी रचनाएं संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखीं। हिंदी साहित्य में विद्यापति की अक्षय कीर्ति का आधार उनके तीन ग्रंथ हैं– कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। विद्यापति पदावली में उन्होंने राधा–कृष्ण प्रणय–लीलाओं का अत्यंत हृदयग्राही वर्णन किया है। इस संबंध में इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव के गीत–गोविंद से प्रभावित होकर उन्होंने पदावली का प्रणयन किया है। पदावली में इनका शृंगारी रूप पूर्णतः उभर आया है। वैसे तो शृंगार के दोनों पक्षों– संयोग और वियोग का वर्णन इस ग्रंथ में उपलब्ध होता है पर जो तन्मयता संयोग और शृंगार के चित्रण में दिखाई देती है, वह वियोग पक्ष में नहीं। वस्तुतः विद्यापति संयोग पक्ष के सफल गायक हैं और प्रेम के परम पारखी हैं। विद्यापति अपने राधा–कृष्ण संबंधी मधुर गीतों के लिए हिंदी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

21. आदिकालीन साहित्य की धाराओं को कितने वर्गों में विभक्त किया जा सकता है?
22. सिद्धों की संख्या कितनी मानी गई है?
23. काव्य के वैविध्य को देखते हुए काव्य–विषय को कितने वर्गों में विभक्त किया जा सकता है?
24. विद्यापति ने अपने ग्रंथों की रचना अधिकांशतः किस भाषा में की है?

1.8 आदिकाल का गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य रचना के साथ–साथ कुछ गद्य रचनाएं भी की गईं। इन गद्य रचनाओं में 'राउलबेल' (चम्पू), 'उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण' और 'वर्णरत्नाकर' उल्लेखनीय हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है–

राउलबेल

यह एक शिलाकृति कृति है। इसके कृतिकार 'रोडा' हैं। यह गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू काव्य की प्राचीनतम हिंदी कृति है। विद्वान इसका रचना काल दसवीं शताब्दी मानते हैं। बंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय से इसका पाठ लेकर प्रकाशित कराया गया। इसकी रचना 'राउल' नामक नायिका के नख–शिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। कवि ने राउल के सौंदर्य का वर्णन पहले पद्य में और फिर गद्य में किया है। नायिका राउल का शृंगार आकर्षण से भरा हुआ है। वह सहज रूप में जितनी सुंदर है, उतनी ही सहज–सुंदर उसकी सज्जा भी है। उसकी भाव दशा भी इस सौंदर्य के अनुकूल है। कवि ने विषय वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है और उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अलंकारों का प्रयोग करके रूप वर्णन को प्रभावशाली बना दिया है।

उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण

इस रचना के रचनाकार दामोद शर्मा हैं जो महाराजा गोविंद चंद्र के सभा पंडित थे। महाराजा गोविंद चंद्र का शासनकाल 1154 ई. माना जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण' एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्याकरण ग्रंथ है। इसमें बनारस और इसके आस–पास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा का अच्छा प्रभाव लक्षित होता है और उस युग के काव्य रूपों के संबंध में भी थोड़ी–बहुत जानकारी होती है। इस ग्रंथ की भाषा का एक उदाहरण देखिए–

"वैद पढब, स्मृति अभ्यासिब, पुराण देखण, धर्म करब।"

इसमें गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिंदी भाषा में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है।

वर्णरत्नाकर

वर्ण रत्नाकर की रचना ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने की है। इसकी भाषा में कवित्व, अलंकार तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियां मिलती हैं। ज्योतिरीश्वर जी ने गद्य में नायिका का वर्णन इस प्रकार किया है–

"पुनु कयिरूनि नायिका। कामदेवक नगर अइसन शरीर निष्कलंक
चाँद अइसन मुह। कंदल खंजीरीर अइसन लोचन।
यमुना के तरंग अइसन भुजइ।"

इन पंक्तियों से 'वर्ण रत्नाकर' एक शब्दकोश–सा जान पड़ता है परंतु सौंदर्य ग्रहिणी प्रतिभा भी साथ ही साथ स्पष्ट प्रभाव दिखा रही है। ये कृतियां गद्य धारा के प्रवाह की अखंडता को कायम रख सकी हैं।

समाज की विभिन्न स्थितियों पर दृष्टिपात करके सहज जीवन का मार्ग सुलझाने से लेकर हठयोग की साधना तक आदिकाल में मुक्तक काव्य रूप का जो विस्तार हुआ, निश्चय ही उसका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व है। प्राकृत और अपभ्रंश से लेकर 'राउलबेल' तक शृंगार की जो परंपरा आई थी, वह भक्तिकाल को प्रभावित करती हुई रीतिकाल तक चली आई। इस समय में एक साथ धार्मिक मनोवृत्तियों का सात्विक चित्रण मिलता है, शृंगार की सहज सरसता दिखाई देती है। वीररस के दृश्य भी मिलते हैं तथा ऐसे चित्र सामने आते हैं, जिनसे एक स्वतंत्र जाति के अहंकार का पूरा बिंब उसकी समस्त टूटन के साथ उभरता है।

आदिकालीन साहित्य में छंद–प्रयोग की विविधता देखी गई है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छंद की दृष्टि से कुछ सीमाएं बनाई हैं। उन्होंने श्लोक को लौकिक संस्कृति का, गाथा को प्राकृत तथा दोहा को अपभ्रंश का मुख्य छंद स्वीकार किया है।

1.9 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां

आदिकालीन साहित्यिक रचनाओं की प्रवृत्तियों का वर्णन इस प्रकार है–

1. **युद्धों का सजीव वर्णन–** आदिकाल के हिंदी साहित्य में युद्धों का ऐसा सजीव, चित्रात्मक एवं ध्वन्यात्मक वर्णन हुआ है कि उन रासो–ग्रंथों को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तलवारें खड़क रही हों।
2. **वीर रस तथा उत्साह की प्रधानता–** आदिकालीन साहित्य में उत्साह जन्य वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है; जैसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए क्षत्रिय वीरों को इस प्रकार उत्साहित किया जाता है कि क्षत्रियों के जीवन की सार्थकता प्रकट हो उठती है।
3. **प्रकृति चित्रण–** प्रकृति के विभिन्न उपादानों यथा पर्वतों, नदियों, वृक्षों, सरोवरों, पशु–पक्षियों, मेघ एवं बिजली आदि का चित्रण एवं वर्णन बहुत ही प्रभावशाली है।
4. **आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा–** इस काल में अधिकांश साहित्य की रचना राज्याश्रित कवियों के द्वारा हुई है। कवियों ने अपने आश्रयदाता को ही सर्वश्रेष्ठ, वीर, पराक्रमी सम्राट, अनुपम दानवीर, दृढ़प्रतिज्ञ सिद्ध कर उनका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, "कवि का आदर्श अधिकतर अपने चरित–नायक के गुण वर्णन तक ही सीमित रहता था।"
5. **संकुचित राष्ट्रीयता–** अपने आश्रयदाता को ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ मानने और घोषित करने के कारण ही इन कवियों की राष्ट्रीय भावना केवल अपने आश्रयदाता के छोटे–छोटे राज्यों की सीमाओं तक ही सिमट कर रह गई थी।
6. **जन–जीवन की उपेक्षा–** इन ग्रंथों में सामंती जीवन उभर कर आया है। कवि अपने आश्रयदाताओं की वीरता और रसिक–वृत्ति तक ही सीमित रहे हैं, इसलिए इनमें तत्कालीन जन–जीवन उपेक्षित रहा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. 'राउरबेल' के कृतिकार कौन हैं?
26. महाराज गोविंद चंद्र का शासनकाल किस ई. तक माना जाता है?
27. वर्णरत्नाकर की रचना किसने की?

7. **ऐतिहासिकता का अभाव–** इन रचनाओं में प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों को लिया गया है, लेकिन उनका वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, "यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण भी इसमें प्राप्त होता है, पर उनका विस्तार और वर्णन कल्पना के सहारे ही किया जाता था। तिथि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था।"

1.10 आदिकालीन साहित्य की भाषा

हिंदी साहित्य के प्रारंभिक विकास–क्रम की भाषा हमें सिद्ध और नाथ योगियों की 'बानी' के रूप में नजर आती है। यद्यपि इनकी रचनाएं विशुद्ध साहित्य की श्रेणी में नहीं आतीं परंतु भाषा के विकास–क्रम और परवर्ती साहित्य पर उनके प्रभाव के चलते, इन रचनाओं पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। ये सिद्ध मूलतः वज्रयानी बौद्ध योगी थे जिन्होंने अपने मत के प्रचार के लिए जनता की भाषा को अपनाया। तब तक इसे देश–भाषा के नाम से जाना जाता था। कालांतर में यह भाषा भी जन–भाषा तो न रही परंतु साहित्य के लिए रूढ़ हो गई। तब इसे अपभ्रंश का नाम दिया गया। 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख 650 ई. के आसपास के एक शिलालेख में मिलता है जिसमें संस्कृत, प्राकृत के साथ–साथ इसे भी साहित्यिक भाषा माना गया है।

परंपरा से प्रसिद्ध चले आ रहे चौरासी सिद्धों में 'पउम चरिउ' के रचनाकार स्वयंभू ने अपभ्रंश को ही अपनाया क्योंकि इनके अनुयायी अधिकतर अनपढ़ वर्ग से थे जो संस्कृत नहीं समझते थे। हालांकि कई सिद्ध संस्कृत में भी काव्य–रचना करते थे; पर उनकी प्रधान भाषा अपभ्रंश ही रही। सिद्धों का प्रभाव मुख्य रूप से देश के पूर्वी भागों–बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि क्षेत्रों में अधिक था, इसलिए उनकी भाषा में पूर्वी भाषाओं के अंश भी प्रचुरता में पाए जाते हैं।

नाथों का प्रसार मुख्यतः पंजाब, राजस्थान आदि में हुआ, इससे इनकी अपभ्रंश में पंजाबी, राजस्थानी के शब्द अधिक प्रयोग हुए हैं। सिद्धों और नाथों की रचनाओं का उद्देश्य उनके मतों का प्रचार करना था, इससे इनके काव्य में जीवन के विविध आयामों को स्थान नहीं मिल पाया। कुछ हद तक जीवन से जुड़ी हुई बातों को प्रस्तुत करने वाला काव्य तत्कालीन जैन आचार्यों व कुछ अन्य राज्याश्रित कवियों की रचनाओं में मिलता है। इनमें हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरि, विद्याधर, मेरुतुंग, शारंगधर आदि प्रमुख हैं।

इसके बाद भारतीय इतिहास का सबसे उथल–पुथल भरा समय प्रारंभ होता है जिसमें देश अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बंटा हुआ था और इनके अधिपति निजी स्वार्थों के अतिरिक्त कभी–कभी तो महज वीरता–प्रदर्शन के लिए आपस में लड़ते रहते थे। इसी समय पश्चिमी राज्यों पर मुसलमानों के आक्रमण भी आरंभ हो गए। अतः इस दौर के काव्य में सर्वत्र वीर–रस ही प्रधान है। इस समय रचित साहित्य की भाषा ओजपूर्ण है।

इस दौर तक आते–आते अपभ्रंश जन–भाषा नहीं रह गई थी परंतु काव्य में उसका प्रयोग जारी था। अतः इस दौर की अपभ्रंश में हमें कई तरह के प्रयोग नजर आते हैं। बीसलदेव–रासो में राजस्थानी, पृथ्वीराज–रासो में ब्रजभाषा और खड़ी बोली के विशेष प्रयोग सबका ध्यान आकर्षित करते हैं। इसी तरह आल्हा खंड में पूर्वी बोलियों की छाप स्पष्ट नजर

'अपनी प्रगति जांचिए'

28. आदिकाल के हिंदी साहित्य में किसका सजीवन वर्णन किया गया है?
29. आदिकाल में अधिकांश साहित्य की रचना किन कवियों के द्वारा हुई है?
30. "कवि का आदर्श अधिकतर अपने चरित–नायक के गुण वर्णन तक ही सीमित रहता था।"– यह कथन किसका है?

टिप्पणी

आती है। यद्यपि भाट शैली की रचनाएं होने के कारण आज इनमें से कोई भी अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। अलग–अलग भाट–गायकों व कवियों ने इनमें भाषा और विषय के स्तर तक प्रयोग किये हैं। आल्हा खंड तो आज भी उत्तर–मध्य भारत के कई भागों में 'आल्हा' के नाम से गाया जाता है।

वीर–गाथा काल की इन रचनाओं में अपभ्रंश व सामान्य भाषा के प्रयोग इस कदर मिले–जुले हैं कि कई विद्वानों ने इसे अपभ्रंश काव्य के स्थान पर देश–भाषा काव्य भी कहा है।

आदिकाल में कई कवि जन–सामान्य की भाषा में भी रचनाएं कर रहे थे। इनमें अमीर खुसरो और विद्यापति जैसे सुप्रसिद्ध कवि भी शामिल हैं। अमीर खुसरो ने पृथ्वीराज–रासो के लगभग सौ साल बाद ही जिस साफ चलती हिंदी और ब्रजभाषा में रचना की है, उससे साहित्य और समाज में भाषा प्रयोग में अंतर बहुत हद तक स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार मैथिल कोकिल कहे जाने वाले विद्यापति ने भी अपभ्रंश के साथ–साथ अपने क्षेत्र की जन–सामान्य भाषा मैथिली में गीत लिखे। दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में अपभ्रंश से हटकर अन्य भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है। इस काल के साहित्य में हिंदी की आधुनिक बोलियों के प्रारंभिक रूप की झलक भी दिखाई दे जाती है।

गतिविधि

पुस्तकालय जाकर हिंदी के प्राचीनतम से लेकर आधुनिक इतिहासकारों की सूची तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

चंदबरदायी श्रेष्ठ कवि होने के साथ–साथ एक कुशल योद्धा और राजनायक भी थे। वे पृथ्वीराज चौहान के अभिन्न मित्र भी थे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

31. हिंदी साहित्य के प्रारंभिक विकास–क्रम की भाषा हमें किनकी 'बानी' के रूप में नजर आती है?
32. 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ई. के आसपास के शिलालेख में मिलता है?
33. 'परम चरिउ' के रचनाकार कौन हैं?
34. 'मैथिल कोकिल' किसे कहा जाता है?

1.11 सारांश

इतिहास मात्र अतीत का ब्यौरा नहीं होता बल्कि भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक की भूमिका भी निभाता है। जिस प्रकार इतिहास राजाओं के जीवन–चरित्र एवं राजनीतिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, उसी प्रकार साहित्य का इतिहास मात्र रचनाओं और रचयिताओं का परिचय–ग्रंथ नहीं है। किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक स्थिति एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विवेचन–विश्लेषण जरूरी है। इसका कारण यह है कि किसी भी देश का साहित्य उस देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य की प्रवृत्तियां समाज की प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब होती हैं।

वस्तुतः साहित्य की प्रगति, परंपरा, निरंतरता और विकास को व्याख्यायित करना ही साहित्य के इतिहास का लक्ष्य है। साहित्य का इतिहास साहित्य की विकासशील प्रक्रिया का उद्घाटन करता है और इस क्रम में नये और पुराने के संघर्ष को भी रेखांकित करता चलता है। साहित्य के इतिहास लेखन में अतीत को ठीक से परखने और समझने

टिप्पणी

के लिए वर्तमान की सही समझ ज़रूरी है। साहित्य के इतिहास में कृतियों का मूल्यांकन भी होता है। उसके विचार पक्ष और कला पक्ष पर विचार किया जाता है। साहित्य का इतिहास केवल रूप और वस्तु का इतिहास नहीं होता, वह रचना में व्यक्त रचनाकार की सृजनशील चेतना का भी इतिहास होता है। मगर साहित्य के इतिहास में एक ओर जनता की चित्तवृत्ति, परंपरा, नये–पुराने के संघर्ष का मूल्यांकन होता है तो दूसरी ओर, रचना और रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता को भी वर्तमान पर कसा जाता है।

साहित्य का इतिहास मानव चिंतनधारा के विकासक्रम को निरूपित करने के साथ–साथ अभिव्यंजना–शिल्प के क्रमिक विकास को भी दर्शाता है। उसमें युगविशेष के व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है। जहां एक ओर जातीय जीवन की प्रामाणिक झांकी देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक मूल्यों का मूल्यांकन भी होता है। यह एक ऐसी विधा है, जिसमें शोध, इतिहास, समीक्षा सबके तत्व सम्मिलित होते हैं।

इतिहासकार युग प्रवृत्तियों व परंपरा के आधार पर वर्तमान समय का मूल्यांकन करता है। साहित्य के इतिहास के समग्र और संतुलित होने में इतिहासकार के इतिहास बोध और दृष्टिकोण का विशेष महत्व है। साहित्य का इतिहास लिखते समय ऐतिहासिक शोध और समाजशास्त्रीय सिद्धांत के साथ–साथ ही लेखक का इतिहास बोध, अंतर्दृष्टि तथा विवेक सबसे महत्वपूर्ण है।

काल–विभाजन व नामकरण करते समय प्रायः साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जाता है तथा, ऐसा न होने पर राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यक्तिपरक आधारों को भी अपनाया जा सकता है। इन्हीं आधारों का व्यापक मूल्यांकन करने पर हिंदी साहित्य के इतिहास को चार भागों– आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल में बांट पाए। यही क्रमशः आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल कहलाए।

साहित्यकारों की मानसिकता की द्योतक बनीं साहित्य–प्रवृत्तियां उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित और नियंत्रित होती रहीं। इस काल की विकट एवं उलझी हुई परिस्थितियों में एक भाषा का विकसित होना सहज नहीं था। अतः यही कारण है कि इस युग में एक साथ कई भाषाओं में विविधतापूर्ण साहित्य रचा गया। इस युग की साहित्यिक परिस्थिति अत्यंत समृद्ध रही। संस्कृत साहित्य अलंकृत साहित्य बन चुका था। साथ ही अपभ्रंश, प्राकृत साहित्य की धारा तथा हिंदी भाषा साहित्य धारा प्रचलन में थी। इस काल में भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। संस्कृत काव्यधारा के लोकप्रिय कवि कुंतक, क्षेमेंद्र, अभिनव गुप्त, कुमारिल भट्ट, विश्वनाथ, श्रीहर्ष, जयदेव, भवभूति जैसे साहित्यकार एक साथ देखने को मिलते हैं।

दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य पर दृष्टि डालने पर भी उत्कृष्ट साहित्य पर दृष्टि पड़ती है। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल जैसे कवियों ने उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाओं में प्राकृत–अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी का मिश्रित रूप मिलता है। दूसरी ओर सरहपा, लुइपा, कण्हपा तथा गोरखनाथ जैसे सिद्ध नाथ कवि अपभ्रंश के साथ लोकभाषा हिंदी का प्रयोग कर रहे थे। अपभ्रंश साहित्य की समृद्धि तथा हिंदी भाषा के विकास में जैन कवियों का उल्लेखनीय योगदान है। वस्तुतः अपभ्रंश ने हिंदी भाषा की

पूर्वपीठिका के रूप में कार्य किया। हिंदी के प्रारंभिक स्वरूप की पहचान कराने में इस साहित्य का सर्वाधिक योगदान रहा। साथ ही अपभ्रंश के बाद की विकासशील लोकभाषा में भी जैन पुराण साहित्य तथा चरित काव्य की रचना हुई, जिसका प्रभाव परवर्ती साहित्य की भाषा पर पड़ा। राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी', अमरुक का 'अमरुकशतक' तथा हाल की 'आर्या सप्तशती' अपभ्रंश की उत्तम कृतियां थीं। वास्तव में इस काल की तीन भाषाएं तीन तरह की रचना प्रवृत्तियों की सूचक बनीं। संस्कृत राज प्रवृत्ति की सूचक है तो प्राकृत व अपभ्रंश धर्मग्रंथों की भाषा है और हिंदी जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं को प्रतिनिधित्व देने वाली भाषा है। रासो ग्रंथों का प्रणयन चरित काव्य के रूप में प्रशंसनीय है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदिकाल हिंदी साहित्य का प्रारंभिक बिंदु है। इस काल में परस्पर विरोधी चिंतन धाराओं का समन्वय हुआ है। इस प्रकार आदिकाल हिंदी साहित्य में मील का पत्थर था।

1.12 मुख्य शब्दावली

- **वीरगाथाकाल** : वीरता प्रधान विचारों से युक्त काव्य
- **रीतिकाव्य** : शास्त्रीय नियमों को ध्यान में रखकर लिखा गया काव्य
- **कृतित्व** : रचनाकार द्वारा लिखित रचनाएं
- **सत्तालोलुपता** : सत्ता के प्रति लालायित रहना
- **राज्याश्रय** : राजाओं का आश्रय
- **दरबारी** : राजा के दरबार में रहने वाले
- **प्रशस्ति काव्य** : किसी की प्रशंसा में लिखी गई रचना
- **संध्या–भाषा** : अपभ्रंश एवं हिंदी के संधिकाल की भाषा

1.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. संस्कृत
2. इतिहास लेखक
3. साहित्यिक आधार पर
4. वैज्ञानिक पद्धति
5. उन्नीसवीं शती से
6. 1883 ई. में
7. सं. 1900 में
8. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. 7वीं–8वीं शताब्दी
10. 8वीं सदी में
11. 12वीं शताब्दी तक
12. 10वीं शताब्दी से
13. कुतुबुद्दीन ऐबक
14. सम्राट हर्ष के
15. लूटपाट करना
16. राजशेखर की
17. जार्ज ग्रियर्सन ने
18. 10वीं से 19वीं शताब्दी
19. रामकुमार वर्मा ने
20. 1000 से 1400 तक
21. तीन वर्गों में
22. 84
23. तीन
24. संस्कृत
25. रोडा
26. 1154 ई. तक
27. ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने
28. युद्धों का
29. राज्याश्रित कवियों द्वारा
30. डॉ. राकुमार वर्मा का
31. सिद्ध और नाथ योगियों की
32. स्वयंभू
33. 650 ई. के
34. विद्यापति को

1.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालिए।
2. हिंदी साहित्य के आरंभ का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. आदिकालीन लौकिक साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

4. आदिकालीन गद्य साहित्य का वर्णन कीजिए।
5. आदिकालीन साहित्य की भाषा पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य लेखन की परंपरा को विस्तार सहित समझाइए।
2. आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
3. आदिकाली के नामकरण और सीमांकन का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. आदिकालीन धर्म संबंधी काव्य का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. चारण काव्य (रासो साहित्य) 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति और रासो काव्य की विशेषताओं पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

1.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- पांडेय मैनेजर, *साहित्य और इतिहास दृष्टि,* पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली।
- शर्मा, नलिन विलोचन, *साहित्य का इतिहास–दर्शन,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
- गणपति चंद्र गुप्त, *हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

इकाई 2 मध्यकालीन हिंदी साहित्य

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन
2.3 भक्ति आंदोलन का विकास और व्याप्ति
2.4 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, प्रवृत्तियां, प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
  2.4.1 निर्गुण काव्यधारा : संत काव्य, सूफी काव्य
  2.4.2 सगुण काव्यधारा : कृष्णभक्ति काव्यधारा, रामभक्ति काव्यधारा
  2.4.3 भक्तियेतर काव्य
2.5 भक्तिकाल का गद्य साहित्य
2.6 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण
2.7 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक
2.8 रीतिकाल का अभिप्राय
2.9 नामकरण और सीमांकन
2.10 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियां
  2.10.1 रीतिबद्ध काव्यधारा
  2.10.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा
  2.10.3 रीतिमुक्त काव्यधारा
2.11 रीतिकालीन गद्य साहित्य
2.12 रीतिकालीन काव्य की काव्यभाषा
2.13 सारांश
2.14 मुख्य शब्दावली
2.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.16 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

पिछली इकाई में आपने साहित्य का इतिहास, इतिहास लेखन की पद्धतियों और हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल आदिकाल के विषय में पढ़ा। इस इकाई में मध्यकालीन हिंदी साहित्य के स्वरूप का विवेचन करेंगे। मध्यकालीन हिंदी साहित्य को हम अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं– पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) और उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)। हिंदी साहित्य का आदिकाल जहां अस्त–व्यस्तता से भरा युग था, वहीं भक्तिकाल ने हिंदी साहित्य को महिमामंडित किया है। इस काल में भक्ति की जो धारा बही, उससे साहित्य का कोना–कोना आप्लावित हो गया। इस काल का साहित्य अति समृद्ध है। संभवतः इसी कारण इस काल को 'हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग' की संज्ञा प्रदान की जाती है।

टिप्पणी

भक्ति आंदोलन ऐसा पहला ज्ञात भारतीय आंदोलन रहा है जो भारत के दक्षिण से उत्तर तथा पूर्व से पश्चिम तक व्याप्त रहा है, जिसने भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य पर गहरा असर डाला है। कुछ विद्वान इसे धर्म सुधार आंदोलन के रूप में देखते हैं, तो कुछ के लिए यह मात्र धार्मिक प्रवृत्ति है। इन विरोधी अवधारणाओं के बावजूद भक्ति आंदोलन का निर्णायक महत्व रहा है। भक्तिकाल के प्रारंभ होने तक भारत के लगभग सारे हिंदी क्षेत्र पर मुसलमानों का आधिपत्य था, तथा यहां के शासक अपनी पराजय स्वीकार कर चुके थे। अतः लोगों की प्रवृत्ति भक्ति की ओर हुई, जिसके फलस्वरूप भक्तिकाल का जन्म हुआ। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है– "ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। ... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" शुक्ल जी का यह कथन सिद्ध करता है कि भक्ति के उन्मेष के लिए परिस्थितियां और परंपरा दोनों उत्तरदायी थीं। इस काल में निर्गुण सगुण काव्यधाराओं का उदय हुआ। निगुर्ण धारा के कवियों ने एक ओर ज्ञान (संतकाव्य) और प्रेम (सूफी) को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया तो दूसरी ओर सगुण काव्यधारा के अनुयायी कवि कृष्ण और राम भक्ति के अनुयायी बने। सामाजिक बुराइयों और रूढ़ियों के प्रति भी भक्तिकाल के कवि सजग थे। इसीलिए इनकी रचनाओं में समाज सुधार के स्वर स्पष्ट ध्वनित होते हैं, इन सभी का वर्णन यहां किया जा रहा है।

रीतिकाल भक्ति काल के बाद का काल है। उत्तर मध्यकाल कहलाने वाली इस काव्यधारा की अपनी कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां रहीं, जिस कारण इसे 'रीतिकाल' की संज्ञा भी दी जाती है। इस काल में साहित्य की धारा भक्ति से विपरीत एक नई दिशा की ओर मुखर हो गई। रीतिकालीन साहित्य में भक्ति का स्थान शृंगार ने ले लिया और दरबारी काव्य रचा जाने लगा। भक्ति कवियों के आलंबन ईश्वर का स्थान रीतिकाल में नायिका के नखशिख वर्णन ने ले लिया। शृंगार के अतिरिक्त अन्य कई प्रवृत्तियां भी इस युग के काव्य में देखने को मिलती हैं। इस युग में दरबारी वातावरण से दूर रहकर निजी प्रेम की पीर को गाने वाले स्वच्छंद चितेरे कवि भी थे। इस इकाई में मध्यकालीन हिंदी साहित्य की सभी विशेषताओं का विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन के बारे में जान पाएंगे;
- भक्ति आंदोलन के विकास और व्याप्ति का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भक्तिकाल की विभिन्न काव्यधाराओं के बारे में जान पाएंगे;
- भक्तिकाल के गद्य साहित्य के स्वरूप को जान पाएंगे;
- भक्तिकाल साहित्य और लोक जागरण के बारे में जान पाएंगे;

टिप्पणी

- रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि का विवेचन कर पाएंगे;
- रीतिकाल का अभिप्राय जान पाएंगे;
- रीतिकाल के नामकरण और सीमांकन से अवगत हो पाएंगे;
- रीतिकाल की विभिन्न काव्यधाराओं, रचनाकारों एवं उनकी रचनाओं से परिचित हो पाएंगे;
- रीतिकालीन गद्य साहित्य की समीक्षा कर पाएंगे;
- रीतिकालीन काव्य की काव्य भाषा के बारे में जान पाएंगे।

2.2 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन

आदिकाल के बाद जो भक्ति की धारा बही, उस समय जिस साहित्य की रचना हुई उसे 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है। क्योंकि इस काल में अधिकतर साहित्यिक रचनाएं भक्ति विषयक हैं, अतः इसे 'भक्तिकाल' कहना उचित ही है। इस काल के कवि भक्त पहले हैं, कवि बाद में। भक्तों ने किसी साहित्यिक रचना करने के उद्देश्य से रचनाएं नहीं कीं, बल्कि उनके हृदय से निकले उद्‌गार ही काव्य के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग दिखाई देता है। आगे बढ़ने से पहले भक्तिकाल की पृष्ठभूमि के बारे में जानते हैं–

1. **ऐतिहासिक परिस्थितियां–** पंद्रहवीं शती के आरंभ तक भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी, और परस्पर कलह में डूबे हिंदू राजा छुट–पुट विरोध करने में असमर्थ थे। यह काल भी युद्ध और अशांति का काल था। पहले लोदी और सैयद वंश, तत्पश्चात तुगलक वंश के शासकों ने शासन किया। सन् 1526 में मुगल वंश की स्थापना हुई। क्रमशः बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगज़ेब ने शासन किया। कुछ समय के लिए अफगान शासकों का भी शासन रहा। तुगलक वंश में शासन व्यवस्था कुरान और हदीस पर आधारित रही। सिकंदर लोदी ने धर्मांध शासन किया। मुगल शासकों ने केंद्रीय सत्ता की स्थापना की। जहां बाबर और हुमायूं ने कट्टरता से शासन किया, वहीं अकबर का शासन धार्मिक सद्‌भाव पर आधारित था। अकबर ने न्याय व्यवस्था, भू–व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था में व्यापक सुधार किए। अकबर ने हिंदुओं को भी पर्याप्त सम्मान दिया। इस प्रकार भक्तिकाल के आरंभिक दिनों में विदेशियों के आक्रमण से जहां उथल–पुथल का वातावरण रहा, वहीं शनैः शनैः उसमें स्थिरता आ गई। ऐसी परिस्थिति में भक्ति का साहित्य रचित हुआ।
2. **सामाजिक परिस्थितियां–** भक्तिकाल में समाज में जाति–पांति, ऊंच–नीच की भावना विद्यमान थी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार, "सामाजिक दृष्टि से वर्तमान समय में जो जाति–व्यवस्था प्रचलित है, उसका निश्चित रूप इसी काल में निर्धारित हुआ। विवाहादि एवं खानपान के मामले में जो प्रतिबंध पहले से चला आ रहा था उसे और कठोर बनाया गया।" जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति

टिप्पणी

के अंदर की प्रतिभा कुंठित रह जाती थी। जाति व्यवस्था ने जहां एक ओर समाज को टुकड़ों में विभक्त कर दिया था, वहीं इसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास नहीं हो पाया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "दैनिक जीवन, रीति–रिवाज, रहन–सहन, पर्व–त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधासंपन्न और असुविधाग्रस्त– दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा–महाराजा, सुलतान, अमीर, सामंत और सेठ–साहूकार आते थे, द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज्य–कर्मचारी और घरेलू उद्योग–धंधों में लगी जनता आती थी।"

समाज में स्त्रियों की स्थिति शोचनीय थी। सती प्रथा का प्रचलन था। संयुक्त परिवार की परिपाटी प्रचलित थी। इस्लाम की समानता की भावना ने यहां के दलित और अधिकार से वंचित जातियों को आकृष्ट किया। अधिक संख्या में लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। धीरे–धीरे हिंदू और मुसलमानों के बीच की दूरी घटने लगी। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूफी साधकों ने प्रेम भावना का प्रयोग किया। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। भक्तिकाल का समाज परिवर्तन के दौर का समाज था। एक ओर रूढ़िवादी सामाजिक वर्ग परंपरा को बनाए रखने के पक्षधर थे तो दूसरी ओर प्रगतिशील सामाजिक वर्ग परिवर्तन चाहते थे। राजनीतिक स्थिति ने भी सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। भक्तिकाल के कवियों ने सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन चलाया। उनका आंदोलन लोगों के विचार परिवर्तन का तथा लोगों के हृदय परिवर्तन का आंदोलन था।

3. **धार्मिक परिस्थितियां–** यह युग संप्रदायों, मतों और धर्मों के परस्पर विरोध का काल है। इस काल में धार्मिक कर्मकांडों को बढ़ावा मिला। पुरोहित वर्ग जनता का शोषण कर रहा था। दक्षिण से प्रारंभ हुई भक्ति की लहर उत्तर की ओर आ रही थी। इस्लाम की बंधुत्व की भावना ने भी भक्ति को बढ़ाने में योग दिया। इस प्रकार रूढ़ियुक्त धर्म के स्थान पर सरल–साधारण धर्म की स्थापना हुई। धार्मिक क्षेत्र में इस काल में एक और बड़ा परिवर्तन आया, धीरे– धीरे विभिन्न देवी–देवताओं के स्थान पर एक देव की पूजा की भावना बढ़ने लगी। निर्गुण उपासक संत हों या सगुण उपासक भक्त, सभी ने एक ब्रह्म की उपासना पर बल दिया।

तत्कालीन उपदेशकों ने संप्रदायों की स्थापना की किंतु उनका उद्देश्य नवीन वर्ग बनाना नहीं था। वे समाज को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। सभी संतों की वाणियों को उन्होंने समान रूप से महत्व दिया। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना का विकास होने लगा था। सूफी संप्रदाय के आगमन से हिंदू और मुसलमान करीब आने लगे थे। प्रेम भावना और लोकतत्व ने इस संप्रदाय को जनता में लोकप्रिय बना दिया। तत्कालीन शासकों ने धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना को बढ़ावा दिया। कई मुगल सम्राटों ने धार्मिक एकता की बात कही।

टिप्पणी

अकबर ने **दीन–ए–इलाही** धर्म का प्रवर्तन किया। इस परिवर्तन के कारण कई सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ा गया।

4. **सांस्कृतिक परिस्थितियां–** भक्तिकाल में दो परस्पर भिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं की समन्वित संस्कृति मिलती है। एक ओर हिंदू संस्कृति अपनी पूर्णता और प्राचीन परंपरा का दंभ लिए अपनी अस्तित्व रक्षा में प्रयत्नशील थी और दूसरी नवीन धार्मिक उन्माद से ओत–प्रोत मुस्लिम संस्कृति उन पर हावी होना चाह रही थी। अपनी रक्षार्थ हिंदुओं ने सामाजिक बंधन को दृढ़ और संकीर्ण बना दिया। फलतः संकीर्णता के आवरण में धार्मिकता गौण हो गई। इस संकीर्णता का विरोध संत कवियों ने किया। इस विरोध को मिटाने हेतु समन्वय की भावना उभरी। इस्लाम धर्मावलंबियों के आगमन से सांस्कृतिक हलचल हुई। रहन–सहन, मनोरंजन के साधन, शिक्षा, साहित्य, स्थापत्यकला, मूर्तिकला और चित्रकला में भी परिवर्तन आया। मुगलशासक कला और साहित्य की उन्नति में भी रुचि लेते थे। तुर्कों के आगमन से स्थापत्य का विकास हुआ। विदेशी और भारतीय शैली के मिश्रण से ही गुजराती और जौनपुरी शैली का विकास हुआ।

भक्तिकाल में चित्रकला में बहुत उन्नति हुई। इसका कारण मुगल शासकों का प्रश्रय था। संगीत भारतीय जनजीवन का प्राण है। भक्तिकाल के कवि अपनी रचनाओं को गा–गाकर जनता तक पहुंचाते थे। हाथ से बनाए वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार इस काल में भारतीय संस्कृति ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की।

5. **साहित्यिक परिस्थितियां–** साहित्य को पढ़कर ही हम समाज के स्वरूप को जान सकते हैं। लोगों के आचार–विचार का अनुमान लगा सकते हैं। साहित्यकार अपने सामने जो देखता है उसका वर्णन करता है। यद्यपि कल्पना का समावेश उसकी रचनाओं में जरूर होता है किंतु उसके साथ तत्कालीन सत्य भी जुड़ा रहता है।

भक्तिकाल में साहित्य की प्रवृत्ति बदल गई। इस युग में जितनी भी साहित्यिक रचनाएं हुईं वह ईश्वर भक्ति और सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं। भक्त कवि किसी साहित्यिक कीर्ति के लिए रचनाएं नहीं करते थे, उनके हृदय से निकले उद्‌गार ही काव्य बन गए। दक्षिण में आलवार संतों की वाणियां एक अंतःस्रोत के रूप में बहती हुई 12वीं–13वीं शती में आकर उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में प्रवाहित होने लगीं। सामाजिक और धार्मिक बुराइयां भक्ति साहित्य के उदय का कारण बनीं। भक्ति साहित्य में सभी प्रकार की बुराइयों एवं अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया।

इस काल में अनुवाद का महत्वपूर्ण कार्य हुआ। बदांयूनी ने फारसी में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। शासक वर्ग के कारण फारसी साहित्य की उन्नति हुई। हिंदी के भक्त कवियों ने भक्ति संबंधी रचनाएं कीं। कबीर ने बीजक, जायसी ने पद्मावत, सूरदास ने सूरसारावली, नंददास ने रासपंचाध्यायी,

टिप्पणी

तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली एवं रामचरितमानस की रचना की। अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल तथा टोडरमल हिंदी के श्रेष्ठ कवि थे। प्रायः सभी कवियों ने जनता की भाषा में ही अपनी बात कही। काव्य रूपों की दृष्टि से इस काल में विविधता पाई जाती है। इसमें प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, सूक्ति काव्य, संगीत काव्य, नाटक कथाकाव्य आदि काव्यरूपों का प्रयोग किया गया। फारसी की मसनवी शैली का प्रयोग भक्ति काव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया तथा यहां की लोककथाओं को प्रबंध का आधार बनाया। ईरानी और भारतीय शैलियों का मिश्रित रूप सूफी काव्य की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थिति में परिवर्तन होता रहा; विषयवस्तु, भाषा शैली तथा काव्य रूपों सभी में बदलाव हुआ।

वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा में कर्मकांडों की प्रधानता थी। अंधविश्वास, तांत्रिक क्रियाएं आदि ने धर्म में विकृतियां उत्पन्न कर दी थीं। तदुपरांत बौद्ध और जैन धर्म आंदोलन ने भक्ति की धारा को बदला, किंतु कालांतर में इनमें भी विकृतियां आ गईं। नाथों और सिद्धों ने धार्मिक सुधार का प्रयास किया। दक्षिण के आलवार और आडियार संतों की परंपरा का विकास ही भक्ति आंदोलन के उदय का कारण है। यहीं से भक्ति आंदोलन का उदय हुआ।

भक्तिकाल का नामकरण एवं सीमांकन (1350–1650 ई. तक)

आदिकाल के बाद 14वीं से 17वीं शती में कालखंड को 'पूर्वमध्यकाल' अथवा 'भक्तिकाल' की संज्ञा दी गई है। 'भक्तिकाल' नामकरण का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है। इस काल को कुछ विद्वान 'पूर्वमध्यकाल' नाम देने के पक्ष में भी हैं। यद्यपि दोनों नाम काफी लोकप्रिय हैं, किंतु 'पूर्वमध्यकाल' नाम से प्रवृत्ति विशेष का परिचय नहीं मिलता है। इस काल के साहित्य में 'भक्ति' की प्रबलता रही, अतः 'भक्तिकाल' नाम अधिक उचित प्रतीत होता है।

सीमांकन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति–काल का निर्धारण 1318 से 1643 ई. तक किया है। आदिकाल में परिगणित सिद्ध, नाथ और जैन–साहित्य में विद्यमान भक्ति–तत्व के आधार पर न तो इस अवधि का विस्तार उचित है और न ही रीतिकाल में स्फुट रूप में रचित भक्तिपरक छंदों के आधार पर काल–विस्तार तर्कसंगत है। फिर भी, भक्ति–साहित्य में उन वैष्णवेतर रचनाओं को सम्मिलित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जो विषयवस्तु की दृष्टि से भी उक्त सीमा के अनुकूल पड़ती हैं। इसलिए जब तक ऐसी सामग्री उपलब्ध न हो कि पुनर्विचार की आवश्यकता पड़े, तब तक सामान्यतः शुक्ल जी की स्थापना को सही मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। फिर भी, अध्ययन की सुविधा के लिए भक्तिकाल को चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानना उचित होगा, क्योंकि आदिकाल की रचना प्रवृत्तियां चौदहवीं शती के मध्य तक पर्याप्त बलवती रही थीं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. मुगल वंश की स्थापना कब हुई?
2. मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी?
3. अकबर ने किस धर्म का परिवर्तन किया था?
4. बदांयूनी ने किस भाषा में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया?

टिप्पणी

2.3 भक्ति आंदोलन का विकास और व्याप्ति

मध्यकालीन भारत में विभिन्न धर्मों; यथा– हिंदू, जैन, सिक्ख, बौद्ध, यहूदी, पारसी और इसाई धर्म को मानने वाले लोग एक–दूसरे का अनुकरण करने के लिए स्वतंत्र थे। लोगों की निष्ठा किसी धर्म विशेष में हो, ऐसा नहीं था। केवल आदिवासी लोग ही अपने धर्म तक सीमित थे। इतने धर्मों में से मुख्य रूप से दो धर्म ही प्रधान धर्म थे–हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म। सिक्खों के देवी–देवता भी वही थे जो हिंदुओं के थे। बौद्ध धर्म भारत के पूर्वी प्रांतों में अधिक फैला था जबकि पश्चिम–दक्षिणी क्षेत्रों में जैन धर्म अधिक फैला हुआ था। इस्लाम धर्म के संपर्क में आने के बाद हिंदू धर्म सामूहिक साधना का रूप लेने लगा था। आगे चलकर सभी धर्मों में पंथों, संप्रदायों और उपसंप्रदायों का उद्‌भव होने लगा। सभी धर्मों के लोग अपने परंपरागत आचार–विचारों को जीवित रखना चाहते थे। एक–दूसरे का अनुसरण करते हुए सभी धर्मों ने अपनी–अपनी सीमाओं में संशोधन किए। सभी धर्मों ने अपने प्रसार एवं प्रचार के लिए स्थानीय भाषाओं को अपनाया। धीरे–धीरे प्रत्येक धर्म अपने को दूसरे से अलग समझने लगा। वैष्णव धर्म ने भागवत–संप्रदाय के रूप में परंपरागत आचार–विचारों को जीवित रखने के प्रयासों में एक नायक की भूमिका निभाई। इसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

भक्ति आंदोलन एक राष्ट्रीय आंदोलन था। एक ऐसा आंदोलन, जैसा शायद इससे पूर्व बुद्ध और महावीर के युग में आया होगा, जिसने भारत के जन–जन को उद्वेलित और उत्प्रेरित कर दिया था। इस राष्ट्रीय आंदोलन के महत्व को बताते हुए डॉ. शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, "इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भू–भाग के निवासी तथा कोटि–कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा ज़बरदस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते हैं, सब एक–दूसरे को प्रेरणा देते हैं, एक–दूसरे से प्रेरणा लेते हैं और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवाहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि–कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्मविश्वास जिंदा रखने की, आत्मसम्मान के साथ जिंदा रहने की, एक शक्ति पाते हैं।"

भारतीय धर्म साधना में भक्ति–भावना का उदय कब और क्यों हुआ– इस विषय पर विभिन्न विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान वेवर, कीथ, ग्रियर्सन आदि इसे ईसाई धर्म की देन बताते हैं। ग्रियर्सन महोदय का मत है कि ईसा की दूसरी–तीसरी शती में कुछ ईसाई मद्रास में आकर बस गए थे, जिनके प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। एक अन्य पाश्चात्य विद्वान ने कृष्ण को क्राइस्ट का ही रूपांतर घोषित करते हुए अपनी कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। हमारे अनेक भारतीय विद्वानों– श्री बालगंगाधर तिलक, श्री कृष्ण स्वामी आयंगर, डॉ. एच. राय चौधरी आदि ने उपर्युक्त मतों का खंडन सुदृढ़ आधारों पर करते हुए भक्ति का मूल उद्‌गम प्राचीन भारतीय स्रोतों में सिद्ध किया है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है– "मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना ही था तो पहले उसे सिंध में, फिर उत्तर भारत में प्रकट होना

टिप्पणी

चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।" द्विवेदी जी के विचार से भक्ति आंदोलन के विकास का श्रेय दक्षिण के आलवार भक्तों को है जिनकी संख्या 12 मानी गई है। यह भी विचित्र बात है कि राम और कृष्ण का अवतार उत्तर भारत में हुआ जबकि उनके प्रति भक्ति–भावना का विकास ठेठ दक्षिण में आलवारों द्वारा हुआ।

"भक्ति–आंदोलन पर इस्लामी विजय के प्रभावों को लेकर यद्यपि मतभेद और विवाद रहा है, तथापि हमारी सम्मति में इस बात से इनकार मुश्किल है कि बारहवीं सदी के अंतिम दशकों में तुर्कों द्वारा भारत–विजय और इस्लाम के आगमन ने ऐसी प्रभावकारी शक्तियों को बढ़ावा दिया जिससे परवर्ती सदियों में लोकप्रिय आंदोलन के रूप में भक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।"

वस्तुतः भक्ति आंदोलन के उदय का संबंध उस युग की परिस्थितियों में निहित है। भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने समाज के कट्टर रूढ़िवादी तत्वों को छोड़कर पूरे समाज के विशेष रूप से निचले कहे जाने वाले हिस्से में अभूतपूर्व वैचारिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता निर्मित की, भक्ति को लोकप्रिय आंदोलन का रूप प्रदान किया।

भक्ति आंदोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया, साथ ही राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। यह सिद्धांत, कि ईश्वर के सामने सब मनुष्य समान हैं, इस आंदोलन का ऐसा केंद्रबिंदु बन गया जिसने पुरोहित वर्ग और जाति प्रथा के आतंक के विरुद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारों ओर एकजुट किया। इस प्रकार इस महान आंदोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और जन समुदाय को एक सुसंबद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।

भक्ति आंदोलन के मुख्य प्रेरणास्रोत रामानुज और उनके शिष्य रामानंद थे। भक्ति आंदोलन के महत्व को रेखांकित करते हुए के. दामोदरन कहते हैं– "भक्ति आंदोलन के नेता न तो निरर्थक समय गवांने वाले दार्शनिक थे और न कुर्सीपसंद आराम तलब समाज–सुधारक थे। वे जनता के बीच सक्रिय रूप से कार्य करते थे और कठिन परिश्रम के द्वारा अपनी जीविका अर्जित करते थे।"

भक्ति आंदोलन ईश्वर की सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता था और सभी वर्गगत, जातिगत भेदभावों तथा धर्म के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक उत्पीड़न का विरोध करता था। भक्ति आंदोलन राष्ट्रव्यापी था। उत्तर भारत में कबीर, रैदास, जायसी थे, बंगाल में चैतन्य और चंडीदास थे, महाराष्ट्र में नामदेव, ज्ञानेश्वर और तुकाराम थे, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा और दादूदयाल थे। वहीं दक्षिण भारत में वेमन्ना, पोतना, बसवेश्वर, एलुवच्छन थे। रामानुज, निम्बार्क रामानंद तथा माधवाचार्य ने भी भक्ति का प्रसार किया। इसके अतिरिक्त निजामुद्दीन औलिया आदि सूफी संतों ने भी भक्ति का प्रचार–प्रसार किया।

उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार–प्रसार सर्वप्रथम निर्गुण संतों ने किया, जिनमें कबीरदास प्रमुख हैं। उन्होंने अपने जीवनानुभवों को चिंतन–मनन का आधार बनाया था।

टिप्पणी

वे कहते थे–"मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।" कबीर के 'निर्गुण राम' ही निर्गुण निराकार ईश्वर थे। उन्होंने शास्त्रीय ज्ञान को चुनौती दी। प्रचलित कर्मकांडों पर कटु चोट कर धर्म–सुधार किया। धार्मिक बाह्याचार, जाति प्रथा, वर्णव्यवस्था पर प्रहार किया। उन्होंने मिथ्याचारों का विरोध कर एकता पर बल दिया। कबीर के अतिरिक्त रैदास, धर्मदास, निजामुद्दीन औलिया, वल्लभाचार्य, सूरदास, नंददास, तुलसीदास भक्ति आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले थे। गुरु नानक ने भी जांति–पांति का खंडन कर ऐक्य स्थापित किया। गुरु अर्जुनदेव ने 'आदिग्रंथ' का संकलन और संपादन किया, जिसमें कबीर, नामदेव, रैदास आदि निर्गुण संतों की वाणियां भी हैं।

पश्चिम भारत में भक्ति का प्रचार मुख्यतः मीराबाई और दादूदयाल ने किया। रामदेव ने हिंदू–मुस्लिम जनता के बीच सच्ची एकता के लिए अनवरत प्रयत्न किया। उन्होंने ब्राह्मणों और पुरोहितों के वर्चस्व का विरोध करते हुए निम्न–वर्ग को सम्मानजनक स्थान दिलाने का आंदोलन–सा छेड़ दिया। दादूदयाल ने भी कबीर जैसा ही समाज सुधार का प्रयत्न किया। रज्जब, सुंदरदास और जगन्नाथ उनके शिष्य थे, जिन्होंने उनके विचारों का प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। मीरा ने रैदास को अपना गुरु मानकर कृष्णभक्ति की असीम धारा प्रवाहित की। उनके काव्य में कृष्ण के प्रति जैसा अनन्य प्रेम और आत्मार्पण का भाव व्यक्त हुआ, वह अद्वितीय है; यथा–

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी
मेरौ दरद न जानै कोय।।

नरसी मेहता ने भी साधारण परिवार में उत्पन्न होकर भक्ति की धारा को प्रवाहित किया। उनका ज्ञान भी उच्चकोटि का था। नरसी मेहता के पदों में आत्मज्ञान ओर वेदांत के गूढ़ रहस्य प्रस्फुटित होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में वे जाति भेद नहीं मानते थे। महात्मा गांधी ने नरसी के इस पद को अपने जीवन का मूलमंत्र बना लिया था–

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे,
पर दुख उपकार करे तोए, मन अभिमान न आणे रे।।

नरसी मेहता के अतिरिक्त दयाराम ने भी कृष्णलीला का गान मुख्य रूप से किया था। संत ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने 'गीता' का मराठी में 'ज्ञानेश्वरी' नाम से रूपांतर तैयार किया था। नामदेव भी संत ज्ञानेश्वर से प्रभावित थे। इन्होंने निर्गुण भक्ति पर बल दिया। इनके अतिरिक्त तुकाराम और रामदास ने भी अप्रत्यक्ष रूप से भक्ति आंदोलन में योगदान दिया। ये शिवाजी के गुरु थे तथा अनुष्ठानों, तीर्थाटनों को गौण मानते थे।

बंगाल में विद्यापति और जयदेव के गीत लोकप्रिय हुए। किंतु भक्ति को जन–जन तक पहुंचाने का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को है। भक्ति काव्य–रचना में चंडीदास बंगाल के प्रमुख रचनाकार कहे जाते हैं। चंडीदास सहजिया संप्रदाय से संबंधित थे और जाति–पांति में विश्वास नहीं करते थे। चैतन्य अत्यंत भावुक प्रेमी भक्त थे और भजन–कीर्तन करते–करते भावविह्वल हो जाते थे। इन्होंने संकीर्तन को लोकप्रिय बनाया। उन्होंने घोषणा की कि हरेक को ईश्वर की आराधना करने का अधिकार है।

टिप्पणी

उड़ीसा में भक्ति का प्रचार–प्रसार चैतन्य के अलावा अच्युतानंद, बलरामदास, जगन्नाथदास, अनंतदास और यशोवंत दास ने किया। यह ज्ञानमिश्रित भक्तिभाव का प्रचार कर रहे थे। असम में शंकरदेव और माधवदेव ने भक्ति आंदोलन का प्रसार किया। भक्ति का आरंभ दक्षिण से माना जाता है। एक उक्ति प्रसिद्ध है– "भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद, परगट कियो कबीर ने सप्तदीप नवखंड।" दक्षिण में आलवार कवियों ने जो भावपूर्ण रचनाएं की हैं, वे आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इन भक्त कवियों में अंडाल नाम की एक महिला भी थी जिन्हें 'दक्षिण की मीरा' कहा जाता है। दक्षिण में भक्ति का प्रचार करने में शैव संत जिन्हें 'नायनार' भी कहते हैं, आलवार संत, तथा रामानुज, माधवाचार्य, यमुनाचार्य आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पोतना, वेमन्ना आदि भक्त कवि भी प्रमुख हैं। आलवार कवियों में संत नम्मालवार सबसे बड़े वैष्णव संत माने जाते हैं। इनके भजन सामवेद का सार हैं। संत माणिक्यावाचकर ने 'तिररूवाचकम्' की रचना की जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ। संत त्यागराज भी प्रसिद्ध कवि और गायक थे। कन्नड़ में बसवेश्वर, पुरंदरदास आदि कवियों ने शैव और वैष्णव मार्ग की भक्ति का प्रचार किया।

इस प्रकार, भक्ति आंदोलन उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक व्याप्त था। इसने अनेक महान सुधारक, भक्त और कवि प्रदान किए। इसी आंदोलन के कारण भारतीय भाषाओं में वह अमर साहित्य रचा गया जो 'भक्ति काव्य' के नाम से जाना जाता है। भक्ति आंदोलन ने लोगों में आत्मविश्वास और आत्मगौरव का भाव उत्पन्न किया। जातिवाद पर प्रहार कर कवियों ने सामाजिक ऐक्य की स्थापना का प्रयास किया। जनता में स्फूर्ति जगाकर, असंगतियों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा दी। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में मध्ययुग का सर्वश्रेष्ठ साहित्य रचा गया। भक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में एक समन्वित संस्कृति का विकास हुआ। इस प्रकार भक्ति आंदोलन सिर्फ धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन ही नहीं था, यह एक साहित्यिक आंदोलन भी था। भक्ति आंदोलन ने ही भक्तिकाल में रची गई उत्कृष्ट रचनाओं को आधार दिया जिस कारण कालांतर में भक्तिकाल को स्वर्णयुग की संज्ञा भी दी गई।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. बौद्ध धर्म भारत के किन प्रांतों में अधिक फैला था?
6. भक्ति आंदोलन के मुख्य प्रेरणा स्रोत कौन थे?
7. गुरु अर्जुनदेव ने किस ग्रंथ का संकलन और संपादन किया है?
8. महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किसने किया?

2.4 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, प्रवृत्तियां, प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

भक्ति साहित्य की रचना केवल ईश्वर के प्रति भक्त की निष्ठा का ही प्रतिफलन नहीं है अपितु भक्ति साहित्य का केंद्रबिंदु ईश्वर की भक्ति है। उन्होंने कविता करने के लिए रचनाएं नहीं कीं बल्कि उनके उद्‌गार भी कविता रूप में विद्यमान हैं। ईश्वर के प्रति आस्था एवं सच्चे, सरल हृदय से आराध्य का गुणगान ही काव्य के रूप में प्रतिफलित हुआ।

वस्तुतः भक्तिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण काल है। इस काल की काव्य रचना में भारतीय धर्म दर्शन पर अमिट छाप छोड़ी और साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किया। दरअसल, यह केवल धार्मिक या साहित्यिक आंदोलन नहीं था, भक्ति काव्य की धारा से भारतीय जीवन का कोई भी अंग अछूता नहीं रह सका। आज भी उन महान भक्तों के विचारों से भारतीय जनता को प्रेरणा मिल रही है। इस काल के सभी

टिप्पणी

कवियों के काव्य की अपनी अलग–अलग पहचान भी है, लेकिन मूल रूप से सबने एक ही बात कही है। ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम, मनुष्य–मनुष्य में समानता का भाव, गुरु की महिमा, तथा अहंकार का त्याग प्रायः सभी भक्त कवियों के विचारों में स्पष्ट रूप से मिल जाएंगे। इनकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम–** भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से कहा है कि ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम ही भक्त की पहचान है। निर्गुण एवं सगुण कवियों ने लगभग समान विचार व्यक्त किए हैं– कबीर के शब्दों में कह सकते हैं–

   अंखड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
   जीभड़ियां छाला पड़यां, राम पुकारि पुकारि।।

   इसी तरह के विचार तुलसी ने भी व्यक्त किए हैं –

   एक भरोसे एक बल एक आस विश्वास।
   एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

2. **समानता का भाव–** भक्ति मार्ग में सांसारिक भेदभाव नहीं है। इसे निर्गुण एवं सगुण कवियों ने स्वीकार किया है। भक्तों की साधना वैयक्तिक और आध्यात्मिक होते हुए भी समष्टिपरक है। सारी सृष्टि ही ब्रह्ममय है। एक–एक व्यक्ति से ही समाज बनता है। भक्तों ने समाज को एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। भक्ति साहित्य ने धर्म के मतभेद और बाह्य आडंबर–तीर्थ स्थान, वेदपाठ, छुआछूत, जाति प्रथा का विरोध किया। भक्तों ने पाखंडों और रीति–रिवाज़ों को अस्वीकृत किया। भक्ति आंदोलन का मूलमंत्र था–

   जाति पांति पूछै न कोई
   हरि को भजै सो हरि का होई।।

3. **गुरु महिमा एवं नाम स्मरण–** भक्त कवियों का स्पष्ट मत था कि गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं है। संत कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया, क्योंकि ईश्वर का मार्ग दिखाने वाला गुरु ही है। यथा तुलसीदास अपने आराध्य की उपासना से पहले अपने गुरु की वंदना करते हैं–

   बंदऊ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
   महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।।

   निर्गुण कवि कबीर तथा सूफी कवि जायसी ने भी गुरु को ईश्वर से पहले नमन किया है–

   सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
   लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।

   भक्त कवियों ने ईश्वर के नाम–स्मरण पर भी बल दिया है। उनके अनुसार ईश्वर का नाम–स्मरण से भी बढ़कर है। नवधा भक्ति में, कीर्तन, कथा श्रवण के साथ नाम–स्मरण भी साधना का एक रूप है। कबीर कहते हैं–

टिप्पणी

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।।

सूर, तुलसी आदि कवियों ने भी ईश्वर के नाम–स्मरण को प्रमुख माना है।

4. **शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता–** भक्त कवियों ने शास्त्रज्ञान को प्रमुख नहीं माना है। भक्ति के लिए पंडित (विद्वान) बनने की आवश्यकता नहीं है–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होई।।

सच्चे मन से भक्ति करने पर ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की कृपा से असमर्थ भी समर्थ हो जाता है। सूरदास जैसे कवियों ने गोपियों के माध्यम से उद्धव से शास्त्रज्ञान के अभिमान का दमन कराया है। गोपियों की वाक्पटुता एवं वाग्वैदग्ध्य के समक्ष उद्धव निरीह दिखाई देते हैं, जब वे कहती हैं–

आयो घोष बड़ौ व्यापारी
लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आय उतारी।

गोपियों के तर्कपूर्ण प्रश्नों का उत्तर उद्धव नहीं दे पाए तथा शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता को पहचान गए।

5. **अहंकार का त्याग एवं लोक जीवन से जुड़ाव–** भक्त कवियों ने अहंकार के त्याग की पल–पल पर घोषणा की। इन कवियों के अनुसार भक्त अपने आराध्य के सामने बहुत छोटा होता है। तुलसीदास जी का यह कथन कि राम से बड़ा कौन है, मुझसे छोटा कोई नहीं है, इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है। संत रैदास अपने प्रभु को चंदन कहते हैं और स्वयं को पानी। यह अहंकार को त्यागने का ही रूप प्रस्तुत करता है।

भक्त कवियों ने स्वयं को जनता से जोड़ा, तथा परांत सुखाय के लिए काव्य–रचना की। वे किसी राजा की प्रसन्नता के लिए काव्य–रचना नहीं कर रहे थे, वरन आत्मिक सुख और लोकमंगल की कामना से काव्य–रचना कर रहे थे। वे निम्न स्तर से जुड़े हुए थे, अतः उनके काव्य में समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए समान भाव था। वे नाथपंथियों के समान योगी नहीं थे, वरन उनमें से अधिकतर सहज पारिवारिक जीवन बिता रहे थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जीवनगत अनुभवों का समावेश हो गया। कवि आत्मशुद्धि की बात करते हैं, वहां भी वे सामाजिकता को नहीं भूलते। जहां निर्गुण कवियों ने लोक–जीवन से उदाहरण लिए, वहीं सगुण कवियों ने परिवार के आदर्श स्थापित किए।

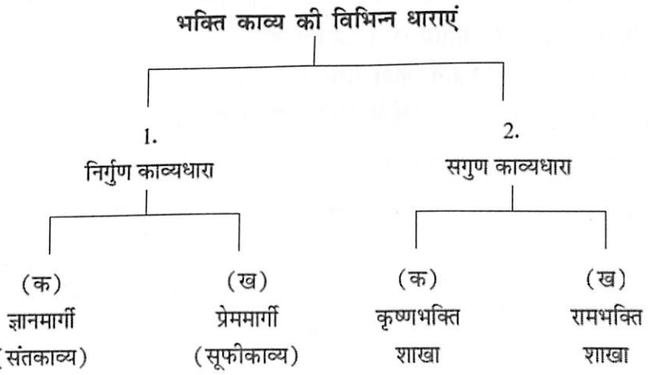
6. **भाषा शैली–** भक्त कवियों ने सामान्य जनता में प्रचलित लोकभाषाओं का प्रयोग किया। वे जनता तक अपनी बात पहुंचाना चाहते थे, अतः स्थान–स्थान की बोलियों के शब्द स्वतः उनके काव्य में आ गए हैं। कवियों ने मुख्यतः ब्रज और अवधी भाषा का मुख्य रूप से प्रयोग किया है। विषय के अनुरूप ढालकर कवियों ने भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का समावेश किया। आवश्यकतानुसार अभिधा, व्यंजना और लक्षणा तीनों शब्दशक्तियों का प्रयोग किया।

भक्त कवियों ने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं कीं। प्रबंध ग्रंथ रचना अधिकांश भक्त कवियों का उद्देश्य नहीं था, अतः भक्ति काव्य का अधिकांश भाग

टिप्पणी

मुक्तक ही है। कवियों ने दोहा, चौपाई, सवैया, छप्पय, सोरठा आदि छंदों का प्रयोग किया। उपमा, सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग कर भाषा सौष्ठव को बढ़ाया गया। शृंगार एवं शांत रस का प्रयोग भक्ति काव्य में अधिक हुआ है। इस प्रकार संपूर्ण भक्ति साहित्य लोक जीवन एवं समाज से जुड़ा हुआ है।

भक्तिकाल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – निर्गुण एवं सगुण। तत्पश्चात इन दोनों की भी उपशाखाएं हैं। निम्न तालिका के माध्यम से इन्हें स्पष्ट किया जा सकता है–



उपर्युक्त तालिका से हमें भक्तिकाल की शाखाओं का परिचय प्राप्त होता है। किंतु चाहे निर्गुण हो या सगुण, दोनों ने ही ईश्वर को मोक्ष प्राप्ति का आधार बताया। निर्गुण भक्तों ने ईश्वर को निराकार रूप में माना। उनके अनुसार, ईश्वर सर्वशक्तिमान है, किंतु आकारहित है। निर्गुण शाखा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर, दादू, रैदास एवं नानक आदि हुए, जबकि प्रेमाश्रयी शाखा में जायसी, कुतुबन, मंझन आदि सूफी कवि आते हैं। सगुण धारा के कवियों ने ईश्वर को साकार रूप में माना है। इनके अनुसार, ईश्वर जगत कल्याण के लिए अवतार लेता है और भक्तों के कष्ट दूर करता है। इस शाखा के अंतर्गत विष्णु के अवतारी रूप कृष्ण एवं राम की लीलाओं का वर्णन है। कृष्णोपासक कवियों ने ईश्वर का सखा, प्रेमी एवं बाल रूपों का वर्णन किया, जबकि रामोपासक कवियों ने राम को लोकमंगलकारी रूप दिया।

2.4.1 निर्गुण काव्यधारा : संत काव्य, सूफी काव्य

निर्गुण काव्यधारा को क्रमशः दो भागों में विभक्त किया गया, क्रमशः ज्ञानमार्गी एवं प्रेममार्गी। ज्ञानमार्गी शाखा को संत काव्यधारा के नाम से भी पुकारा जाता है, जबकि प्रेममार्गी शाखा सूफी काव्यधारा के नाम से भी जानी जाती है। हम क्रमशः इनके विषय में जानेंगे–

(क) संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा

संत काव्य का अभिप्राय है 'संतों द्वारा रचा गया काव्य'। संत विशिष्ट अर्थ में उस व्यक्ति को कहते हैं जिसने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो निस्वार्थ भाव से लोककल्याण में रत हो। यह शब्द ज्ञानेश्वर आदि निर्गुण संतों के लिए रूढ़ हो गया तथा

टिप्पणी

आगे चलकर कबीरदास आदि भक्त कवियों के लिए भी प्रचलित हो गया। इसीलिए हिंदी में जब 'संतकाव्य' कहा जाता है तो उसका अर्थ होता है– कबीर आदि निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी कवियों द्वारा रचित काव्य।

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात सत्वादि गुणों सें रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवियों को निर्गुण धारा के कवि कहा गया। जिन भक्त कवियों ने इन निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन ज्ञान बनाया, उन्हें 'ज्ञानमार्गी' कहा गया। कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, आदि इसी धारा के प्रमुख कवि थे। इनके अनुसार 'ज्ञान' का अर्थ न तो साधारण इन्द्रियजनित ज्ञान है और न ही बौद्धिक तर्क–वितर्क से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान है। इस शाखा में ज्ञान से तात्पर्य स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रातिभ अथवा अतींद्रिय बोध से है। इसी कारण यह 'सहजज्ञान' कहा गया है। कबीर ने इसे 'ब्रह्मार्गयान' कहा है। इस ज्ञान को प्राप्त होने जाने से 'सहज समाधि' लग जाती है।

संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां

निर्गुण काव्यधारा की संत काव्यधारा के विकास में योग देने वाले मुख्यतया 5 स्रोत हैं– (1) अपभ्रंश के सिद्ध और जैन मुनियों का साहित्य (2) नाथपंथ (3) वैष्णव भक्ति आंदोलन (4) महाराष्ट्रीय संत–संप्रदाय (5) इस्लाम का प्रचार। इन्हीं के प्रभाव स्वरूप संत काव्यधारा की विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिनका परिचय निम्न है–

1. **समाज सुधार पर बल–** भारतीय समाज बहुत दिनों तक जाति–विभाजित समाज रहा है। समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग रहे। उच्च वर्ग ने निम्न वर्ग का शोषण किया। इस अन्याय को संत कवियों ने सहन नहीं किया, रैदास के शब्दों में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है–

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवन्त, फिरहिं अजहुं बनारसी आसपास।
आचार सहित विप्र करहिं डंडउति, तिन तनै रविदास दासानुदासा।।

इन संतों को समाज में जो सम्मान मिला, उससे समाज की वर्गभेद की खाई दूर हो गई।

2. **सामाजिक सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य–** भक्तिकालीन साहित्य एक विशेष सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति की उपज है। संत कवि निम्न समझी जाने वाली जातियों से आए थे, अतः उनकी भावभूमि विद्रोहात्मक थी। वह जाति–पांति, छूआछूत, बाह्याचार, कर्मकांडों के घोर विरोधी थे। कभी–कभी ये उग्र भी हो जाते थे; यथा–

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाई।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, बहरा हुआ खुदाई।। (कबीर)

संत कवियों ने सुसंगति से ज्ञान अर्जित किया, इसमें जीवनगत अनुभवों को भी स्थान था। कहीं–कहीं ये उक्तियां बहुत मार्मिक बन गईं हैं; यथा–

अरे इन दो उन राह न पाई।
हिंदू अपनी करें बढ़ाई गागर छुवन न देवें काई।।

टिप्पणी

3. **निर्गुण ब्रह्म की उपासना–** निर्गुण संत कवियों ने ईश्वर के साकार रूप को नहीं स्वीकारा। अतः उनके 'राम' दशरथ सुत 'राम' नहीं वरन परम शक्ति है। सभी संत कवियों के राम (ईश्वर) निर्गुण निराकार ब्रह्म है। वास्तविकता यह है कि वैष्णव भावना से प्रभावित होने पर भी ये अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते।

4. **दार्शनिकता–** संत काव्यधारा के लगभग सभी कवि, कवि न होकर दार्शनिक हैं। इन कवियों पर भारतीय ब्रह्मवाद, हठयोगियों की साधना, वैष्णवों की अहिंसा और प्रपत्तिवाद, सूफियों की प्रेम भावना, मुस्लिमों के एकेश्वरवाद आदि का प्रभाव पड़ा था। इसलिए इनके दार्शनिक सिद्धांत भी अलग हैं।

ब्रह्म की अवधारणा यह है कि वह परम सत्ता है जो अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। ब्रह्म व्यापक है, सब में रमा है–

खालिक, खलक खलक में खालिक, सब घर रहा समाई।

जीव के विषय में संत कवि मानते हैं कि माया संतुलित आत्मा ही जीव है। वे अद्वैतवादी दर्शन को मानते हैं जिसके अनुसार ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति हुई है तथा बाद में जीव ब्रह्म में ही मिल जाता है–

पाणी हि ते हिम भया, हिम है भया बिलाई।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई।।

जगत की धारणा अद्वैतवादियों जैसी है। कबीर ने जगत को परमात्मा का प्रतिबिंब माना है। जब ब्रह्म अपनी लीला का स्तर विस्तार करता है, तब इस नामरूपात्मक जगत की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने में ही समेट लेता है–

संसार ऐसा सुपिन जैसा जीवन सुपिन समान।

संत कवियों ने माया को महाठगिनी माना है। माया सचराचर जगत को उत्पन्न करती है। मायालिप्त मनुष्य को परमतत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर माया के ही रूप हैं। ब्रह्म में जो माया है, पिंड में वहीं कुंडलिनी है।

मोक्ष का अभिप्राय है मुक्ति। माया या अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है। ऐसा हो जाने पर आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। एक स्थान पर कबीर ने कहा है–

हम न मरैं मरिहैं संसार, हमकूं मिल्या जियावनहारा।।

यह अमरत्व का बोध इसलिए है कि जीव और परमात्मा के बीच से माया या अज्ञान का आवरण हट गया है।

5. **रहस्यवाद–** परमसत्ता की भावात्मक अनुभूति को रहस्यवाद कहा जा सकता है। यह संतकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। संतकाव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों रूप ही मिलता है। संत कवि हठयोग साधना पर बल देते हैं। उदाहरण स्वरूप–

टिप्पणी

रस गगन गुफा में अजर झरै।
अजपा सुमिरन जाप करे।।

बिनु बाजा झनकार उठै जहं समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिनु चंदा उजियारी दरसै जहं जहं हंसा नजरी परै।।

संत काव्य परंपरा की प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

निर्गुण परंपरा का प्रारंभ जयदेव से ही हो जाता है। तदुपरांत नामदेव का नाम आता है। कबीर के गुरु रामानंद भी इसके बाद ही आते हैं। हिंदी में संतकाव्य की दृढ़ नींव रखने वाले कबीरदास हैं। इस परंपरा में रैदास, गुरुनानक, दादू दयाल, सुंदर दास, मलूक दास, सिंगा जी, लाल दास और हरिदास निरंजनी आदि आते हैं।

इस निर्गुण काव्यधारा की सबसे सशक्त कड़ी कबीरदास थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कबीर पर समकालीन सिद्धों और नाथों का भी प्रभाव था। उन्होंने विभिन्न प्रभावों का अतिक्रमण करने वाला अक्खड़ता और फक्कड़ता से युक्त ऐसा प्रखर व्यक्तित्व पाया था जो सबको अभिभूत कर लेता है। उनके कहे गए छंद 'बीजक' में एकत्रित हैं। 'बीजक' के तीन भागों साखी, सबद, रमैनी, में विभक्त है। साखियां दोहा 'छंद' में रचित है। कबीर ने बाह्य आडंबरों, कुरीतियों की कटु आलोचना की। उन्होंने अनेक चमत्कारपूर्ण रूपक बांधे हैं, और उलटबांसियों की रचना की है। कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' कहलाती है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी भाषा सक्षम है। इसी कारण हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

रैदास के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति बहुत आडंबरहीन थी। उनकी फुटकर वाणियां ही मिलती हैं।

गुरु नानक का संग्रह 'आदिग्रंथ' है, जिसमें उनके पद एवं साखियां संगृहीत हैं। उनके काव्य में अक्खड़ता न होकर विनम्रता थी। नानक जी के काव्य में शांत रस की निर्बाध धारा प्रवाहित हुई और निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्चकोटि की भक्ति भावना विद्यमान है। हिंदी, फारसी बहुल पंजाबी और पंजाबी– ये तीनों उनकी काव्य भाषा के रूप हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं–जपुजी, रहिरास, सोहिला एवं असा दी वार।

दादूदयाल ने अलग संप्रदाय की स्थापना की, किंतु इनके दोहे कबीर जैसे ही थे। इनकी वाणियों का संग्रह 'हरडेबानी' या 'अंगबंधु' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने अपनी कविता में ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति–पांति का निराकरण, हिंदु–मुस्लिम अभेद तथा आत्मबोध का कथन किया है, किंतु खंडन–मंडन में इनकी रुचि नहीं है। इनकी भाषा राजस्थानी के पुट वाली पश्चिमी हिंदी है।

सुंदर दास एकमात्र ऐसे निर्गुणधारा के कवि हैं जो शास्त्रों और काव्यरीति से बहुत अच्छी तरह परिचित थे और देशाटन के कारण विभिन्न प्रदेशों के आचार–विचार का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने मंजी हुई ब्रजभाषा में साहित्यिक गुणों से युक्त सरस काव्य की रचना की है, किंतु साथ ही अपनी विद्वता के प्रदर्शन का भी प्रयत्न किया है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'सुंदर–विलास' है।

मलूकदास ने ज्ञानबोध, ज्ञानपरोति, विभवविभूति, रतनखान ग्रंथों की रचना की जिनमें उन्होंने योग, ज्ञान, वैराग्य और निर्गुण भक्ति जैसे गहन विषय पर प्रकाश डाला है।

टिप्पणी

सुखसागर और भक्ति विवेक में इन्होंने कथानकों के आधार पर दार्शनिक विचार की बात की है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त भी इन्होंने कई रचनाएं की हैं। मलूकदास ने हिंदू–मुसलमान दोनों को समान भाव से उपदेश दिया है। इनकी भाषा में अरबी–फारसी के शब्दों की प्रचुरता है। इनकी भाषा व्यवस्थित और साहित्यिक है।

सिंगा जी ने 'सिंगा जी का दृढ़ उपदेश', 'सिंगा जी का दोष–बोध', 'सिंगा जी का शरद', 'सिंगा जी का नरद', 'सिंगा जी की वाणी', सिंगा जी का सातवार', 'सिंगा जी की वाणावली', 'सिंगा जी के भजन', 'सिंगा जी की बारहमासी', 'सिंगा जी की पंद्रह तिथि', 'सिंगा जी का आत्मध्यान' नामक ग्यारह रचनाएं कीं। उन्होंने 800 पदों का निर्माण भी किया। 'सिंगा जी के भजन' नामक रचना में निर्गुण मार्ग के भजन और समाधि भजन मिलते हैं। उनके अनुसार परम तत्व प्रत्येक मानव के हृदय में विराजमान है। वे ब्रह्म तत्व की खोज के लिए मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च और अन्य तीर्थों पर जाने के पक्ष में नहीं थे। वे उच्चकोटि के विचारक थे।

संत लाल दास पर कबीर मत का बड़ा प्रभाव था। उनके पंथ में राम को ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और राम ही उनके आराध्य और ब्रह्म हैं। इनकी कृतियां 'लालदास की चेतावणी' में संग्रहित हैं। इन्होंने गृहस्थाश्रम को अपनाया और परिवार में रहकर ही साधना की। लाल पंथ में साधना का मूल है–विनम्रता। इन्होंने सत्यानुभूति, अंतःकरण की शुद्धता और समदृष्टि पर अधिक जोर दिया।

हरिदास निरंजनी ने अपनी रचनाओं निरपखमूल ग्रंथ, अष्टपदी जोग ग्रंथ, ब्रह्म स्तुति, पूजाजोग ग्रंथ, संग्राम जोग ग्रंथ आदि में निर्गुण ब्रह्म के अलौकिक तत्व पर विशेष प्रकाश डाला है। उनके अनुसार, ब्रह्म कृपा के बिना साधक को आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती। हरिदास जी ने अपनी रचनाओं में सरल ब्रजभाषा का उपयोग किया है। उनके अनुसार संत ईश्वर के समान पूज्य हैं।

संत काव्यधारा का काव्य रूप

संत काव्यधारा के कवियों ने कविता करने के लिए काव्य नहीं लिखा। उन्होंने कविता को साधन माना है, साध्य नहीं, इनमें से कुछ तो साक्षर भी नहीं थे जिनके कहे छंदों को बाद में उनके शिष्यों द्वारा संकलित किया गया। संत काव्य मुख्य रूप से मुक्तक काव्य के रूप में मिलता है। साखियों में ज्ञान, आध्यात्मिक अनुभव तथा सामाजिक अनुभव को व्यक्त किया गया है। संतों ने आत्मनिवेदन आदि के उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए सबद अर्थात गेय पदों की रचना की है। इनके अतिरिक्त संतों ने बारहमासा माहात्म्यों, सहस्रनामों जैसे काव्यरूपों को भी अपनाया है।

1. **काव्यभाषा–** संत कवियों ने भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी आदि हिंदी की विभाषाओं को आधार भाषा के रूप में अपनाया। संतों की काव्यभाषा 'सधुक्कड़ी' भाषा कही गई। इसमें अव्यवस्था और व्याकरणच्युति मिलती है, लेकिन प्रामाणिक अनुभव और अपनी सहज सरलता के कारण यह भाषा अनायास ही बहुत जटिल बातें बहुत ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई है।
2. **प्रतीकात्मकता–** यह ज्ञानमार्गी शाखा की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कवियों ने प्रतीकों का प्रचुरता से प्रयोग किया। आत्मा, परमात्मा के लिए, कमलिनी,

टिप्पणी

सरोवर, जल, हंस आदि प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। अनेक प्रतीक हठयौगिक साधना पद्धति से लिए गए हैं। यथा कबीर का निम्न दोहा दृष्टव्य है–

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग।
तीन्यूं मिलि जोइया, तब उड़ि–उड़ि पड़ै पतंग।।

कभी–कभी बिंबात्मकता के दर्शन तथा मिथकीय प्रयोग भी हुए हैं।

3. **उलटबांसी शैली–** योगी सहजयोगी और तांत्रिक इस बात का दावा करते थे कि वह तीनों लोकों से न्यारे हैं। सारी दुनिया अज्ञानवश उलटी बह रही है, सही रास्ते पर वही चल रहे हैं। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने उलटबांसी की शैली अपनाई। कबीर आदि कवियों ने इस शैली को अपनाया–

एक अचंभा देखो भाई
ठाढ़ा सिंह चरावे गाई
पहले पूत पाछै माई।

प्रतीकार्थ समझ लेने पर उलटबांसी सीधी लगने लगती है, अन्यथा यह पहेली बनी रहती है।

4. **अलंकार–** कवियों ने अलंकारों की योजना नहीं की, अपितु सहज ही वे काव्य में आ गए। उपमामूलक एवं विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, श्लेष, असंगति का प्रयोग भी है–

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इबैं पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान से, एक आध उबरंत।।

5. **छंद–** संतों ने छंद का बहुत प्रयोग किया है। दोहा, चौपाई, सोरठा प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं। साखी में दोहा छंद प्रधान है। सबद या पद गेय गीत हैं जो अनेक छंदों से मिलकर बने हैं। अनेक कवियों ने सवैया, कुंडलियां तथा कवित्त में भी कविता लिखी है। पद लययुक्त मिलते हैं।

- **मूल्यांकन–** संत काव्य को हम अनेक स्तरों पर समझ सकते हैं। यह सामाजिक, साहित्यिक स्तर पर तो बहुत कुछ कहात ही है लेकिन दर्शनिक व अध्यात्मिक स्तर पर भी गूढ़ अर्थ अभिव्यक्त करता है। सामाजिक रूप से देखने पर पता चलता है कि इन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की उद्घोषणा की है। ऐसी उपासना–पद्धति पर बल दिया जो सर्वमान्य हो। अनेक कुरीतियों, आडंबरों का खंडन कर मानवतावादी सोच अपनाई। व्यक्ति के आत्मगौरव को जगाया। साहित्यिक दृष्टिकोण से संत कवियों ने सीधे–सहज ढंग से अपनी बात कही। यदा–कदा चमत्कारपूर्ण उक्तियां कहीं। साहित्य में कथ्य पर बल दिया कला पर नहीं। यही उन्हें अन्य कवियों से अलग बना देता है।

(ख) सूफी काव्यधारा अथवा निर्गुण प्रेममार्गी

भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा की दूसरी शाखा सूफी काव्यधारा अथवा प्रेममार्गी शाखा है। भारतीय भक्ति आंदोलन की लोकजागरण वादी भूमिका के निर्माण में हिंदी के सूफी संतों के काव्य का महत्व अविस्मरणीय है। इन कवियों ने मनुष्य को प्रेम दर्शन प्रदान किया।

टिप्पणी

इन सूफी संतों ने यह बोध करा दिया कि संत का अर्थ हिंदू महात्मा ही नहीं है वरन उसमें इस्लाम के सूफी साधक भी आते हैं। पंडों, पुजारियों, मौलवियों–खलीफाओं की रीति–नीति के विरुद्ध ये सभी संत मूलतः 'प्रेम' को जीवन का आधार बनाते हैं।

वस्तुतः भक्ति आंदोलन इस देश का सबसे विराट सांस्कृतिक नवजागरण है जिसने दूर–दूर तक जनता में जागृति का संचार किया। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है– "संत–सूफी साहित्य भारतीय जीवन की अपनी परिस्थितियों से पैदा हुआ था।... मलिक मुहम्मद जायसी कुरान के भाष्यकार नहीं हैं, न कबीर और दादू त्रिपिटकाचार्य हैं। संत साहित्य की अपनी विशेषताएं हैं– जो मूलतः किसी प्राचीन धर्मग्रंथ पर निर्भर नहीं हैं।"

इन कवियों ने धार्मिक विद्वेष के बदले धार्मिक सहिष्णुता का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। सूफी फकीरों ने हिंदू–मुस्लिम ऐक्य स्थापना का प्रयास किया। जहां संत कवियों का उपदेश मस्तिष्क से संबंधित था, वहीं सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानों द्वारा हिंदू–मुस्लिम जनता के हृदय को जीतने का मनौवैज्ञानिक ढंग अपनाया। ये खंडनात्मकता के स्थान पर दोनों संस्कृतियों के सुंदर सामंजस्य के पक्षधर थे।

भारत में सूफी मत का आगमन 12वीं शताब्दी से माना जाता है। सूफियों के चार संप्रदाय मिलते हैं– (1) चिश्ती संप्रदाय (2) सोहरावर्दी संप्रदाय (3) कादरी संप्रदाय (4) नक्शबंदी संप्रदाय। इन सूफी संतों के उच्च विचारों, सादा जीवन और व्यापक प्रेम के तत्ववाद ने भारतीय जनजीवन को आकृष्ट किया। भारतीय सूफी संतों ने भारत में प्रचलित लोकगाथाओं और कथाओं का आश्रय लेकर अपने आध्यात्मिक विचारों को जनता तक पहुंचाया।

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में विवाद है। कुछ का मत है कि यह 'सूफा' से बना है, जिसका अर्थ है पवित्रता। इस धारणा के अनुसार 'सूफी' उन्हें ही कहना चाहिए जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म से पवित्र कहे जा सकते हैं। द्वितीय मत के अनुसार सूफी शब्द 'सोफिया' से निकला है जिसका अर्थ 'निर्मल ज्ञान' होता है। अर्थात निर्मल ज्ञान वाले ही सूफी कहलाए। एक अन्य मतानुसार सूफी शब्द 'सफ' से निकला जिसका अर्थ है "सबसे आगे की पंक्ति"। अर्थात ईश्वर के प्रिय पात्र 'सूफी' कहलाने के अधिकारी होंगे। एक अन्य मत के अनुसार 'सूफी शब्द' वास्तव में 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है 'ऊन'। अर्थात "ऊन पहनने वाले सूफी संत" इन्हीं संतों को 'सूफी' कहा गया। वस्तुतः ये फकीर या दरवेश थे, जो ईश्वरीय प्रेम में लीन रहते हैं। सूफी वे संत थे जो सादा जीवन उच्च विचार में विश्वास रखते थे तथा कठोर साधना करते थे।

सूफीमत और सिद्धांत

सूफी फकीरों ने तत्कालीन समाज के कष्टों को दूर करने के लिए व्यक्तिगत साधना की उच्चभूमि पर पहुंच कर लोकरक्षा के आदर्शों को स्थापित किया। सूफी फकीरों ने वैष्णव मत के अहिंसामय प्रेम को अपनाया। ये सहृदय एवं कोमल हृदय थे। भक्ति और उपासना के लिए सूफी ईश्वर को अनंत सौंदर्य, अनंत शक्ति, अनंत गुणों का सागर मानते हैं। फारस के शायर खय्याम, सनाई, सादी, रूमी के अद्वैतवादी विचारों ने भारतीय सूफियों को प्रभावित किया और हिंदी काव्य की प्रेमगाथा परंपरा को उसी रंग में रंग दिया।

टिप्पणी

प्रायः सूफी ईश्वर और जगत आत्मा–परमात्मा को एक मानते हैं। सूफी मत में साधक की चार अवस्थाएं मानी गई हैं–

1. शरीयत– धर्मग्रंथ के विधि निषेध का सम्यक पालन।
2. तरीकत– बाहरी क्रिया–कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान।
3. हकीकत– भक्ति और उपासक के प्रभाव से सत्य का बोध। इस बोध से ही साधक त्रिकालज्ञ हो जाता है।
4. मारफत– सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अंत में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

ईश्वर की सत्ता का सार प्रेम है। 'इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) ही 'इश्क हकीकी' (आध्यात्मिक प्रेम) की ओर ले जाने की स्थिति है। इस मार्ग में कई पड़ाव हैं– जिन्हें 'मुलाकात' कहा जाता है। 'साधक' 'फना' से 'बका' की ओर बढ़ता है। सूफी ब्रह्मानंद का वर्णन लौकिक प्रेमानंद के रूप में करते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म बिंब है, जगत उसका प्रतिबिंब है। यह सिद्धांत प्रतिबिंबवाद कहलाता है, जिसकी चर्चा पद्मावत में आती है।

सूफी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां

सूफी काव्यधारा के कवियों ने 'इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) के माध्यम से इश्क हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) की प्राप्ति का लक्ष्य रखा है। इसके लिए नायक–नायिका कष्ट सहने को भी तत्पर रहते हैं। सूफी काव्य की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं –

1. **प्रेमतत्व की व्यंजना–** सूफी काव्य का प्रधान विषय प्रेमतत्व की व्यंजना है। प्रेम तत्व में कवियों ने संयोग को कम वियोग को अधिक महत्व दिया। विरहदशा का सजीव अंकन किया गया है। सूफियों ने विरह वर्णन के अंतर्गत ऋतु वर्णन, बारहमासा का प्रभावशाली एवं मार्मिक वर्णन किया है।

   प्रेम वर्णन में श्रृंगार रस की प्रमुखता है। कवियों ने प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन के माध्यम से प्रेम को बढ़ाया है। सखा, सखी, दूत, पक्षी, वन आदि उद्दीपन रूप में कार्य करते हैं।

2. **चरित्र–चित्रण–** सूफी कवियों ने घटनाचक्र तथा परिवेश चित्रण के साथ–साथ चरित्र चित्रण भी किया। किंतु चरित्र चित्रण को प्रधानता नहीं मिली है। मूलतः ये सभी चरित्र (पात्र) सूफी प्रेम सिद्धांत को सामने लाने के माध्यम रहे हैं। यही कारण है कि इन पात्रों में मानव जीवन की झलक मिलने पर भी मानव जीवन के पूर्ण चित्र नहीं मिलते। नायक पराक्रमी होते हुए भी विरह की पीड़ा सहन करने को विवश है। प्रति नायकों का भी चरित्र–विकास नहीं हो सका है।

3. **रहस्यवाद–** रहस्यवाद के दो प्रकार हैं– साधनात्मक और भावात्मक। सूफियों में भावात्मक रहस्यवाद ही अधिक मिलता है, इन्होंने रहस्यात्मक 'माधुर्यभाव' को अपनाया है। सूफियों के रहस्यवाद में भावना की गहराई है और साधना की शक्ति। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल का कथन दृष्टव्य है– "हिंदी के कवियों में यदि

टिप्पणी

कहीं रमणीय और सुंदर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिसकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। वे, सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक व्यापारों और रूपों के साथ प्रकृति का श्रृंगार या विरह विकलता का अनुभव करते हैं।"

4. **भारतीय एवं अभारतीय तत्वों का मिश्रण–** सूफी कवियों की प्रेमगाथाओं में भारतीय एवं अभारतीय तत्वों का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। सूफी कवि अपने सिद्धांतों के प्रचार से ज्यादा हिंदू–मुसलमान के हृदय को मिलाने में विश्वास करते थे। इन्होंने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को अवधी में प्रस्तुत किया। भारतीय दर्शन से प्रभावित हो प्रकृति की समस्त सत्ता में प्रिय की सत्ता का अनुभव किया–

   रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोति
   रतन पदारथ मानिक मोती।

   सूफियों के रहस्यवाद का प्रेम तत्व अभारतीय है। सूफी काव्य में परमात्मा को प्रियतमा माना गया जो अभारतीय है। साथ ही हठयोग साधना का प्रभाव भी सहज ही मिल जाता है। यथा–

   नवौ खंड नव पौरों औ तहं वज्र केबार।
   चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरे पार।।

   विशेष बात यह है कि सूफी कवियों ने भारत की प्रबंध काव्य शैली में फारस की मसनवी शैली का सामंजस्य किया। इस प्रकार इन कवियों ने वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर भारतीय–अभारतीय तत्वों का सामंजस्य किया।

5. **प्रबंध कल्पना और कथानक रूढ़ियां–** सूफी कवियों ने प्रबंध काव्यों की रचना की, किंतु यह प्रबंधत्व भारतीय काव्यशास्त्र के नियमों में बंधकर नहीं चलता। वास्तव में सूफी काव्य का ढांचा प्रेमकथा के प्रतिपादन पर खड़ा होता है। काव्य रूप की दृष्टि से फारसी प्रेमकाव्यों का प्रभाव ग्रहण किया गया है। फारसी की मसनवी शैली को अपनाया गया है। सूफियों ने चौपाई–दोहा पद्धति को अपनाया। भारतीय सूफियों ने अपभ्रंश काव्य की चरित काव्य वाली रचना शैली को भी अपनाया है और 'प्रेम की पीर' का कथा में वर्णन किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा– "इन सभी सूफी कवियों ने कथानक को गति देने और एक विशेष प्रकार के आकर्षण में बांधने के लिए परंपरा से प्राप्त भारतीय कथाओं में मौजूद कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया है।"

6. **प्रतीकात्मकता–** सूफी कवियों ने प्रतीकों के माध्यम से कथाएं कहीं हैं। यहां तक कि पात्र योजना, स्थान, अन्य विवरण सभी प्रतीकों के माध्यम से आए हैं। चित्रावती, मधुमालती, पद्मावत आदि की पूरी कथा ही प्रतीक है जिसमें लौकिक प्रेम कथा के उदय एवं अलौकिक प्रेम की झांकी मिलती है। पूरी कथा में नायक आत्मा का प्रतीक तथा नायिका परमात्मा का प्रतीक है। अतः सभी

टिप्पणी

काव्य एक प्रकार के कथारूपक हैं। इन कथाओं में प्रतीकों की इतनी भरमार है कि इनका रहस्वाद इन प्रतीकों को समझकर ही समझा जा सकता है। यथा–

तन चितउर मन राउर कीन्हा, हिय सिंघल, बुद्धि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।

7. **काव्य भाषा, अलंकार एवं छंद–** हिंदी के अधिकांश सूफी कवियों की भाषा अवधी है। इस काव्यभाषा की सर्जनात्मकता का ठेठ देशी रूप पद्मावत में मिलता है। सूफी कवियों ने काव्यभाषा की सर्जनात्मक शक्ति को उजागर किया है। भाषा अवधी प्रधान थी, पर कहीं कहीं ब्रजभाषा, भोजपुरी का पुट भी है। अलंकारों की दृष्टि से प्रचलित अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है। रूपक, उपमा, समासोक्ति तथा अन्योक्ति का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अरबी–फारसी से प्रभावित होने पर भी उपमान योजना भारतीय है। साथ ही काव्य बिंब प्रस्तुत किए हैं और अमूर्त भावों को मूर्त बनाया गया है। छंद योजना की दृष्टि से कवियों ने दोहा–चौपाई पद्धति को ही अपनाया है। सूफी काव्य में सोरठा, सवैया और बरबै जैसे छंदों का कभी–कभी प्रयोग किया है।

सूफी प्रेम काव्य परंपरा की प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

सूफी काव्य परंपरा के सबसे लोकप्रिय कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे। किंतु उनसे पूर्व भी प्रेमाख्यानक काव्यों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। अपभ्रंश के संदेशरासक आदि भी प्रेमाख्यानक काव्य ही हैं– जिनमें श्रृंगार और प्रेम की प्रधानता है। तत्पश्चात इस परंपरा में मुल्ला दाऊद, दामोदर, ईश्वरदास, कुतुबन, गणपति, मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, कल्लोल, कुशललाम, नंददास, जैन श्रावक जटमल, नारायण दास, आलम, उसमान, पुहकर, शेख नबी जान कवि आदि आते हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' कवित्व एवं भाव व्यंजना की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि का काव्य है। इसमें राजा रत्नसेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा है। इसकी शैली में सर्वत्र प्रौढ़ता और गंभीरता परिलक्षित होती है। प्रतीकात्मक या रूपक तत्व के कारण इसमें व्यंग्य–प्रधान ध्वनि का प्रादुर्भाव सहज ही हो गया है। छंद योजना में चौपाई एवं दोहे का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा अवधी है।

मुल्ला दाऊद ने प्रेमाख्यान परपंरा के काव्य 'चान्दायन' की रचना की। उन्होंने अपनी इस कृति में फारसी–मसनवियों के छंदों का प्रयोग नहीं किया और उनके द्वारा प्रयुक्त छंद–विधान तथा प्रबंध व्यवस्था पूर्ण रूप से भारतीय है। इसकी भाषा अवधी है और शैली भाषानुकूल और सरस है। ऐसा जान पड़ता है कि यह भारतीय परंपरा का कथा काव्य है।

दामोदर कवि ने 'लखमसेन पद्मावती कथा' की रचना की। इसकी भाषा राजस्थानी है। दामोदर ने बीच–बीच में संस्कृत उक्तियां भी प्रस्तुत की हैं और छंद योजना में चौपाई, दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग किया है। दामोदर जी ने अपनी इस कृति को 'वीर कथा' कहा है।

टिप्पणी

'मृगावती' के रचनाकार कुतुबन हैं जिन्होंने इसमें परंपरागत प्रेमाख्यानों की विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय किया है। उन्होंने दोहा–चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। इसकी भाषा अवधी है।

गणपति ने 'माधवानल कामकंदला' की रचना की। इसकी भाषा राजस्थानी है। इसमें भारतीय कथा–काव्यों की सभी प्रवृत्तियों एवं सौंदर्य, प्रेम और शौर्य के अतिरिक्त, धार्मिक तत्वों और नैतिक उपदेशों का समन्वय किया गया है।

'रूपमंजरी' कृति के रचनाकार कवि नंददास हैं। काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना अत्यंत प्रौढ़ और मार्मिक है। इसमें ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। कवि ने इसमें प्रेमाख्यान परंपरा की विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय करते हुए रूपमंजरी और कृष्ण के प्रेम का चित्रण अत्यंत स्वच्छंद रूप में किया है। इसमें दोहा–चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है।

कवि मंझन ने 'मधुमालती' की रचना की। इसमें मंझन का लक्ष्य प्रेम के उच्च एवं उदात्त स्वरूप की व्यंजना करना रहा है और इसमें वे सफल भी हुए हैं। इसकी शैली में सरलता एवं सरसता झलकती है। दोहा–चौपाई का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा अवधी है।

कवि नारायण दास ने 'छिताई वार्ता' की रचना की। काव्यत्व की दृष्टि से यह साधारण रचना है। दोहा–चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। इसमें देवगिरि के राजा रामदेव यादव की कन्या और ढोल समुद्रगढ़ के राजकुमार के प्रेम का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा राजस्थानी–मिश्रित ब्रजभाषा है।

'चित्रावली' के रचयिता उसमान ने अपनी इस रचना में सौंदर्य, प्रेम और विरह की व्यंजना में सहृदयता एवं भावप्रवणता का परिचय दिया है। अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें कथा–काव्य की सभी प्रवृत्तियों का निर्वाह करते हुए सुजान और चित्रावली के चित्र–दर्शनजन्य प्रेम का निरूपण किया गया है। इस काव्य की भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है।

पुहकर जी ने अपनी कृति 'रसरतन' में राजकुमारी रंभा और सोम के प्रेम को बड़े अच्छे ढंग से समझाया है। छंद–योजना में दोहा–चौपाई का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा अवधी है।

शेख नबी द्वारा 'ज्ञानदीप' की रचना की गई। काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना साधारण है। इसमें उन्होंने वेद–मार्ग की जी खोलकर प्रशंसा की है। इसमें वीर, श्रृंगार, विरह और योग आदि विषयों का वर्णन किया गया है। छंद–योजना में दोहा–चौपाई का प्रयोग किया है और इसकी भाषा अवधी है।

जान कवि ने लगभग 29 प्रेमाख्यान काव्य ग्रंथों की रचना की। कवि ने इन काव्य ग्रंथों में प्रेम और विरह को प्रमुखता दी है। कथा काव्य के लक्षणों का निर्वाह किया है। छंद–योजना में दोहा–चौपाई के साथ–साथ सवैया और कवित्त आदि का प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा राजस्थानी प्रभावित ब्रजभाषा है।

- **मूल्यांकन–** सूफी कवियों ने भाषा और साहित्य को प्रेमदर्शन की नवीन दृष्टि प्रदान की है। इन कवियों ने मानव जीवन के सर्वांग विकास पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

टिप्पणी

"मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी" का जीवन दर्शन ही इन सूफी कवियों का एकमात्र उद्देश्य है। विश्व बंधुत्व ही इनका परम लक्ष्य था। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है– "कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है। जिसे छूते ही मनुष्य के सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।" वास्तव में यह हृदय की मुक्तावस्था से निकला काव्य है, जो मानव के हृदय को मिलाने के लिए नई दृष्टि देता है।

2.4.2 सगुण काव्यधारा : कृष्णभक्ति काव्यधारा, रामभक्ति काव्यधारा

निर्गुण भक्ति धारा के समान सगुण भक्ति काव्यधारा को भी दो भागों में विभाजित किया गया– (1) कृष्णभक्ति काव्यधारा (2) रामभक्ति काव्यधारा। सगुण भक्त कवियों ने ब्रह्म के साकार रूप की उपासना की। विष्णु के अवतार के रूप में श्रीराम और श्रीकृष्ण की लीला का गायन इन भक्तों का उद्देश्य बना। पहले हम कृष्णभक्ति धारा का परिचय प्राप्त करेंगे–

(क) कृष्णभक्ति काव्यधारा

कृष्णभक्ति शाखा के कवि भगवान कृष्ण को अपना आराध्य मानते हैं। ये कवि समाज के उच्च एवं निम्न दोनों वर्गों से आए थे। इन संतों ने गीतिकाव्य के माध्यम से अपने हृदय को खोलते हुए जातिवाद के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। पुजारियों और मौलवियों की रीति–नीति के विरुद्ध इन कवियों ने मूलतः प्रेम के आधार पर मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति पर बल दिया। यह काव्य भारतीय जनता की सबसे कोमल भावनाओं, मानवीय सहृदयता और जीवन की आस्था का उज्ज्वल संसार है। बालकृष्ण के सौंदर्य का उद्घाटन भारतीय हृदय की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। राधा–कृष्ण के प्रेम के रूप में मनुष्य के इहलौकिक प्रेम तथा समर्पण की गहन अभिव्यक्ति की गई। कृष्णभक्ति काव्य में कृष्ण के माध्यम से ऐसी भक्ति पद्धति की स्थापना की जो प्रेम, भक्ति और आत्मसमर्पण पर आधारित है।

कृष्णकाव्य को भक्ति आंदोलन ने भी एक व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान करते हुए नवीन भावभूमि प्रदान की।

कृष्णभक्ति शाखा का व्यापक प्रचार–प्रसार ब्रजमंडल में पाया जाता है। कृष्ण इनके केंद्रबिंदु है। भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण है। उनकी ऐतिहासिकता के संबंध में भी विभिन्न मत प्रचलित हैं– कुछ ऐतिहासिक मानते हैं, कुछ अर्द्ध ऐतिहासिक और कुछ काल्पनिक। पाश्चात्य विद्वान 'कृष्ण' शब्द की उत्पत्ति 'क्राइस्ट' से मानते हैं, जो कपोलकल्पित है। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है। आगे चलकर 'छांदोग्य उपनिषद' में भी उल्लेख है। इस प्रकार कृष्ण के तीन रूप मिलते हैं– (1) ऋषि और धर्मोपदेशक (2) नीतिकुशल शासक (3) बाल रूप में लौकिक व अलौकिक लीला करने वाला रूप। कृष्णभक्ति से संबंधित अनेक संप्रदाय भी लोकप्रिय हुए हैं; यथा– वल्लभ संप्रदाय– यह वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित किया गया। इनके भक्ति मार्ग का नाम पुष्टिमार्ग है। यह कृष्ण के अनुग्रह पर आधारित है। यह मत शुद्धाद्वैतवाद कहलाता

टिप्पणी

है। वल्लभ के चार शिष्य तथा विठ्ठल के चार शिष्यों को मिलाकर 'अष्टछाप' की स्थापना हुई। इनमें सम्मिलित कवि हैं– सूरदास, कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, नंददास, परमानंददास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी। ये कवि सखा भाव की भक्ति करते हैं।

माधव संप्रदाय के अनुयायी माधवाचार्य से प्रभावित रहे। नामकीर्तन को इस मत में प्रमुखता मिली। विष्णु स्वामी ने विष्णु संप्रदाय स्थापित किया। निंबार्क संप्रदाय निंबकाचार्य द्वारा स्थापित किया गया। इन्होंने संकीर्तन को विशेष स्थान दिया। चैतन्य संप्रदाय की स्थापना चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई। इन्होंने भागवत पुराण की भक्ति का आदर्श स्वीकार किया। इसमें राधा को प्रमुखता दी गई।

राधा–वल्लभ संप्रदाय हितहरिवंश द्वारा स्थापित किया गया। इस संप्रदाय में कृष्ण के स्थान पर राधा को महत्व दिया गया। राधावल्लभ श्रीकृष्ण का ही उपास्य नाम है। स्वामी हरिदास ने हरिदासी संप्रदाय स्थापित किया। इसे 'सखी संप्रदाय' भी कहते हैं। दत्तात्रेय संप्रदाय के प्रवर्तक के रूप में दत्तात्रेय को माना जाता है। इस प्रकार उक्त संप्रदायों ने कृष्णभक्ति का प्रचार–प्रसार करके उसे लोकप्रिय बनाया।

कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां

इस काव्यधारा के कवियों का मुख्य विषय राधाकृष्ण की लीलाएं हैं। मुख्यतः निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं–

1. **राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण**– इन कवियों ने अपने इष्ट कृष्ण का गुणगान किया है। कृष्ण की बाल–लीलाओं और राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। राधा–कृष्ण के प्रेम एवं विरह के चित्र सहज ही देखे जा सकते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण के चरित्र की रूपरेखाओं में हिंदी कवियों ने नया रंग भरकर उसे आकर्षक एवं मधुर बना दिया है। अपने युग एवं वातावरण के अनुसार इन कवियों ने अनेक नवीन प्रसंगों की भी उद्भावना की है जो रस दृष्टि में सहायक सिद्ध होते हैं; यथा–

   शोभित कर नवनीत लिए
   घुटुवन चलन रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

2. **भक्तिभावना**– कृष्णभक्ति के सभी आचार्यों ने शंकर के मायावाद का खंडन किया और जीवन और जगत की सत्यता तथा ईश्वर भक्ति की पुनः स्थापना की। इस प्रेम व भक्ति के अंतर्गत नवधा भक्ति के दर्शन होते हैं। हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति की व्याख्या नहीं की, किंतु उसकी महिमा का बार–बार वर्णन किया है। सूरदास जैसे कवियों ने निर्गुण पर सगुण की जीत दिखाई है–

   अविगत गति कछु कहत न आवै
   सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीलापद गावै।

सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा यह मार्ग परमानंद तक ले जाता है। सूरदास, कुंभदास, मीरा आदि प्रारंभिक कवियों में भक्ति भावना का जैसा उन्मेष मिलता है, वह परवर्ती कृष्ण कवियों, कृष्णदास, नंददास आदि में नहीं मिलता।

टिप्पणी

3. **दार्शनिकता**– कृष्णभक्त कवियों के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत आते हैं। तात्विक दृष्टि से इस शुद्धाद्वैतवाद को 'ब्रह्मवाद' अथवा 'पुष्टिमार्ग' तथा अविकृत परिणामवाद भी कहा जाता है। शुद्धाद्वैतवाद में शुद्ध का अर्थ है माया के संबंध से रहित। इस सिद्धांत के अनुसार माया के संबंध रहित ब्रह्म ही जगत का कारण और कार्य है। यहां ब्रह्मवाद का अर्थ है सब कुछ ब्रह्म ही है। विकृत परिणामवाद का अभिप्राय है कि जगत ब्रह्म का विकाररहित परिणाम है। सूरदास के शब्दों में–

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहां क्यों हरि बिसराया।।

संसार के बंधनों से छूटकर आनंद प्राप्त करने की अवस्था वैष्णव दर्शन के अनुसार मुक्ति की अवस्था है। पुष्टिमार्ग में भक्ति के प्रकार और भगवान की इच्छा के अनुसार भक्त जीव को मुक्ति का आनंद मिलता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार 'सालोक्य', 'सामीप्य', 'सारूप्य' एवं 'सायुज्य' नामक चार प्रकार की मुक्तियों का संकेत है। सूरदास और नंददास ने लयात्मक एवं सायुज्य मुक्ति का वर्णन संयोग और वियोग श्रृंगार के अंतर्गत किया है।

4. **रस विवेचन**– कृष्णभक्त कवियों ने मुख्यतः वात्सेल्य और श्रृंगार को प्रस्तुत किया है। भक्ति भी दिखाई देती है। श्रृंगार को रसराजत्व प्रदान करने में इन कवियों का प्रमुख योगदान है। ईश्वर के शील, शक्ति और सौंदर्य रूपों में से इन कवियों का मन सौंदर्य में रमा है। फलतः दोनों बाल और यौवन की झाकियां मनोयोग से चित्रित की गई हैं। कल्पना के दिव्य सांचे में ढलकर ये भावों का सौंदर्य खड़ा करते हैं और हृदय की तरंगें आनंद विधान की सृष्टि करती हैं। ये कवि अपनी एकांतिक साधना में निमग्न रहने वाले कवि थे। वात्सल्य वर्णन में तो इन कवियों का सानी नहीं है। जैसा कि शुक्ल जी ने सूरदास के विषय में कहा है– "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना–कोना झांक आए हैं।" एक उदाहरण प्रस्तुत है–

खीजत जात माखन खात
अरुण लोचन भौंहें टेढ़ी बार–बार रभांत।

वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन में इन कवियों को महारथ हासिल है। बालोचित चेष्टाओं, लीलाओं और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं का इतना रोचक और मार्मिक वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। भ्रमरगीत में उपालंभ और वाग्वैदग्ध्य अपने चरम पर दिखता है, इस प्रकार श्रृंगार के वियोग पक्ष का भी मार्मिक अंकन है–

'मधुबन तुम कत रहत हरे' तथा 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै' कहकर गोपियों की व्यथा को कवि ने सहज ही चित्रित किया है। गोपियों के माध्यम से निर्गुण पर सगुण की विजय भी कवियों ने, विशेषकर सूरदास ने दर्शाई है। इसके अतिरिक्त करुण, वीर, भयानक, अद्भुत और शांत रस भी विशेष प्रसंग आने पर विद्यमान हैं।

टिप्पणी

5. **प्रकृति सौंदर्य**– प्रकृति को इन कवियों ने प्रमुख रूप से चित्रित किया है। प्रकृति सौंदर्य की संवेदना को इन कवियों ने सघन अनुभूतियों से व्यक्त किया है। प्रकृति सदैव इनके साथ ही रही है। प्रकृति का उद्दीपन रूप सर्वाधिक चित्रित किया गया है। बाल लीलाओं से लेकर लोकमंगलकारी कार्यों की कर्मभूमि प्रकृति ही रही है। प्रकृति में घूमने वाले गोपाल कृष्ण का संपूर्ण गोलोक प्रकृति वैभव की छटा है। इस प्रकृति का एक चित्र प्रस्तुत है–

कोकिल कीर सदा तंह रोर
सदा रूप मनमथ चित चोर।

कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रमुख रचनाएं एवं रचनाकार

हिंदी कृष्णभक्ति काव्य परंपरा का प्रारंभ जयदेव रचित 'गीतगोविंद' से माना जाता है तदुपरांत विद्यापति ने कृष्णभक्ति के पद लिखे। किंतु कृष्णभक्ति को सर्वाधिक लोकप्रियता महाकवि सूरदास ने दिलाई। उनके द्वारा रचित 'सूरसागर', 'साहित्य लहरी' और 'सूरसारावली' हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। जन्मांध होते हुए भी कृष्ण की बाल–लीलाओं, वात्सल्य और प्रेम के जो चित्र उन्होंने बंद आंखों से खींचे, उन्हें पढ़कर पाठक अभिभूत हो जाता है; यथा–

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसे हूं निकसत नाहीं उधौ तिरछे ह्वै जु अड़े।।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप के कवि कुंभनदास भी अनासक्त भाव से कृष्णभक्ति में लीन रहे। इनके पद रागकल्पद्रुम, रागरत्नाकर, वर्षोत्सव कीर्तन, वसंतधमार कीर्तन आदि में संकलित हैं। वे श्रीनाथ जी के दर्शन के अभाव में मार्मिक पीड़ा का अनुभव करते थे इसलिए वे प्रयास करते थे कि उन्हें ब्रज से बाहर नहीं जाना पड़े। इनकी काव्य भाषा साधारण ब्रजभाषा है। इनके काव्य में कहीं–कहीं संस्कृत एवं अन्य भाषाओं का भी अल्प मात्र प्रभाव दिखाई देता है।

परमानंददास की रचनाएं 'परमानंदसागर' नाम से प्रकाशित हुईं। इनके सर्वाधिक पद बाललीला विषयक हैं। इन्होंने कृष्ण की केवल माधुर्य पक्ष की लीलाओं का ही गान किया है। बाल–मनोविज्ञान के सुंदर चित्र इनके काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं दोहा–चौपाई का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

कृष्णदास संगीत के मर्मज्ञ गायक थे और बाल लीला और राधाकृष्ण प्रेम–प्रसंग में इनका मन बसता था। इन्होंने बाल लीला, राधाकृष्ण प्रेम–प्रसंग, रूप सौंदर्य आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। इनके 100 से अधिक फुटकर पद ही उपलब्ध हैं, जिनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। उनका लिखा कोई ग्रंथ नहीं मिलता।

नंददास काव्य सौंदर्य और दार्शनिकता की दृष्टि से सूरदास के बाद सबसे महत्वपूर्ण कवि थे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद उन्होंने अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखड़ी, नंददास पदावली, श्यामसगाई, सुदामाचरित, रुक्मिणीमंगल, भंवरगीत, रासपंचाध्यायी, गोवर्धन लीला, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा नामक ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'भंवरगीत' 'रास पंचाध्यायी', 'रूप मंजरी' आदि प्रसिद्ध

टिप्पणी

हैं। 'भंवरगीत' नंददास के परिपक्व दर्शन–ज्ञान, विवेक बुद्धि, तार्किक शैली और कृष्ण भक्ति का परिचायक काव्य है। इस रचना का मूल उद्देश्य निर्गुण–निराकार ब्रह्म की उपासना का खंडन करते हुए सगुण साकार कृष्ण की भक्ति की स्थापना करना है। 'रास पंचाध्यायी' में लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। 'रूप मंजरी' में रूपमंजरी के प्रति कृष्ण–प्रेम को जार–भाव से निरूपित करते हुए दूती इंदुगती के साहाय्य का वर्णन किया गया है।

गोविंदस्वामी को संगीत का अच्छा ज्ञान था। ब्रजभाषा का लालित्य इनमें अद्‌भुत ढंग से विद्यमान है। पद रचना करके वे स्वयं उनका गायन करते थे। इनके पद 'गोविंदस्वामी के पद' में संग्रहित हैं। इन्होंने कृष्ण की बाललीला और राधा–कृष्ण की शृंगार लीला– दोनों की पद–रचना की। इनके काव्य की भाषा ब्रज है।

छीतस्वामी भी संगीत के ज्ञाता थे तथा कीर्तन हेतु इन्होंने 200 पदों की रचना की। इनके ये 200 पद 'पदावली' में संकलित हैं। इनका काव्य भक्तिभाव से परिपूर्ण है। पदों और कवित्तों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है।

चतुर्भुजदास कुंभनदास के छोटे पुत्र थे। इन्होंने शैशव काल में ही काव्य–रचना करना शुरू कर दिया था। उनके पदों का संग्रह 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह' के नाम से प्रकाशित है। इनकी रचना में शृंगार की छटा विद्यमान है। इन्होंने कृष्ण जी के जन्म से लेकर गोपी–विरह तक ब्रजलीला का गान किया। इनकी रचना की भाषा साधारण ब्रज भाषा है।

श्री भट्ट जी के गुरु का नाम केशव कश्मीरी भट्ट था। श्रीभट्ट की रचना "युगलशतक" नाम से बहुत प्रसिद्ध हुई। इसमें लगभग 100 पद हैं। इसमें राधा–कृष्ण की युगल–लीलाओं के अनेक मनोरम चित्र हैं। इस ग्रंथ में भक्त का भाव गोपी–भाव या सखी–भाव है। संगीतात्मक इनके काव्य का सहज गुण है। इसकी भाषा ब्रज भाषा है लेकिन संस्कृत के सुकोमल तत्सम शब्दों का भी बाहुल्य है।

हरिव्यास जी द्वारा लिखित पांच ग्रंथों में से 'महावाणी' नामक ग्रंथ, जो ब्रजभाषा में लिखा गया, उसमें राधा–कृष्ण के दार्शनिक रूप की व्याख्या मिलती है। यह ग्रंथ राधा–कृष्ण की लीलाओं से ओतप्रोत है जिसमें श्री कृष्ण को परब्रह्म और श्री राधा को उनकी आह्लादिनी शक्ति कहा गया है। इन्होंने इस ग्रंथ में तत्सम शब्दों और अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

मीराबाई ने ग्यारह रचनाएं की थीं, ऐसा कहा जाता है लेकिन इनका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। मीरा की 'स्फुट पद' नामक रचना ही प्रामाणिक रचना है। मीरा के आराध्य गिरिधर गोपाल थे जिनके प्रेम में वह मतवाली थी। मीराबाई के काव्य में वियोग और शृंगार के अतिरिक्त शांत रस की भी व्यंजना हुई है। मीरा की काव्य भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज भाषा है। इनके काव्य में पंजाबी और खड़ी बोली का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। उनके पदों में गुजराती भाषा की भी झलक मिलती है। संगीत एवं छंद–विधान की दृष्टि से इनका काव्य उच्च कोटि का है। मीराबाई ने स्वयं के जीवन को कृष्णभक्ति में समर्पित कर दिया। मीरा की भक्ति में तन्मयता और एकनिष्ठा है तथा गीतिकाव्य का माधुर्य है। वे कहती हैं–

टिप्पणी

मेरौ तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोरमुकुट, मेरो पति सोई।

इनकी तुलना आलवार भक्तिन आंडाल से की जा सकती है।

रसखान भी कृष्णभक्ति की गहनता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी चार रचनाएं प्रसिद्ध हैं– सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दानलीला और अष्टयाम। इनमें भक्त और कवि का अद्‌भुत समन्वय है और इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा कविता का रस सौंदर्य छलक पड़ता है। राधा–कृष्ण की प्रेम भक्ति के ऐसे मधुर गायक कम ही हैं। 'सुजान रसखान' में 181 सवैये, 17 कवित्त, 12 दोहे और 4 सोरठे हैं। इनमें भक्ति, प्रेम, राधा–कृष्ण की माधुरी, वंशी मोहिनी एवं कृष्ण लीला संबंधी सरस प्रसंग हैं। 'प्रेमवाटिका' में 53 दोहे हैं, जिनमें राधा–कृष्ण को प्रेम–उद्यान के मालिन–माली मानकर प्रेम के गूढ़ तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया गया है। 'दानलीला' में 11 छंद हैं। इनमें प्रसिद्ध पौराणिक प्रसंग को कवि द्वारा राधा–कृष्ण संवाद के रूप में चित्रित किया गया है। रसखान प्रेम और शृंगार के कवि हैं। वे किसी परंपरा में नहीं बंधे। इनकी काव्य–भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रज है। कृष्णभक्ति काव्य की जो परंपरा भक्तिकाल में शुरू हुई थी वह धीरे–धीरे रीतिकालीन शृंगारी काव्य में परिणत होती गई। रीतिकाल में राधा–कृष्ण भक्ति के प्रतीक न होकर शृंगार के प्रतीक हो गए।

कृष्णभक्ति काव्यधारा का काव्यरूप

हिंदी कृष्णकाव्य में प्रायः मुक्तक काव्य को प्रधानता मिली है। मूलतः मुक्तक रचना का प्रमुख कारण गेय पद परंपरा की प्रवृत्ति होना है, जिससे कवियों को अंतर्मुखी वृत्तियों को काव्य में ढालने का अधिक अवसर मिला। अधिकांश कवि संगीत के ज्ञाता थे। इस कारण गीतिकाव्य परंपरा बहुत लोकप्रिय हुई।

1. **काव्यभाषा–** ब्रजभाषा को साहित्य में सम्मान दिलाने का श्रेय कृष्णभक्त कवियों को जाता है। ब्रजभाषा का काव्यभाषा के रूप में इन कवियों ने ऐसा विकास और परिष्कार किया कि उसकी सर्जनात्मक संभावनाएं जनता को मुग्ध करने लगीं। इनका शब्दभंडार भी असीमित है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, अपभ्रंश के शब्दों का भी प्रयोग है। ब्रजभाषा के नाद सौंदर्य ने इस काव्य के ध्वनि माधुर्य का विस्तार किया है।

2. **प्रतीक और बिंब–** इन कवियों ने प्रतीकों और बिंबों का भी विधान किया है। नाम प्रतीक, स्थान प्रतीक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, उत्सव पूजा से संबंधित प्रतीक इस काव्य में भरपूर हैं। गोपियां जीव की प्रतीक हैं और गोलोक इंद्रियों का। मुरली ब्रह्म की नादशक्ति का प्रतीक है तो ब्रज कृष्ण की ब्रज यात्रा का। ब्रज गोलोक का प्रतीक है। मनुष्य मन के भीतर ही गोलोक (ब्रज) है। कवियों की अभिव्यंजना शक्ति का विकास बिंबों में दिखता है। उदाहरण प्रस्तुत है–

   शोभित कर नवनीत लिए
   घुटुवन चलत रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

   लोकभाषा में लोकबिंबों का यह संसार लोकहृदय की जीवंत संवेदना का रहस्य खोल देता है।

टिप्पणी

3. **संगीत, छंद और लय–** कृष्णभक्ति साहित्य में संगीतात्मकता और लयात्मकता प्रधान है। ये कवि काव्यकला के साथ संगीत कला में पारंगत थे। इन कवियों ने कीर्तन संग्रह की भी परंपरा चलाई। अनेक शास्त्रीय राग–रागनियों का निर्माण किया। लय को आधार बनाकर इन कवियों ने अनेक प्रकार के छंदों में कविता लिखी। रसखान ने कवित्त और सवैया छंद में रचना की। रोला, दोहा, चौपाई, सरसी, गीतिका, लावनी आदि का भी प्रयोग किया गया है। इस तरह कृष्ण भक्ति परंपरा गेय छंदों को आधार बनाकर विकसित हुई।

4. **अलंकार विधान–** इन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए किया है। शब्दालंकार और अर्थालंकारों की इनमें बहुलता है। इनका ध्यान मिथ्या आडंबर में नहीं था, न ही चमत्कार– प्रदर्शन इनका उद्देश्य था। उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, वक्रोक्ति, मालोपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार का खूब प्रयोग है। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में नए–नए उपमानों का अभाव नहीं है, अतः इनका अलंकार विधान सजीव और सार्थक है।

- **मूल्यांकन–** इन कवियों की कविता में भक्ति, संगीत, कला और दर्शन का गहन विस्तार है और सामाजिक सांस्कृतिक अनुभवों की एक विशेष सौंदर्य दृष्टि है। राधाकृष्ण की कथाओं में मानव मन की – मूल वृत्तियों–प्रवृत्तियों मानसिक दशाओं और जीवन के कार्य व्यापारों को नया अर्थ मिला है। इन कवियों ने सरस सगुणोपासना और मधुर रस से सिक्त अवतारवाद को जनता के बीच स्थापित किया तथा जनता की निराशा को नष्ट किया।

(ख) रामभक्ति काव्यधारा

सगुण शाखा की रामभक्ति शाखा दूसरी प्रमुख शाखा है। राम के लोककल्याणकारी रूप का चित्रण इन कवियों ने किया है। तुलसीदास इस शाखा के सर्वप्रमुख कवि हैं। रामकथा का प्रारंभिक वर्णन 'बाल्मीकि–रामायण' में मिलता है। रामकथा संबंधी कृतियां जैन काव्यों में भी मिलती हैं जिनमें प्रमुख हैं विमल सूरि कृत 'पउम चरियम', 'जिनसेन' ने इसका 'पद्मपुराण' नाम से अनुवाद किया। रामकाव्य के विकास में पुराणों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेश पर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि "कोऊ नृप होई हमें का हानि" की अवधारणा ही लोकजीवन की धुरी थी। जनता की रुचि मूलतः अध्यात्म और धर्म की ओर थी। राजनीतिक वातावरण उथल–पुथल भरा था। इन परिस्थितियों पर हम पूर्व में विचार कर चुके हैं। रामभक्ति शाखा की परंपरा और विकास पर दृष्टि डालना आवश्यक है–

पुराणों में 'बाल्मीकि रामायण' से ही रामकाव्य परंपरा का प्रारंभ माना जाता है। इस महाकाव्य में वर्णित राम का चरित्र ही परवर्ती कवियों का प्रेरणास्रोत बना। तत्पश्चात 'महाभारत' में आंशिक रूप से राम चरित्र आधार बना। कालिदास कृत 'रघुवंश' कुमारदास कृत 'जानकी हरण', अभिनंद कृत 'रामचरित', क्षेमेंद्र कृत 'रामायण मंजरी', साकल्य मल्ल कृत 'उदारराघव' भी इसी परंपरा की विशिष्ट कृतियां हैं। कई नाटकों में यथा भास कृत 'प्रतिमा' भवभूति कृत 'उत्तररामचरित', राजशेखर कृत 'बाल रामायण', कवि हृदयराम भल्ला कृत हनुमन्नाटक ने राम के चरित्र को अभिव्यक्ति प्रदान की। हन्नुमन्नाटक का दूसरा नाम 'रामगीता' भी प्रसिद्ध है।

टिप्पणी

रामभक्ति काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां

राम काव्यधारा की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं –

1. **रामभक्ति काव्य में समन्वय साधना–** राम काव्यधारा में समन्वय का आदर्श है। तुलसीदास का रामचरितमानस इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। द्वैत और अद्वैत के बीच समन्वय के साथ तुलसी ने अवतारवाद की प्रतिष्ठा करते हुए ब्रह्म को उपनिषदों और वेदों के अनुसार स्वीकार किया है। साथ ही 'सगुनहिं अगुनहिं नहीं कछु भेदा' कहकर सगुण और निर्गुण के समन्वय की चेष्टा की है। भाग्य एवं पुरुषार्थ का समन्वय, शिव और राम का समन्वय, धर्म और मानवता का समन्वय कर श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

2. **दार्शनिकता–** इस धारा के कवियों ने राम के अलौकिक रूप का वर्णन किया। उन्होंने विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म और जीव के बीच अंशी और अंश का संबंध माना है। ब्रह्म के विषय में उनका मत है कि व्यापक विश्वरूप ब्रह्म ही शरीर धारण कर नाना प्रकार की लीलाएं करता है। भक्त भी मोक्ष की कामना न करके सिर्फ ईश्वर की भक्ति चाहता है। माया के दो प्रकार हैं– विद्या और अविद्या। तुलसी के ही विचारों का अनुसरण इन कवियों ने किया है।

3. **राम का लोकनायक रूप में चित्रण–** राम काव्य परंपरा में राम का अंकन प्रमुखतः दो रूपों में किया गया है– लोकरंजक रूप में तथा लोकरक्षक रूप में। लोकरंजक रूप में राम का शृंगारिक अंकन है तथा लोकरक्षक रूप में उनके मर्यादा पुरुष स्वरूप को ही नहीं बल्कि अलौकिक स्वरूप को उभारा गया है। तुलसी के राम शील, शक्ति, सौंदर्य के समन्वित रूप हैं। वे सामाजिक मर्यादा के प्रबल पक्षधर हैं। लोकधर्म उनके व्यक्तित्व में साकार हो उठा है। कोई भी ऐसा सामाजिक आदर्श नहीं जिसका प्रतिनिधित्व राम न करते हों। इसलिए वे सही अर्थों में लोकनायक हैं। इसीलिए रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत करते हुए तुलसी लिखते हैं–

   जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
   सो नृप अवसि नरक अधिकार।।

4. **राम काव्य में भक्ति का स्वरूप–** राम काव्य भारतीय भक्ति आंदोलन की उपलब्धि है। इसने भावात्मक–सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया तथा भक्ति को जन–जन के लिए सुलभ बनाया। भक्ति को ज्ञान और योग मार्ग से श्रेष्ठ घोषित किया। रामभक्त कवियों ने वैधी भक्ति या मर्यादा भक्ति को अपना चरम ध्येय माना। भक्ति का स्वरूप लोकमंगलपरक है।

   प्रीति राम सों, नीतिपथ चलिय, राग रिस जीति।
   तुलसी स्तनत के मते इहै भगति की रीति।। (दोहावली)

इसे व्यापक मानवतावाद का भाव भी कह सकते हैं। दास्य भाव की भक्ति प्रमुख रूप से इन कवियों ने अपनाई है।

टिप्पणी

5. **जीवन दर्शन और मानव मूल्य–** रामभक्त कवियों में तुलसी पहले ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्य में जीवन–दर्शन और मानव मूल्यों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। दास्य भक्ति ही उनका जीवन दर्शन है तथा भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही उन्होंने मानव–मूल्यों का निदर्शन किया है; यथा–

'परहित सरिस धर्म नहीं भाई
परपीड़ा सम नहीं अधिकाई।।

मोहन राकेश ने कहा है– "जीवन के नवनिर्माण के संबंध में उनकी व्याकुलता ने ही उन्हें जीवन के संबंध में चिंतन करने और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले तत्वों की ओर प्रवृत्त किया। उन्होंने शास्त्र को पन्नों से निकालकर जीवन में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया।"

6. **लोकमंगल की साधना–** लोकमंगल को काव्य का उद्देश्य इन कवियों ने नहीं माना, किंतु स्वयं ही यह उनके काव्य में आ गया। तुलसी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। तुलसी ने इसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर राम के चरित्र में उतारा। राम जीवन के संघर्षों ओर प्रयत्नों से सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हैं। तुलसी राम के इसी लोकमंगल की साधना से जुड़े सौंदर्य पर मुग्ध हुए हैं।

7. **राम काव्यधारा का भाव–सौंदर्य–** भाव–सौंदर्य की दृष्टि से राम काव्यधारा का महत्व असंदिग्ध है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के भावों, अनुभूतियों तथा संवेगों को रामभक्त कवियों ने मनोरम रसानुकूल अभिव्यक्ति प्रदान की है। रामभक्ति काव्य की रसिक धारा के कवियों ने भक्ति के साथ–साथ शृंगार को भी ग्रहण किया। यही कारण है कि भाव–क्षेत्र सीमित होते हुए भी इन कवियों को शृंगार एवं भक्ति रस के सुंदर परिपाक का श्रेय दिया जा सकता है। भावों की मर्मस्पर्शिता, रसानुभूमि की तन्मयता– सभी दृष्टियों से संपूर्ण रामकाव्य परंपरा में तुलसी की अद्वितीयता असंदिग्ध है। यही रसानुभूति अन्य रामभक्ति कवियों में भी परिलक्षित होती है।

8. **राम काव्यधारा का अभिव्यंजना सौंदर्य–** अभिव्यंजना सौंदर्य की दृष्टि से संपूर्ण राम काव्य परंपरा में तुलसी का काव्य ही सर्वश्रेष्ठ है। माधुर्योपासक रामभक्त रसिक कवियों ने जहां पद, दोहा, चौपाई आदि छंदों के माध्यम से प्रमुखतः मुक्तक काव्यविधा को अपनाया, वहां तुलसी ने प्रबंध की काव्यविधा को अपनाकर उसे धन्य कर दिया। जहां तक भाषा की बात है, तुलसी ने साहित्यिक अवधी का सुंदर प्रयोग किया है। प्रतीकों की दृष्टि से देखें तो हमें रामभक्ति धारा के कवियों में दार्शनिक प्रतीकों की बहुलता मिलेगी। इन कवियों के काव्य में अलंकार भाव सौंदर्य के पूरक बन कर ही प्रयुक्त हुए हैं। छंदों की दृष्टि से कवियों ने पद, दोहा, चौपाई, छप्पय, कुंडलियां, कवित्त, सवैया आदि छंदों का ही प्रमुखता से प्रयोग किया है। इस प्रकार अभिव्यंजना सौंदर्य की दृष्टि से रामकाव्यधारा का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

रामभक्ति काव्यधारा की प्रमुख रचनाएं एवं रचनाकार

हिंदी की रामकाव्य परंपरा में सर्वप्रथम रामानंद का नाम उल्लेखनीय है। ये संस्कृत के विद्वान थे। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं– 'वैष्णव माताब्द भास्कर' और 'श्रीरामार्जुन पद्धति'। ये

टिप्पणी

भक्ति को ही मुक्ति का एक मात्र साधन मानते हैं। इनकी भक्ति पद्धति का प्रभाव राम–भक्ति परंपरा पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन्होंने 'रामरक्षास्रोत' की भी रचना की थी। कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि इनके शिष्य थे।

राम काव्य के कवियों में अग्रदास का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपनी कृतियों में भक्ति भावना के साथ–साथ कवित्व का भी सुंदर परिचय दिया है। इनकी प्रमुख कृतियां ध्यानमंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना–बावनी तथा पदावली हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिसमें प्रवाह के साथ परिष्कार भी है। इनके द्वारा सुंदर पद–रचना और यथास्थान अलंकारों का प्रयोग किया जाना इनके शास्त्रीय साहित्य ज्ञान को प्रमाणित करता है।

ईश्वरदास की दो कृतियां 'भरत मिलाप' तथा 'अंगद पैंज' रामचरित्र से संबंधित हैं। 'भरत–मिलाप' में राम के वनागमन का समाचार सुनकर भरत के विलाप करने और व्याकुल दशा में राम से मिलने जाने के प्रसंग को काव्य रूप में पद्यबद्ध किया गया है। 'अंगद पैंज' में अंगद द्वारा रावण के दरबार में अपना पैर जमाकर रावण को चुनौती दिए जाने का वर्णन किया गया है। दोनों कृतियों का साहित्यिक महत्व साधारण है किंतु कवि की भक्ति भावना की इन कृतियों में उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

तुलसीदास ने राम के चरित्र को अद्‌भुत गौरव प्रदान किया। उनके द्वारा रचित 13 कृतियों में से 12 कृतियों में राम के चरित्र का वर्णन है। तुलसीदास ने एक ओर जनमानस की आस्था को पुनः पल्लवित किया तो दूसरी ओर राम कथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के विविध आदर्शों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर शृंखलाओं में बंटे हिंदू समाज को अध्यात्मिक, नैतिक व दार्शनिक तौर पर एक कर दिया। व्यक्तिगत साधना के साथ ही लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें विद्यमान है। उन्होंने परस्पर विरोधी विचारधाराओं व पद्धतियों को समन्वित किया। 'रामचरितमानस' को यदि नैतिक आदर्शों का विश्वकोश कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। रामकाव्य परंपरा के संपूर्ण विकास में तुलसी अद्वितीय हैं, इसमें संदेह नहीं।

नाभादास जी अग्रदास जी के शिष्य थे। इनकी रचनाओं में अष्टयाम तथा रामभक्ति विषयक पद उपलब्ध होने के आधार पर इन्हें रामभक्त स्वीकार किया गया है। 'अष्टयाम' शृंगार–भक्ति से ओतप्रोत रचना है जिसमें रसिक भावना का प्रभाव स्पष्ट है।

रामकाव्य परंपरा में केशवदास का भी महत्वपूर्ण स्थान है। केशवदास जी ने कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंहचरित, विज्ञानगीता, रतनबावनी और जहांगीरजसचंद्रिका नामक सात ग्रंथों की रचना की। इनमें से रामचंद्रिका को हिंदी रामकाव्य–परंपरा की एक विशिष्ट कृति माना जाता है। कवि की अलंकारप्रियता एवं शब्द चमत्कार की प्रवृत्ति इस कृति में स्पष्ट परिलक्षित होती है। मार्मिक प्रसंगों का इसमें अभाव है। किंतु वाग्वैदग्ध्यता की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ काव्य रचना है।

नरहरि बारहट ने 'पौरुषेय रामायण' की रचना की। इसकी रचना शैली रासो ग्रंथों जैसी है। इस कृति का आधार 'बाल्मीकि रामायण' है। प्रमुखतः दोहा–चौपाई पद्धति का अनुसरण करते हुए भी कवि ने कवित्त, सवैया, छप्पय, पद्धरि, भुजंग प्रयात आदि अनेक छंद अपनाए हैं। ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें युगीन परिवेश की छाप स्पष्ट झलकती है।

2.4.3 भक्तियेतर काव्य

वीरकाव्य

टिप्पणी

वीरकाव्य प्रायः राजाश्रित कवियों द्वारा लिखे गए जिनमें कवियों द्वारा अपने राजा के यश का गुणगान, रण–कौशल, दान, युद्ध–सज्जा, युद्धों की भयानकता और शौर्य संबंधी स्तुति की गई। कवि श्रीधर ने अपनी रचना 'रणमल्ल छंद' में ईडर के राजा रणमल्ल राठौर की वीरता का वर्णन किया है। श्रीधर ने इस कृति की रचना 1400 ई. के लगभग की थी। डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा संपादित 'रास और रासान्वयी काव्य' में इसके 70 छंद उपलब्ध हैं। 'विजयपाल रासो' के रचनाकार नल्लसिंह ने अपनी इस रचना में विजयगढ़ के राजा विजयपाल और पंग राजा के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया है। इसके केवल 42 छंद ही मिले हैं। इसका रचनाकाल मिश्र बंधुओं के अनुसार 1298 ई. है जबकि परवर्ती विद्वानों के अनुसार इसकी रचना 1543 ई. में हुई। दुरसाजी आढ़ा जी की सुप्रसिद्ध रचना है 'विरुद छिहत्तरी', जिसमें उन्होंने महाराणा प्रताप का यशोगान किया है। दयाराम अथवा दयाल कवि ने 1618 ई. के लगभग 'राणा रासो' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें 875 छंद हैं। इसमें उसने सिसोदिया वंश के राजाओं; यथा कुम्भा, उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह के युद्ध कौशल और वीरता का वर्णन किया है। 'रतन रासो' की रचना कुम्भकर्ण द्वारा लगभग 1618–1624 ई. के मध्य की गई जिसमें कवि ने रतलाम के महाराज रतनसिंह का यशोगान किया है। 'क्याम खां रासो' की रचना 1634 ई. में की गई। इसके रचनाकार न्यामत खां जान हैं। इस ग्रंथ में उन्होंने क्याम खां चौहान और उनके वंशजों का वर्णन किया है।

नीति काव्य

पद्मनाभ कवि ने 1486 ई. में 'डूंगर–बावनी' नामक रचना की जिसमें 53 छप्पय हैं। इन छप्पयों में कवि ने सात व्यसनों; यथा– जुआ, मांस खाना, शराब पीना, वेश्यागमन, चोरी, आखेट और परनारी–रमण के निषेध की बात की है और कर्मफल, दया, दान, नम्रता आदि में ही जीवन को सफल माना है। 'कृपण चरित्र' (इसमें एक कृपण सेठ और उसकी उदार पत्नी की कथा है) और 'पंचेन्द्रीवेलि' (इसमें इंद्रिय–निग्रह संबंधी छप्पय हैं) के रचनाकार जैन कवि ठाकुर हैं। इन दोनों कृतियों की हस्तलिखित प्रतियां मुंबई के दिगंबर मंदिर और जयपुर के वधीचंद मंदिर में सुरक्षित हैं। 'पंचेंद्रीवेलि' में गज, मीन, पतंग, मृग, भ्रमर आदि के माध्यम से स्पर्श, रस, रूप, गंध आदि से बचने की बात की गई है। छीहल कवि ने 'छीहल बावनी' की रचना 1527 ई. में की। इसमें 53 छप्पय हैं। उदैराज ने 'उदैराज को दूहा' की रचना 1603 ई. में की। उदैराज बीकानेर नरेश महाराज राजसिंह के राजकवि थे। इसमें इन्होंने नीति संबंधी विषयों का वर्णन किया है। जैन कवि बनारसी दास की प्रसिद्ध रचनाएं हैं–'नवरस पद्यावलि', 'समयसार नाटक', 'बनारसीविलास', 'अर्द्ध कथानक' और 'भाषा सूक्तिमुक्तावली' जिनमें इन्होंने सत्य, शील, नम्रता, अहिंसा, निर्लोभ आदि गुणों के निर्वाह और कंचन व कामिनी के त्याग पर बल दिया है। 'शालिभद्र चौपाई', 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला', 'शीलबत्तीसी', 'गजसुकमाल चौपाई', 'कर्मबत्तीसी' और 'बालवबोध' जैन नीतिकार राजसमुद्र की रचनाएं हैं। इन रचनाओं का मुख्य विषय नीति है। कुशलबीर कल्याणलाभ के शिष्य थे। इन्होंने 1637 ई. से 1672 ई. तक कई नीति ग्रंथों की रचना की। भोज चौपाई, कर्म चौपाई, वर्णन संपुट, उद्दिम–कर्म–संवाद और सीलवती रास इनके मुख्य नीति ग्रंथ हैं।

दरबारी काव्य

टिप्पणी

चतुर्भुजदास सम्राट अकबर के दरबार के सम्मानित विद्वान थे। 'द्वादश यश' इनकी प्रसिद्ध रचना है। आसकरण नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे। इनके द्वारा रचित पद 'कीर्तन संग्रह' और 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' में मिलते हैं। कवि पृथ्वीराज संगीत, दर्शन और ज्योतिष के ज्ञाता थे। वे एक अच्छे कवि भी थे। इन्होंने 'वेलि क्रिसन रुकमणी री पृथीराज कथी', 'दशरथ रावउत', 'वसुदेव रावउत', 'गंगालहरी' और 'श्यामलता' की रचना की। ये देश भक्त थे। देशभक्ति के कारण इनके मन में महाराणा प्रताप के प्रति अपार श्रद्धा थी। इन्होंने अकबर के दरबार में रहकर राजभक्ति को भी निभाया। कवि मनोहर अपनी काव्य रचना संस्कृत, हिंदी और फारसी में करते थे। इनकी रचना 'शतप्रश्नोत्तरी' उपलब्ध नहीं है। अकबर के राजकवि नरहरि ने रुक्मिणी मंगल, कवित्त–संग्रह और छप्पय नीति नामक ग्रंथों की रचना की। नीति संबंधी तथ्यों का प्रतिपादन इनकी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। बीरबल जो कि अकबर के दरबार में कवि थे उनके लगभग दो सौ स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं। इन पदों की भाषा सरस और अनुप्रास युक्त है। इन पदों में शृंगार प्रधान कृष्ण लीलाओं, भक्ति और नीति का समावेश है। गंग कवि का पूरा नाम गंगा प्रसाद था। गंग पदावली, गंग पच्चीसी और गंग रत्नावली इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। रहीम अकबर के दरबार के कवि थे। इनके नीति संबंधी दोहे प्रसिद्ध हैं जिनमें इन्होंने जीवन की विविध अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण किया है। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं–दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका भेद और मदनाष्टक। इन्होंने नगरशोभा में विभिन्न जातियों की स्त्रियों, बरवै नायिकाभेद में काव्यशास्त्र में प्राप्त अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। मदनाष्टक में कृष्ण लीला के पद हैं। इन्होंने 'खेटकौतुक जातकम्' नामक एक ज्योतिष ग्रंथ की भी रचना की।

रीति काव्य

कृपाराम हिंदी रीति परंपरा के आदि आचार्यों में से एक हैं। 1541 ई. में इन्होंने 'हिततरंगिणी' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में 400 छंद हैं। इसमें लक्षण और उदाहरण सुगठित रूप में दोहा आदि छोटे छंदों में दिए गए हैं जिससे विषय सहज ही स्पष्ट होता जाता है। कृपाराम जी रीति–निरूपण के समान ही कविकर्म में भी सफल रहे हैं। सूरदास जी भी इस काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। इनकी 'सूरसागर' नामक रचना में ऐसा जान पड़ता है कि इस ग्रंथ के अनेक पद नायिकाभेद और शृंगार रस की सामग्री के शास्त्रीय परिवेश में लिखे गए हैं। इनकी दूसरी रचना 'साहित्यलहरी' के पद नायिका भेद और शृंगार रस जैसे विषयों के अलावा विविध अलंकारों के उदाहरण स्वरूप हैं। नंददास जी ने 1550 ई. के आसपास नीति निरूपण संबंधी एक मात्र ग्रंथ 'रसमंजरी' की रचना की जिसमें इन्होंने नायक–नायिकाओं के हाव–भाव, ईला और रति भाव का परिचय देने के लिए दोहा–चौपाई शैली को अपनाया है। नंददास जी ने विभिन्न नायिकाओं के स्वभाव, गुण, चेष्टा आदि के द्वारा उनके स्वरूप को सहज बोधगम्य बना दिया है। केशवदास ने रसिकप्रिया, कविप्रिया, रतन बावनी, रामचंद्रिका, वीरसिंहदेवचरित, विज्ञानगीता, नखशिख, जहांगीर जसचंद्रिका और छंदमाला नामक ग्रंथों की रचना की। रसिकप्रिया, कविप्रिया और छंदमाला– ये तीनों रचनाएं रीति ग्रंथ हैं। सुंदर कविराय की रचना 'सुंदर शृंगार' है जो नायिका भेद और शृंगार रस निरूपण संबंधी प्रसिद्ध ग्रंथ है। रचनाकार द्वारा सुबोध लक्षणों और तद्नुरूप उदाहरणों के प्रयोग के कारण इसे एक अत्यंत उपयोगी ग्रंथ कहा जा सकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. भक्तिकाल की काव्यधारा को किन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है?
10. किन कवियों का मत है कि गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं है?
11. सगुण भक्ति काव्यधारा को किन दो भागों में विभाजित किया गया है?
12. तुलसीदास की कितनी कृतियों में राम के चरित्र का वर्णन है?
13. 'विजयपाल रासो' के रचनाकार कौन हैं?

टिप्पणी

2.5 भक्तिकाल का गद्य साहित्य

भक्तिकाल में ललित गद्य परिमाण की दृष्टि से विरल है। अधिकतर सानुप्रास (तुकमय) गद्य लिखा गया है। वह भी स्वतंत्र (मौलिक) रूप में कम है, टीका–टिप्पणी और अनुवाद के रूप में अधिक है। भक्तिकाल में अवधी के अतिरिक्त शेष सभी विभाषाओं में गद्य–निर्माण हुआ है। भक्तिकाल में धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक विषयक ग्रंथों के अलावा ज्योतिष, व्याकरण, गणित, भूगोल, शकुन और चिकित्सा आदि विषयों पर भी ग्रंथ लिखे गए हैं। भक्तिकाल में चार प्रकार का गद्य लिखा गया; यथा–मौलिक, टीकात्मक, अनूदित और टिप्पणीपरक। भक्तिकाल में विभिन्न भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद भी ब्रजभाषा, राजस्थानी और दक्खिनी में किया गया।

1. **ब्रजभाषा गद्य–** ब्रजभाषा साहित्य चार वर्गों में विभक्त टिप्पणीपरक गद्य है। ब्रजभाषा के प्रमुख रूप हैं– कथा, प्रश्नोत्तर, वचनिका, वचनामृत, पत्र, वार्ता, वर्णन एवं जीवनी। इस परंपरा के ग्रंथ 'गोरखसार', 'शिष्ट पुराण', 'गोरक्षोपनिषद्' थे। ये ग्रंथ तेरहवीं– चौदहवीं शती के नहीं, काफी परवर्ती हैं। ब्रजभाषा गद्य की अन्य रचनाएं 'यमुनाष्टक', 'नवरत्न सटीक', 'नासिकेतोपुराणभाषा (नंददास)', 'षटऋतु वार्ता (हरिराय)' भी अठारहवीं शती की हैं। धुव्रदास कृत 'सिद्धांत–विचार' नाभादास कृत 'अष्टयाम', बैकुंठमणि शुक्ल कृत 'वैसाख महातम', 'अगहन महातम' गोकुलनाथ के शिष्यों द्वारा रचित 'वचनामृत' आदि प्रमुख हैं। वार्ता–साहित्य में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' प्रमुख हैं। प्रमुख गद्य टीकाएं हैं– 'भुवनदीपिका टीका', चतुरदास कृत 'भागवत– एकादशस्कंध टीका' आदि।
2. **खड़ी बोली गद्य–** खड़ी बोली गद्य के प्रमाण सत्रहवीं शताब्दी से प्राप्त होते हैं। कवि गंग की 'चंद छंद बरन की महिमा' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। जटमल कृत 'गोरा बादल की कथा' को इस संदर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख योग्य माना जा सकता है। रीतिकाल से पूर्व चार अन्य प्रमुख रचनाएं हैं– 'कुतुबशत', 'भोगलु पुरान', 'गेणेस गोसठ' तथा 'पोथी सचुषंडु' आदि। कुतुबशत, भोगलु पुरान और गेणेस गोसठ–इन तीनों रचनाओं के संबंध में निश्चित रूप से यह कहना कि ये कब लिखी गईं संभव नहीं है क्योंकि इस बारे में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जिस रूप में ये उपलब्ध हैं उसको देखते हुए ऐसा लगता है कि ये रचनाएं 17वीं शताब्दी से पूर्व की हैं। 'कुतुबशत' नामक रचना में प्रयोग की गई खड़ी बोली में राजस्थानी और ब्रजभाषा का पुट साफ झलकता है। नवबोली छंद, सकुनावली, गोरक्षतम टिप्पण, महादेव गोरखगुष्टि और नवंभाषा इन पांच रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है लेकिन इसमें ब्रजभाषा और राजस्थानी अथवा पंजाबी या पूर्वी हिंदी का मिश्रण भी है।
3. **दक्खिनी गद्य–** दक्खिनी गद्य अधिकतर सूफी और इस्लामी संतों द्वारा लिखा गया है। दक्खिनी की प्राचीनतम रचना गेसूदराज कृत 'मेराजुल आशिकीन' है, किंतु इसकी भाषा परवर्ती प्रतीत होती है। इनकी अन्य रचनाएं हैं– 'हिदायतनामा', 'शिकारनामा' और 'तर्जुमावजूदुल आरिफीन। इनके अतिरिक्त भी दक्खिनी गद्य की कुछ अन्य रचनाएं हैं; यथा–'कल्मितुल हकायक' जिसके रचनाकार बुरहानुद्दीन जानम हैं। यह प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है। यह सूफी सिद्धांत विषयक रचना है। मौला अब्दुल्ला द्वारा लिखित 'अहकामुस्सलात' है जो इस्लामिक विषयक है। मुल्ला वजही द्वारा लिखित 'सबरस' नामक रचना अन्योक्ति पद्धति की सूफी प्रेमकथा है। अबदुस्समद द्वारा रचित 'तफ़सीर बहावी' नामक रचना है जिसमें 'कुरान' की व्याख्या की गई है।
4. **राजस्थानी गद्य–** राजस्थानी गद्य के निर्माण में जैन लेखकों का विशेष योग रहा है। राजस्थानी गद्य की प्राचीनतम रचनाएं हैं–'आराधना', 'जगत सुंदरी प्रयोगमाला', 'अतिचार', 'नवकार व्याख्यान टीका', 'सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन' और ये सभी रचनाएं जैन धर्म विषयक हैं। 'बालशिक्षाटीका' संस्कृत व्याकरण की एक टीका है। भक्तिकालीन गद्य रचनाएं हैं– 'तत्वविचार प्रकरण', 'षडावश्यक बालावबोध' (इसमें जैन धर्म संबंधी शिक्षात्मक कथाएं हैं) और 'तपोगच्छ गुर्वावली' (इसमें तपोगच्छीय जैन आचार्यों की नामावली और उनका वर्णन है) जैन धर्म संबंधी रचनाएं हैं। 'पृथ्वीचंद्र चरित्र' (जिसमें राजा पृथ्वीचंद्र के चरित्र, रत्नमंजरी से उसके प्रेम, राजसभा और सेना का वर्णन है), 'धनपाल कथा', 'अचलदास खीची री वचनिका' और 'अंजनासुंदरी कथा' ललित गद्य की कथात्मक–वर्णात्मक रचनाएं हैं। ये तुकमय, यत्र–तत्र काव्यात्मक और गद्य व्यवहृत है। हीरनंद सूरी द्वारा रचित 'वस्तुपाल तेजपाल रास', कमलमयंक द्वारा रचित 'सिद्धांतसारोद्धार', सोमप्रभ सूरी की 'औक्तिक', मेरुसुंदरोपाध्याय की 'प्रश्नोत्तर ग्रंथ' हैं। 'वस्तुपाल तेजपाल रास' एक गद्य–पद्यमय रचना है, 'सिद्धांतसारोद्धार' में मूर्ति पूजा का समर्थन किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाएं भी हैं; यथा–श्रावकव्रतादि अतिचार', 'कालिकाचार्य कथा', 'आदिनाथ चरित्र', 'गणितसार', 'मुग्धावबोध मौक्तिक टीका', 'कोकशास्त्र बालावबोध', तिलक पंडित की 'उक्तिसंग्रह भाष्य'। शंभू शास्त्री की 'गणितपंचविंशतिका बालावबोध' आदि। इनके अतिरिक्त राजस्थानी के कुछ आज्ञा–पत्र, सनद–पत्र और ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए हैं।

वस्तुतः भक्तिकाल में ललित गद्य बहुत कम परिमाण में रचा गया। साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए पद्य ही प्रमुख माध्यम रहा। गद्य का उपयोग अधिकतर सिद्धांत–निरूपण, धार्मिक–दार्शनिक चर्चा, गूढ़ विषयों के स्पष्टीकरण और व्याख्या के लिए होता था।

2.6 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण

भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियों का साहित्य पर अपरिहार्य प्रभाव पड़ा और तत्कालीन समाज में चेतना जाग्रत करने का कार्य भी साहित्य ने किया। यहां यह भी विचारणीय है कि भक्ति की धारा दक्षिण से उत्तर की ओर आई। विदेशी आक्रमण और नये शासक वंश की स्थापना से परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। भारतीय जनता शासक वर्ग से असंतुष्ट थी। तुलसीदास जी कहते हैं–

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।'

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. ब्रजभाषा साहित्य कितने वर्गों में विभक्त टिप्पणीपरक गद्य है?
15. खड़ी बोली गद्य के प्रमाण कौन–सी शताब्दी में प्राप्त होते हैं?
16. मौला अब्दुल्ला द्वारा लिखित इस्लामिक विषयक रचना का क्या नाम है?
17. राजस्थानी गद्य निर्माण में किन लेखकों का विशेष योग रहा है?

टिप्पणी

इस्लाम धर्मावलंबी शासकों के कारण सामंतों की शक्ति घटी। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप भक्ति साहित्य के प्रारंभ और विकास के लिए उपयुक्त आधारभूमि मिली। भक्तिकालीन समाज की दशा शोचनीय थी। हिंदू और मुसलमान दो वर्ग बन गए थे। दोनों में परस्पर वैमनस्य था। ऊंच–नीच की भावना तथा कर्मकांड की अधिकता के कारण जनता में अशांति थी। ऐसे समय में लोगों को ऐसी राह की तलाश थी जिस पर चलकर वे इन बुराइयों से मुक्त हो सकें। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन की लहर चली। भक्ति की भावधारा का विकास हुआ जिसका मूलमंत्र था "जातिपांती पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"

इस भक्ति में हृदय पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। बाह्य आचार–विचार को नकारा गया, सामाजिक व्यवस्थाओं ने भक्ति साहित्य के पनपने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जितने भी भक्त कवि हुए उन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की बातें कहीं तथा लोगों को साधारण जीवन–यापन तथा हृदय की शुद्धता का मंत्र पढ़ाया। आपसी सद्भाव बढ़ाने के लिए भेदभाव पर चोट की गई। कवियों ने जनता में चेतना जगाने का महान कार्य किया। निर्गुणोपासक कवियों ने इस्लाम की तरह एकेश्वरवाद पर बल दिया। उनका मत है कि ईश्वर की भक्ति से ही माया से मुक्ति संभव है। विदेश से आई धार्मिक विचारधारा ने भी भक्ति साहित्य को प्रभावित किया। सूफी संप्रदाय ने प्रेम को आधार बनाया। सूफी कवियों ने भारत में प्रचलित लौकिक कथाओं को आधार बनाकर भारतीय सांस्कृतिक जागरण में अपना योगदान किया।

नारी जागरण के विषय में हालांकि समकालीन कवियों ने विशेष कार्य नहीं किया उनके विचार तत्कालीन समय और समाज के अनुरूप ही थे। उन्होंने नारी को साधना की बाधा के रूप में स्वीकार किया। परंतु महिलाएं आलवार संतों में सम्मिलित थीं ऐसी परिस्थितियों में भी नारी चेतना जगाने का कार्य मीराबाई ने किया। मीरा की रचनाएं जहां प्रेम भक्ति और माधुर्य से पूर्ण प्रेम की पीड़ा को प्रकट करती हैं वहीं विद्रोह की भावना को भी दर्शाती हैं। मीरा अपने कुल और वंश की मर्यादा का परित्याग कर श्रीकृष्ण की दीवानी हो चली थी। 'पग घुंघरू बांधि मीरा नाचि रे'– मीरा की ये बातें प्रतिष्ठित मेवाड़ राजवंश की मर्यादा के सर्वथा प्रतिकूल थी, परंतु सामाजिक बंधनों की अवहेलना करने का मीरा का यह साहस तत्कालीन नारी को समाज से टक्कर लेने की प्रेरणा अवश्य देता है। मीराबाई कह उठती है–

"तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन हाइ मीरां चली।"

भक्तिकाल के कवि जनता से जुड़े थे। उन्होंने राजा के लिए नहीं जनता के लिए काव्य–रचना की। रावण ने अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग गलत दिशा में किया तो उसे अपने समस्त परिवार एवं बंधु–बांधवों को खोना पड़ा, ऐसे राजाओं का हश्र ऐसे ही होता है। तुलसी के शब्दों में–

राज करत बिनु काजहीं करहिं कुचालि कुसाज।
तुलसी के दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज।। दोहावली

तत्कालीन समाज से जुड़े होने के कारण उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा समाजगत अनुभवों का सुंदर चित्रण किया।

टिप्पणी

निर्गुण भक्तिधारा के कवियों, चाहे वे संत काव्यधारा के हों या सूफी काव्यधारा के, दोनों ने ही अपने–अपने ढंग से लोकमंगल की कामनायुक्त काव्य की रचना की। सामाजिक गतिशीलता के लिए कबीर आत्मसंघर्ष को आवश्यक मानते हैं और यह संघर्ष बिना पुरुषार्थ के कुछ नहीं प्राप्त कर सकता–

"मन रे जागत रहियो भाई,
गफिल होइ खस्तु मत खोई,
चोर मुसै घर जाई।।"

कबीर के समय मुस्लिम शासन काफी दृढ़ता के साथ भारत में पैर फैला चुका था और तलवार के बल पर अपने धर्म का प्रचार कर रहा था। दूसरी तरफ हिंदुओं का उच्च सत्ताधारी वर्ग एकजुट होकर इस्लाम का मुकाबला करने का प्रयास कर रहा था। रामानंद के शिष्य कबीर ने जातिगत, वंशगत और धर्मगत परंपरा का विरोध कर सबको खरी खोटी सुनाई और सचेत किया कि धार्मिक आडंबर से किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। वे कहते हैं–

"अरे इन दोउन राह न पाई
हिन्दुन की हिन्दुआइ देखी तुरकन की तुरकाई।।"

भक्तिकाल में गुरुनानक देव ने भी लोक जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने देश–विदेश का भ्रमण कर अनेक साधु संतों के साथ संगति की थी। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, ऊंच–नीच और वर्णभेद का विरोध करते हुए समाज को जगाने का कार्य किया। उनकी वाणी में अद्भुत प्रेरणादायिनी शक्ति थी। इन्होंने बहुत ही सरलता के साथ मनुष्य को उसके जीवन का महत्व समझाया–

रैन गंवाई सोइ कै, दिवसु गंवाइया खाय।
हीरे जैसा जन्मु है, कउड़ी बदले जाय।।

तुलसी अपने 'रामचरितमानस' में समाज के आदर्श व व्यावहारिक आचरण की पहचान कराने वाली परिस्थितियों का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिए चारी।"

भक्तिकालीन साहित्य में लोक जागरण के स्वर पूर्ण रूप से सुनाई देते हैं। डॉ. रामनिवास शर्मा ने भी भक्तिकालीन साहित्य को लोक जागरण का साहित्य कहा है।

भक्तिकालीन कवियों ने इस बात को महसूस किया कि लोग अपने आचरण के दोषों को न देखते हुए दूसरे के जन्मगत या वर्णगत दोषों की चर्चा करते हैं, जबकि आचरण की श्रेष्ठता से ही उत्तम समाज का निर्माण संभव है। कबीर कहते हैं कि पंचतत्व से युक्त शरीर को बनाने वाला एक ही ब्रह्मा रूपी कुम्हार है, क्योंकि सबके जन्म की प्रक्रिया समान है–

"जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया।
आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया।।

टिप्पणी

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन कवियों ने अपनी भक्तिपरक रचनाओं के माध्यम से न केवल समृद्ध साहित्य की रचना की बल्कि एक सजग समाज सुधारक के रूप में लोक जागरण का कार्य भी किया।

भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का लोक जागरण काल भी कहा जाता है क्योंकि लोक जागरण के लिए तत्कालीन कवियों ने बिना किसी लाग–लपेट के सरल भाषा में अपनी कविताओं से जनता को उद्‌बोधित किया। सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास, जायसी, नंददास, मीराबाई जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार इसी काल में हुए। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में धर्म, दर्शन, नीति, भक्ति एवं चरित्र–निर्माण की व्याख्या की। अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि दार्शनिक मत भी इसी काल ने दिए। हिंदू–मुसलिम एक्य स्थापना एवं समन्वयवाद इसी काल की देन थी। वल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय का प्रवर्तन भी इसी काल में हुआ। इन सभी ने मिलकर तत्कालीन समाज के जन जागरण का कार्य किया।

2.7 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक

कोई भी साहित्य समाज की परिस्थितियों से निर्मित होता है। कवि या साहित्यकार को प्रेरक बिंदु प्रदान करने और उनकी अभिव्यक्ति के लिए परिवेश प्रदान करने का श्रेय परिस्थितियों को ही जाता है। रीतिकालीन समाज के परिवेश ने भी साहित्य को दिशा प्रदान की। इस युग की घटनाओं ने साहित्य को आकार दिया। आश्रयदाता राजाओं की रुचियां साहित्यकार को एक खास तरह की मानसिकता दे रही थीं। कवि ने सामाजिक अनुभूति को ही साहित्यिक अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। जनसामान्य की स्थितियों तथा काव्य एवं कला के स्वरूप को राजाओं की चितवृत्ति के अनुसार ढलना पड़ा। युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां इन्हीं चितवृत्तियों तथा मनोवृत्तियों से प्रभावित हुईं और फिर साहित्य तथा साहित्यकार को प्रेरित–प्रभावित किया। अतः रीतिकालीन साहित्य या साहित्यकारों पर लगने वाले आक्षेपों का उत्तर युगीन परिस्थितियां ही बनती हैं। यही साहित्य की दिशा निर्धारित कर कवि या साहित्यकार का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यहां हम रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उस समय की परिस्थितियों के बारे में जानेंगे–

'अपनी प्रगति जांचिए'

18. भक्तिकाल में इस्लाम धर्मावलंबी शासकों के कारण किनकी शक्ति कम हुई थी?
19. भक्तिकालीन समाज की दशा कैसी थी?
20. निर्गुणोपासक कवियों ने इस्लाम की तरह किस वाद पर बल दिया था?
21. कबीर के गुरु कौन थे?

1. **राजनैतिक परिस्थितियां–** यह युग अशक्ति और अव्यवस्था का युग था। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों के उदय एवं अंग्रेजों के आगमन के कारण इस युग में हिंदी भाषी प्रदेशों में अशक्ति और अव्यवस्था का वातावरण बना रहा। यह काल आक्षेपों और आरोपों का युग रहा।

   भक्तिकालीन साहित्य के उत्कर्ष के समय ही रीतिकाल की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। यह काल सुख–समृद्धि का काल था। यह अकबर का काल था, तत्पश्चात जहांगीर का शासनकाल आया। इस समय तक राजनीतिक विघटन प्रारंभ हो चुका

टिप्पणी

था। राजनीतिक षड्‌यंत्रों, भयावह युद्धों एवं गृहकलह के कारण घटित होने वाली रक्तरंजित घटनाओं ने यहां के राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता उत्पन्न कर दी। अतः राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव और चरमोत्कर्ष तथा फिर उत्तरोत्तर ह्रास, पतन और निराशा का युग कहा जा सकता है।

शाहजहां के शासनकाल में वास्तुकला अपने चरम पर थी, किंतु शासन का पतन प्रारंभ हो गया। तत्पश्चात औरंगजेब के शासनकाल में धर्मांधता एवं कट्‌टरता के साथ–साथ राज्य विस्तार की लिप्सा ने पहले तो राजनीतिक दीवारों में दरार डाली और फिर यही खाई धीरे–धीरे बढ़ती चली गई। इसी अत्याचार के विद्रोह स्वरूप हिंदू–मुस्लिम नरेश सजग हुए। अस्तित्व रक्षा के लिए विद्रोह करती दक्षिण की मराठा–शक्ति तथा पंजाब की सिख–शक्ति का उदय हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ। कालांतर में दैवी प्रकोप या संघर्ष के कारण कोई भी शासक दीर्घकाल तक सत्तासीन नहीं रह सका। परिणामतः विलास भोग बढ़ता गया तथा अव्यवस्था फैल गई। केवल मुगल राजनीति ही नहीं, मराठों और सिक्खों की राजनीति के उत्थान–पतन भी इस युग को झेलने पड़े। भारतीयों के बंटे होने के कारण रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में आते–आते अंग्रेज़ों की सत्ता का निरंतर विकास होता गया। परिणामतः मराठों और सिक्खों की पराजय के कारण लोगों में जीवन के प्रति अनास्था जगी तो विलास के प्रति आस्था प्रबल होने लगी। राजाओं के राजदरबार और नवाबों के महल विलासिता के अखाड़े बनकर रह गए। अस्थिरता से उदासीनता बढ़ी और असुरक्षा की भावना ने विलासिता को विस्तार दिया। मुगल दरबारों की शान तथा विलासिता की भावना ने युगीन वातावरण को इस रूप में उद्दीप्त कर दिया कि जन–जन की रुचि तथा चित्तवृत्ति शृंगारी होती चली गई। साहित्य तथा साहित्यकार इसी वातावरण तथा राजनीति का लाभ उठाने के लिए दरबारी बनने लगे। सन् 1857 की देशव्यापी राज्यक्रांति ने अंतिम निष्फल प्रयास कर विलासी मुगलों को प्रतिष्ठा दिलानी चाही, परंतु यह असफल रहा। स्पष्ट है कि ऐसी राजनीतिक चालों और गिरते हुए मूल्यों के बीच रचा गया रीतिकालीन साहित्य युग के राजाओं, नवाबों और आश्रयदाताओं के दरबार की नुमाइश बनकर रह गया।

2. **सांस्कृतिक परिस्थितियां–** तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक अवस्था के समान इस युग में देश की धार्मिक–सांस्कृतिक स्थिति भी अत्यंत शोचनीय थी। अकबर, जहांगीर और शाहजहां की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के कारण हिंदू और इस्लाम संस्कृतियों के निकट आने का जो उपक्रम हुआ था, वह औरंगजेब की कट्‌टरता के कारण एक प्रकार से समाप्त हो गया था। भक्तिकाल में काव्य की जो चार धाराएं प्रारंभ हुई थीं वे किसी न किसी रूप में इस युग में भी वर्तमान थीं किंतु उनकी आध्यात्मिक गरिमा संत और भक्त कवियों की अपने उपास्य के प्रति अनन्य निष्ठा, स्वान्तः सुखाय काव्य–रचना का संकल्प, राजकीय वैभव की उपेक्षा और लोकमंगल की भावना धीरे–धीरे समाप्त हो रही थी। संत कवियों की बाह्याचार विरोधमूलक वृत्ति और सूफियों के प्रेम की पीर का कुछ प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ा था। इस युग में भी पुरानी परंपरा के सूफी तथा

टिप्पणी

संत विद्यमान थे, पर किसी में भी कबीर, नानक अथवा जायसी जैसा व्यक्तित्व और प्रतिभा नहीं थी, जो जन मानस को प्रभावित कर सकती। ये लोग पूर्ववर्तियों की वाणी के मात्र प्रचारक थे। इस युग में रामकाव्य–धारा की पूर्व परंपरा एक प्रकार से अवरुद्ध सी हो गई थी और उसमें जो रसिक संप्रदाय पनप रहा था, उसमें घोर शृंगारिकता आ गई थी। सूरदास एवं अष्टछाप के अन्य कवियों ने राधाकृष्ण के प्रेम का खुलकर वर्णन किया था। यद्यपि उसके मूल में आध्यात्मिक चेतना प्रखर रूप से विद्यमान थी, किंतु रीतिकाल तक आते– आते भक्ति और अध्यात्म का आवरण क्षीण होता गया और लौकिक शृंगार प्रबल होता गया। रीतिकाल के लगभग सभी कवियों ने प्रेम–वर्णन में सम्मान के साथ राधाकृष्ण का नाम लिया किंतु शृंगार का अतिरंजनात्मक वर्णन किया।

3. **साहित्यिक परिस्थितियां–** साहित्य और कला की दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। इस काल के कवि और कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति थे तथापि उन्हें अपने आश्रयदाता मुगल सम्राटों या देशी नवाबों से इतना सम्मान मिलता था कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गिनती की जाती थी। मुगल दरबार की भाषा फारसी थी। फारसी शैली में मजनूं आदि की रोमानी कहानियों का प्रभाव भी रीतिकालीन हिंदी साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। शाहजहां आत्म–प्रशंसा सुनने का अत्यंत प्रेमी था। ब्रजभाषा जन–जीवन के निकट होते हुए भी फारसी के प्रभाव से न बच सकी। विलासी आश्रयदाताओं की वासना को गुदगुदाने के लिए लिखी गई शृंगारिक रचनाओं पर भी इस शैली का ऐसा ही प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। परंतु संयोग से ये कवि चमत्कार के उपकरणों के लिए फारसी की ओर उन्मुख न होकर संस्कृत की ओर उन्मुख हुए। इतना ही नहीं इन लोगों ने इन उपकरणों का निरूपण भी इतने मनोयोगपूर्वक किया कि आज पद्धति अथवा रीति के कारण ही इस युग को रीतिकाल की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इधर जन समुदाय के ऐसे कवि भी विद्यमान थे, जो स्वतंत्र रूप से काव्य की रचना कर रहे थे।

प्रदर्शन प्रधान रीतिकालीन चित्रकला में नायक–नायिकाओं की बंधी–बंधाई प्रतिकृतियां तैयार होती रहीं। उस समय की चित्रकला में नायक–नायिकाओं के रूढ़िबद्ध चित्र, पौराणिक कथाओं पर आधारित चित्र तथा राग–रागनियों के प्रतीक चित्रों का बाहुल्य है।

काव्य और चित्रकला के अतिरिक्त इस युग में स्थापत्य कला और संगीत कला का भी विशिष्ट स्थान रहा। मुगल सम्राट शाहजहां को यद्यपि संगीत का अच्छा ज्ञान था तथापि उसकी रुचि स्थापत्य कला में अधिक रही। शाहजहां ने जितनी इमारतें बनवाईं, उन सबमें सूक्ष्म सौंदर्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। आगरा का 'ताज' और दिल्ली का 'दीवाने खास' इसके सशक्त उदाहरण हैं। इस काल में कवियों और कलाकारों को राजाश्रयों में यथोचित सम्मान प्राप्त होने के कारण साहित्य और कला की स्थिति कुल मिलाकर अच्छी रही। किंतु अंलकारप्रिय विलासी आश्रयदाताओं की अभिरुचि से अत्यधिक प्रभावित रहने के कारण इनमें से किसी का भी क्षेत्र गुण की दृष्टि से विशद् न हो सका।

टिप्पणी

हिंदी रीतिकाल को मानव–मूल्यों के मापदंड पर पतनोन्मुख ही कहा जाएगा क्योंकि प्राकृतिक प्रतिभा को कुंठित करके आरोपित मूल्यों को कोई भी प्रबुद्ध आलोचक उचित नहीं कह सकता। इसीलिए रीतिकालीन हिंदी साहित्य में जो शृंगार एवं अलंकरण की प्रवृत्ति देखी जाती है वह प्रदर्शन की भावना ही है।

2.8 रीतिकाल का अभिप्राय

'रीति' का सामान्य अर्थ 'विधि', 'प्रणाली' या 'परिपाटी' होता है, किंतु साहित्यशास्त्र में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' की घोषणा करते हुए इसे एक विशेष रचनापद्धति से संबद्ध किया तथा इसका लक्ष्य काव्य में सौंदर्य की उत्पत्ति करना माना। 'रीति' को काव्य की आत्मा स्वीकार कर लेने की स्थिति में उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, उसकी परिधि में भावपक्ष एवं कलापक्ष संबंधी सभी सौंदर्योत्पादक साधनों का समावेश हो जाता है, किंतु 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' के रचयिता ने इसे वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली जैसी तीन पद्धतियों तक ही सीमित कर दिया। आचार्य शुक्ल ने इसे व्यापक अर्थ में स्वीकार किया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है– "यहां साहित्य को गति देने में अलंकार–शास्त्र का ही जोर रहा है जिसे उस काल में 'रीति', 'कवित्त–रीति', 'सुकविरीति' कहने लगे थे, संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को 'रीतिकाव्य' कहा है।" डॉ. नरेंद्र एवं श्री विश्वनाथ प्रसाद ने भी इस प्रकार की व्याख्या करते हुए 'रीति' शब्द को 'काव्य–रीति' का संक्षिप्त रूप बताया है।

वस्तुतः इन मध्यकालीन कवियों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है, अपने आश्रयदाताओं के हृदय में काम की पिचकारी छोड़ना था, उनकी रसिकता को उत्तेजित करते हुए उन्हें प्रेम की विभिन्न एवं शिष्ट सुसंस्कृत पद्धतियों से परिचित कराना था, अन्यथा वे केवल शृंगार–रस और नायिका–भेद को ही नहीं अपनाते।

हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक का समय रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। यह भक्तिकाल के बाद का तथा आधुनिक काल से पहले का कालखंड है। लगभग 200 वर्षों के इस काल में भारत में मुगलों का शासन था।

मध्यकालीन समाज के वैभव ने भी इस काल के साहित्य को दिशा दी। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है– "शृंगार–वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था। आश्रयदाताओं का मनोविनोद तथा कवियों की अर्थप्राप्ति एक दूसरे के पूरक बनते चले गए। काव्य रचना अब राजाओं की रुचि एवं इच्छा के अनुरूप ही होने लगी। कवियों ने आश्रयदाताओं को तृप्त एवं प्रसन्न करने के लिए शृंगारी रचनाओं का सृजन जी भर के किया। राजाओं की वासना–तृप्ति ने कविता का उद्देश्य तथा स्वरूप बदल डाला। कवियों से काव्य शिक्षा ग्रहण करना भी राजाओं व आश्रयदाताओं की रुचि में शामिल हो गया। परिणामतः संस्कृत लक्षणों को ध्यान में रखकर

'अपनी प्रगति जांचिए'

22. शाहजहां के काल में कौन–सी कला अपने चरम पर थी?
23. मुगल साम्राज्य का पतन कब आरंभ हुआ था?
24. सूरदास एवं अष्टछाप के कवियों ने किनके प्रेम का खुलकर वर्णन किया था?
25. शाहजहां की रुचि किस कला में अधिक थी?

टिप्पणी

कवियों ने आचार्यत्व का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी करने लगे। इसी युग में कुछ रीति इतर काव्य परंपराएं भी मिलीं जो कि भक्तिकालीन परंपराओं का विस्तार भी कही जा सकती हैं। ऐसी काव्य धाराओं में भक्तिपरक, नीतिपरक, वीरकाव्य, प्रकृति, राजप्रशस्ति, वैधक एवं चिकित्सा संबंधी तथा ज्योतिष संबंधी काव्य–सृजन भी चलता रहा, परंतु यह गौण रहा। मुख्य रूप से रीतिकाल में 'शृंगार' की प्रवृत्ति ही मुखर रही।

रीतिकाल परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधारशिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ। मुगल शासकों के प्रभावस्वरूप ही फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आचार्य भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के सभी आचार्यों तक उनके–रस अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य आदि संप्रदायों के प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में देखा जा सकता है। अलंकार निरूपण रस विवेचन, नायक–नायिका भेद तथा नखशिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की परंपरा का पोषक ही कहा जा सकता है। इसकी प्रेरणा भी वही है। इस काल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद है, अतः उस पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है।

2.9 नामकरण और सीमांकन

रीतिकाल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। उनके अनुसार 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की पदरचना या परिपाटी का सूचक है। रीति वास्तव में प्रणाली या प्रस्तुति का द्योतक है। इन कवियों ने एक विशिष्ट प्रणाली को दृष्टि में रखते हुए काव्य रचना की। यह प्रणाली ऐसी थी जिसमें सर्वप्रथम कवि आचार्य धर्म का निर्वाह करते हुए काव्य रचना की रीति या लक्षण प्रस्तुत करते थे तदनुरूप रचना करते थे। ये उदाहरण उनके अपने रचे हुए भी होते थे और कभी दूसरे कवियों के भी उदाहरण दिए जाते थे। अतः लक्षण बताकर उदाहरण देने की प्रवृत्ति इसी युग में एक परंपरा सी बन गई। ये उदाहरण अधिकांशतः शृंगारी होते थे। अतः इन लक्षणों की एक रीति सी बन गई थी। यही कारण है कि कवि शिक्षा देने या लाक्षणिक ग्रंथ लिखने के कारण इन कवियों को आचार्य या आचार्य–कवि भी कहा जाता है। इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। इसी प्रकार अन्य बहुत से कवियों ने भी 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्य–रचना के अर्थ में किया है। अतः यह नामकरण अत्यंत सटीक, सारगर्भित एवं अर्थवान बन गया।

शृंगार की प्रवृत्ति इस युग में प्रमुख है और शृंगार संबंधी काव्य परिमाण में भी पर्याप्त है परंतु यह भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि इस युग के बहुत से कवियों ने लक्षण–ग्रंथ लिखकर भी शृंगार को कोई स्थान नहीं दिया। नीति, भक्ति, प्रवृत्ति के ऐसे कई ग्रंथ भी हैं जिनमें शृंगार नहीं है। साथ ही शृंगार वर्णन भी राजा या आश्रयदाताओं की रुचि को केंद्र में रखकर ही किया गया, स्वेच्छा से नहीं। इस काल का नाम 'रीतिकाल' ही सर्वाधिक वैज्ञानिक और संगत है। इस युग में रीति संबंधी ग्रंथ तो अधिक लिखे ही गए साथ ही इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की रही। फिर शृंगार रस के

'अपनी प्रगति जांचिए'

26. किस शब्द का सामान्य अर्थ विधि, प्रणाली या परिपाटी होता है?
27. हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक के समय को किस नाम से जाना जाता है?
28. रीतिकाल में मुख्य रूप से कौन–सी प्रवृत्ति मुखर रही?

टिप्पणी

उदाहरण भी लक्षण के रूप में ही प्रस्तुत किए गए। अतः ये भी रीतिबद्ध काव्य से अधिक दूर नहीं रहे। रीतिनिरूपण की यह प्रवृत्ति भक्तिकाल में ही जन्म ले रही थी। यद्यपि यह नाम भी पूर्णतः उचित नहीं है। इसका कारण है कि रीतिकाल के कुछ कवि इस 'रीति' से अलग रहे। आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों पर न तो काव्यशास्त्र का प्रभाव रहा और न ही इन्होंने रीति निरूपक काव्य ग्रंथों की रचना की। इसी प्रकार सूदन, जोधराज जैसे वीर रस के कवि भी इस नाम के अंतर्गत नहीं आ पाते। किंतु इन कवियों को रीतिमुक्त अथवा रीतिइतर श्रेणी में रखा जा सकता है। विषय चयन एवं विषय विस्तार के आधार पर इसे रीतिकाल कहना ही उचित है। साथ ही अधिकांश कवियों द्वारा शृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण करना भी एक विशिष्ट पद्धति के अंतर्गत आता है। अनेक आचार्यों के रीति निरूपण संबंधी ग्रंथ भी इसके प्रमाण हैं। रीतिमुक्त कवियों पर भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से 'रीति' के प्रभाव को देखा जा सकता है।

किसी भी काल का आदर्श सीमा–निर्धारण संभव नहीं है। कारण यह है कि काव्यधारा या प्रवृत्ति विशेष को किसी विशेष निश्चित तिथि में नहीं बांध सकते। आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रमी संवत् मानी है। बाद के आचार्यों ने भी इसे मान्यता दी है। रीतिकाल के प्रथम कवि को लेकर भी विवाद रहा है। कुछ विद्वान केशव को मान्यता देते हैं, जबकि कुछ ने चिंतामणि को रीतिकाल का प्रथम कवि माना है। आचार्य केशव की रचना 'रसिकप्रिया' (सन् 1591) में ही रीतिकाव्य सृजन की परंपरा का आरंभ हो चुका था परंतु अविच्छिन्न रूप से रीतिनिरूपण विषयक ग्रंथों की रचना चिंतामणि के रचनाकाल से ही प्रारंभ हुई। अतः केशव से रीतिकाव्य परंपरा के स्रोत खोजे जा सकते हैं परंतु समय सीमा के आधार पर उन्हें भक्तिकाल के उत्कर्ष का कवि आचार्य ही माना जा सकता है।

2.10 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियां

रीतिकाल को कुछ विद्वानों ने दो शाखाओं में बांटा है तथा कुछ विद्वानों ने तीन शाखाओं में आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में इस काल के सभी कवियों को दो भागों में बांटा है। एक वर्ग तो ऐसे कवियों का है जिन्होंने समग्रतः या अंशतः रीति परंपराओं का पालन किया। दूसरे वर्ग के कवि वे हैं जिन्होंने परंपरा से मुक्त रहकर काव्य–सृजन किया। पहले वर्ग के कवियों को रीतिबद्ध कवि कहते हैं; तथा दूसरे वर्ग के कवि रीतिमुक्त शाखा के अंतर्गत आते हैं। शुक्ल जी के बाद के विद्वानों ने रीति परंपरा को स्पष्टतः अपनाने, काव्य में इसके प्रत्यक्षतः या परोक्षतः पालन करने तथा इनसे सर्वथा मुक्त रह कर भी रस–दृष्टि से सम्पृक्त रहने के आधार पर रीतिकाल को तीन वर्गों में विभक्त किया–

2.10.1 रीतिबद्ध काव्यधारा

रीतिबद्ध काव्य के विवेचन से पूर्व 'रीति' के अर्थ को समझना आवश्यक है। संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'रीति' शब्द काव्य के उस विशिष्ट अंग के लिए रूढ़ है जिसे काव्य

'अपनी प्रगति जांचिए'

29. किस आचार्य ने रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रमी संवत् मानी है?
30. 'रसिकप्रिया' के रचनाकार कौन हैं?
31. रीतिनिरूपण विषयक ग्रंथों की रचना किसके रचनकाल से प्रारंभ हुई?

टिप्पणी

की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबंधी पृथक संप्रदाय का प्रवर्तन किया। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष के लिए व्यवहृत हुआ है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों में भी अनेक ऐसे हैं जिन्होंने काव्य–रचना पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय को 'पंथ' से ही अभिहित किया है। अतएव व्युत्पत्ति, प्रयोग और परंपरा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य–रचना पद्धति के लिए रूढ़ है।

जिन कवियों ने काव्यशास्त्र का आधार लेकर लक्षण–ग्रंथों की रचना की, लक्षणों का विवेचन करते हुए सुंदर उदाहरणों की योजना की, वे रीतिबद्ध कवि कहलाए। उन्हें लक्षण–ग्रंथकार भी कहा गया। इसी काल में शृंगारी कवियों की श्रेणी में से एक ऐसा वर्ग भी सामने आया, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि माना गया। इन्होंने यद्यपि लक्षण–उदाहरण पद्धति को तो नहीं अपनाया, पर इनका काव्य भी काव्यशास्त्रीय परिपाटी के निकट रहा। रीतिबद्ध कवियों की प्रेरणा का स्रोत संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा ही रही है, जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। आचार्य शुक्ल के अनुसार– "इन रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण–ग्रंथों से चुनकर इकट्ठे करें तो उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।"

रीतिबद्ध काव्यधारा की रचनाएं और रचनाकार

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों में घनानंद सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। ये स्वच्छंद प्रवृत्ति के कवि थे। इन्होंने बहुत सुंदर कवित्त–सवैये लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं– विरहलीला, सुजान सागर, रसकेलि वल्ली, काके सार आदि। ब्रजभाषा के ये सुमधुर कवि कहे जाते हैं। इनके काव्य में प्रेमानुभूति और प्रेम की पीर के बड़े मार्मिक चित्र अंकित हुए हैं। इन्होंने मुक्तक शैली में कवित्त–सवैये लिखे। बोधा (बुद्धिसेन) उर्दू–फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। 'विरहवारीश' और 'इश्कनामा' इनके दो ग्रंथ हैं। इनके काव्य में प्रेम का स्वच्छंद और निजी उल्लास दिखाई देता है।

ठाकुर भी रीतिमुक्त परंपरा में पर्याप्त ख्यातिलब्ध हैं। इनकी कविताओं का संग्रह 'ठाकुर ठसक' नाम से प्रकाशित हुआ। ठाकुर ने बुंदेलखंडी मुहावरों के सहारे बहुत चुटीला व्यंग्य प्रस्तुत किया है। ठाकुर प्रेम निरूपक कवि होने पर भी लोक व्यवहार में अनेकदर्शी कवि थे; यथा–

ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।

द्विजदेव ब्रजभाषा के सुललित कवि हैं। इनका पूरा नाम महाराज मानसिंह द्विजदेव था। 'शृंगार लतिका' और 'शृंगार बतीसी' में इनकी कविताएं संकलित हैं। इनकी कविताओं में ब्रजभाषा की प्रांजलता और मिठास एक साथ दिखती है।

इसी प्रकार ब्रजनिधि भी जयपुर के नरेश थे। इनके लगभग 23 ग्रंथ हैं, जिनमें 'सनेह संग्राम', 'प्रीतिलता', 'रमक जमक बत्तीसी', 'प्रीति पचीसी' प्रसिद्ध हैं।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त निहाल कवि, अमीरदास नवलसिंह, श्रीपति आदि कवियों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रवृत्तियां

1. **संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव–** रीतिबद्ध कवियों ने शृंगारकालीन रीतिग्रंथों की रचना की जो संस्कृत के आचार्य कवियों से प्रभावित थे। कुछ ग्रंथ तो सीधे–सीधे छायानुवाद रूप में भी हैं। यथा कुलपति मिश्र का 'रस रहस्य' तथा जसवंत सिंह का 'भाषा भूषण' आदि। रीति निरूपण के सैद्धांतिक पक्ष में तो प्रायः मौलिकता नहीं है।
2. **लक्षण ग्रंथों का निर्माण–** रीतिबद्ध कवियों की यह प्रमुख विशेषता है। उन्होंने रस, रीति, अलंकार, छंद, शब्दशक्ति का विस्तृत विवेचन किया है। इन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में हुई विवेचना के आधार पर ही हिंदी काव्यशास्त्र के निर्माण का प्रयत्न किया था। भामह, उद्भट, आनंदवर्द्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, जयदेव आदि के ग्रंथ उनके आधार और प्रेरणा स्रोत रहे।
3. **लौकिक शृंगार की व्यंजना–** रीति कवियों का क्षेत्र शृंगार में ही सिमटकर रह गया जो सर्वथा लौकिक ही था। यद्यपि रीतिकाल को शृंगार की परंपरा पूर्ववर्ती कवियों से ही प्राप्त हुई, पर भक्तिकाल में उस पर जो अलौकिकता का आवरण था, वह हट गया। इसी कारण उन्होंने स्वीकार भी किया है–

   आगे के कवि रीझिहैं तो सुकबिताई
   न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

   संयोग शृंगार के अंतर्गत अनुभावों की भी व्यंजना की है–

   कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
   भरे भौंन में करत है, नैननु हीं सब बात।।

   वियोग वर्णन में ऊहात्मकता के चित्र अधिक हैं–

   औंधाई सीसी सु लखि, विरह–बरनि बिललात।
   बिच ही सूखि गुलाब गौं, छीटों हुई न गात।।
4. **पद्यबद्धता के कारण विवेचन में अस्पष्टता–** हिंदी के ग्रंथकारों ने प्रायः पद्य में ही रीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। कहीं–कहीं बीच में गद्य का भी पुट मिलता है। किंतु पद्य की प्रधानता से काव्यशास्त्र का विवेचन इन ग्रंथों में संस्कृत के ग्रंथों की भांति सुलझे एवं स्वाभाविक रूप में नहीं हो पाया है।
5. **चमत्कार प्रदर्शन–** अधिकांश रीतिकवि दरबारी थे। फलतः चमत्कार प्रदर्शन की भावना का उनमें होना स्वाभाविक है। इनकी यह विशेषता विलक्षण है कि इन्होंने सामान्य बात को भी चमत्कारी ढंग से कहकर चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।
6. **अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति–** इस काल में अलंकारों की प्रधानता थी। भाषा–परिष्कार, अलंकारों का सार्थक मनोरम उपयोग, संक्षेप में बहुत अधिक

टिप्पणी

कहने की प्रवृत्ति, चमत्कार प्रदर्शन, जीवन के आकर्षक एवं मनोरम प्रसंगों की ही व्यंजना करना, वाग्वैदग्ध्य, काव्य–नियमों के परिपालन के प्रति सचेत रहना आदि बातों ने इस काव्य को कलापक्ष की दृष्टि से काफी समृद्ध बना दिया है। वस्तुतः इस काव्य में भावना की सुकुमारता, अनुभूति की सत्यता और गहनता एवं कल्पना की मौलिकता की अपेक्षा उक्ति की वक्र–व्यंजना पर ही अधिक बल दिया गया। कवियों की दृष्टि काव्य की आत्मा रस की अपेक्षा अभिव्यक्ति की मनोरमता और वक्रता के प्रति अधिक रही। वस्तुतः इस अलंकरण की प्रवृत्ति के मूल में दरबारी प्रभाव ही कार्य कर रहा था क्योंकि दरबार में उक्ति वैचित्र्य के द्वारा प्रदर्शन ही श्रेयस्कर माना जाता है।

7. **मुक्तक की प्रधानता–** रीतिकाव्य में मुक्तक रचनाओं की प्रधानता है। इसके कारण हैं– लक्षण ग्रंथों का निर्माण तथा दरबारी वातावरण का प्रभाव। लक्षण ग्रंथ मुक्तक–शैली में लिखे जा सकते हैं, साथ ही शृंगार की प्रधानता के कारण भी मुक्तक शैली ही इस काल के कवियों के लिए अधिक उपयुक्त थी। दरबारी वातावरण भी इसके अनुकूल था क्योंकि दरबारों में प्रबंध सुनने की न तो रुचि थी और न ही अवकाश ही था। मनोरंजन के लिए मुक्तक ही उपयुक्त था।

8. **प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण–** रीतिकाव्य में मानवीय भावों को उद्दीप्त करने में सहायक प्रकृति का रूप ही उभरकर सामने आया। इस काल से पूर्व भी प्रकृति का यही रूप रहा था। रीतिकाल के कवियों का प्रकृति वर्णन बहुत ही प्रभावी और सरस रहा है।

अस्तु, उपयुक्त प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि रीतिकाव्य क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की शृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी सरसता, कोमलता एवं मार्मिकता प्राप्त की, वह कम महत्व की बात नहीं है। उन्होंने केवल शृंगार को ही लिया, किंतु उसके विभिन्न अंगों का जैसा चित्रण उन्होंने किया, वह अन्यत्र सुलभ नहीं। उनकी दृष्टि चाहे नायिका भेद तक ही सीमित रही, किंतु उनकी जैसी सजीव एवं हाव–भावपूर्ण अनेकानेक मूर्तियां उन्होंने प्रस्तुत की हैं, वैसी किसी अन्य साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होतीं। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदी में ये पहले कवि थे, जिन्होंने कला को शुद्ध कला के रूप में देखा, सौंदर्य की साधना को ही अपने कर्तव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया।

2.10.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा

रीतिकाव्य में दूसरा वर्ग उन ग्रंथों का है जिनमें रचयिता लक्षण देने के चक्कर में नहीं पड़ा– केवल अपना कवित्व–प्रदर्शन उनका उद्देश्य रहा है। इन ग्रंथों की विशेषता यह रही है कि इनका प्रत्येक छंद किसी लक्षण का उदाहरण न होते हुए भी उसका उदाहरण बन सकता है, कारण, इनके रचयिताओं ने इनकी रचना करते समय जाने–अनजाने में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन कर लिया है। शास्त्रीय नियमों में बद्ध रीतिबद्ध काव्य–संबंधी उदाहरणों से इन छंदों का अंतर यही है कि वे जहां किसी विशिष्ट लक्षण के साथ जुड़े हुए हैं वहां ये शास्त्रीय नियमों में बद्ध होते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र हैं। दूसरे शब्दों में

टिप्पणी

काव्यशास्त्रीय नियमों की स्थिति इनके भीतर ही स्वतः सिद्ध है– अर्थात काव्यशास्त्र संबंधी विशिष्ट नियम इनके भीतर सहज रूप से इतने घटित हुए प्रतीत होते हैं कि यह इन नियमों के अनुरूप रचे हुए लगते हैं। ऐसा लगता है कि ये नियम इस छंद की रचना के समय कवि के संस्कार में गहराई से बैठे हुए थे।

वस्तुतः रीतिबद्ध कवि एवं रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएं लगभग समान ही हैं। दोनों में काव्यशास्त्रीय संस्कार तो समान रूप से रहते ही हैं, अंतर यदि है भी तो केवल इतना ही कि रीतिबद्ध काव्य–रचना में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन अनिवार्यतः किया जाता है जबकि रीतिसिद्ध काव्य में ये नियम संस्कारवश स्वतः फलीभूत हो जाते हैं। अतएव रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध विशेषण किसी कवि विशेष के लिए न जोड़े जाकर उसके ग्रंथ अथवा रचना विशेष के साथ ही जुड़ने चाहिए। एक ही कवि की रचनाएं अपनी विशेषताओं के अनुसार भिन्न हो सकती हैं। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की अभिव्यंजना पद्धति भी समान है जिसमें भाषा का स्वरूप और सौष्ठव एक कवित्त, सवैया और दोहे या मुक्तक की सभी विशेषताओं सहित प्रयोग किसी भी प्रकार से प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त इन दोनों की सांस्कृतिक, साहित्यिक और काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि तथा दरबारी परिवेश भी समान है। अंतर है तो यही कि रीतिबद्ध काव्य काव्यांक विशेष के विवेचन में लक्षण के साथ उसके उदाहरण के रूप में लिखा गया है और रीतिसिद्ध काव्य में यह लक्षणों के बिना और स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है– यद्यपि कवियों के काव्यशास्त्रीय सहकारों के कारण नियमबद्धता इसके मूल में विद्यमान है। कहने का अभिप्राय है कि रीतिसिद्ध काव्य रीतिबद्ध काव्य का एक प्रकार से परिष्कृत रूप है।

रीतिसिद्ध काव्यधारा के रचनाकार एवं रचनाएं

रीति सिद्ध कवियों में सर्वप्रथम जिस कवि का नाम लिया जाता है वह हैं बिहारी। बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। बिहारी की 'बिहारी सतसई' नामक एक ही रचना मिलती है। सतसई का शाब्दिक अर्थ है–सात सौ (सत्पशती)। 'बिहारी सतसई' में सात सौ दोहे हैं इसलिए इसका नाम सतसई रखा गया। बिहारी की सतसई में प्रकृति और नारी सौंदर्य के विभिन्न रूप मिलते हैं। प्रेम, विरह, भक्ति भाव, दर्शन आदि का प्रतिपादन भीं इसमें मिलता है। सौंदर्य और प्रेम के निरूपण में बिहारी को सफलता मिली। किंतु विरह वर्णन में अतिशयोक्ति हो गई, जो अस्वाभाविक एवं हास्यास्पद प्रतीत होता है।

बिहारी ने राजनीति, दर्शन, नीति आदि के विचारों का भी प्रतिपादन प्रभावशाली रूप में किया है। वास्तव में बिहारी ने अपने युग की रुचियों को ध्यान में रखकर उन सभी विषयों का समावेश अपनी सतसई में किया जो उस युग में पसंद किए जाते थे। इसलिए उन्होंने दावा किया था–"कही बिहारी सतसई भरी अनेक स्वाद।' किसी ने बिहारी के दोहों पर सटीक कहा है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगै, बेधै सकल शरीर।।

शायद यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य भी है।

टिप्पणी

रीति सिद्ध कवियों में अन्य कवि मतिराम जी हैं जिन्होंने 'मतिराम सतसई' की रचना की। रीति सिद्ध कवि भूपति जी 'भूपति सतसई' के रचनाकार हैं। कवि हठी जी ने 'श्री राधा सुधाशतक' नामक रचना का निर्माण किया। 'कविहृदय विनोद' नामक रचना के रचनाकार ग्वाल कवि जी हैं।

रीतिसिद्ध काव्यधारा की प्रवृत्तियां

1. **मध्यम पंथी काव्य–** रीतिसिद्ध कवियों द्वारा लक्षणों का नियमतः पूरा–पूरा पालन न करने पर भी ये उनसे पूर्णतः मुक्त न थे जैसे कि स्वच्छंद कवि थे, परंतु नियम का अनुसरण करते हुए भी ये स्वतंत्रता लेते थे। लक्षण ग्रंथों की रचना से ये विरत रहते हुए भी रीति की पूरी छाप रखते थे। रीति की बंधी परिपाटी में पूरी आस्था रखते हुए भी ये उसके गुलाम बनकर नहीं चले। न तो ये उससे अलग होकर चलना चाहते थे और न ही उसकी पूरी दासता को स्वीकार करना चाहते थे। इनकी रचनाओं में शास्त्रीय सिद्धांतों का निरूपण और लक्षण निर्माण तो नहीं हुआ फिर भी इनकी रचनाएं ऐसी बन पड़ी हैं कि जो किसी न किसी काव्यांग के उदाहरण रूप में अवश्य रखी जा सकती हैं।

2. **स्वतंत्र कवि व्यक्तित्व–** रीति सिद्ध कवि रीति से केवल संकेत ग्रहण करते थे और भाव एवं कल्पना का बंधान स्वतंत्र ढंग से भी करते थे। जहां ये लोग नवीन उद्भावनाएं कर सके हैं, वहां रीतिबद्ध कवि अपनी रचनाओं में प्रायः नवीनता का वैशिष्ट्य नहीं ला सके हैं। बिहारी की रचनाओं के वैशिष्ट्य का यही कारण है। कवित्त, सवैया जैसे अधिक प्रचलित छंदों को छोड़कर बिहारी ने दोहे को ग्रहण किया, वह भी इसी व्यक्ति–वैशिष्ट्य का सूचक है। उनके दोहों में जो सूक्ष्म कारीगरी है, वर्ण एवं नाद सौंदर्य का विधान है, गहरी अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता है, वह कोरी रीति प्रथा का अनुकरण नहीं। वह स्वतंत्र कवि अस्तित्व के विकास का विशाल प्रयास द्योतित करती है।

3. **कवि–गौरव के अभिलाषी–** रीति सिद्ध कवि कविगुरु, कवि शिक्षक या आचार्य नहीं बनना चाहते थे। उन्होंने तो रीति की सुनिश्चित परिपाटी के अनुकूल रचना करते हुए भी लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की। ये कवि होना अधिक सम्मान की बात समझते थे। इसी कारण इनका काव्य अधिक सरस और मार्मिक बन पड़ा है। उक्तियां चमत्कार से पूर्ण और रीति की पद्धति से संयुक्त हैं।

4. **अभिनव कल्पना विधान–** रीतिसिद्ध कवि अपने काव्य में शाब्दिक एवं आर्थिक अलंकारों की नयी चमत्कृति दिखलाते थे। रस–संचार के लिए स्वानुभूतियों के सहारे अभिनव कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं की सृष्टि कर काव्य में नवीनता और स्मरणीयता का संचार करते थे। संसार विषयक अपने अनुभवों के सहारे भाव एवं सौंदर्य–विधान की नयी सामग्री प्रस्तुत करने में ये कवि कुशल थे। इसी में इनकी रचना की विशिष्टता है। इनमें रीति है, चमत्कार भी, किंतु स्वानुभूति और रस की व्यंजना भी है।

टिप्पणी

5. **मुक्तक शैली का ग्रहण–** रीति सिद्ध कवि शृंगार की सुंदर, सरस रचना प्रस्तुत करने में संस्कृत की शृंगार की मुक्तक परंपरा से प्रभावित हैं। संस्कृत और प्राकृत से होती हुई यह शृंगार मुक्तक परंपरा अपभ्रंश भाषा के ग्रंथों में प्राप्त होती है। बिहारी आदि काव्य–कवियों के शृंगारी मुक्तकों को इस परंपरा से थोड़ी–बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई, क्योंकि इन रचनाओं में एक तो लक्षणानुधावन का बंधन नहीं और ये कवि बंधन ढीला करके चलना भी चाहते थे। दूसरे, इन मुक्तकों में जीवन के ऐहिक एवं भोगपरक पक्ष के चित्रण का आग्रह था, जो इनकी और समसामयिक रुचि के अनुकूल भी था। इस परंपरा का उद्देश्य ही शृंगार के रसात्मक मुक्तकों द्वारा चित्त को उत्फुल्लता प्रदान करना था और यही कार्य रीति सिद्ध कवियों ने किया।

6. **रीतिशास्त्रीय विषयों की मानसिक पृष्ठभूमि–** रीति सिद्ध कवियों ने भी नायिका भेद, ऋतु वन, बारहमासा, नखशिख आदि परंपरागत और शास्त्रकथित विषयों को काव्य के वर्ण्य के रूप में प्रचुरता से ग्रहण किया, परंतु उसमें अपनी नूतन गति का परिचय दिया। ये विषय ऐसे थे जिन पर स्वतंत्र ढंग से निजी अनुभव के बल पर काफी कुछ करने का अवकाश था। ये विषय रीतिबद्ध और रीति सिद्ध दोनों ही प्रकार के कवियों द्वारा उठाए गए, किंतु भावनाओं एवं उद्भावनाओं की नूतनता रीति सिद्ध काव्य में अधिक अभिव्यक्त हुई है।

7. **शृंगारिकता–** रीति सिद्ध कवियों ने शृंगार के दोनों पक्षों– संयोग और वियोग का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में वे जितने रमे हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। बिहारी इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भले ही नायिकाओं की अदाओं को इन्होंने चित्रित किया हो, लेकिन अनुभव के विधान में इनकी रस व्यंजना अत्यंत भव्य बन पड़ी है। हावों और भावों की ऐसी सुंदर योजना अन्य कोई भी समकालीन कवि नहीं कर सका। शृंगार के वियोग पक्ष में बिहारी उतने सफल नहीं हो पाए हैं लेकिन कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां नायिका के हृदय के अंतर्द्वंद्व का चित्रण इन्होंने खूब किया है।

8. **आलंकारिता–** रीतिकालीन चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गए। इस समय चमत्कारमूलक अलंकारों में से श्लेष, यमक और अनुप्रास का अधिक प्रयोग हुआ। बिहारी ने ऐसे चमत्कारमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। बिहारी और केशव ने चमत्कार की अतिस्पृहा से ऐसे हास्यास्पद प्रयोग किए हैं कि शोभसृष्टि के स्थान पर अशोभनीयता पैदा हुई है। कहीं–कहीं अलंकारों से बोझिल पंक्तियां भी मिलती हैं, परंतु कहीं–कहीं अलंकारों के रूप में सुंदर अप्रस्तुत विधान की योजना भी की गई है। जहां कवि एक मात्र अलंकार के चमत्कार के पीछे दौड़ा है, वहां तो काव्य रूप की विकृति हो गई है। 'बिहारी सतसई' को छोड़कर शेष काव्य में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति कम ही मिलती है।

9. **भक्ति और नीति–** वस्तुतः यह युग अनेक स्वादों का युग था और उस समय के कवि ने अनेक स्वादों से अपने ग्रंथों को भरना चाहा। बिहारी ने कहा है–"करी

टिप्पणी

बिहारी सतसई भरी अनेक संवाद।" रीतिकालीन श्रृंगारी कवि देव, मतिराम, बिहारी आदि के भक्ति संबंधी छंदों पर 'राधा कन्हाई सुमिरन को बहाने है' की उक्ति चरितार्थ होती है। किंतु इसी समय में गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मिथिला आदि में सैकड़ों भक्त, संत, सूफी तथा जैन कवियों ने शताधिक भक्ति– संबंधी ग्रंथों का प्रणयन किया जो आज तक उपेक्षित रहा है।

10. **भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सामंजस्य–** रीति सिद्ध कवियों के काव्य की एक सर्वमान्य विशेषता यह है कि इन्होंने काव्य के कला पक्ष के साथ–साथ भाव पक्ष पर भी पूरा बल दिया है। ये कर्म के प्रति अधिक स्वस्थ और संतुलित दृष्टि रखते थे। एक ओर जहां इन्होंने अपनी कविता के भाव पक्ष या वर्ण्य को नवीनता और ताजगी देने की चेष्टा की है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने काव्य के कलापक्ष के वास्तविक संभार की ओर भी ध्यान दिया है। इन कवियों ने भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। बिहारी, रसनिधि, रामसहाय आदि रीति सिद्ध कवियों ने अपने दोहों को भावपूर्ण और सुगठित तथा सौंदर्य–संपन्न करने के लिए काव्य की समास पद्धति का पर्याप्त उत्कर्ष दिखलाया है। इन्होंने भाषा को मृदुल, कोमल, नाद–सौंदर्य से परिपूर्ण बनाने की चेष्टा की है तथा प्रचलित कवित्त, सवैया के अतिरिक्त दोहों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

2.10.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

रीतिमुक्त कवि वे थे जो अपनी अनुभूति को, अपनी प्रेम वेदना को तथा अपनी विरह व्यंजना को काव्य में अश्रुओं सा तरल एवं सहज बनाकर ढाल रहे थे। रीतिमुक्त कवियों ने रीति के सारे मानदंड ठुकरा कर, दरबारों का बहिष्कार करते हुए निजी प्रेम की मर्मस्पर्शी पीड़ा को गीतों में पिरोया। ये कवि अपनी स्वच्छंद एवं उन्मुक्त चेतना के कवि थे जिन्हें प्रियतमा का वियोग उपहार स्वरूप मिला था। श्रृंगार तथा भक्ति के सौंदर्य युक्त पदों का सृजन करने वाले इन प्रेम चितेरों ने संयोग पक्ष का सर्वथा बहिष्कार किया। संयोग कहीं आया भी तो स्मृति बनकर। इनका विरह भी रीतिपरक श्रृंगार के समान नारी का ऊहात्मक विरह नहीं दर्शाता, यहां तो पुरुष का विरह वर्णित है। स्वच्छंद काव्य के ये कवि विरह के अतिरेक में फारसी सूफी काव्य के उस साधक की तरह हो जाते हैं जो प्रियतमा में ही साक्षात ब्रह्म या परमपुरुष की कल्पना करने लगता है। यहां तो ये स्वयं को ही प्रेयसी रूप नारी समझकर पुरुषरूप प्रिया के प्रति विरह भाव की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

कुछ विद्वान भक्ति, दर्शन, प्रकृति, राज–प्रशस्ति, वीर तथा ज्योतिष आदि विषयों से संबद्ध काव्यसृजन करने वालों को रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत ही गिनते हैं। इसी युग में रीति पद्धति से मुक्त रहकर काव्यकर्म करने वाले ऐसे बहुत से कवि भी थे जिन्होंने अपनी कविता का वर्ण्य–विषय रीतिमुक्त कवियों से भिन्न तथा प्रेम के स्थान पर भक्ति, प्रकृति, प्रशस्ति, नीति को बनाया। यह काव्यधारा बंधन या परिपाटियों से मुक्त थी। वास्तव में ये कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति और उन्मुक्त चेतना के कवि थे। इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि को अनुपयुक्त कहकर ललकारा।

टिप्पणी

रीतिमुक्त कवि संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा में बंधकर लिखना नहीं चाहते थे। ये किसी भी रीति पर चलकर या परिपाटी का पालन कर काव्यसृजन करने को काव्यप्रतिभा के बंधन की तरह मानते थे। इसी काव्यप्रतिभा को बांधने के विरूद्ध इन्होंने विद्रोह भाव की अभिव्यक्ति की। इनकी इसी विद्रोही प्रतिक्रिया ने उनकी अभिव्यंजना शैली को प्रखर और मुखर भी किया। रीतिमुक्त काव्य रीतिबद्ध या रीतिकाव्य की तरह आत्मप्रदर्शन परक, वस्तु प्रधान अथवा चमत्कार प्रधान न होकर आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्ति प्रधान काव्य कहा जा सकता है। डॉ. महेंद्र कुमार ने लिखा भी है– "रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत प्रेम का अर्थ मन का उत्कट उन्मुखीभाव है जिसकी अभिव्यक्ति करने के लिए प्रेमी समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। रीतिकाव्य के समान मर्यादाभीत विलासी के इंद्रियसुख की आतुर अभिलाषा नहीं, जिसे वह बहुत बड़ा मूल्य देकर क्रय करना तो चाहता है पर अपनी नैतिक प्रतिष्ठा पर आंच न आने देने के उद्देश्य से समाज की दृष्टि से ओझल भी रहना चाहता है।"

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएं

इस काल में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने रीति के बंधन से मुक्त होकर साहित्य रचना की। इन्होंने केशव, मतिराम और चिंतामणि के समान न तो कोई लक्षण ग्रंथ लिखा और न ही बिहारी की भांति कोई रीतिबद्ध रचना की। कवि घनानंद, आलम, बोध ओर ठाकुर ने लक्षणबद्ध रचना नहीं की और वे अपने स्वच्छंद प्रेम की पीर जनता को सुनाते रहे। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी दो प्रकार की रचनाएं मिलती हैं–एक लौकिक श्रृंगार से संबंधित और दूसरी भक्ति से संबंधित हैं। घनानंद जिस प्रकार अपनी अनुभूति की स्वच्छंदता और असाधारणता के प्रति जागरूक हैं, उस प्रकार आलम नहीं हैं। बोधा द्वारा माधवानल–कामकंदला की प्रसिद्ध प्रेम कथा पर लिखी गई प्रबंध रचना है–विरहवारीश। इनकी दूसरी कृति 'इश्कनामा' प्रेम पर लिखे मुक्तकों का संग्रह है। ठाकुर के दो संग्रह उपलब्ध हैं–'ठाकुर ठसक' और ठाकुर शतक'। अपने काव्य–मार्ग की विशेषताओं के प्रति घनानंद की भांति ठाकुर भी सजग हैं। लाल और सूदन ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रबंध काव्य लिखे। वृंद, दीनदयाल गिरि और गिरिधर दास ने दान लीला और मान लीला पर वर्णनात्मक प्रबंध काव्य लिखे हैं।

रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रवृत्तियां

1. **स्वच्छंद रीति–** इस धारा के कवि भावुक थे तथा उन्होंने अपने को किसी भी काव्यशास्त्रीय परंपरा से आबद्ध नहीं रखा। काव्यशास्त्र का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था, फिर भी उन्होंने अलंकार, छंद, नायक–नायिका भेद, रीति या वक्रोक्ति आदि सिद्धांतों की पद्धति विशेष का अनुकरण नहीं किया। उनका विश्वास अनुभूति की मौलिक प्रस्तुति में रहा। उन्होंने रीतिपरिपाटी से स्वयं को पूर्णतः मुक्त रखा। ये लक्षणों के फेर में नहीं पड़े तथा निजी प्रेम के उच्छवासों को ही काव्यबद्ध करते रहे और इसमें उन्हें सफलता भी मिली।
2. **स्वच्छंद प्रेम–** जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, इन कवियों के जीवन एवं काव्य में स्वच्छंद प्रेम की प्रधानता है। स्वच्छंद प्रेम का अर्थ यह है कि इन्होंने विशुद्ध सौंदर्यानुभूति की प्रेरणा से जाति समाज एवं धर्म के बंधनों की अवहेलना

टिप्पणी

करते हुए ऐसी नायिकाओं से प्रणय संबंध स्थापित किया था, जो अन्य जातियों से संबंधित थीं। ऐसी स्थिति में इन्हें प्रेम के क्षेत्र में पर्याप्त साहस, संघर्ष एवं त्याग का परिचय देना पड़ा। इन्होंने प्रेम के क्षेत्र में सत्यता, गंभीरता एवं औदात्य का परिचय दिया। यथा–

एक सुजान के आनन पै, कुरबान जहां रूप जहां कौ।
जानि मिलै तो जहान मिलै, नहीं जान मिलै तो जहान कहां कौ।

3. **प्रेरणा स्रोत एवं काव्य–प्रयोजन–** प्रस्तुत परंपरा के कवियों ने सामान्यतः स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति की प्रेरणा से काव्य–रचना की है, इस क्षेत्र में उन्होंने किसी बाह्य निर्देश को स्वीकार नहीं किया है। यथा घनानंद ने कहा भी है–

लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहिं तो मोरे कवित्त बनावत।

वस्तुतः इस परंपरा के कवि सहजानुभूति से प्रेरित काव्य को सच्चा मानते थे। चेष्टापूर्वक रचित काव्य का तो उन्होंने उपहास किया है। इससे स्पष्ट है कि कवियों ने सच्ची कविता के मर्म को समझकर सहजानुभूति एवं सच्ची प्रेरणा के महत्व को स्वीकार किया था तथा यही कारण है कि हम इनके काव्य में काव्येतर तत्वों के स्थान पर अनुभूति की प्रधानता पाते हैं।

4. **नारी सौंदर्य के प्रति आस्था–** इन कवियों ने नारी के व्यक्तिव एवं सौंदर्य को आस्था की दृष्टि से देखते हुए उसका चित्रण अत्यंत स्वच्छ, सूक्ष्म एवं उदात्त रूप में किया है। उन्होंने परंपरा के अनुसार नखशिख की स्थूल परिपाटी का निर्वाह करने के स्थान पर उनके सौंदर्य के प्रभाव की व्यंजना की है। यथा–

छवि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मृदु मीठी मुस्क्यानि में।

5. **विरह की प्रधानता–** इनमें से अधिकांश कवियों का प्रेमपूर्ण जीवन प्रायः प्रेयसी की मधुर स्मृति में ही व्यतीत हुआ था। सामाजिक परिस्थितियों की विषमता के कारण वे अपने जीवन में संयोग की घड़ियां प्राप्त करने में असफल रहे। यही कारण है कि उनके काव्य में विरह वेदना की अभिव्यक्ति अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक रूप में हुई है। यथा–

अती सूधो सनेह को मारग है, यहां नैक सयानप बांक नहीं
यहां सूधो चलै तजि आपनपौ, झिझकें कपटी ते निसांक नहीं।

6. **वैयक्तिकता–** हिंदी साहित्य में कदाचित ये पहले कवि हैं, जिन्होंने लौकिक प्रेम की वैयक्तिक अनुभूतियों को निःसंकोच रूप में व्यक्त किया है। इन्होंने अपनी प्रेम कहानी सुनाने के लिए न तो राधा–कृष्ण की भक्ति का आवरण उधार लिया और न ही किसी रत्नसेन या पद्मावती का आश्रय ग्रहण किया। साथ ही अपनी प्रेयसियों को स्वतः संबोधित करने का साहस भी किया है। वस्तुतः ऐसी वैयक्तिकता आगे चलकर छायावादी कवियों में ही प्राप्त होती है।

टिप्पणी

7. **भावप्रवणता–** रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि भावप्रवण थे। प्रेम की पीड़ा को स्याही बनाकर अपने हृदय के उद्‌गारों को लिखना इनकी रुचि बन गई थी। भाव विभोर होकर ये ऐसे प्रवाहित होने लगते हैं कि अभिव्यंजना के सभी उपकरण स्वतः ही भावों को गति प्रदान करने के लिए उपस्थित होते चले जाते हैं। भावावेग इनकी कविता की प्रेरणा तो बनता ही है, साथ ही हेतु भी बन जाता है। विषम प्रेम के प्रति आसक्ति इन प्रेमियों के तन–मन में पूरे प्राणपण से मौजूद है।

काव्यशिल्प की विशेषताएं

रीति मुक्त कवियों के काव्यशिल्प की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. इनके काव्य में भाव–पक्ष की प्रधानता है।
2. इनकी शैली अलंकारों के अनावश्यक बोझ से भी आक्रांत नहीं हुई है।
3. भाषा के क्षेत्र में भी ये कवि अधिक सफाई से उतरे हैं।
4. इनके काव्य में सामाजिकता की घोर अवहेलना भी नहीं है, और न ही रुग्ण शृंगारिकता है। इनका शृंगार चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है।
5. इनके काव्य में स्वान्तः सुखाय की प्रेरणा काम कर रही है, अतः इसमें लोक–संग्रह की परिपुष्ट भावनाएं हैं।
6. रीति–मुक्त धारा में शृंगारी कवियों का शृंगार चित्रण एक निम्न पद्धति पर चला है।

उपसंहार

रीति काव्य के महत्व के अंकन के विषय में आलोचकों के भिन्न–भिन्न विचार हैं। कुछ आलोचक इसे सर्वथा त्याज्य और अधोगामी कह कर इसे गंदी नालियों में बहाने की वकालत करते हैं जबकि अन्य आलोचक रीति काव्य को तन और मन को रिझाने वाला साहित्य कह कर इसे नितांत अभिलक्षणीय बताते हैं। हमारे विचारानुसार ये दोनों दृष्टिकोण अतिवाद से ग्रस्त हैं। रसिक प्रभुओं के लिए लिखे गए रीति काव्य में कामशास्त्र के सचेष्ट समावेश और उसमें यत्र–तत्र संयोग कलाओं की चर्चा को देख कर आज का आलोचक रीति काव्य में अश्लीलता की दुहाई देता हुआ आवश्यकता से कुछ अधिक चौंक जाता है। वस्तुतः श्लीलता और अश्लीलता युग सापेक्ष्य वस्तुएं हैं। श्लील और अश्लील कवि समय (काव्य रूढ़ियों) के समान है, जो कि प्रत्येक समाज की परिस्थितियों की अनुरूपता में हुआ करते हैं। ये दोनों तत्कालीन सामाजिक चेतना से संबद्ध हैं। एक समय में जो वस्तु शिष्टता/सभ्यता समझी जाती है, दूसरे समय में वही निंदा किए जाने योग्य बन जाती है। ऐसी दशा में रीति काव्य की तथाकथित अश्लीलता को आज के प्रबुद्ध नैतिक मान दंडों पर कसना न्याय नहीं होगा और न ही रीति काव्य की अश्लीलता को असाहित्यिक या असामाजिकता की संज्ञा देना उचित होगा। अश्लीलता और असाहित्यिकता हमें उस समय प्रतीत होती है जब हम रीति काव्य के चित्रों को उनके पूर्ण परिपेक्ष्य में न देखकर उन्हें अधूरी दृष्टि से देखते हैं। नैतिकता भी देश कालाश्रित है तथा वह सदा

टिप्पणी

बदलती रहती है। वस्तुतः श्लीलता और अश्लीलता सुरुचि और कुरुचि से संबद्ध है, जो कि प्रत्येक देश और काल की अलग–अलग हुआ करती है। हम पहले संकेत कर चुके हैं कि रीति काव्य चाहे शास्त्र की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण न हो किंतु कवित्व की दृष्टि से यह बहुत मनोरम है। अतः इस काव्य का साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व अक्षुण्ण है। रीति काव्य के प्रणयन का हेतु विशुद्ध साहित्यिक प्रेरणा अर्थात 'कला कला के लिए' है। यह काव्य किसी नैतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीति प्रेरणा की उपज नहीं है। अतः रीति काव्य की यथार्थ गरिमा और उसके मूल्य को आंकते समय हमें उपर्युक्त तथ्यों को सदा ध्यान में रखना होगा।

2.11 रीतिकालीन गद्य साहित्य

रीतिकाल से पूर्व भी रीतिकाल में भी ब्रजभाषा में गद्य–लेखन की बढ़ोत्तरी हुई। रीतिकाल में काव्य के ग्रंथों का चलन बढ़ा और ब्रजभाषा में उनकी टीकाएं लिखी गईं। वार्ता, जीवनी, पत्र, संवाद, वचनिका, टीका, ललित गद्य आदि ब्रज भाषा गद्य के प्रमाण हैं।

अन्य विषयों की गद्य रचनाएं भी लिखी गई हैं; यथा–अश्वचिकित्सा, वैधक ग्रंथ, वेदांत निर्णय, गरुड़ पुराण व पद्मपुराण अनुवाद, चाणक्य नीति अनुवाद, हितोपदेश अनुवाद, मानस की टीका, बिहारी की सतसई की टीका, रसिक प्रिया टीका, हित चौरासी की गद्य पद्यमय टीका आदि।

खड़ी बोली में गद्य साहित्य

रीतिकाल में स्वतंत्र रूप में खड़ी बोली का प्रयोग गद्य में नहीं किया गया। इस काल में खड़ी बोली का कुछ अधिक विस्तार हुआ। खड़ी बोली का गद्य दूसरी भाषाओं के गद्य के साथ मिला हुआ दिखलाई देता है। अधिकतर ब्रजाभाषा गद्य में खड़ी बोली का गद्य मिला हुआ है। पूर्वी हिंदी, राजस्थानी और पंजाबी में भी खड़ी बोली गद्य का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। यह गद्य अधिकतर साहित्येतर विषयों से संबंध रखने वाला अधिक है। ब्रज, पंजाबी, उर्दू आदि के साथ मिश्रित रूप में लिखी गई खड़ी बोली गद्य की कुछ रचनाएं महत्वपूर्ण हैं–फर्सनाम, सुरासुर निर्णय, मोक्षमार्गप्रकाश, चिद्विलास। रीतिकाल में खड़ी बोली गद्य का एक रूप टीका और अनुवादों में प्रयुक्त खड़ी बोली है। इनमें से कुछ रचनाएं पंजाबी, फारसी मिश्रित भाषा के कारण ध्यान देने योग्य हैं। भाषा योग वशिष्ठ, भाषा पद् पुराण, आदिपुराण वचनिका, सूर्य सिद्धांत आदि रचनाओं में पंजाबी, फारसी का मिश्रित रूप में प्रयोग किया गया है। 'प्रवचनसार टीका', 'भाषामत गीता टीका', 'जपु टीका', 'बिहारी सतसई' और 'रानी केतकी की कहानी' आदि टीकाएं ब्रज भाषा और मिश्रित खड़ी बोली वाली टीकाएं हैं। अतः ये गद्य रचनाएं खड़ी बोली के मिश्रण का उदाहरण हैं।

दक्खिनी गद्य साहित्य

भक्तिकाल की तरह रीतिकाल में भी दक्खिनी गद्य उर्दू फारसी मिश्रित रूप में मिलता है। सूफी संतों, साधुओं और धर्म संप्रदाय के अनुयायी व्यक्तियों के अनुवाद किए गए ग्रंथ इसमें अधिक हैं। साहित्येतर रचनाएं वैधक, इतिहास आदि की तथा पत्र हुकमनामे भी इसी गद्य में लिखे गए मिलते हैं। रिसाले बजूदिया, मंजमखफी, रिसाले तसव्वुफ इस समय की कुछ

'अपनी प्रगति जांचिए'

32. 'रस रहस्य' के रचनाकार कौन हैं?
33. किन कवियों का क्षेत्र शृंगार में ही सिमट कर रह गया?
34. रीतिकाव्य में किन रचनाओं की प्रधानता है?
35. रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि कौन हैं?
36. 'इश्कनामा' के रचनाकार कौन हैं?

टिप्पणी

दक्खिनी गद्य रचनाएं हैं। ये सब रचनाएं उर्दू शैली की हैं और हिंदी की एक शैली के रूप में उर्दू की यह शैली हिंदी के अधिक निकट है।

राजस्थानी गद्य साहित्य

रीतिकाल में राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ। राजस्थानी गद्य में वचनिका, दवावैत, पत्र, वंशावली, पदावली आदि अनेक तरह का गद्य मिलता है। कहीं तुकमय गद्य मिलता है जिसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, ज्योतिष, वैधक, तंत्रमंत्र आदि विषयों को निरूपित किया गया है। इस गद्य में वात जैसी विधा प्रसिद्ध है। वात में गद्य–पद्य मिश्रित रचना होती है। ये 'वात' इतिहास सम्मत भी होती हैं और काल्पनिक भी। वचनिका के रूप में जो राजस्थानी गद्य मिलता है उसमें भी अनेक रचनाएं हैं। रीतिकाल में राजस्थानी ललित गद्य की रचनाएं भी मिलती हैं। पट्टे, परवाने, जन्म पत्रियां भी इसमें हैं।

भोजपुरी और अवधी में गद्य साहित्य

रीतिकालीन गद्य साहित्य के कुछ नमूने भोजपुरी भाषा में भी मिलते हैं। फणीन्द्र मिश्र का 'पंचायत का न्यायपत्र' अवधी मिश्रित भोजपुरी का उदाहरण है। अवधी भाषा का गद्य प्रायः ब्रजभाषा के गद्य के मिश्रण के साथ मिलता है। इनमें 'मानसटीका', 'रसविनोद', 'व्यवहारवाद' और 'कबीर बीजक' कुछ प्रमुख गद्य रचनाएं हैं।

जिस समय ब्रज भाषा में काव्य रचना का बोलबाला था उसी समय अवधी और भोजपुरी की कविता अपने क्षेत्र में चल रही थी। धीरे–धीरे भोजपुरी और अवधी में भी पद्य से गद्य में भाव व्यक्त करने का चलन बना। आधुनिक काल में जो विकास हुआ, विभिन्न भाषाओं के गद्य प्रयोग उस विकास के पूर्व सूचक हैं।

रीतिकालीन गद्य साहित्य कहानी, वार्ता, चरित्र, प्रवचन, नाटक, टीका, भाव आदि अनेक रूपों में प्राप्त होता है। गद्य के इन विविध रूपों में धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, काव्यशास्त्र, व्याकरण आदि विषयों का वर्णन मिलता है। रीतिकालीन गद्य साहित्य अपने पूर्ववर्ती गद्य साहित्य से अधिक समृद्ध है।

2.12 रीतिकालीन काव्य की काव्यभाषा

इस काल में भाषा–सौंदर्य अपने चरम पर रहा। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन कवियों की भाषा में मिश्रण की प्रवृत्ति और व्याकरण के नियमों की अवहेलना करने का दोष लगाया है, पर कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि अन्य भाषाओं के शब्द अपना लेने से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विकास ही हुआ है।

रीतिमुक्त कवियों का भावावेग अभिव्यंजना के सभी उपकरणों को अपने अनुकूल ढालकर सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावी तो बनाता ही है, साथ ही आलंकारिकता तथा कृत्रिमता आदि दोषों से मुक्त रखता है। भाषा को अलंकारों, लाक्षणिक प्रयोगों तथा लयात्मक विधानों से सज्जित कर ये कवि अभिव्यंजना–शिल्प के नये आयाम खोलते हैं। सहज स्वाभाविक तथा संतुलित शब्द प्रयोग, अपेक्षानुसार अप्रस्तुत विधान एवं चमत्कार पैदा करती वाग्विदग्धता ही मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति का कारण बनती है। लोकोक्तियों

'अपनी प्रगति जांचिए'

37. रीतिकाल में स्वतंत्र रूप में किस बोली का प्रयोग गद्य में नहीं किया गया?
38. रीतिकाल में कौन सा गद्य उर्दू फारसी मिश्रित रूप में मिलता है?
39. रीतिकाल में किस साहित्य का विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ?
40. 'पंचायत का न्यायपत्र' के रचनाकार कौन हैं?

और मुहावरों का प्रयोग लोकजीवन से जोड़ता है तो उक्ति–वैचित्र्य कविता में कौतूहल पैदा करता है।

टिप्पणी

ब्रज भाषा इस काल के रीतिबद्ध कवियों की प्रमुख साहित्यिक भाषा रही। भारतीय साहित्य में लालित्य के क्षेत्र में संस्कृत भाषा के बाद ब्रजभाषा का स्थान आता है। एक तो यह मध्यदेशीय भाषा थी, दूसरी यह प्रकृति से मधुर थी और कोमल रसों की सुंदर अभिव्यक्ति की इसमें अपार क्षमता थी। डॉ. नगेंद्र का कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है– "भाषा के प्रयोग में इन कवियों ने एक खास नाजुक मिजाजी बरती है। इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश नहीं जिसमें माधुर्य नहीं है। अक्षरों के गुंफन में इन्होंने कभी भी त्रुटि नहीं की। संगीत के रेशमी तारों में इनके शब्द माणिक्य मोती की तरह गूंथे हुए हैं।" रीति सिद्ध कवियों ने भाषा की लक्षण और व्यंजना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। इन्होंने भाषा को मृदुल, कोमल, नाद–सौंदर्य से परिपूर्ण बनाने की चेष्टा की और प्रचलित कवित्त, सवैया के अतिरिक्त दोहों पर विशेष ध्यान दिया। रीति मुक्त कवियों ने साफ–सुथरी भाषा का प्रयोग किया है। प्रेम के वर्णन की स्वंच्छद पद्धति अपनाने के कारण रीतिमुक्त कवियों की भाषा और उसकी व्यंजना रीतिबद्ध कवियों से भिन्न है। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, मतिराम और पद्माकर को छोड़कर दूसरे कवियों में भाषा की सफाई के दर्शन नहीं होते। भूषण और देव आदि की भाषा में प्रादेशिकता का पुट बना रहा। परंतु रीतिमुक्त कवियों में न तो भाषा के अंग–अंग की प्रवृत्ति है और न ही प्रादेशिक पुट। रसखान और घनानंद ने तो ब्रज भाषा का ऐसा प्रयोग किया है जिसे ब्रज भाषा का साहित्यिक, परिनिष्ठित रूप स्वीकार किया जा सकता है। इन कवियों की भाषा में उक्ति–वैचित्र्य, लाक्षणिकता, लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग हुआ है। घनानंद की भाषा लाक्षणिकता विशेष हृदयग्राही है। ठाकुर ने लोकोक्तियों का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है।

डॉ. राजनाथ शर्मा ने इस काल के कवियों की भाषा शक्ति की महत्ता स्वीकार करते हुए माना कि इस काल का सा भाषा–परिष्कार और सौंदर्य छायावादी काव्य के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा में कोमलकांत पदावली, अलंकारों का रम्य, सार्थक प्रयोग, मुहावरों, कहावतों आदि का सुंदर और प्रचुर उपयोग जैसा इस काल में हुआ, उसकी हल्की सी झलक कृष्ण भक्ति काव्य में ही मिलती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

41. रीतिकालीन कवियों की भाषा में मिश्रण की प्रवृत्ति और व्याकरण के नियमों की अवहेलना करने का दोष किसने लगाया है?
42. किस रीतिकालीन कवि द्वारा लोकोक्तियों का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया गया?

गतिविधि

अपने मित्रों के साथ मिलकर सगुण एवं निर्गुण भक्तिधारा पर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

क्या आप जानते हैं?

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानंद बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुंशी थे। राजदरबार में ही सुजान नाम की स्त्री से उनका अटूट प्रेम था। सुजान के प्रेम के कारण ही उन्होंने बादशाह की ओर पीठ और सुजान की ओर मुंह कर गाना गाया, जिससे नाराज होकर बादशाह ने उन्हें राजदरबार से निकाल दिया।

2.13 सारांश

टिप्पणी

मध्यकालीन हिंदी साहित्य संपूर्ण विविधताओं से भरा है। आदिकाल के बाद जो भक्ति की धारा बही, उस समय जिस साहित्य की रचना हुई उसे 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है। क्योंकि इस काल में अधिकतर साहित्यिक रचनाएं भक्ति विषयक हैं, अतः इसे 'भक्तिकाल' कहना उचित ही है। इस काल के कवि भक्त पहले हैं, कवि बाद में। भक्तों ने किसी साहित्यिक रचना करने के उद्देश्य से रचनाएं नहीं कीं, बल्कि उनके हृदय से निकले उद्‌गार ही काव्य के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग दिखाई देता है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास का ऐसा स्वर्ण युग है, जिसमें बहुत से दर्शनों, विचारों, मतवादों और सिद्धांतों की उपस्थिति तो है ही, उनका अद्‌भुत समन्वय भी यत्र–तत्र उपलब्ध है। ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग की समन्वित मंदाकिनी जिस युग में प्रवाहित हो रही थी, उस युग की दार्शनिक पृष्ठभूमि ही इस सुंदर समन्वय का कारण बन रही थी। भक्ति काल की निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत जहां ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप की उपासना की गई, वहीं सगुण काव्यधारा में ईश्वर के साकार रूप की उपासना की गई। साथ ही भक्तिकालीन परिस्थितियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में इस काल के काव्य में वर्णित सगुण–निर्गुण, योग, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय देखते ही बनता है। भक्तिकाव्य का केवल साहित्यिक महत्व ही नहीं है वरन धार्मिक एवं सामाजिक महत्व भी है। भक्तिकाव्य में अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक है। भक्त मोक्ष की कामना छोड़ कर ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करने को अपना लक्ष्य बना लेता है।

भक्तिकाल में साहित्य की प्रवृत्ति बदल गई। इस युग में जितनी भी साहित्यिक रचनाएं हुईं वह ईश्वर भक्ति और सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं। भक्त कवि किसी साहित्यिक कीर्ति के लिए रचनाएं नहीं करते थे, उनके हृदय से निकले उद्‌गार ही काव्य बन गए। दक्षिण में आलवार संतों की वाणियां एक अंतःस्रोत के रूप में बहती हुई 12वीं–13वीं शती में आकर उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी। सामाजिक और धार्मिक बुराइयां भक्ति साहित्य के उदय का कारण बनीं। भक्ति साहित्य में सभी प्रकार की बुराइयों एवं अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया। नारी के विषय में कवियों के विचार भी तत्कालीन समय और समाज के अनुरूप थे। नारी को साधना की बाधा के रूप में स्वीकार किया गया। नारी आलवार संतों में सम्मिलित थीं तथापि चेतना जगाने का कार्य मीराबाई ने किया। मीरा की रचनाएं जहां प्रेम भक्ति और माधुर्य से पूर्ण प्रेम की पीड़ा को प्रकट करती हैं वहीं विद्रोह की भावना को भी दर्शाती हैं।

इस काल में अनुवाद का महत्वपूर्ण कार्य हुआ। बदांयूनी ने फारसी में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। शासक वर्ग के कारण फारसी साहित्य की उन्नति हुई। हिंदी के भक्त कवियों ने भक्ति संबंधी रचनाएं कीं। कबीर ने बीजक, जायसी ने पद्मावत, सूरदास ने सूरसारावली, नंददास ने रासपंचाध्यायी, तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली एवं रामचरितमानस की रचना की। अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल तथा टोडरमल हिंदी के श्रेष्ठ कवि थे। प्रायः सभी कवियों ने जनता की भाषा में ही अपनी बात कही। काव्य रूपों की दृष्टि

टिप्पणी

से इस काल में विविधता पाई जाती है।

भक्तिकाल को हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग नाम से अभिहित किया गया। वास्तव में साहित्य का श्रेष्ठतम अंश इसी काल में उपलब्ध होता है। साथ ही सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास, जायसी, नंददास, मीराबाई जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार इसी काल में हुए। इन कवियों ने धर्म, दर्शन, नीति, भक्ति एवं चरित्र–निर्माण की व्याख्या की। अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि दार्शनिक मत भी इसी काल ने दिए। हिंदू–मुस्लिम एक्य स्थापना एवं समन्वयवाद इसी काल की देन थी। वल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय का प्रवर्तन भी इसी काल में हुआ। ब्रजभाषा के काव्यरूप का भी बहुमुखी विकास इसी युग में संभव हो सका। अतः अभिव्यंजना की साज–सज्जा, अलंकृति तथा छंद, संगीत की दृष्टि से इसके वैभव की तुलना नहीं है।

भक्तिकालीन साहित्य के उत्कर्ष के समय ही रीतिकाल की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। यह काल सुख–समृद्धि का काल था। इस समय तक राजनीतिक विघटन प्रारंभ हुआ। राजनीतिक षड्यंत्रों, भयावह युद्धों एवं गृहकलह के कारण घटित होने वाली रक्तरंजित घटनाओं ने यहां के राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता उत्पन्न कर दी। रीतिकालीन साहित्य शृंगार से ओतप्रोत था। शृंगार के अंतर्गत इन्होंने मुख्यतः संयोग पक्ष का एवं नायिका के सौंदर्य का निरूपण किया। आलंबन की मधुर छवि एवं उसकी सूक्ष्म चेष्टाओं के अंकन के लिए उन्होंने नखशिख वर्णन की परंपरागत शैली में थोड़ा संशोधन करके नई पद्धति का विकास किया। दूसरी ओर शट्ऋतु और बारहमासा के वर्णन की प्रवृत्ति भी इस काल के कवियों में देखने को मिलती है। अनुभावों का वर्णन इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है रीतिकालीन काव्य, क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की शृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी कोमलता एवं मार्मिकता प्रदर्शित की वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस काल में शृंगार का जैसा चित्रण हुआ, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी दृष्टि चाहे नायिका भेद तक ही सीमित रही, किंतु उनकी जैसी सजीव एवं हाव–भावपूर्ण अनेकानेक मूर्तियां उन्होंने प्रस्तुत की हैं, वैसी किसी अन्य साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होतीं। सभी ने अपने काल की परिस्थितियों से प्रभावित होकर मुख्य रूप से रीतिनिरूपण संबंधी ग्रंथ लिखे जिनके भीतर संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर रस, छंद, अलंकार आदि काव्यांगों के विवेचन के लिए लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए।

रीतिकालीन कवियों के रचना संसार पर नजर डालें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदी में संभवतः ये पहले कवि थे, जिन्होंने कला को शुद्ध कला के रूप में देखा, सौंदर्य की साधना को ही अपने कर्तव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया। किंतु इन कवियों को घोर शृंगारी साहित्य लिखने की प्रेरणा कहां से मिली यह भी विचारणीय विषय हो सकता है, परंतु तत्कालीन समाज एवं परिस्थितियों पर नजर डालें तो इन प्रश्नों के उत्तर भी सहज ही मिल जाते हैं। ऐसा नहीं है कि रीतिकाल में केवल शृंगारी काव्य का ही सृजन हुआ हो। शृंगार के अतिरिक्त अन्य कई प्रवृत्तियां भी इस युग के काव्य में देखने को मिलती हैं। इस युग में इस दरबारी वातावरण से दूर रहकर निजी प्रेम की पीर को गाने वाले स्वच्छंद चितेरे कवि भी थे जो रीतिमुक्त कवि कहलाए। इन रीति इतर कवियों ने भक्ति, नीति, वीरता,

टिप्पणी

वैद्यक–चिकित्सा तथा ज्योतिष आदि विषयों पर भी काव्य–सृजन किया। इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और न रीतिकालीन परंपराओं को ही निभाया। इस प्रकार के दबाव से पूर्णतः स्वतंत्र रहकर विशुद्ध शृंगार की आत्मानुभूतिपरक कविता लिखी। विरक्ति–भावना और प्रकृति–चित्रण से संबंधित मुक्त काव्य रचने वाले ये रीतिमुक्त कवि निज प्रेम की पीड़ा को गाते–सुनाते रहे। इस तरह के कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव जाने जाते हैं।

जहां तक रीतिकाव्य के महत्व का प्रश्न है, यही कहना चाहिए कि घोर पराभव के युग में तथा समाज की अव्यवस्था तथा अशांति में भी जन–जन को सरसता से सींचने का जो कार्य इस काव्य ने किया वह सराहनीय है। इस इकाई में दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि रीतिकाल के कवि आचार्य भी थे। उनके काव्यशास्त्रीय पक्ष को देखें तो यही लगता है कि उन्होंने नवीन सिद्धांतों की उद्भावनाएं तो नहीं कीं पर प्राचीन सिद्धांतों का पुनराख्यान पूरे मनोयोग से किया है। काव्यशास्त्रीय परंपरा को जीवित रखने और आधुनिक युग से जोड़ने का जो कार्य इन कवि–आचार्यों ने पूरी श्रद्धा से किया वह स्तुत्य प्रयास ही कहा जाएगा। इस प्रकार मध्यकालीन हिंदी साहित्य भक्ति, प्रेम और सौंदर्य से परिपूर्ण रहा।

2.14 मुख्य शब्दावली

- **रहस्यवाद** : परमसत्ता की भावात्मक अनुभूति
- **मारफत** : साधक की वह स्थिति जिसमें वह कठिन उपवास और मौन साधना से परमात्मा के निकट पहुंच जाता है।
- **प्रतिबिंबवाद** : ब्रह्म बिंब और जगत प्रतिबिंब का भाव
- **तरीकत** : आत्म–शुद्धि
- **कनक** : सोना
- **नखशिख वर्णन** : पैर के नाखूनों से लेकर सिर के बालों तक का सौंदर्य वर्णन
- **रीतिइतर** : रीति से अलग
- **कुंदन** : सोना
- **उद्दीपन** : जगाना, उत्तेजित करना

2.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सन् 1526 में
2. शोचनीय
3. दीन–ए–इलाही
4. फारसी भाषा में
5. पूर्वी प्रांतों में

टिप्पणी

6. रामानुज और रामानंद
7. आदिग्रंथ का
8. संत ज्ञानेश्वर ने
9. निर्गुण काव्यधारा एवं सगुण काव्यधारा
10. भक्ति कवियों का
11. कृष्ण भक्ति काव्यधारा और राम भक्ति काव्यधारा
12. बारह कृतियों में
13. नल्लसिंह
14. चार वर्गों में
15. सत्रहवीं शताब्दी से
16. अहकामुस्सलात
17. जैन लेखकों का
18. सामंतों की
19. शोचनीय
20. एकेश्वरवाद
21. रामानंद जी
22. वास्तुकला
23. औरंगजेब की मृत्यु के बाद
24. राधाकृष्ण के
25. स्थापत्य कला में
26. 'रीति' शब्द का
27. रीतिकाल
28. शृंगार की
29. आचार्य शुक्ल ने
30. आचार्य केशव
31. चिंतामणि के
32. कुलपति मिश्र
33. रीति कवियों का
34. मुक्तक रचनाओं की
35. बिहारी
36. बोधा

टिप्पणी

37. खड़ी बोली का
38. दक्खिनी गद्य
39. राजस्थानी गद्य का
40. फणीन्द्र मिश्र
41. आचार्य शुक्ल ने
42. कवि ठाकुर द्वारा

2.16 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति काल के नामकरण एवं सीमांकन पर प्रकाश डालिए।
2. भक्ति काल की विभिन्न धाराओं की एक तालिका बनाइए।
3. संत काव्यधारा से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में लिखिए।
4. कृष्ण भक्ति काव्यधारा पर प्रकाश डालिए।
5. राम भक्ति काव्यधारा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
6. रीतिबद्ध काव्यधारा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
7. रीतिमुक्त काव्यधारा पर प्रकाश डालिए।
8. रीतिकालीन काव्य भाषा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की पृष्ठभूमि का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. भक्ति आंदोलन के विकास और व्याप्ति पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
3. संत काव्यधारा के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।
4. सूफी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
5. कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रमुख रचनाकारों और उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।
6. रामभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
7. भक्तियेतर काव्य का विस्तृत वर्णन कीजिए।
8. रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
9. रीतिसिद्ध काव्यधारा की प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
10. रीतिमुक्त काव्यधारा का परिचय देते हुए इसकी प्रमुख रचनाओं और रचनाकारों के नाम लिखिए।
11. रीतिकाव्य के गद्य साहित्य पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

2.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*।
- डॉ. रामकुमार वर्मा, *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*।
- रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ. भगीरथ मिश्र, *हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास*।
- डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, *भक्तिकालीन इतिहास*।
- डॉ. विजयेंद्र स्नातक, *भक्तिकालीन इतिहास,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।
- डॉ. नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- डॉ. शिवनाथ पांडेय, के.एल. पचौरी, *हिंदी काव्यशास्त्र की परंपरा,* प्रकाशन, दिल्ली।
- डॉ. रामकुमार वर्मा, *रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन,* साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद।
- डॉ. महेंद्र कुमार, *हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल–रीतिकाल,* आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।
- डॉ. पूरन चंद टंडन, *रीतिकालीन काव्य,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई 3 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि : सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक
3.3 आधुनिक काल का प्रारंभ और नामकरण
3.4 उन्नीसवीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नवजागरण
3.5 भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि–संत गंगादास एवं अन्य
3.6 हिंदी काव्य को भारतेंदु का अवदान
3.7 भारतेंदु मंडल के कवि तथा अन्य कवि
3.8 काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग
3.9 भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताएं
3.10 द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरूप
3.11 महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता
3.12 द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं
3.13 छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन
3.14 प्रमुख छायावादी कवि एवं उनका काव्य
3.15 छायावादकालीन अन्य कवि और उनका काव्य
3.16 छायावादी कविता के मान–मूल्य
3.17 छायावादकालीन काव्य का सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र
3.18 छायावादकालीन काव्य–भाषा का स्वरूप
3.19 सारांश
3.20 मुख्य शब्दावली
3.21 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.22 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.23 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

पिछली इकाई में आपने मध्यकालीन हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल एवं रीतिकाल की विशेषताओं का अध्ययन किया। भक्तिकाल में जहां भक्ति की सरसतायुक्त कवियों की लेखनी आध्यात्म चिंतन की ओर प्रवाहमान थी वहीं रीतिकाल में उसने शृंगारिकता का रुख कर लिया। रीतिकाल की घोर शृगांरिक कविता के बाद साहित्य को एक नयी दिशा मिली। यह दिशा 'आधुनिक काल' से प्राप्त हुई। इस इकाई में 'आधुनिक युग' पर चर्चा करेंगे।

किसी भी देश के इतिहास का उसके साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कारण यह है कि साहित्य उस राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। वह उन परिस्थितियों से अपना वर्ण्य–विषय, रूप, विद्या, आकार और परिमाण ग्रहण करता है।

टिप्पणी

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य से वर्ण्य, रूप, विधा आदि में भिन्न है। उसमें परिवर्तन की गति भी पूर्ववर्ती साहित्य की गति की अपेक्षा बहुत अधिक रही है। इन परिवर्तनों का कारण आधुनिक काल की भिन्न–भिन्न परिस्थितियां हैं, जो इस देश के पाश्चात्य जगत से संपर्क में आने के कारण उत्पन्न हुईं। साहित्य एक निरंतर गतिशील भावधारा और विचारधारा है, जो प्राचीन परंपराओं से जुड़ी होकर भी आगे बढ़ती रहती है।

'आधुनिक' शब्द कालवाचक 'अधुना' अव्यय से बना है। 'अधुना' का अर्थ है 'इस समय', 'संप्रति', 'वर्तमान काल'। अतः आधुनिक का अर्थ है 'इस समय का', 'हाल का', 'नया', 'वर्तमान समय का'। इस दृष्टि से केवल अपने सामने उपस्थित समय को ही 'आधुनिक काल' कह सकते हैं।

जब हम हिंदी साहित्य को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्य को नयी–नयी दिशाएं, नये–नये रूप और आयाम प्राप्त हुए। हिंदी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारत की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में परिवर्तन और नवीनता के लक्षण 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही दिखाई देते हैं। आचार्य शुक्ल ने 1900 ई. (1843) से आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ माना है।

वास्तव में 'आधुनिक' शब्द सापेक्षिक है। जहां 'आधुनिक' शब्द काल सापेक्षता को व्यक्त करता है वहीं यह नवीनता, वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिकता और तर्क–वितर्क की प्रवृत्ति का भी सूचक है। आज जीवन और साहित्य में 'आधुनिक' से यही तात्पर्य है। साहित्य के इतिहास– लेखकों ने हिंदी साहित्य के इतिहास के उस काल को 'आधुनिक' कहा है, जिसमें हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, जीवन–पद्धति, राजनीति, शासन–व्यवस्था, विज्ञान से हुआ।

लगभग दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारत में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिए, जिनकी कल्पना भी नहीं की गई थी। हिंदी जगत ने पश्चिमी जगत के जीवन मूल्यों वाली सभ्यता–संस्कृति, भाषा और भौतिक विज्ञान की शक्ति को चुनौती के रूप में खड़ा पाया। हिंदी जगत ने इन नयी परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और उनसे समझौते का मार्ग भी अपनाया। भारतीय चिंतकों एवं साहित्यकारों ने अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आंदोलनों द्वारा आधुनिक भारत एवं आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आधुनिक काल की पृष्ठभूमि से परिचित हो पाएंगे;
- आधुनिक काल के प्रारंभ एवं नामकरण के बारे में जान पाएंगे;
- 19वीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नव जागरण के स्वरूप का विवेचन कर पाएंगे;

टिप्पणी

- भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि–संत गंगादास एवं अन्य कवियों से परिचित हो पाएंगे;
- हिंदी काव्य को भारतेंदु जी के अवदान के बारे में जान पाएंगे;
- भारतेंदु मंडल के कवियों और अन्य कवियों से परिचित हो पाएंगे;
- काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग से अवगत हो पाएंगे;
- भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- द्विवेदी युग में नये काव्य परिवर्तन के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता के बारे में जान पाएंगे;
- द्विवेदी युगीन कविता की प्रमुख प्रवृतियों, रचनाओं और रचनाकारों से परिचित हो पाएंगे;
- छायावाद की पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन के विषय में जान पाएंगे;
- प्रमुख छायावादी कवि और उनके काव्य से अवगत हो पाएंगे;
- छायावादकालीन अन्य प्रमुख कवियों और उनके काव्य से परिचित हो पाएंगे;
- छायावादी कविता के मान–मूल्य की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- छायावादकालीन कविता के समाज–सांस्कृतिक और राजनैतिक चरित्र से अवगत हो पाएंगे;
- छायावादकालीन काव्य–भाषा के स्वरूप से परिचित हो पाएंगे।

3.2 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि : सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक

रीतिकाल के उत्कर्ष के बाद जिस नये युग का आगमन हो रहा था, उसके संकेत अंग्रेज़ों की नयी आर्थिक नीति, औद्योगिक क्रांति, संचार व्यवस्था तथा मुद्रणालयों के प्रचार–प्रसार से मिलने लगे। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता का अनुभव करने लगा था। परंपराएं टूट रही थीं, रूढ़ियों और पाखंडों का विरोध हो रहा था। लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा था। इस युग में बहुत से अंतर्विरोधों के बावजूद वैचारिक मान्यताओं के स्रोतों ने जनसामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया। आधुनिक काल की पृष्ठभूमि के बारे में जानने के लिए उस समय की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है जिनका विश्लेषण अग्रलिखित है–

1. **सामाजिक परिस्थितियां–** भारत की संस्कृति सदैव से समन्वय प्रधान रही है। भारत ने सदैव से विदेशी जातियों को भी आत्मसात किया। इस्लाम के प्रवेश के साथ संस्कृति में बदलाव आना प्रारंभ हुआ। ईसाई धर्मावलंबी पाश्चात्य जातियां आधुनिक विज्ञान और उसके उपकरण साथ लेकर आईं। साथ ही, उनकी भाषा

टिप्पणी

भी भौतिक ज्ञान, भौतिक समृद्धि का आकर्षक वाहन बनकर इस समाज के सामने खड़ी थी। यह भारतीयों के लिए एक नया अनुभव था। लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेज़ी भाषा तथा संस्कृति की स्थापना का कुचक्र चलाया। इसमें वह काफी हद तक सफल भी रहा। अंग्रेज़ों की इस कुटिल नीति का मंतव्य अंग्रेज़ीदां भारतीय क्लर्क तैयार करना था। वे अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल भी रहे। किंतु इस पाश्चात्य शिक्षा से अनेक भारतीय मनीषियों में अपने ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति से लेकर अध्यात्म दर्शन के प्रति आदर और राष्ट्र प्रेम की भावना जाग्रत हो गई। अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान और दर्शन की श्रेष्ठता का लोहा पहले ही मान चुके थे। भारतीयों को भी पाश्चात्य साहित्य व संस्कृति के अध्ययन से अपनी राष्ट्रीय महत्ता का भान हुआ। एक निष्पक्ष अंग्रेज़ विद्वान जेम्स जीन्स का मत है– "जब हमारे पूर्वज पशुओं का शिकार और एक–दूसरे की हत्या करते रहते थे तब भारत में परिपक्व दर्शन ग्रंथ रचे जा चुके थे। कला, कविता, साहित्य सभी दिशाओं में वह इंग्लैंड से आगे था।" कलकत्ता में एशियाटिक कॉलिज और फोर्ट विलियम कॉलेज और काशी में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई। सन् 1857 के उपरांत प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्वेषण का कार्य किया गया। भारतीय मनीषी भी बर्क, मिल, मैकाले, लॉक, मिल्स आदि से प्रभावित हुए।

2. **राजनीतिक परिस्थितियां–** इस समय देश राजनीतिक उथल–पुथल एवं परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। मुगलों की सत्ता उखड़ चुकी थी। व्यापारिक कंपनी के रूप में आई ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे–धीरे अपना असली रूप दिखाना प्रारंभ किया। भारत में यूरोपीय जातियों–पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डचों का भी आगमन हुआ। यहां के शासकों से मित्रता कर पुर्तगालियों ने गोआ, दमन व दीव में, फ्रांसीसियों ने चंद्रनगर, पांडिचेरी तथा माही में अपने उपनिवेश स्थापित किये।

जहांगीर ने अंग्रेज़ों को व्यापार की अनुमति दी। जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगज़ेब के समय तक अंग्रेज़ व्यापारी भारत की आंतरिक दशा को बहुत समझ चुके थे। औरंगज़ेब की अनुदार नीतियों ने मुगल शासन को काफी दुर्बल बना दिया था। बंगाल और बिहार पर अंग्रेज़ों का पूरा अधिकार हो गया और अवध का नवाब उनके हाथ की कठपुतली बन गया। धीरे–धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी नीतियां भारतीयों पर थोपनी प्रारंभ कर दीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1844 में 'विलय का सिद्धांत' बना लिया था। इसके द्वारा अंग्रेज़ों के अधीन देशी रियासतों के किसी निस्संतान शासक को दत्तक पुत्र लेने और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार छीन लिया गया। इसके माध्यम से उन्होंने सतारा, नागपुर, झांसी, जैतपुर, संभलपुर, बघाट आदि को अपने अधीन कर लिया। अवध के नवाब पर कुशासन का आरोप लगाकर 1856 में डलहौजी ने अवध को भी अपने अधिकार में ले लिया। डलहौजी और उसके पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों ने कुछ ऐसे विशेष कार्य और सुधार किये जिनसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हुआ। किंतु इन कार्यों

टिप्पणी

और सुधारों से भारतवासियों में भी एक नयी राष्ट्रीय चेतना जगी। इस संदर्भ में विलियम बैंटिक का नाम उल्लेखनीय है। लार्ड डलहौजी ने रेल, तार, और डाक व्यवस्था में सुधार किये। आधुनिकता की ओर यह एक महत्वपूर्ण पग था। मैकाले ने बैंटिक को अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से भारत में शिक्षा के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप बंबई, मद्रास तथा कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। यद्यपि इन कार्यों के पीछे अंग्रेज़ों का मुख्य उद्देश्य अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति करना ही था, तथापि इनके सहज परिणामस्वरूप भारत में विकास, प्रगति और चिंतन के नये आयाम स्थापित हुए। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की विजय से जिस ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार आरंभ हुआ था, वह 1857 में सारे भारत को आक्रांत कर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। तत्पश्चात सारे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह हुआ जिसे 'सिपाही विद्रोह' का नाम दिया गया।

3. **आर्थिक परिस्थितियां–** भारत की आर्थिक स्थिति भी अंग्रेज़ों के आगमन के बाद अत्यंत शोचनीय होती चली गई। भारत मूलतः कृषिप्रधान देश है तथा इसकी अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है। भारत के गांव छोटे–छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएं वहीं पूरी हो जातीं थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। अनेक उलटफेर हुए, किंतु गांव वैसे के वैसे ही बने रहे। अनेक लोग कृषि पर आश्रित थे, जबकि अन्य लुहार, नाई, धोबी, कुम्हार तथा बढ़ई थे। ग्राम और नगरों का कोई आपसी संबंध नहीं था।

नगरों का रहन–सहन, व्यापार, व्यवसाय बिल्कुल विपरीत थे। नगरों में राजा, नवाब, सामंत, सेठ–साहूकार वर्ग थे। अतः धनी वर्ग में सौंदर्य सामग्री, श्रेष्ठ हस्तशिल्प रत्नजड़ित आभूषण, मीनाकारी, रेशमी वस्त्र आदि वस्तुओं की खपत होती थी। अंग्रेज़ों के लिए भारत तथाकथित 'सोने की चिड़िया' था। अतः अंग्रेज़ भारतीय व्यापार से लाभ उठाते हुए भूमि का दोहन करने लगे। अंग्रेज़ों ने न केवल यहां के शासन को हस्तगत किया वरन् अर्थव्यवस्था को भी चौपट कर दिया।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैंड में कच्चे माल की मांग बढ़ी। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना बहुत–सा कच्चा माल अंग्रेज़ों को देना पड़ता था। इंग्लैंड में उससे उपभोक्ता सामग्री बनने के बाद उसकी खपत के लिए बाज़ार की आवश्यकता होती थी। वह बाज़ार पराधीन भारत था। यहां यह माल दुगुने–चौगुने मूल्य में बेचा जाता था। इस प्रकार अंग्रेज़ी शासन में सामंतवादी व्यवस्था के बाद उनकी नयी पूंजीवादी व्यवस्था में भारत के उद्योग–धंधों के चौपट होने से जो आर्थिक विपन्नता और व्यापक निर्धनता आई, वह अभूतपूर्व थी। ब्रिटिश कंपनी ने व्यापार ही नहीं, भारत में अपने शासन की स्थापना के लिए जो अनेक युद्ध किये, उनसे यहां की अर्थव्यवस्था पर बहुत घातक प्रभाव पड़ा।

किंतु यदि दूसरे पक्ष को देखें तो घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली। जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था, वह राष्ट्रीय एकता के प्रति भी जागरूक होने लगा। इससे एक नये मध्य वर्ग का उदय हुआ।

टिप्पणी

4. **सांस्कृतिक परिस्थितियां–** आधुनिक युग के इस परिवेश में ब्रिटिश जाति के भारत में सत्तारूढ़ हो जाने के परिणामस्वरूप भारतीय एवं यूरोपीय संस्कृति के संघर्ष को देखा जा सकता है। आरंभ में भारतीय संस्कृति ने सर्वोपरि होने का दंभ भरते हुए इस पाश्चात्य संस्कृति के सभी पक्षों का विरोध किया, किंतु वह कारगर न हो सका। ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि भारतीय सामंती संस्कृति समाप्त होने लगी तथा औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था का सूत्रपात होता चला गया। परिणामतः राष्ट्रीयता को भी बढ़ावा मिलने लगा। मानवतावाद का उदय और साम्राज्यवाद का विरोध भी खुलकर होने लगा। अतः सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से भी यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण युग कहा जा सकता है। अतीत के माध्यम से वर्तमान समस्याओं का, पुराख्यानों, पुरासंदर्भों तथा ऐतिहासिक पात्रों या चरित्रों का गुणगान साहित्य में भी होने लगा। सांस्कृतिक चेतना साहित्य में ढलने लगी। आधुनिक युग में हिंदी भाषा और साहित्य को भी नयी दिशा मिली। आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्यकार, कलाकार तथा चित्रकार आदि को तो प्रभावित किया ही, साहित्य की विभिन्न विधाओं, भाषाओं, शैलियों तथा माध्यमों को भी प्रभावित किया। पत्रकारिता के विकास ने हिंदी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया। साथ ही पद्य साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

अतः आधुनिक युग के हिंदी साहित्य, भाषा, संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं पर भी पश्चिमीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। तत्कालीन भाषा, मुहावरों, संस्कृति, मानसिकता एवं विषय–वैविध्य पर इस विदेशी प्रभाव को देखा जा सकता है। यह मिश्रित संस्कृति का सूचक है।

3.3 आधुनिक काल का प्रारंभ और नामकरण

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। सामान्यतया इसका प्रारंभ संवत् 1900 अर्थात 1843 ई. से माना जाता है। कुछ विद्वानों ने 1857 से नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है– "सामान्यतया रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है, नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है, किंतु साहित्य–क्षेत्र में नयी विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेंदु के रचनाकाल से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किंतु उसे भारतेंदु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्वेषण का कार्य कब किया गया?
2. ईस्ट इंडिया कंपनी ने विलय का सिद्धांत कब बनाया?
3. औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैंड में किस चीज की मांग बढ़ गई?
4. किसके विकास ने हिंदी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया?

नामकरण

आधुनिक शब्द दो अर्थों का द्योतक है, एक है–मध्यकाल से भिन्नता और दूसरा–इहलौकिक दृष्टिकोण। 1857 का विद्रोह मध्ययुग की समाप्ति एवं आधुनिक युग के प्रारंभ का शंखनाद था। देश के प्रबुद्ध वर्ग में नयी चेतना का संचार हुआ। इसी प्रकार रीतिकाल में

टिप्पणी

साहित्य अपने कथ्य और शैली की दृष्टि से रूढ़ हो चुका था। आधुनिक काल ने इसी जड़ता को समाप्त करके नवजागरण का संदेश दिया। साहित्यकारों ने मनुष्य के सुख–दुख को वाणी दी। साहित्य का प्रधान विषय सांसारिक हो गया तथा धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि के प्रति नया दृष्टिकोण सामने आया। इस प्रक्रिया में विषय, कथ्य के साथ–साथ भाषा भी परिवर्तित हो गई, खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ले लिया। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को दो खंडों में विभक्त किया है। पुनः दोनों खंडों को दो प्रकरणों में विभक्त किया है। गद्य के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा तथा दूसरे में खड़ी बोली है। जबकि दूसरे खंड को काव्य रूप में निरूपित किया तथा इसे तीन उत्थानों में विभक्त किया है। यदि इस विभाजन को सूक्ष्मता से अवलोकित किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें एकरूपता और समानता का अभाव है। इससे इतिहास की निरंतरता बाधित हुई है। साथ ही उन्होंने इस युग को 'गद्य युग' नाम से अभिहित किया है, किंतु ऐसा करने पर काव्य प्रवृत्ति की उपेक्षा हो जाएगी। यद्यपि इस काल में समाचार–पत्र, उपन्यास, निबंध और कहानी का तेज़ी से विकास हुआ, किंतु आधुनिक विचारों से ओत–प्रोत कविताएं भी सामने आई हैं। अतः इसे पूर्णतः 'गद्ययुग' कहना उपयुक्त नहीं है। इसलिए इस कालखंड का नाम 'आधुनिक काल' ही अधिक समीचीन है। इस नामकरण और युगीन प्रवृत्तियों में गद्य–पद्य की समस्त साहित्यिक विधा का स्वतः समावेश हो जाता है। आधुनिक काल को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है –

(क) पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) – 1857–1900 ई.

(ख) जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) – 1900–1918 ई.

(ग) छायावाद – 1918–1936 ई.

(घ) छायावादोत्तर काल

1. प्रगति–प्रयोग काल – 1936–1950 ई.
2. नवलेखन काल – 1950–अब तक

3.4 उन्नीसवीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नवजागरण

सन् 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ इतिहासकारों ने इसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी है, तो कुछ ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा। किंतु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की सुनियोजित जनक्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह, अमरसिंह, तांत्या टोपे आदि ने अपने प्राणों की आहूति दी। हिंदी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह व्यापक स्वतंत्रता–संग्राम सबसे पहले प्रारंभ हुआ।

इसके प्रेरक नाना साहब थे। इसके लिए कई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी थे। सारे देश में एक साथ सुनियोजित विद्रोह 31 मई, 1857 के दिन निर्धारित हुआ, किंतु कारतूसों में निषिद्ध चर्बी के प्रयोग को लेकर

टिप्पणी

भारतीय सैनिक निश्चित तिथि से दो महीने पहले ही उत्तेजित हो उठे। मंगल पांडे ने 29 मार्च, 1857 को विद्रोह कर दिया। उनकी सैन्य टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया, फलस्वरूप सारे देश में विद्रोह की आग फैल गई। स्वतंत्रता की ज्वाला शीघ्र ही सारे उत्तर भारत में फैल गई, जो हिंदी का विशाल क्षेत्र है। इस स्वतंत्रता संग्राम ने भारत के सभी प्रांतों के साहित्यकारों को प्रेरणा दी। हिंदी में आधुनिक काल में अनेक साहित्यकारों ने इसे उपन्यास, नाटक और कविता का विषय बनाया। सुभद्राकुमारी चौहान की पंक्तियां–

'खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी' इसी से प्रेरित थीं।

इस क्रांति का दमन अंग्रेज़ों ने कूटनीतिपूर्ण तरीके से किया। अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाकर विभिन्न मतों को लड़वाया। क्रांति के नेताओं का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया। अंग्रेज़ों ने तांत्या टोपे, लक्ष्मीबाई, नाना साहब, बहादुर शाह ज़फर का एक–एक करके अपनी कूटनीति से दमन कर दिया।

1857 की क्रांति के विषय में अनेक देशी–विदेशी इतिहासवेत्ताओं ने अपने मत व्यक्त किये हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है– "यह एक सुनियोजित क्रांति थी। विद्रोह के नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे और निःस्वार्थ देशभक्तों का एक समूह देश के कोने–कोने में इसकी अलख जगा रहा था, जिन्हें अपने देश की स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था।"

डॉ. के.एम. पाणिक्कर ने लिखा– "यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने सांप्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदू–मुसलमानों ने मिल–जुलकर कार्य किया।"

1857 की यह स्वाधीनता क्रांति निश्चय ही एक व्यापक जन–आंदोलन थी, इसका प्रमाण बहादुरशाह का वह महत्वपूर्ण घोषणा–पत्र है जो उस वर्ष 'पयामे आज़ादी' नामक एक समाचार पत्र में छपा था। जब बहादुरशाह को अंग्रेज़ हडसन ने बंदी बना लिया और उससे कहा–

दमदमें में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
ए 'ज़फर' बस हो चुकी शमशीर हिंदुस्तान की।।

इस कटु उक्ति को सुनकर कवि हृदय, देशभक्त और स्वाधीनता के लिए बलिदान को उत्सुक बहादुरशाह ने जो उद्‌गार प्रकट किये, वह किसी भी राष्ट्र–प्रेमी को सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

हिन्दियों में बू रहेगी, जब तलक इमान की।
तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिंदुस्तान की।।

1857 की इस घटना के बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में एक अधिनियम पारित कर भारत के प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर इंग्लैंड की सरकार को सौंप दिया। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा–पत्र द्वारा भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का कूटनीतिक प्रयास किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए इंडियन काउंसिल बनाई गई और भारत सचिव के पद की

टिप्पणी

स्थापना हुई। तत्पश्चात लार्ड मेयो तथा रिपन ने उदार नीति अपनाई। भारतीय जनता में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना बढ़ती जा रही थी। 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम के प्रयत्न से राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारंभ में यह राजभक्त संस्था थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक सुधारों तक सीमित था। किंतु बाद में लार्ड डफरिन की प्रेरणा से इसने राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य करना आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य किया जिसके द्वारा सब वर्गों और धर्मों के भारतीय मिलकर संवैधानिक प्रयासों से सरकार के समक्ष अपनी मांगें रख सकें। तत्पश्चात ब्रिटिश सरकार ने 1892, 1909 के अधिनियम पारित किये, इसी बीच 1905 में कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके भारतीयों को एकजुट होने का अवसर दे दिया। भारतीय मनीषियों राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद के द्वारा भारतीयों में स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के भाव जाग्रत किये जा चुके थे।

3.5 भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि–संत गंगादास एवं अन्य

संत कवि गंगादास भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के प्रमुख रचनाकार हैं। दुर्भाग्यवश इतने महत्वपूर्ण साहित्यकार की रचनाओं पर समय ने अपनी धूल जमा दी परंतु वे भारतेंदु से पूर्व ही खड़ी बोली में बड़ी सहजता से काव्य रचना कर रहे थे। उनका जन्म दिल्ली–मुरादाबाद मार्ग पर स्थित बहलोलपुर ग्राम में सन् 1823 में एक जाट परिवार में बसंत पंचमी के दिन हुआ था। उनके बचपन का नाम गंगाबख्श था। संन्यास लेने के बाद उन्हें गंगादास के नाम से जाना जाने लगा। इनके माता–पिता बचपन में ही परलोक सिधार गए। एक अच्छे गुरु की तलाश में इनकी मुलाकात संत बाबा विष्णुदास उदासीन से हुई। संसार के प्रति इन्हें विरक्त देखकर विष्णुदास ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। गंगादास ने 20 वर्षों तक काशी में रहकर वेदांत, व्याकरण, गीता, महाभारत, रामायण आदि अनेकानेक ग्रंथों का अध्ययन किया।

सन् 1857 की क्रांति के दौरान वे सक्रियता से काव्य रचना में लीन थे परंतु उनका काव्य उपलब्ध न हो पाने के कारण उन्हें पहचान नहीं मिल पाई। इस महाकवि ने 50 काव्य ग्रंथों के साथ अनेक स्फुट निर्गुण पदों की रचना की। भारतेंदु से पूर्व खड़ी बोली को इन्होंने ऐसा आधार प्रदान किया जिस पर भारतेंदु और उनके बाद के कवियों ने साहित्य का निरंतर विकास किया। इस प्रकार वे खड़ी बोली के आदि कवि सिद्ध होते हैं जो आधुनिक कवियों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुए। उनकी रचनाओं में काव्य कौशल के अद्‌भुत लक्षण दिखाई देते हैं। वे कबीर के फक्कड़पन, सूरदास की भक्ति और तुलसी की समन्वयवादी प्रवृत्ति को एक साथ लेकर चलते हैं। केशव की छंद योजना और बिहारी की कला भी साथ ही दिखाई देती है। उन्होंने लगभग 25 कथा काव्यों और हजारों निर्गुण पदों की रचना की है। उनके कथा काव्यों में– पार्वती मंगल (दो भाग), नल दमयंती, ध्रुव भक्त, कृष्ण जन्म, नरसी भक्त, नल पुराण, राम कथा, नागलीला, महाभारत पदावली, सुदामा चरित, बलि के पद, रुक्मणी मंगल, प्रह्लाद भक्त, भ्रमर गीत मंजरी तथा द्रोपदी चीर आदि प्रमुख हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को कितने खंडों में विभक्त किया है?
6. मंगल पांडे ने विद्रोह का बिगुल कब बजाया?
7. ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में अधिनियम पारित कर भारत के प्रशासन को किसे सौंप दिया?
8. भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का कूटनीतिक प्रयास किसने किया?
9. राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कब हुई?

टिप्पणी

उनके साहित्य में लोकोक्ति, मुहावरे एवं जनजीवन की भाषा का प्रयोग हुआ है। उनके द्वारा रचित कुंडलियां बच्चों में सामाजिक मूल्यों का बीजारोपण करने में सक्षम हैं। एक उदाहरण दृष्ट्व्य है–

पावैं शोभा लोक में, जो जन विद्यामान।
जिन विद्या बल हैं नहीं, सो नर भूत मसान।।

सो नर भूत मसान पशु पागल परवारी।
बिन विद्या नर सून ताल जैसे बिन वारी।।

गंगादास ये जीव जाति नर पशु कहावैं।
बिना सुगंधी सुमन कहीं आदर ना पावैं।।

उनकी रचनाओं में गुरुकृपा, माया, अहंकार, आशा, वियोग, उलटबासियां, प्रकृति और पुरुष, आत्मा और परमात्मा, योग और साधना जैसे गंभीर, दार्शनिक विषयों को सहजता से वर्णित किया गया है।

कबीर के अजपा जाप की बात उनके काव्य में ध्वनित होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

माला फेरो स्वास की, जपो अजप्पा जाप।
सोहं सोहं सुने से, कटते हैं सब पाप।।

कटते हैं सब पाप जोग–सरमें कर मंजन।
छः चक्कर ले शोध अंत पावें मनरंजन।।

गंगादास परकास होय खुलतेई घट–ताला।
मनो मेरा कहा, भजो स्वासों की माला।।

× × ×

माया मेरे हरी की, हरें हरी भगवान।
भगत जगत में जो फँसे, करें बरी भगवान।।

करें बरी भगवान, भाग से भगवत अपने।
इसे दीनदयाल हरी–हर चहिये अपने।।

गंगादास परकास भया मोह–तिमिर मिटाया।
संत भए आनंद ज्ञान से तर गए माया।

संत गंगादास के साहित्य की अनेक विद्वानों ने भरपूर सराहना की है। डॉ. जगन्नाथ शर्मा 'हंस' ने संत गंगादास पर विस्तृत शोध किया है। सन् 1970 में उन्होंने 'महाकवि गंगादास–व्यक्तित्व एवं कृतित्व' विषय पर शोध लिखा। उनके अनुसार–

"संत गंगादास के काव्य को पढ़ कर हिंदी साहित्य के इतिहास में निर्गुणमार्गी और सगुणमार्गी (संतों और भक्तों) के बीच की दीवार गिरानी होगी। क्योंकि इस कवि ने ज्ञान और भक्ति, निराकार और साकार साधना का सुंदर समन्वय किया है। समन्वय में संत गंगादास तुलसी से भी आगे हैं।

टिप्पणी

रिश्वतखोर अदालतों, भ्रष्ट अधिकारियों और बेईमान कर्मचारियों का सांगोपांग चित्रण करने वाले गंगादास भारतीय स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। हिंदी साहित्य का 'आधुनिक काल' गंगादास से ही प्रारंभ हो गया था। उन्होंने न केवल स्वतंत्रता का ही बिगुल बजाया, बल्कि नैतिक मूल्यों की स्थापना द्वारा भी राष्ट्र को दृढ़ बनाया। आधुनिक हिंदी काव्य को पढ़कर जो यह दोष लगाया जाता है कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पक्ष और अंग्रेजी शासन के विरोध में बहुत कम लिखा गया, वह दोष गंगादास–काव्य को दृष्टिगत कर नहीं लगाया जा सकेगा, क्योंकि उनके काव्य में अंग्रेजी शासन की खुली आलोचना उपलब्ध होती है।"

इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने संत गंगादास के विषय में अपने मत इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं–

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–"हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका के अतिरिक्त संत काव्य की सौंदर्य दृष्टि और कला पर संत गंगादास का काव्य सुंदर प्रकाश डालता है।"

डॉ. रामकुमार वर्मा–"ज्ञान भक्ति और काव्य की दृष्टि से संत कवि गंगा दास विशेष प्रतिभावान रहे हैं परंतु इनका काव्य अनुपलब्ध होने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख नहीं हो सका था।"

डॉ. गोपीनाथ तिवारी–"जब भारतेंदु और ग्रियर्सन प्रभृति विद्वान खड़ी बोली को हिंदी काव्य रचना के लिए अनुपयुक्त मान रहे थे उससे पहले केवल संत गंगादास अनेक सुंदर छंदों और वृत्रों द्वारा खड़ी बोली के कलापूर्ण और सुंदर काव्य की अनेक रचनाएं प्रस्तुत कर चुके थे।"

डॉ. विजयेंद्र स्नातक–"संत कवि गंगादास का काव्य भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली हिंदी काव्य का उच्चतम निदर्शन है और हिंदी साहित्य के इतिहास की अनेक पुरानी मान्यताओं के परिवर्तन का स्पष्ट उद्घोष भी करता है।"

डॉ. लक्ष्मण शर्मा लिखते हैं कि "भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली हिंदी काव्य का उच्चतम निदर्शन ही गंगादास–काव्य है। जब ग्रियर्सन, भारतेंदु आदि अनेक साहित्यकार खड़ी बोली में हिंदी काव्य सृजन की संभावना का उद्घोष कर रहे थे, उससे भी पहले गंगादास खड़ी बोली के ललित और काव्योपयोगी स्वरूप का निर्माण करके उसमें मनोहर काव्य की रचना कर चुके थे।"

अन्य कवि

गंगादास के समकालीन कवियों में गुमानी पंत का नाम प्रमुख है।

गुमानी का जन्म 1790 ई में नैनीताल जिले के काशीपुर में हुआ। इनकी शिक्षा–दीक्षा मुरादाबाद के पंडित राधाकृष्ण वैद्यराज तथा मालौंज निवासी पंडित ज्योतिर्विद की देख–रेख में हुई। राजकवि के रूप में ये सर्वप्रथम काशीपुर नरेश गुमानसिंह देव की सभा में नियुक्त हुए।

गुमानी पंत कुर्मांचल में खड़ी बोली को काव्य रूप देने वाले प्रथम कवि हैं। इनकी रचनाएं हिंदी मिश्रित संस्कृत, कुमांउनी, नेपाली, खड़ी बोली, संस्कृत और ब्रज भाषा में हैं। इसका एक उदाहरण देखिए–

टिप्पणी

बाजे लोग त्रिलोकनाथ शिव की पूजा करें तो करें। (हिंदी)

क्वे–क्वे भक्त गणेश का जगत में बाजा हुनी त हुन्।। (कुमांउनी)

रामो ध्यान भवानि का चरण मां गर्छन कसैले गरन्।। (नेपाली)

धन्यात्मातुल धामनीह रमते रामे गुमानी कविः।। (संस्कृत)

रामनाम पंचासिका, राम महिमा वर्णन, गंगाशतक, जगन्नाथाष्टक, कृष्णाष्टक, राम सहस्रगणदंड, चित्र पदावली, राम महिमा, रामाष्टक, कालिकाष्टक, राम विषय भक्ति विज्ञप्तिसार, तत्व बोधिनी पंच पंचाशिका, नीतिशतक शतोपदेश, ज्ञान भेषज्य मंजरी इनकी रचनाएं हैं।

इस समय के अन्य कवियों में अगला नाम राजा लक्ष्मण सिंह का नाम आता है।

राजा लक्ष्मण सिंह का जन्म 9 अक्टूबर 1826 ई. को आगरा के वजीरपुर नाम स्थान पर हुआ कि 13 वर्ष की उम्र तक इन्होंने संस्कृत और उर्दू की शिक्षा प्राप्त की। 1863 ई. में महाकवि कालिदास की अमरकृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का हिंदी अनुवाद 'शकुंतला नाटक' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें इन्होंने हिंदी की खड़ी बोली का जो नमूना पेश किया उसे देखकर सभी चकित रह गए। सन् 1881 ई. में इनका 'मेघदूत' के पूर्वार्ध और 1883 ई. में उत्तरार्ध का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ जिसमें चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पय, कुंडलियां और धनाक्षरी छंदों का प्रयोग किया गया है।

3.6 हिंदी काव्य को भारतेंदु का अवदान

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु हरिश्चंद्र एक साथ नाटककार, कवि, पत्रकार, निबंधकार, व्यंग्यकार, उपन्यासकार, कहानीकार और भी अनेक रूपों में उदित हुए। उन्हें हिंदी का पितामह माना जाता है क्योंकि उन्होंने एक पितामह की तरह अपने समस्त सामाजिक, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वाह किया।

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. संत गंगादास के बचपन का नाम क्या था?
11. गंगादास ने कितने काव्य ग्रंथों की रचना की?
12. गंगादास पर विस्तृत शोध किसने किया?
13. 1863 ई. में 'अभिज्ञान शांकुतलम' का हिंदी अनुवाद किसने किया?

हिंदी साहित्य के पितामह

हिंदी नाटकों का सूत्रपात करने वाले भारतेंदु जी के जीवन पर नजर डालकर समझा जा सकता है कि 35 साल की छोटी उम्र में भारतेंदु ने हिंदी साहित्य में जो योगदान दिया है, वह बेजोड़ है। शुरुआत से देखें तो उन्हें स्कूली शिक्षा नहीं मिली। घर में ही भारतेंदु ने हिंदी, मराठी, बांग्ला, उर्दू और अंग्रेजी सीखी। पांच साल की नन्हीं उम्र में बालक हरिश्चंद्र ने एक दोहा लिखा–

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
वाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।

इसी उम्र में भारतेंदु ने अपनी मां को खोया था। 10 साल की उम्र में पिता का साया भी भारतेंदु के ऊपर नहीं था। 15 साल की उम्र में भारतेंदु ने विधिवत साहित्य सृजन शुरू कर दिया था और 18 की उम्र में उन्होंने 'कवि वचन–सुधा' नामक साहित्यिक पत्र निकाला, जिसमें अपने समय के शीर्ष विद्वानों की रचनाएं प्रकाशित हुईं। वे 20 वर्ष की

टिप्पणी

उम्र में साहित्यिक सभा के ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन के घटनाक्रमों को देखकर लगता है कि कोई साधारण युवा अपने माता–पिता को खोकर दिशाहीन हो सकता था परंतु भारतेंदु ने पूरे हिंदी साहित्य संसार को दिशा देने का कार्य किया। सन् 1873 में उनकी पहली गद्य कृति 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आई। इसी समय भारतेंदु ने विशाखदत्त के मशहूर नाटक 'मुद्राराक्षस' का संस्कृत से हिंदी में अनुवाद किया। उनके बाद कुछ अन्य लेखकों ने भी इस नाटक का अनुवाद किया, लेकिन जो ख्याति भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद को मिली, वह किसी और को नहीं मिल सकी। इससे स्पष्ट होता है कि उन्हें अनुवाद के महत्वपूर्ण तत्वों की परख थी। उन्होंने हर्ष रत्नावली, विद्या सुंदर, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बंधू (शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद जो उनकी असामयिक मृत्यु के कारण अधूरा रह गया) के अनुवाद भी हिंदी साहित्य को दिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सत्य हरिश्चंद्र' (1875), 'श्री चंद्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1876–1880 के बीच), 'नीलदेवी' (1881) जैसे मौलिक नाटक भी लिखे। उनका एक साथ कई भाषाओं पर अधिकार था। 1973 में 23 वर्ष की आयु में अंग्रेजी में हरिश्चंद्र मैगज़ीन, हिंदी में हरिश्चंद्र पत्रिका और बालबोधिनी नामक तीन और पत्रिकाओं के मुख्य संपादक के रूप में हिंदी की सेवा शुरु की। हिंदी भाषा को वे राष्ट्रीय गौरव मानते थे–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।

समाज सुधारक

भारतेंदु हरिश्चंद्र बंगाल के पुनर्जागरण से बहुत प्रभावित थे जहां औरतों की स्थिति में सुधार के लिए आंदोलन हो रहे थे। भारतेंदु ने एक कदम आगे बढ़ते हुए इन सब सुधारों के साथ मजबूरी में यौन शौषण के दलदल में फंसी वेश्याओं की स्थिति में सुधार का काम भी शुरू किया। उन्होंने न केवल लोगों को प्रेरित किया बल्कि वाराणसी की उस समय की बदनाम गली, दालमंडी में खुद जाकर वेश्याओं और उनके परिवारों को पढ़ाना भी शुरु किया।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पुरोधा एवं नये युग प्रवर्त्तक

हिंदी साहित्य में उनका जीवन काल उनके युग के नाम से जाना जाता है। इससे समझा जा सकता है कि अपने समय के साहित्य पर भारतेंदु का प्रभाव किस हद तक होगा। भारतेंदु जिस कालखंड में लिख रहे थे, वह संधिकाल था। रीतिकाल की विकृत सामन्ती सोच को सींचने वाली परंपराएं पूरी तरह मिटी नहीं थीं और कुछ रचनाकार उन्हें जीवित रखना चाहते थे। ऐसे में भारतेंदु ने स्वस्थ परंपरा की जमीन पर अपनी लेखनी चलाई और आधुनिकता के बीज बोए। आधुनिक काल की शुरुआत करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र नवजागरण के अग्रदूत के रूप में देश की गरीबी, पराधीनता, अंग्रेजों के अमानवीय शोषण की कलई खोलने निकले थे। वे कभी कविता लिखते, उससे बात पूरी न होती तो नाटक की ओर मुड़ जाते। साथ ही व्यंग्य और निबंध भी लिखते। यानी विधाएं भारतेंदु के लिए महत्वपूर्ण नहीं थीं बल्कि वह कथ्य जरूरी था, जो वे जनता तक पहुंचाना चाहते थे। इसमें

टिप्पणी

वे भाषा भी बदलते रहे। कभी ब्रज, तो कभी उर्दू, और मौका लगा तो बांग्ला और अंग्रेजी भी लिख डालते थे।

हिंदी साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध सभी विधाओं में उनका योगदान अमूल्य है। भारतेंदु की विचारधारा पर भक्त कवियों का गहरा असर था। इन रचनाओं में जो जनपक्ष था उसे भारतेंदु ने संवारा और नयी परिस्थितियों में उसे विकसित किया। उनकी समाज सुधार संबंधी रचनाओं में भी भक्त कवियों की स्थापनाएं दिखाई देती हैं। भारतेंदु ने जहां श्रृंगारिक कविताओं के लिए रीतिकालीन रसपूर्ण अलंकार शैली का प्रयोग किया तो वहीं भक्ति पदों में वे भावात्मक हो गये। अपनी समाज–सुधार संबंधी रचनाओं में वे व्यंग्य की शरण में गये तो देश–प्रेम की कविताओं में उद्‌बोधन शैली का प्रयोग किया।

कवि भारतेंदु का परिचय 'दान–लीला', 'प्रेम तरंग', 'कृष्ण चरित्र' जैसे भक्ति काव्यों से होता है। वहीं 'सतसई श्रृंगार', 'होली मधु मुकुल' में श्रृंगारिक काव्य का लुत्फ मिलता है। 'भारत वीरत्व', 'विजय–बैजयंती' और 'सुमनांजलि' में राष्ट्रप्रेमी भारतेंदु की छवि देखी जा सकती है।

भारतीय नाट्य इतिहास में भारतेंदु का नाम हमेशा आदर से लिया जाता रहेगा। उनके नाटक 'बंदर–सभा', 'बकरी का विलाप' और 'अंधेर नगरी चौपट राजा' हास्य–व्यंग्य और कटाक्ष का बेजोड़ नमूना हैं। नाटकीयता भारतेंदु के जीवन में रची बसी विशेषता थी। अंधेर नगरी को भारत का अब तक का सबसे प्रसिद्ध नाटक माना जाता है। इसका बहुत सारी भाषाओं में अनुवाद भी किया गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने नाटकों के लेखक के साथ–साथ मुख्य कलाकार, निर्देशक और निर्माता भी हुआ करते थे।

ब्रज भाषा में रचनाकर्म के दौरान भारतेंदु पर दोहरी जिम्मेदारी थी। उन्होंने लोक के बीच काव्य–नाट्य की पैठ भी बनाई और भाषा के संस्कार भी विकसित किये। वे एक साथ कई भाषाओं में लिख रहे थे। हिंदी के छंदों के अलावा उन्होंने उर्दू, संस्कृत, बांग्ला के पदों का भी भरपूर प्रयोग किया है। संस्कृत के बसंततिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी और हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियां, सवैया भारतेंदु के काव्य में बिखरे पड़े हैं। बांग्ला के पयार और रेखता की गजल भी भारतेंदु की रचनाओं में दिखती हैं, तो कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चैती जैसे लोक–छंदों को भी उन्होंने बखूबी साधा।

अलंकारों के प्रयोग में भारतेंदु ने अपने युग में जो मिसाल कायम की है, वह आने वाले कई दशकों तक परंपरा बनी रही। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु के लगाव के बारे में तो सभी जानते हैं। भारतेंदु ने शब्दालंकारों को भी अपने काव्य में भरपूर जगह दी है। साथ ही दो अलंकारों को साथ–साथ साधने में उनका कोई सानी नहीं दिखाई देता। उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का यह उदाहरण हर विद्यार्थी की जुबान पर रटा रहता है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।।

उनकी कविता के बिंबों, नाटकों के मारक व्यंग्यों और गद्य के उत्कृष्ट नमूनों से तो हिंदी समाज परिचित है ही मगर इसके अलावा उन्होंने कुछ मुकरियां भी लिखी हैं।

टिप्पणी

मुकरियों से हिंदी समाज को सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने परिचित कराया। अमीर खुसरो की मुकरियों (जिसमें पहले कही बात का अंत में खंडन सा करके उत्तर दिया जाता है) की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भारतेंदु ने अपने समय पर तीखे व्यंग्य किये। भारतेंदु द्वारा रचित मुकरियों में उद्देश्य निहित है, यहां उनके द्वारा रचित मुकरियों की सोद्देश्यता देखते ही बनती है। इस मुकरी में शराब पीने के परिणामों को बखूबी प्रस्तुत किया गया है–

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै।
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहिं करे खराब।
क्यों सखि सज्जन नहिं सराब।

उनकी मुकरियों में सामाजिक जागरण के स्वर भी हैं। अंग्रेजों ने 'सोने की चिड़िया' कहे जाने वाले भारत को खोखला कर दिया, इस बात को वे इस प्रकार कहते हैं–

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज।

आम जनता का सामान्य ज्ञान बढ़ाने की पहल भी उनकी मुकरियों में देखी जा सकती है–

सतएँ अठएँ मों घर आवै।
तरह तरह की बात सुनावै।
घर बैठा ही जोड़ै तार।
क्यों सखि सज्जन नहिं अखबार।

भारतेंदु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। जीवन के मात्र 35 वर्षों में इन्होंने लगभग 150 से अधिक ग्रंथों की रचना की। भारतेंदु जी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे एक साथ कवि नाटककार, पत्रकार एवं निबंधकार थे। हिंदी की अनेक नवीन विधाओं के जन्मदाता के रूप में कविता नाटक और निबंध के द्वारा उन्होंने हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की और साथ ही साथ अनेक कवियों और लेखकों को आर्थिक सहायता देते रहकर इन्होंने हिंदी साहित्य के विभिन्न अंगों का विकास किया। आर्थिक क्षति उठाते हुए भी इन्होंने अनेक पत्रिकाएं निकाली और हिंदी को समृद्ध करने का प्रयत्न किया। उनकी इसी सेवा से प्रभावित होकर हिंदी जगत ने उन्हें भारतेंदु की उपाधि से विभूषित किया और उनके नाम से उनका युग चला। भारतेंदु के साहित्य में देश प्रेम, सामाजिक दुरावस्था और कुप्रथाओं का विरोध, धार्मिक रुढ़ियों और अंधविश्वासों का खंडन स्त्री–शिक्षा और स्वतंत्रता आदि सामाजिक विषयों का समावेश हिंदी साहित्य में पहली बार हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के विषय में लिखा है–"अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर वह पद्माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर से बंगदेश के माईकेल और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर राधा–कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तमाला गूंथते दिखायी देते थे, दूसरी ओर मंदिरों में अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा,

टिप्पणी

समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुंदर सामंजस्य भारतेंदु काल की कला का विशेष माधुर्य है। प्राचीन और नवीन के उस संधि काल में जैसी शीतल छाया का संचार अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ, इसमें संदेह नहीं।"

भारतेंदु ने कविता क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग किया और गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली का व्यवहार किया। खड़ी बोली गद्य का विकास इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना है। भारतेंदु जी ने अनेक नवीन गद्य रूपों का विकास किया, जिनका माध्यम खड़ी बोली थी। ये नये रूप थे–पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना और निबंध आदि। इन रूपों का प्रचार और प्रसार हिंदी में पहली बार हुआ। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रसिद्ध हैं। हिंदी में उन्होंने जिस साहित्यिक परंपरा की नींव डाली, आज का साहित्यिक भवन उसी पर टिका हुआ है। उन्होंने अपनी प्रतिभा का एक–एक अंश हिंदी को अर्पित कर दिया। हिंदी को राजदरबारों से निकालकर उन्होंने जनजीवन के निकट लाने का सराहनीय प्रयास किया। उन्होंने आधुनिक युग की नयी चेतना को गहराई से परखकर साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यक्त कर हिंदी साहित्य को जन–जीवन के साथ जोड़ा।

3.7 भारतेंदु मंडल के कवि तथा अन्य कवि

भारतेंदु मंडल में भारतेंदु के पश्चात प्रतापनारायण मिश्र का प्रमुख स्थान है। प्रतापनारायण मिश्र प्रतिभा संपन्न निबंधकार थे। इनमें रचना क्षमता की अद्वितीयता विद्यमान थी। लेखन कला में इन्होंने भारतेंदु हरिश्चंद्र को अपना आर्दश स्वीकारा। फिर भी इनकी शैली में भारतेंदु की शैली से अत्यधिक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने अनेक निबंध लिखे जिनमें प्रमुख निबंध हैं–'नाखून क्यों बढ़ते हैं'? 'मूंछ', 'भौं', 'दांत', 'पेट' आदि शारीरिक अंगों पर लिखे गए निबंध। 'ट', 'त' जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर लिखे गए निबंध। 'बेगार', 'रिश्वत', 'देशोन्नति', 'धर्म और मत', 'उन्नति की धूम', 'बाल विवाह', 'विलायत यात्रा', 'अपव्यय' आदि विषयों से संबंधित विचार प्रधान निबंध। 'न्याय', 'ममता', 'सत्य', 'स्वतंत्रता' आदि वैचारिक निबंध। 'कनातन का डौल बांधै', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'वृद्ध', आदि कहावतों, लोकोक्तियों, सूक्तियों को शीर्षक बनाकर लिखे गए निबंध। इन्होंने कुछ नाटक भी लिखे; यथा– 'कलि कौतुक रूपक', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गौ संकट', 'जुवारी खुवारी'।

पंडित बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रमुख रहे हैं। भट्ट संस्कृत के पंडित थे। अंग्रेजी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति से वे पूर्णरूपेण अवगत थे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील व्यक्ति थे। भट्ट अपने विचारात्मक निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने छोटे–छोटे अनेक निबंध लिखे; यथा–'वायु', 'प्रकाश', 'धूमकेतु', 'पेड़', 'सीसा', 'वनस्पति', 'विज्ञान', 'भूगर्भ निरूपण', 'पदार्थवाद' आदि वैज्ञानिक निबंध हैं। इन्होंने शारीरिक अंगों; यथा–'आंख', 'कान' आदि पर निबंध लिखे। 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' इनका प्रमुख निबंध है। 'प्रेम और भक्ति', 'तर्क और विश्वास', 'ज्ञान और भक्ति', 'विश्वास, प्रीति', 'अभिलाषा', 'आशा', 'स्पर्धा', 'धैर्य', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है?' आदि इनके वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है?' आदि इनके प्रमुख वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा' उपयुक्त विशेषण और विशेष्य, 'खड़ी और पड़ी बोली का विचार', 'हिंदी की पुकार', आदि इनके साहित्यिक चिंतन प्रधान निबंध हैं। इन्होंने–'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' आदि उपन्यास भी लिखे।

बदरीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमधन' था। ये अपने नाम से पूर्व उपाध्याय भी लगाते थे। इन्होंने निबंध, कविता तथा नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इन्होंने 'भारत सौभाग्य', 'वारांगना–रहस्य', 'प्रयाग समापन', 'वृद्ध विलाप' आदि नाटक भी लिखे।

अन्य कवि

लाला श्रीनिवास दास ने नाटक और उपन्यास लिखे। ये संसार को ऊंचा नीचा समझने वाले पुरुष थे। इन्होंने 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'रणधीर–प्रेम मोहिनी' आदि नाटक लिखे। इन्होंने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास भी लिखा।

राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह मध्य प्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। वे शिक्षा प्राप्त करने काशी चले गए। जहां इन्होंने संस्कृत एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र से उनका संपर्क हो गया किंतु भारतेंदु की रचना शैली का प्रभाव उन पर वैसा नहीं पड़ा जैसा भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों पर पड़ा। वे संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता तथा हिंदी के एक प्रेम पथिक कवि एवं माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे। 'प्रेम संपत्ति लता', 'श्याम लता', 'श्यामा सरोजनी', एवं 'देवयानी' इनकी काव्य कृतियां हैं। इन्होंने 'श्यामा स्वप्न' नामक उपन्यास भी लिखा।

बाबू तोता राम– हरिश्चंद्र चंद्रिका के लेखकों में से हैं। ये आजीवन हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में तत्पर रहे। इन्होंने भाषा संवर्धिनी सभा की स्थापना की। इन्होंने 'केटो कृतांत नाटक', 'स्त्री सुबोधिनी' का अनुवाद किया।

पंडित केशव राम भट्ट ने बिहार प्रांत में हिंदी प्रचार–प्रसार हेतु अनेक यत्न किये। इन्होंने 'शमशाद सौसन' तथा 'सज्जाद संबुल' नामक नाटक लिखे।

पंडित राधाचरण गोस्वामी में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के प्रभाव से समाज सुधार एवं देशभक्ति का भाव जागृत हुआ। इन्होंने 'विदेश यात्रा विचार' तथा 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तकें लिखीं और भारतेंदु नामक पत्र निकाला।

अंबिका दत्त व्यास कविवर दुर्गा दत्त व्यास के पुत्र थे। वे संस्कृत और हिंदी के अच्छे विद्वान थे तथा दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन का कार्य करते थे। 'पावस पचासा', 'सुकवि सतसई' तथा 'हो हो होरी' इनकी काव्य कृतियां हैं। 'कंस वध' (अपूर्ण), 'ललिता नाटिका', 'गद्य मीमांसा' इनके प्रबंध काव्य हैं। इन्होंने 'भारत सौभाग्य', 'गो संकट', 'मरहेट्टा' आदि नाटक लिखे। 'बिहारी विहार', 'अवतार मीमांसा' इनकी कुंडलियां हैं।

पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या ने गिरती दशा में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' को सहारा दिया था तथा उसमें अपना नाम भी जोड़ा था। कविराज श्यामल दास जी ने जब अपने

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. भारतेंदु की पहली गद्य कृति 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कब प्रकाशित हुई?
15. भारतेंदु ने विधिवत साहित्य सृजन किस उम्र में शुरू कर दिया था?
16. भारतेंदु हिंदी भाषा के प्रयोग को क्या मानते थे?
17. भारतेंदु ने लगभग कितने ग्रंथों की रचना की?
18. भारतेंदु ने कविता के क्षेत्र में किस भाषा का प्रयोग किया?

टिप्पणी

टिप्पणी

'पृथ्वीराज चरित्र' ग्रंथ के द्वारा चंदवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ प्रमाणित किया, उस समय इन्होंने 'रासो संरक्षा' की रचना कर उसे प्रमाणित महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था।

पंडित भीमसेन शर्मा स्वामी दयानंद सरस्वती के दायें हाथ थे। संवत् 1940–1942 वि. के मध्य इन्होंने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखीं एवं संस्कृत ग्रंथों के हिंदी भाष्य भी प्रकाशित किये। इन्होंने 'आर्य–सिद्धांत' नामक मासिक पत्र निकाला और 'संस्कृत भाषा की अद्‌भुत शक्ति' निबंध की रचना की।

बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री ने कोलकाता से हिंदी का एक अच्छा पत्र और पत्रिका निकालने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया। इन्होंने सन् 1928 ई. में 'हिंदी दीप्ति प्रकाश' का नाम संवाद पत्र तथा 'प्रेम विलासिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र, पंडित छोटू लाल मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र, बाबू जगन्नाथ खन्ना इन सभी के प्रयास से संवत् 1934 वि. में कलकत्ता में 'भारत मित्र कमेटी' की स्थापना हुई तथा 'भारत मित्र' पत्र निकला। इसका बहुत दिनों तक हिंदी संवाद पत्रों में उच्च स्थान रहा।

राधाकृष्ण दास भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इन्होंने कविता के अलावा नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्रों में सराहनीय साहित्य रचना की। इन्होंने 'भारत बारह मासा', 'देश दशा' नामक कविताओं और 'दुःखिनी बाला', 'महाराणा प्रताप' नामक नाटकों की रचना की।

3.8 काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग

भारतेंदु युगीन काव्य भाषा के संघर्ष पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह युग अपने पूर्ववर्ती युग से कुछ ग्रहण कर रहा था तो परवर्ती युग के लिए प्रेरणास्रोत बनने का प्रबल आकांक्षी था। उस युग के साहित्यकारों का दृष्टिकोण बहिर्मुखी था तथा उसमें सामाजिक चेतना उद्‌बुद्ध थी, किंतु उस युग के साहित्य में प्रौढ़ता अपेक्षाकृत कम थी। उस युग के गद्य का स्वरूप गोष्ठियों तक सीमित रहा।

इस काल में भाषा संबंधी जो महान विवाद खड़ा हुआ उसका प्रतिनिधित्व पत्र–पत्रिकाओं ने भी किया। इस काल में प्रकाशित होने वाली 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी निबंध भी छपते थे, इनके माध्यम से नवशिक्षित अंग्रेजी बाबुओं की खिल्ली उड़ाई जाती थी। बाद में हरिश्चन्द्र मैग्जीन का नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' रख दिया गया। इस पत्रिका में भाषा संबंधी आंदोलन को विशेष स्थान मिलता था।

भारतेंदु युग में कविता क्षेत्र में ब्रज भाषा का प्रयोग होता रहा और गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली का। आलोचकों का कहना है कि भारतेंदु तथा उस काल के कुछ अन्य कवियों ने खड़ी बोली में भी पद्य रचना करनी चाही, किंतु वे सफल नहीं हो पाए। निर्जीव तुकबंदियां ही बन पड़ी हैं। ब्रज भाषा में अपेक्षाकृत इनकी कविताएं मार्मिक बन पड़ी हैं। ब्रज भाषा या खड़ी बोली में भारतेंदुकालीन लेखकों ने सामयिक विषयों पर जो पद्यात्मक रचनाएं लिखीं उन्हें कविता की कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उनमें राजनीतिक, सामाजिक और

टिप्पणी

धार्मिक विचारों को ज्यों का त्यों छंद–बद्ध करके रखने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। उनमें कोई मार्मिक अनुभूति और कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है। केवल तुकबंदी कविता नहीं कहला सकती।

इस काल के प्रमुख पत्र 'भारतमित्र' ने लिखा था, "हम लोगों की हिंदी भाषा है, यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है तथापि संस्कृत का अखंड भंडार इसकी समृद्धि वृद्धि करे हैं और जो इसमें कहीं–कहीं सूरसैनी, मागधी, माथुरी, फारसी, अरबी और अंग्रेजी भी सरल भाव से मिल गई हैं, वो क्या इसको बिगाड़ती हैं? हमारी समझ में तो स्वभाव–सुंदरी हिंदी को वरन् अलंकृत करती हैं। परंतु ऐसा कहने से यह नहीं समझना कि अब हम अरबी, ईरानी, तुर्की और यूनानी आदि से हिंदी को ढांक दें और मूल में आघात करें। इन सब भाषाओं के शब्द तो वो ही रखने चाहिए जो सब कि इसमें मिल गए हैं।"

3.9 भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताएं

भारतेंदु युग एक नया उत्साह, एक नया विचार लेकर साहित्य में आया। साहित्य में जहां नयी गद्य दिशाएं खुलीं वहीं काव्य की विषयवस्तु, भाषा–शैली और छंद विधानों में भी परिवर्तन आया। इस युग की मूल चेतना और विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है–

1. **जनवादी चेतना–** डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है– "भारतेंदु युग का साहित्य इस अर्थ में जनवादी है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है।" भारतेंदु युगीन काव्य में सुधारवादी दृष्टिकोण और पीड़ित शोषित के प्रति सहानुभूति उसे सच्ची जनवादी चेतना से जोड़ती है; यथा–

   निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं
   स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवैं।

2. **सामाजिक चेतना–** भारतेंदु युगीन कवियों की सामाजिक चेतना का भाव अंधविश्वास और कुरीतियों की आलोचना में लक्षित होता है। पश्चिमी रहन–सहन एवं बाल विवाह के विरोध में सच्चा समाज हित दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों का मत है कि सामाजिक उत्थान के अभाव में सच्ची राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव नहीं है।

3. **नवयुग चेतना–** भारतेंदु जी ने जन–जागृति के लिए जातीय संगीत के प्रचार पर जोर दिया। उस काल के काव्य में ऐसी स्थितियां चित्रित हुईं जिनमें नवीन चेतना का भाव था। इनमें शिक्षा का महत्व, फैशन के कुपरिणाम, एकता की भावना, असंतोष का परित्याग आदि प्रमुख हैं।

4. **भाषा–शैली–** काव्य की भाषा तो ब्रजभाषा ही थी, किंतु खड़ी बोली में भी रचनाएं होने लगीं। भारतेंदु ने सरल–सुलभ भाषा का प्रयोग किया। भावावेश के समय उनकी भाषा में छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, तथा पदावली सरल बोलचाल की हो जाती है। कवियों ने विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया। इस युग के कवियों द्वारा हास्य–व्यंग्य के लिए अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी किया गया– यथा–

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. प्रतापनारायण मिश्र प्रमुखतया किस विधा के रचनाकार थे?
20. बालकृष्ण भट्ट किस प्रकार के निबंध लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं?
21. 'संयोगिता स्वयंवर' किसकी रचना है?
22. भाषा संवर्धिनी सभा की स्थापना किसने की?
23. बिहार प्रांत में हिंदी के प्रचार–प्रसार हे किसने प्रयत्न किए
24. 'भारत मित्र' का प्रकाशन कहां से प्रारंभ हुआ?

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. प्रतापनारायण मिश्र प्रमुखतया किस विधा के रचनाकार थे?

20. बालकृष्ण भट्ट किस प्रकार के निबंध लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं?

21. 'संयोगिता स्वयंवर' किसकी रचना है?

22. भाषा संवर्धिनी सभा की स्थापना किसने की?

23. बिहार प्रांत में हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु किसने प्रयत्न किए?

24. 'भारत मित्र' का प्रकाशन कहां से प्रारंभ हुआ?

टिप्पणी

विष्णु वाहिनी पोर्ट पुरुषोत्तम, भय मुरारि।
शैंपन शिव, गौरी गिरीश, ब्रांडी क्रम विचारी।।

इस प्रकार भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य में जहां साहित्य में नवीन विधाओं का समावेश हुआ, वहीं नये–नये विषयों को लेकर रचनाएं हुईं। भाषा को जन सामान्य के निकट लाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया।

5. **सांस्कृतिक पुनरुत्थान–** इन कवियों ने भारतीय संस्कृति का गौरव गान किया। साथ ही भारतीयों को एक नयी ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की। सभ्यता एवं संस्कृति का सुधार इन कवियों ने प्रमुखतः किया।

6. **विषयवस्तु में वैविध्य–** भारतेंदु युग में गद्य एवं पद्य दोनों की विषयवस्तु परिवर्तित हो गई। परंपरा एवं नवीनता का समन्वय इस काल में दिखता है। उस समय के कवियों ने भक्तिपूर्ण रचनाएं कीं, किंतु देश की दशा पर आंसू भी बहाए– यथा–

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत – दुर्दशा देखी न जाई।। (भारतेंदु)

साथ ही कहा–

अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।। (भारतेंदु)

प्रेमघन ने कर लगाने पर कटाक्ष किया–

रोओ सब मुंह बाय बाय
हाय टिकस हाय हाय।

कवियों, नाटककारों, निबंधकारों, सभी ने एक स्वर से राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार के स्वर को पुष्ट किया।

7. **कलात्मकता का अभाव–** इस युग की कविता में कलात्मकता का अभाव पाया जाता है। संभवतः विषय–वैविध्य और युग–चेतना को समेटने के कारण कलात्मकता दब सी गई। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने भी स्वीकार किया है– "इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का कारण इस उत्थान में विचारों का संक्रांति काल होना है। सामान्य जन तक पहुंचने की ललक में कलात्मकता दब सी गई है।"

8. **राजतंत्र का तिरस्कार–** यह युग राजाओं का था। राजाओं ने जनता पर ध्यान न देकर अंग्रेज़ों की दासता को स्वीकार किया। तत्कालीन कवियों में इसे लेकर गहरा क्षोभ था जिसे उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त किया।

- **मूल्यांकन**

भारतेंदु युग हिंदी साहित्य के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तन एवं इसके विकास की आधार भूमि का निर्माण इसी युग में हुआ। भारतेंदु जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार के व्यक्तित्व के कारण भारतेंदु युग हिंदी साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश करने का श्रेय भारतेंदु जी को ही है।

टिप्पणी

भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने साहित्य को जन साधारण की वाणी बनाया तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास किया। भारतेंदु युग के साहित्य का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि भविष्य में होने वाले हिंदी साहित्य के विकास के लिए उसने आधारभूमि तैयार की। आने वाले द्विवेदी युग की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी इस साहित्य का महत्व है।

3.10 द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरूप

काव्यरूपों की भिन्नता भी द्विवेदी युग की विशेषता है। खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य और प्रगति मुक्तकों का प्रयोग काव्य लेखन हेतु किया गया है। साथ ही मुक्तक के बजाय महाकाव्य, आख्यान काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, गीत काव्य और स्फुट गीतों का स्वतंत्र लेखन हुआ। खड़ी बोली का प्रयोग गद्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। गद्य साहित्य में घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटना और कथाओं को लेकर उपन्यास, कहानियों का लेखन किया गया है। अलोचना तथा निबंध साहित्य का समृद्ध विकास भी इसी युग में हुआ है। कहने का तात्पर्य है कि विषय एवं शिल्पगत विविध प्रयोग इस काल में हुए हैं।

द्विवेदी जी ने भाषा को समयानुरूप बदला। डॉ. नगेंद्र ठीक कहते है, 'जयद्रथ वध' की प्रसिद्धि ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया। 'भारत–भारती' की लोकप्रियता खड़ी बोली की विजय–भारती सिद्ध हुई। ब्रजभाषा का वैभवशाली रूप धराशायी हुआ और खड़ी बोली ने विकास पाया। भाषा के बदलने से जो क्रांति हुई वह आगे हिंदी साहित्य में स्पष्ट है। छंदोबद्धता को त्यागकर भी कविता जन के और अधिक निकट हुई।

ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली ने ले ली। श्रृंगार–भक्ति का स्थान देशभक्ति, समाज सुधार ने लिया। परंपरागत काव्य निरुपण शैलियां बदलीं। भारतेंदु युग में भाषा में जो अस्थिरता पैदा हुई थी वह यहां पर खत्म हुई। काव्य के लिए शुद्ध, व्याकरण सम्मत खड़ी बोली का प्रयोग किया जाने लगा। अचानक ही नहीं बल्कि द्विवेदी की कठोर नीति के परिणामस्वरूप, कविता, अलोचना, श्रृंगार आदि में निखार और देशपरक समाजहितानुरूप प्रौढ़ता आई। द्विवेदी जी गद्य–पद्य की शैली तथा विषय वस्तु में परिवर्तन लाए। मातृभूमि, स्वदेश गौरव, मानवतावाद, बुद्धिवाद को काव्य में प्रतिष्ठित किया। कविता में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता आई। राष्ट्रीय भावना का स्वर गूंज उठा, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। नारी संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद का विकास भी इसी काल की देन है। पुनरुत्थान युग का देश, समाज तथा साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि द्विवेदी युग में जागरण आया। नवीन काव्य की परंपरा का उद्भव हुआ।

3.11 महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता

द्विवेदी जी के काल में कविता कथात्मक प्रवाह के साथ चलती थी। 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा कवियों को छोड़ शेष सब ने रीतिकालीन अभिव्यक्ति–प्रणाली का विरोध किया। उनकी कविताओं में संस्कृति

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. सच्ची राष्ट्रीय चेतना का विकास किसके बिना संभव नहीं?
26. भारतेंदु ने जन–जागृति के लिए किसके प्रचार पर जोर दिया था?
27. भारतेंदु ने किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया?
28. भारतेंदु युग की कविता में किस गुण का अभाव पाया जाता है?

टिप्पणी

साहित्य के नये–नये छंदों और तथ्य प्रधान सीधी–सपाट भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। कल्पना की लंबी उड़ानों के सहारे रचे गए संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती। 1907 की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इतिवृत्तात्मक शैली का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा–

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रंथ होते यदि विद्यमान।
तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।
हे ग्रंथ! द्रव्यादि न एक लेते, तो भी सुशिक्षा तुम नित्य देते।

द्विवेदी जी की कविता में खड़ी बोली के दो स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ते हैं–एक, उसका वह स्वरूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा, उसका वह रूप, जिसमें संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'हरिऔध जी' की कविताओं में भाषा के इन दोनों रूपों के नमूने एक साथ देखने को मिल जाते हैं–

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है
देश दशा पर प्यारे भाई–आई कितनी बार रुलाई।
सुरम्यरूपे रसराशिरंजिते, विचिवर्णाभरणे कहां गयी।
अलौकिकानन्द विधायिनी महा, कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहां।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली।।

–हरिऔध

द्विवेदी युगीन कविता की समग्र काव्य चेतना को रूपनारायण पाण्डेय की निम्नलिखित पंक्तियों से समझा जा सकता है–

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख–ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई–भाई।
पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।

द्विवेदीयुगीन हिंदी कविता खड़ी बोली के आधार पर गंभीर भावों से अनुप्राणित है। उसमें मात्र मनोरंजन ही नहीं है, वरन् उसमें गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। बहुविधा स्वातंत्र्य भावना की दृष्टि से, नये–नये विषयों की उद्भावना की दृष्टि से, नयी चेतना की व्याख्या की दृष्टि से, भाषा–संस्कार की दृष्टि से द्विवेदीयुगीन कविता बड़ी विशिष्ट–विशेष है।

3.12 द्विवेदीयुगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं

टिप्पणी

प्रवृत्तियां

1. **देशभक्ति–** उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों के काव्य में देशभक्ति का जो स्वर सुनाई पड़ा था, द्विवेदीयुगीन हिंदी काव्य में उसका उत्तरोतर विकास होता गया और उसका चरमोत्कर्ष मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में दृष्टिगोचर हुआ। द्विवेदीयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना भारतेंदुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से किंचित भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं मुखर है। भारतेंदुयुगीन काव्य में देशभक्ति के साथ–साथ राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है, किंतु द्विवेदीयुगीन काव्य शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित है। उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना तथा भारतीय जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्बुद्ध और प्रेरित करने वाला क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों, ईर्ष्या–द्वेष आदि का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग करते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया।

2. **नैतिकता का प्राधान्य–** भारतेंदु युग के कवियों ने अपनी कविताओं में यद्यपि नये–नये विषयों का समावेश किया फिर भी वे रीतिकालीन शृंगारी भावना का परित्याग न कर सके। द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में रीतिकालीन शृंगारिकता का स्पष्ट विरोध किया गया और कविता के भीतर आदर्श एवं नैतिकता की प्रतिष्ठा हुई। मात्र मनोरंजन की भावना से दूर हटकर कविता में उचित उपदेशात्मक का समावेश करने पर बल दिया गया।

   कविता के माध्यम से मनुष्य के हृदय में स्वार्थत्याग, कर्त्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की स्थापना का प्रयास किया गया। इसके लिए कहीं तो सद्गुण और सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ और कहीं दुर्गुण और कुसंग की बुराइयों पर सीधी–सरल भाषा में प्रकाश डाला गया।

3. **मानवतावादी दृष्टिकोण –** आधुनिककाल से पूर्व भारतीय समाज में जाति, धर्म, संप्रदाय आदि आधारों पर भेद–भाव की अनेक दीवारें खड़ी की गई थीं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों को मात्र वासनापूर्ति का साधन समझकर उनका निरंतर शोषण हो रहा था। आधुनिककाल में बौद्धिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव से मानव–मात्र की समानता का भाव विकसित हुआ। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने की बात सोची जाने लगी। धीरे–धीरे परंपरागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरूप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन–दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया। नारी को समाज में उचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पाठकों का ध्यान ऐसे नये पात्रों की ओर आकृष्ट किया गया जिनको प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय महाकाव्यों में कोई

टिप्पणी

स्थान नहीं दिया गया था। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये। गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से उपेक्षित उर्मिला की मर्मव्यथा का चित्रांकन किया। 'हरिऔध जी' ने 'प्रियप्रवास' में राधा को लोक सेविका के रूप में लोगों के सम्मुख रखा और अपने प्रसिद्ध रीतिग्रंथ 'रसकलश' में परंपरागत नायिका–भेद से किंचित दूर हटकर पति, प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोकसेविका आदि नायिकाओं की नयी कोटियां निर्धारित कीं।

4. **आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण** – भारतेंदु युग के कवियों की दृष्टि प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर गई थी, किंतु वे खुद को परंपरागत रीतिकालीन प्रकृति चित्रण से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके। भारतेंदु ने 'चन्द्रावली' और 'सत्यहरिश्चन्द' में क्रमशः यमुना और गंगा की प्राकृतिक सुषमा का स्वतंत्र वर्णन करने का प्रयास किया, किंतु अलंकारप्रियता और शब्दचमत्कार के लोभ में उसका नैसर्गिक सौंदर्य दब सा गया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलम्बन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह, रामचंद्र शुक्ल की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य के श्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं।

5. **इतिवृत्तात्मकता** – भारतेंदु युग के कवियों ने काव्यशैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग न अपनाकर रीतिकालीन शब्द–चमत्कार प्रधान तथा प्रवाहपूर्ण शैली में काव्य रचनाएं की थीं। द्विवेदी जी के काल में कविता कथात्मक प्रवाह के साथ चलती थी। 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा कवियों को छोड़ शेष सब ने रीतिकालीन अभिव्यक्ति–प्रणाली का विरोध किया। उनकी कविताओं में संस्कृति साहित्य के नये–नये छंदों और तथ्य प्रधान सीधी–सपाट भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। कल्पना की लंबी उड़ानों के सहारे रचे गये संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती। खड़ी बोली के पूर्णतः समृद्ध हो जाने के उपरांत उसमें सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाली चित्रमयी लाक्षणिक शैली का विकास हुआ; जिसका चरम उत्कर्ष आगे चलकर छायावादी कवियों की कविता में देखने को मिलता है।

6. **खड़ी बोली की प्रतिष्ठा** – द्विवेदी युग में गद्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ पद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली की व्यापक प्रतिष्ठा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आचार्य महावीर द्विवेदी के प्रयत्नों से उनके समय में खड़ी बोली के प्रतिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना हुई और पहले से चली आने वाली व्याकरणिक असमानाताएं समाप्त हो गईं। द्विवेदी जी ने स्वयं अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान पदावली का प्रयोग किया और दूसरों को भी इस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

7. **छंद–विधान** – द्विवेदी ने परंपरागत छंद के प्रति अरुचि दिखाई। अतुकांत छंद को भी इस काल के कवियों ने अपनाया। परिणामस्वरूप नये छंदों की महत्ता उभरी। लावनी व उर्दू छंदों के प्रयोग हुए।

टिप्पणी

रचनाकार एवं रचनाएं

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म ग्राम दौलतपुर जनपद रायबरेली, उत्तर प्रदेश में हुआ। स्कूली शिक्षा के लिए जनपद उन्नाव के रनजीत पुरवा, फतेहपुर तथा उन्नाव के स्कूलों में प्रविष्ट हुए। मिडिल कक्षाओं में वैकल्पिक विषय के रूप में फारसी का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने मुंबई में संस्कृत, गुजराती, मराठी एवं अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' के संपादक नियुक्त हुए। खड़ी बोली को स्थिरता प्रदान करने तथा उसका परिष्कार करने का श्रेय इन्हीं को है। ये कवि, लेखक, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक एवं संपादक सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इनके मौलिक एवं अनूदित गद्य–पद्य ग्रंथों की संख्या लगभग 80 है। अनूदित काव्य कृतियां अधिक सरस हैं। इन्होंने 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'कान्यकुब्ज अबला विलाप', 'अयोध्या का विलाप' नामक काव्य रचना की। 'कवि कर्त्तव्य', 'ऋतु तरंगिणी', 'कुमारसंभव सार' का अनुवाद किया।

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगांव झांसी में हुआ था। वे द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। इनकी आरंभिक रचनाएं कोलकाता से निकलने वाले 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। बाद में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से परिचय हो जाने पर 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। 'जयद्रथ–वध', 'भारत–भारती', 'पंचवटी', 'झंकार', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जयभारत', 'विष्णुप्रिया' आदि इनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं। 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ', 'वृत्र–संहार' आदि इनके द्वारा अनूदित काव्य हैं।

पंडित रामचरित उपाध्याय संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। ये खड़ी बोली कविता के प्रति आकर्षित हुए। इन्होंने फुटकर रचनाएं कीं। इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई। बाद में ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। पहले ये प्राचीन विषयों पर ही काव्य सृजन करते थे किंतु आचार्य द्विवेदी के संपर्क में आने पर इन्होंने खड़ी बोली तथा नवीन विषयों को अपनाया। 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह' आदि कृतियों के अतिरिक्त 'रामचरित–चिंतामणि' नामक प्रबंध काव्य की रचना की। 'सूक्ती मुक्तावली' में इनके नीतिविषयक पद्य संगृहीत हैं।

पंडित लोचन प्रसाद पांडेय का जन्म ग्राम बालापुर जनपद–बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। हिंदी, उड़िया, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। साहित्य सेवा के लिए 'काव्य विनोद' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि मिली थी। इनकी रचनाएं हैं– 'प्रवासी', 'मेवाड़ गाथा', 'महानदी' तथा 'पद्य पुष्पांजलि'।

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' का जन्म जबलपुर में हुआ था। इन्होंने वहीं पर बी.ए. एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त कर कुछ दिनों तक वकालत की और बाद में कानपुर चले गए। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। वेदांत में इनकी विशेष रुचि थी। व्यावसायिक तथा सामाजिक क्रियाकलापों की व्यस्तता में रहते हुए भी साहित्याध्ययन एवं प्रणयन में सदैव दत्त–चित्त थे। 'स्वदेशी कुंडल' इनकी देशभक्ति पूर्ण 52 कुंडलियों का संग्रह है। 'मृत्युंजय', 'राम–रावण विरोध', तथा 'बसंत–वियोग' इनकी अन्य काव्य कृतियां हैं। 'धाराधरधावन' शीर्षक से इन्होंने कालिदास के मेघदूत का अनुवाद किया।

टिप्पणी

पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर' का जन्म हरदुआगंज जनपद अलीगढ़ में हुआ था। ये हिंदी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता थे। ये आरंभ से ही साहित्यानुरागी थे। प्रारंभ में ये ब्रज भाषा के कवि रहे किंतु शीघ्र ही खड़ी बोली की ओर झुक गए। ये उर्दू में भी काव्य सृजन का अच्छा कार्य कर लेते थे। 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'गर्भरंडा–रहस्य' (विधवाओं की बुरी स्थिति, तथा देव मंदिरों के अनाचार से संबंधित प्रबंध काव्य) तथा 'शंकर सर्वस्व' इनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं।

कविवर गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म ग्राम हड़हा जनपद उन्नाव में हुआ था। उर्दू के अधिकारी विद्वान होने के फलस्वरूप ये हिंदी–उर्दू दोनों भाषाओं में समान रूप से काव्य सृजन करते थे। इनकी प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार की शैलियों में अभिरुचि थी। इन्होंने श्रृंगार आदि परंपरागत विषयों पर काव्य सृजन 'सनेही' उपनाम से तथा राष्ट्रीय भावनाओं संबंधित कविता का सृजन 'त्रिशूल' उपनाम से किया है।

पंडित राम नरेश त्रिपाठी का जन्म ग्राम कोईरी पुर, जनपद में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में ही हुई। इन्होंने अंग्रेजी पढ़ने हेतु जौनपुर के स्कूल में प्रवेश ले लिया किंतु अध्ययन क्रम नौंवी कक्षा से आगे नहीं चल सका। कविता के प्रति बचपन से ही रुचि थी। ग्राम के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। इनके चार ग्रंथ 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' तथा 'स्वप्न' प्रकाशित हुए। कविता कौमुदी के आठ भागों में इन्होंने हिंदी, उर्दू, बांग्ला और संस्कृत की कविताओं का संकलन और संपादन किया है।

अन्य कवि

लाला भगवानदीन 'दीन' का जन्म ग्राम बरबर, जनपद फतहपुर में हुआ था। ये काव्य शास्त्र के पंडित थे। ये हिंदी, उर्दू तथा फारसी के ज्ञाता थे। 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक', 'वीर पंचरत्न' तथा 'नवीन बीन' इनके अन्य कविता संग्रह हैं। 'नदी में दीन' इनका फुटकल काव्य संग्रह है।

पंडित रूपनारायण पांडेय का जन्म 1884 ई. में लखनऊ में हुआ। प्रारंभ में ये ब्रजभाषा में कविता करते थे किंतु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभावस्वरूप खड़ी बोली में काव्य सृजन करने लगे। 'पराग' तथा 'वन–वैभव' इनकी मौलिक कविताओं के संकलन हैं।

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' का जन्म झालरापाटन, जयपुर में हुआ था। इनकी अधिकांश शिक्षा काशी में हुई। 'सरस्वती' तथा अन्य पत्रिकाओं में इनकी कविताएं प्रकाशित होती रहती थीं। 'मातृवंदना' इनकी मौलिक काव्य रचना है।

सैयद अमीर अली 'मीर' का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था। शैशव में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया जिसके परिणामस्वरूप ये चाचा के पास देवरी ग्राम सागर में रहे। 'उलाहना पंचक' तथा 'अन्योक्ति शतक' इनकी मुख्य काव्य कृतियां हैं।

कामता प्रसाद गुरु का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ। 'भौमासुर वध' तथा 'विनय पचासा' ब्रजभाषा में लिखे गये इनके पद्य ग्रंथ हैं। 'पद्य पुष्पावली' नाम से इनका कविता संग्रह है। इन्होंने 'शिवाजी' तथा 'दासी रानी' कविताओं की रचना की। 'हिंदी व्याकरण इनका व्याकरण ग्रंथ है।

टिप्पणी

बालमुकुंद गुप्त का जन्म ग्राम गुड़ियाना, जनपद रोहतक, हरियाणा प्रदेश में हुआ था। ये भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं। 'स्फुट कविता', इनकी कविताओं का संकलन है।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह का जन्म सन् 1891–1960 ई. नयी गढ़ी, रीवां में हुआ था। 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता' तथा 'ज्योतिष्मती' इनकी प्रमुख काव्यकृतियां हैं।

मुकुटधर पांडेय का जन्म सन् 1895 ई. में हुआ। 'पूजा–फूल' तथा 'कानन–कुसुम' इनके काव्य संकलन हैं।

- **मूल्यांकन**

द्विवेदी युगीन साहित्य का योगदान आज भी महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति का विकास, स्वच्छंदतावाद का श्रीगणेश, मुक्त छंद की शुरुआत, हिंदी की विविध गद्य विधाओं का विकास, भाषा–परिमार्जन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो इस काल को महत्वपूर्ण बनाती हैं। इस युग में पौराणिक आख्यानों को समसामयिक संदर्भ में रखकर साहित्य रचना हुई। साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार हुआ। इस प्रकार द्विवेदी युग ने साहित्य को एक नया आयाम दिया।

3.13 छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन

पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति–इस समय स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था। महात्मा गांधी इसका नेतृत्व कर रहे थे। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा और असहयोग की नीति अपनाई। गांधी जी की यह नीति सफल नहीं हो पा रही थी। फिर भी स्वतंत्रता आंदोलन के सेनानी अपने लक्ष्य, नीति और अदम्य उत्साह पर अडिग थे। छायावादी कवियों की राजनीतिक आंदोलनों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीनता का कारण तत्कालीन राजनीतिक निराशा नहीं प्रत्युत औद्योगिकता से प्रेरित उनका व्यक्तिवाद है तथा उनका काव्य के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है। छायावाद का जन्म तब हुआ जब देश में राष्ट्रीय आंदोलन चल रहे थे। छायावादी कविता राष्ट्रीय आंदोलन या जागृति का सीधा परिणाम नहीं थी। यह पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और संस्कृति के संपर्क में आने का परिणाम था। देश की प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य–साहित्य के प्रभावों को ग्रहण करती हुई छायावादी कविता पनपी और फली–फूली।

धार्मिक परिस्थिति–छायावाद का कवि धर्म के अध्ययन से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। कवि ने बुद्ध के सूक्ष्म धरातल पर जीवन की अखंतडता का भावन किया, हृदय की भाव भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौंदर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की ओर दोनों के साथ स्वानुभूत सुख–दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी। इसके अलावा छायावादी काव्य पर गांधी, टैगोर, अरविंद, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद के दर्शन का भी गहरा प्रभाव पड़ा।

'अपनी प्रगति जांचिए'

29. द्विवेदीयुगीन कविता में मनोरंजन के साथ–साथ क्या समाहित है?
30. 'भारत भारती' के रचनाकार का नाम बताइए?
31. उपेक्षित उर्मिला की मर्मव्यथा का चित्रांकन किस काव्य में हुआ है?
32. खड़ी बोली का परिष्कार कर उसे स्थिरता प्रदान करने का श्रेय किसे है?
33. 'स्वदेशी कुंडल' के रचनाकार का नाम बताइए?
34. 'नदी में दीन' किस रचनाकार का फुटकल काव्य है?

टिप्पणी

साहित्यिक परिस्थिति–छायावादी काव्य पर पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के साथ–साथ पाश्चात्य साहित्य के रोमांटिसिज्म का गहरा प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी साहित्य की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएं; यथा–प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यंजना, रहस्यात्मक सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, मानवतावाद और व्यक्तिवाद, मानवतावाद और व्यक्तिवाद आदि हिंदी के छायावाद में समान रूप से मिलते हैं। अंग्रेजी साहित्य के इस स्वच्छंदतावाद से छायावाद के घनिष्ठ साम्य को देखकर, हिंदी साहित्य के कुछ आलोचकों ने छायावाद को अंग्रेजी के स्वच्छंदतावाद का ही हिंदी संस्करण कह दिया। छायावाद का उद्‌भव भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। छायावादी काव्यकार का जीवन और जगत के प्रति अपना एक निश्चित दृष्टिकोण है। छायावाद और स्वच्छंदतावाद को साम्य के आधार पर परस्पर अभिन्न मानना भ्रम होगा क्योंकि छायावाद की सृष्टि एक सर्वथा भिन्न देश और काल में हुई।

नामकरण

बीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में हिंदी कविता में एक नयी प्रवृत्ति का उदय हो रहा था, जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न थी। पंत, प्रसाद, निराला की नयी तरह की कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 1920 तक इन कविताओं के लिए 'छायावाद' नाम रूढ़ हो गया। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द को छायाभास से निकला हुआ बतलाया है। इस संबंध में प्रसाद जी लिखते हैं– "अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है।"

'सरस्वती' पत्रिका में सुशील कुमार नामक लेखक ने 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक से एक निबंध लिखा।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है "... बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रमयी भाषा शैली या प्रतीक–पद्धति के रूप में माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ में।"

छायावाद नाम स्वीकृत होने के पश्चात इसके अभिप्राय को लेकर अनेक मत आए। इस संदर्भ में द्विवेदी जी का कथन है– "शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"

आचार्य शुक्ल ने कहा– "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।"

छायावाद नाम पर पंत जी की सहमति नहीं है। उनका कथन है– "छायावाद नाम से तो मैं संतुष्ट नहीं हूं। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों के द्वारा कविता के उपहास का सूचक है।"

विद्वानों ने छायावाद को अनेक प्रकार से परिभाषित किया। महादेवी वर्मा ने कहा– "प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म सौंदर्य सत्ता का उद्‌घाटन एवं असीम के प्रति

टिप्पणी

अनुरागमय आत्मा–विसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी ने कहा– "जिस प्रकार इतिवृत्तात्मकता के आगे की चीज़ छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज़ रहस्यवाद है।"

डॉ नगेन्द्र का मत है– "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव–पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के संदर्भ में स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की चर्चा होती रही है। उसमें रहस्य भावना के साथ–साथ मानवतावादी दृष्टिकोण को भी स्वीकारा गया है। साथ ही इसे राष्ट्रवादी आंदोलन से भी जोड़ा गया। जैसा कि नामवर सिंह का कथन है– "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ–विस्तार होता गया।"

सीमांकन

छायावाद की काल सीमा सन् 1918–1938 ई. तक मानी गई है। छायावाद को आधुनिक हिंदी कविता के तृतीय उत्थान के रूप में स्वीकारा गया है। आचार्य महावीर प्रसाद के प्रभाव से सन् 1920 ई. के आसपास पत्र–पत्रिकाओं में निरपेक्ष स्वतंत्र कविताओं का प्रकाशन प्रारंभ हो गया था। इसी को आचार्यों ने छायावाद का नाम दिया था। किसी विशिष्ट प्रवृत्ति का प्रारंभ या समाप्ति एक निश्चित तिथि को नहीं हो जाता है अपितु उस प्रवृत्ति का बीजवपन, विकास के एक सतत परिवेश पर आधारित प्रक्रिया है जो समयानुकूल अपनी अस्मिता प्रकट करती है अथवा उसकी अस्मिता का पराभव होने लगता है। इसी के आधार पर निश्चित तिथि का निर्धारण किया जाता है। विद्वानों ने अलग–अलग काल सीमाएं निश्चित की हैं। प्रवृत्ति का अर्थ परंपरा या परिपाटी से है। जब परंपरा में मोड़ आ जाता है तो उस परिवर्तन को प्रवृत्ति की नवीनता की संज्ञा दी जाती है। सन् 1918 ई. से पूर्व साहित्य में एक नये मोड़ का प्रारंभ हो गया था जो पुरानी परंपरा या काव्य पद्धति के स्थान पर नवीन परंपरा या पद्धति के निर्माण का द्योतन करता था। यह विशिष्ट काव्य पद्धति सन् 1938 ई. तक चलती रही। सन् 1936 ई. में 'प्रांतीय कांग्रेस मंडलों' की स्थापना हुई किंतु अंग्रेजी सरकार की घोषणा के पश्चात सन् 1939 ई. में मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। इससे स्पष्ट है कि सन् 1936–1939 ई. का समय आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नये मोड़ का सूचक है। कांग्रेस के मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने की विभिन्न प्रतिक्रियाएं हुईं जो जीवन में नवीन चेतना के आने के प्रतीक स्वरूप हैं। तत्कालीन छायावादी कवि स्वयं भी अपने छायावादी भाव बोध को लांघने का प्रयत्न कर रहे थे जिसका प्रमाण पंत के 'युगांत' तथा निराला की 'अनामिका' में प्रकाशित अनेक कविताएं हैं जो छायावादी संसार को पार कर एक नये मोड़ पर आ खड़ी ही नहीं हुई थीं अपितु ठोस यथार्थ के निकट आने के लिए प्रयत्नरत थीं। पंत का संकलन तथा उसका

टिप्पणी

नामकरण स्पष्ट कर रहा है कि एक युग का अंत हो गया। 'युगांत' उनकी कविता में छायावाद से प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत देता है। छायावादी कवि पंत सन् 1938 ई. तक प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो चुका था। इसलिए सन् 1938 ई. को छायावाद का अंत माना जाना उचित है। यद्यपि कुछ विद्वान दशमलव प्रणाली का आधार लेते हुए बीसवीं सदी के चौथे दशक अर्थात सन् 1940 ई. तक छायावाद को मानना चाहते हैं जो उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि काव्य प्रणाली में 1940 ई. से पूर्व ही निश्चित मोड़ आ चुका था। समाज और राजनीति का घनिष्ठ एवं अन्योन्याश्रय संबंध है। तत्कालीन राजनीतिक परिवर्तन एवं साहित्यिक परिवर्तन में घनिष्ठ संबंध है जिसने परिवर्तन के परिणामस्वरूप समाज एवं साहित्य को नवीन सामूहिक चेतना प्रदान की। सन् 1938 के आस–पास छायावादी काव्यधारा की क्षीणता एवं नवीन काव्यधारा का आगम उसी चेतना का परिणाम है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद का प्रारंभ सन् 1918 ई. में हो चुका था। लगभग बीस वर्षों तक अर्थात सन् 1938 ई. तक छायावादी काव्य प्रणाली चलती रही।

3.14 प्रमुख छायावादी कवि एवं उनका काव्य

छायावादी प्रमुख कवि और उनकी काव्य रचनाएं इस प्रकार हैं–

जयशंकर प्रसाद

कविवर जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1946 वि. को वाराणसी में हुआ। इनका परिवार शैव था। घर पर ही संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी तथा फारसी आदि भाषाओं को पढ़ने की व्यवस्था थी। प्रसाद की कविता का आरंभ ब्रजभाषा से हुआ। 'उर्वशी' (चम्पू), 'प्रेम राज्य' (चम्पू), 'वन मिलन', 'अयोध्या का उद्धार', 'शोकोच्छवास', 'बभ्रुवाहन', 'कानन कुसुम', 'प्रेम पथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' एवं 'कामायनी (महाकाव्य) इनकी काव्य रचनाएं हैं।

सुमित्रानंदन पंत

कविवर सुमित्रानंदन पंत का जन्म ग्राम कौसानी, जनपद अल्मोड़ा, वर्तमान उत्तराखंड (पुराने उत्तर प्रदेश) में हुआ था। पंत की प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में हुई। इसके पश्चात अल्मोड़ा गवर्नमेंट हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। सन् 1916 ई. में क्योर सेंट्रल कॉलेज प्रयोग से एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत, अंग्रेजी तथा बांग्ला का अध्ययन किया। 'कला और बूढ़ा चांद' काव्य ग्रंथ पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'लोकायतन' पर सोवियत भूमि पुरस्कार, 'चिदंबरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। भारत सरकार ने पंत को 'पद्म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया। पंत में यथार्थ के विषम एवं दारुण रूप के अभाव का कारण भी कुछ सीमा तक प्रकृति के उस प्रभाव को ही स्वीकारा जा सकता है। प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ने इन्हें जीवन की नैसर्गिक व्यापकता तथा अनेक रूपता से पूर्णरूपेण वंचित कर दिया। उन्हें प्रकृति का चितेरा कवि कहा जाता है। 'गिरजे का घंटा', 'ग्रंथि', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'उत्तरा', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि',

टिप्पणी

'अतिमा', 'किरण', 'पतझड़', 'एक भाव क्रांति', 'लोकायतन', 'कला और बूढ़ा चांद', 'चिदंबरा', 'गीत हंस' तथा 'रजत शिखर' आदि इनकी काव्य रचनाएं हैं।

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म संवत 1953 वि. वसंत पंचमी के दिन ग्राम गढ़कोला जनपद उन्नाव में हुआ था। निराला की शिक्षा बंगाल में ही हुई थी। अतः स्कूली शिक्षा में इनका मन न रमा। स्कूल छोड़कर घर पर ही अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला तथा संस्कृत का गहन अध्ययन किया। इनके काव्य पर बांग्ला का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'अपरा', 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत कुंज', 'सांध्य काकली', 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति' (शोक गीत) इनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

महादेवी वर्मा

महादेवी का जन्म फर्रुखाबाद में हुआ। पिता का नाम गोविंद प्रसाद तथा माता का नाम श्रीमती हेमरानी था। आरंभिक शिक्षा घर पर ही ग्रहण की। इसके बाद इनकी विधिवत शिक्षा प्रयाग में हुई जहां इन्होंने सन् 1933 ई. में दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। 'नीरजा', 'नीहार', 'रश्मि', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' एवं 'यामा' इनकी काव्य रचनाएं हैं।

3.15 छायावादकालीन अन्य प्रमुख कवि और उनका काव्य

माखन लाल चतुर्वेदी

माखन लाल चतुर्वेदी का जन्म ग्राम बाबई, जनपद होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में हुआ था। इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। देश की दशा के प्रति ये आरंभ से ही जागरूक थे। आरंभ में क्रांति–दर्शन से प्रभावित हुए किंतु बाद में इनकी आस्था गांधीवाद की ओर हो गई। राजनीतिक सक्रियता के कारण कई बार जेल की यात्राएं की। 'हिम किरीटिनी', 'हिमतरंगिणी', 'माता', 'युग चरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूंजे धरा' आदि इनके कविता संग्रह हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म ग्राम भयाना जनपद ग्वालियर में हुआ था। इनकी पढ़ाई ग्यारह वर्ष की अवस्था में शुरू हुई। सन् 1917 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर कानपुर चले गए और कॉलेज में दाखिला ले लिया। सन् 1920 ई. में गांधी के आह्वान पर कॉलेज का अध्ययन त्याग कर राजनीति के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए। अपने लंबे राजनीतिक जीवनकाल में इन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ये पहले लोक सभा फिर राज्य सभा के सदस्य हो गए। इनका 'कुंकुम' नामक एक कविता संग्रह है। 'उर्मिला', 'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'विनोबा स्तवन' तथा 'हम विषपायी जनम के' इनकी काव्य रचनाएं हैं।

भगवती चरण वर्मा

भगवती चरण वर्मा का जन्म सन् 1903 ई. में हुआ। इनकी कविताएं सन् 1917 से 'प्रताप' में प्रकाशित होने लगी थीं। इससे यह पता चलता है कि इन्होंने चौदह वर्ष की आयु

टिप्पणी

से ही काव्य सृजन प्रारंभ कर दिया था। इनकी अनुभूति दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है– 1. जहां ये अपनी मस्ती और फक्कड़पन में अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं–"हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहां कल कहां चले।" ऐसी अनुभूतियां इन्हें 'नवीन' के साथ खड़ा कर देती हैं। किंतु ऐसी रचनाएं संख्या में बहुत कम हैं। दूसरे, मुख्य रूप से इन्होंने समाज की विषमताओं से पराजित और संघर्ष से विरत एकाकी व्यक्ति की अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति प्रदान की।

3.16 छायावादी कविता के मान–मूल्य

किसी भी युग में लिखा गया श्रेष्ठ साहित्य श्रेष्ठ चिंतन को भी जन्म देता है। जब समाज औसत चिंतनधारा को छोड़ जोखिम से भरी नयी राहों पर चलने के संकल्प के साथ चलने लगता है तो समाज की इस चेतना का साथ देने के लिए साहित्य भी आगे आता है। छायावादी काव्य भी वैयक्तिक पहचान को वाणी देने वाला काव्य है। छायावादी काव्य के मूल्यों की सटीक समीक्षा करने वाले आलोचक मुकुटधर पांडेय के अनुसार "छायावाद की आवश्यकता हम इसीलिए समझते हैं कि उससे कवियों को भाव–प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों–अनेक रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।" 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में सुमित्रानंदन पंत ने कहा कि "छायावाद केवल अभिव्यंजनापरक ही नहीं नवीन मूल्यपरक काव्य है।" पंत जी ने इस पुस्तक में इस बात पर बार–बार बल दिया है कि छायावाद 'मूल्य–केंद्रिक' काव्य है। उन्होंने यथाशक्ति अपने ढंग से उन मूल्यों का निर्देश भी किया है। छायावादी कविता के मान–मूल्यों की दृष्टि से छायावाद के प्रथम आलोचक श्रीमुकुटधर पांडेय का 'कवि–स्वातंत्र्य' शीर्षक निबंध संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। 'कवि–स्वातंत्र्य' ही छायावाद का केंद्रीयकरण मूल्य है जिससे छायावादी काव्य के जीवन और काव्य संबंधी सभी मूल्य निस्सृत होते हैं। इसकी पुष्टि तत्कालीन राष्ट्रीय संदर्भ से भी होती है। पंत जी भी शब्द–भेद से यही बात कहते हैं, जब वे 'छायावाद: पुनर्मूल्यांकन' में मध्ययुगीन धार्मिक मुक्ति–साधना से आधुनिक मुक्ति–भावना को अलगाते हुए लिखते हैं कि "छायावादी कवियों के सामने आत्ममुक्ति की धारणा तुच्छ होकर, भाव–मुक्ति, मानव–मुक्ति, विश्व–मुक्ति तथा लोक–मुक्ति की संभावना अनेक मूल्यों, विचारों तथा भावनाओं में रूप धर कर, उनकी वाणी द्वारा स्वप्न–मूर्त होने का प्रयत्न कर रही थी।" इस प्रकार छायावादी काव्य अपने ऐतिहासिक संदर्भ और राष्ट्रीय परिवेश के अनुरूप बहुमुखी स्वातंत्र्य अथवा मुक्ति की आकांक्षा की अभिव्यक्ति था। निराला का प्रसिद्ध गीत 'वीणावादिनि वर दे' का 'प्रिय स्वतंत्र रव' और 'बादल राग' शीर्षक कविता–शृंखला में विप्लवी 'निर्बन्ध बादल' का प्रतीक इसी मुक्ति–कामना के जीवंत उदाहरण हैं।

वैयक्तिकता–स्वतंत्रता की पहली अभिव्यक्ति व्यक्ति की मानसिक और सामाजिक स्वतंत्रता में होती है। छायावाद को व्यक्तिवाद की कविता कहकर उसके आलोचकों ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है, किंतु जैसा कि 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में पंत जी ने कहा है, "छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्यनिष्ठ रहा है, उसमें व्यक्ति मूल्य का प्रतिनिधि रहा है।" अपनी एक कविता में भी वे इस बात का स्मरण कराते हैं कि वे वैयक्तिकता के बीच इस संसार को भूले नहीं हैं–

'अपनी प्रगति जांचिए'

35. छायावाद को हिंदी कविता का कौन सा उत्थान समझा जाता है?
36. छायावाद से प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत किस कविता में मिलता है?
37. छायावादी काव्य की रचना कितने वर्षों तक हुई?
38. किस छायावादी कवि को 'प्रकृति का चितेरा कवि' कहा जाता है?
39. 'हम विषपायी जनम के' के रचनाकार का नाम बताइए?

टिप्पणी

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?
भूल अभी से इस जग को!

क्योंकि छायावादी कवि का व्यक्ति नये मूल्य का प्रतीक था वह मध्यकालीन सामंती रूढ़ियों से मुक्त होकर व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास का प्रयास कर रहा था। संयुक्त परिवार, जाति और धर्म की नींव पर मध्ययुगीन समाज में जो व्यवस्था खड़ी थी, कदाचित उसी के फलस्वरूप वातावरण में वैयक्तिक स्वतंत्रता की मांग ने जन्म लिया। छायावाद इसी अर्थ में विद्रोह का काव्य है कि उसमें व्यक्ति अपने रूढ़िबद्ध समाज से मुक्ति चाहता है। छायावादी प्रगीतों में इतने व्यापक स्तर पर जो 'मैं' शैली का प्रयोग हुआ है वह केवल शैली नहीं, वरन् व्यक्तित्व के आग्रह का प्रतिफल है। 'आत्मकथा' इसी प्रवृत्ति का दूसरा आयाम है। यह आकस्मिक नहीं है कि अधिकांश छायावादी कवियों ने आत्मकथात्मक कविताएं लिखी हैं। आत्म–संयम के प्रतीक प्रसाद जी की 'आत्मकथा' शीर्षक कविता तो विख्यात है ही, निराला ने भी 'सरोज–स्मृति' तथा 'वन–बेला' में अपने जीवन के मार्मिक प्रसंगों का चित्रण करके उसी वैयक्तिकता को प्रस्तुत किया है। छायावादी कविता का अतिप्रिय प्रतीक 'निर्झर' व्यक्ति की उद्दाम मुक्ति–कामना की ओर संकेत करता है तो 'पथिक' का प्रतीक घर छोड़कर वन–वन भटकने वाले व्यक्ति की व्याकुल–मनःस्थिति को सामने लाता है। वैयक्तिकता के आग्रह के साथ ही छायावादी कविता में व्यक्ति के आत्म–प्रसार की आकांक्षा भी व्यक्त हुई है, जिसकी झलक 'कामायनी' के मनु के इस आत्मकथन में देखी जा सकती है : "वन गुहा–कुंज, मरु–अंचल में हूं खोज रहा अपना विकास।" आत्मोपलब्धि के लिए "अबाध–गति मरुत सदृश" संचरण करने वाला मनु आधुनिक व्यक्ति–मानव का ही एक प्रतिरूप है।

सौंदर्यबोध–छायावादी कवियों की दृष्टि निर्विवाद रूप से सौंदर्यवादी थी। छायावादी कवियों की दृष्टि न केवल अखिल विश्व से सौंदर्य–चयन की ओर थी, बल्कि जीवन को भी वे सुंदर बनाने के अभिलाषी थे। कलावाद के जिस प्रभाव की चर्चा छायावाद के संदर्भ में प्रायः की जाती है, वह सौंदर्यवाद के रूप में अवश्य दिखाई देती है। 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' में से छायावाद की दृष्टि 'सुंदर' के रूप को ही गृहीत कर पाई। इस पथ पर अग्रसर होते हुए छायावादी कवि क्रमशः प्रकृति–सौंदर्य से चलकर मानव–सौंदर्य तक पहुंचे। पंत के शब्दों में "सुंदर है विहग सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।" सौंदर्य के विषय में भी छायावादी दृष्टि विशिष्ट थी। यहां एक ओर सौंदर्य "कनक किरण के अंतराल में लुक–छिपकर चलता" दिखायी पड़ता है तो दूसरी ओर वह "चेतना का उज्ज्वल वरदान" है। इस प्रकार छायावाद की सौंदर्य–दृष्टि में जहां एक ओर स्वप्न–लोक का–सा कुहासा है वहीं दूसरी ओर चेतना की उज्ज्वलता भी मौजूद है। छायावादी कवियों ने सौंदर्य को उदात्तता, भव्यता, दिव्यता आदि गुणों से मंडित करके उसे काव्य में एक नये मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया।

प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन–छायावादी कवियों ने उषा, संध्या, रात्रि और चांदनी को भी नयी अंतर्दृष्टि से देखा, इसीलिए पंत की 'प्रथम रश्मि', निराला की 'संध्या सुंदरी',

टिप्पणी

प्रसाद की 'मंदिर माधव यामिनी' और पंत की 'चांदनी' हिंदी में छायावाद से पहले के काव्य में दुर्लभ हैं। प्रकृति के चिरपरिचित दृश्यों में नवीन सौंदर्य का उद्घाटन करने के अलावा छायावादी कवियों ने वन्य प्रकृति के कुछ सुदूर दृश्यों की ओर भी दृष्टि दौड़ायी। पंत के पर्वतीय चित्र और प्रसाद की 'कामायनी' में चित्रित प्रलयकालीन समुद्र के विराट दृश्यचित्र हिंदी काव्य की अमूल्य निधियां हैं। प्रकृति के खंड–चित्रों के अतिरिक्त छायावाद ने संभवतः पहली बार एक विराट सत्ता के रूप में प्रकृति की अवधारणा को अभिव्यक्त किया गया और प्राकृतिक वस्तुओं के स्थान पर समग्र प्रकृति को काव्य रचना का विषय बनाया। छायावादी कवियों के प्रकृति–प्रेम को लक्ष्य करते हुए कभी–कभी उन पर पलायनवाद के भी आरोप लगाए गए, किंतु उस प्रकृति–प्रेम के मूल में सभ्यता से उत्पन्न सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति और नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा ही अधिक थी, पलायन कम। 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे' जैसी कविताएं जगत–मात्र से पलायन नहीं बल्कि 'कोलाहल की अवनी' से त्राण पाने की अभिलाषा है।

राष्ट्रीय चेतना, लोकमंगल और मानव–करुणा–छायावादी कवियों पर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि ये कवि राष्ट्रीय प्रश्नों से विरत होकर क्षितिज के पार ताक–झांक करते रहे। किंतु प्रसाद की 'हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' और 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' प्रभूति गीत तथा निराला के 'भारति जय विजय करे', 'महाराजा शिवाजी के नाम पत्र' और 'जागो फिर एक बार' जैसे ओजस्वी जागरण–गीत इस आरोप का खंडन कर देते हैं। उदाहरण के लिए निराला के 'तुलसीदास' में देश को पराधीनता से मुक्त करने का संकल्प है और 'राम की शक्ति–पूजा' के पौराणिक प्रतीक भी देश के उद्धार के लिए मौलिक शक्ति की साधना व्यंजित करते हैं।

छायावादी कवियों की स्वातंत्र्य–भावना समाज की विषमताओं के विरुद्ध लोकमंगल और मानव–करुणा के रूप में भी व्यक्त हुई है। सामान्यतः यह भावना सभी छायावादी कवियों में पायी जाती है, किंतु इसकी बहुलता निराला के काव्य में दिखाई देती है। निराला की करुणामयी दृष्टि 'भिक्षुक' और 'विधवा', पर ही नहीं गयी, बल्कि 'बादल राग' में उन्होंने 'जीण बाहु शीर्ण शरीर अधीर कृषक के क्षुब्ध तोष' को भी वाणी दी तथा 'शेष–श्वास, मूक–भाव प्रहार पाते दलित मानव समुदाय' के अधिकारों को भी प्रस्तुत किया। इस प्रकार छायावादी काव्य में थोड़ा ही सही, किंतु मानव–करुणा और लोकमंगल से युक्त सामाजिक चेतना भी परिलक्षित होती है।

विश्वमानवतावाद–राष्ट्रीय स्वाधीनता के संग्राम से संबद्ध होते हुए भी छायावाद अंध राष्ट्रवाद का शिकार नहीं हुआ, बल्कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वमानवतावाद से प्रेरणा प्राप्त करके काव्य में विश्व–दृष्टि को अभिव्यक्त करता रहा। पंत जी ने 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में बार–बार इस बात पर बल दिया है कि छायावाद विश्व–दृष्टि से अनुप्राणित था और यही उसकी आधुनिकता थी। प्रसाद की 'कामायनी' अखिल मानव–भावों का सत्य विश्व के हृदयपटल पर अंकित करने की कामना रखती है और निराला ने 'सम्राट अष्टम एडवर्ड' के प्रति कविता लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि छायावाद के कवि की दृष्टि देश, वर्ण, धर्म आदि की समस्त दीवारों को तोड़कर मानवीय संबंधों के

टिप्पणी

नाते किसी भी व्यक्ति के प्रति समान अनुभूति रखने को तत्पर है। निराला तो कहते ही हैं–

मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न,
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का वह निष्कलंक।

अतः हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्य की रचना जिन मान–मूल्यों की बुनावट में हुई उनकी परिधि व्यापक और विराट है और उसमें आधुनिक युग की विश्व–दृष्टि है।

3.17 छायावादकालीन काव्य का सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र

सामाजिक–सांस्कृतिक चरित्र

पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय समाज के संपूर्ण जीवन में एक नवीन परिवर्तन तथा विचारों में एक नूतन क्रांति आई। इस प्रभाव ने जहां एक ओर हमारे देश में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय आंदोलनों को जन्म दिया वहां इसने सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया। हमारे देश के नवयुवकों में व्यक्तिवाद का बोलबाला हुआ। उनके वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर आया। किंतु दुखद बात यह थी कि स्वच्छंदतावादी नवीन पीढ़ी धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों, जाति–पांति, अंधविश्वासों और मिथ्याडंबरों को छिन्न–भिन्न करने को सन्नद्ध थी, जबकि उसके समक्ष पुरानी पीढ़ी की समस्त रूढ़ियां अटल चट्टान के समान थीं, जो उनके स्वप्नों के स्वर्णिम संसार को चकनाचूर कर देती थीं। परिणामस्वरूप जीवन में कुंठा, अतृप्ति और निराशा की भावनाएं शनैः शनैः जड़ पकड़ने लगीं, जिनकी अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है।

छायावादी काव्य के सामाजिक और सांस्कृतिक चरित्र का विश्लेषण करते हुए केसरी नारायण शुक्ल जी लिखते हैं, "छायावाद के व्यक्तिवाद, आत्माभिव्यक्ति, कलावाद आदि बुर्जुआई संस्कृति के ही विविध रूप हैं। हमारे समाज की व्यवस्था ही प्रतिद्वंद्विता के आधार पर है। आज के समाज के मूल्यांकन का मानदंड अधिकार–स्वायत्त मूल्य (Property Value) के आधार पर है तो जनहित की अपेक्षा व्यक्तिगत सफलता की भावना प्रमुख हो गई। पूंजीवादी मितव्ययता द्वारा जिसका आधार ही व्यक्तिगत एकाधिकार है–संघटित समाज में व्यक्ति का प्राधान्य अनिवार्य था।" इस प्रकार की सामाजिक स्थिति में छायावादी कवि में व्यक्तिवाद का प्राधान्य अनिवार्य था और उसका स्वच्छंदतावाद तथा कलावाद की दुहाई देना भी स्वाभाविक था।

छायावादी कविता के सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र को जानने से पहले तत्कालीन आलोचकों की विचारधारा को समझना भी आवश्यक है। 1920 ई. से 1935

टिप्पणी

ई. के बीच की हिंदी कविता को आलोचकों ने दो धाराओं में देखने का प्रयास किया है। एक, 'राष्ट्रीय कविता' की धारा और दूसरी 'छायावादी' कविता की धारा। लेकिन इस अंतराल के कवियों का यह बंटवारा तार्किक नहीं है। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में इसे दिखाया है। यह अलग बात है कि इस समय लिख रहे कवियों की भावभूमि अलग–अलग है। यह भिन्नता व्यक्तिनिष्ठ है, जो कि इस अंतराल की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति की विविधता है, न कि भिन्नता। जयशंकर प्रसाद के 'मनु' और निराला के 'राम' की हताशा और निराशा, तत्कालीन भारतीय जनमानस की मनःस्थिति है।

प्राचीन रूढ़ियों का विरोध छायावाद की कविता का प्रमुख सरोकार था परंतु इसके बावजूद समकालीन नवजागरण की चेतना के अनुरूप अपनी सांस्कृतिक परंपरा के पुनरुत्थान की ओर भी ध्यान दिया। प्रसाद ने अपनी विरासत को ग्रहण किया और पौराणिक कथाओं को समकालीन आशय और अर्थ व्यंजनाओं से अलंकृत कर उनको नये रूप में प्रस्तुत किया। संपूर्ण कामायनी में 'श्रद्धा' और 'मनु' जैसे पौराणिक पात्र वर्तमान समय की समस्याओं इच्छाओं और समाधानों से युक्त हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद का काव्य सृजन एक नवीन जीवन मूल्यों की खोज में था।

इस युग में सामाजिक–सांस्कृतिक भावना कई रूपों में अभिव्यक्त हुई है। प्राचीन गौरव की पुनरुत्थानवादी भावना आर्य संस्कृति की ही जयकार है, लेकिन यह कहीं से भी संकीर्ण एवं सांप्रदायिक नहीं है। भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान के चलते ही अतीत का सहारा लिया। अतीत की यह पुनरुत्थानवादी भावना जयशंकर प्रसाद में सर्वाधिक थी। अपने ऐतिहासिक नाटकों–'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' आदि के द्वारा उन्होंने सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण के प्रसार में सहयोग दिया–

'अरुण यह मधुमय देश हमारा' –जयशंकर प्रसाद, (चंद्रगुप्त)

निराला की कविता भारती वंदना में भारतीय सांस्कृतिक गौरव के स्वर स्वतः ही सुनाई देते हैं। इस कविता में 'भारतमाता' की मूर्त कल्पना कर विजय की कामना की गई है–

'भारति, जय, विजय करे।
कनक–शस्य–कमल धरे।
लंका पदतल–शतदल,
गर्जितोर्मि सागर–जल
धोता शुचि चरण–युगल,
स्तव कर बहु–अर्थ–भरे'

–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका)

'वह तोड़ती पत्थर' कविता में निराला ने तत्कालीन सामाजिक विषमता को प्रस्तुत करते हुए दिखाया है कि जहां एक ओर राजा–महाराजाओं की ऊंची अट्टालियां हैं तो दूसरी ओर एक महिला कड़ी धूप में पत्थर तोड़–तोड़कर मेहनत करती है, न तो किसी का ध्यान उसकी ओर जाता है और न ही पत्थर तोड़ने की आवाज अट्टालिकाओं के अंदर रहने वाले लोगों को ही सुनाई देती है–

टिप्पणी

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर–
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय–कर्म–रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार:–
सामने तरु–मालिका अट्टालिका, प्राकार।

छायावादी कवियों द्वारा स्वाधीनता के लिए लिखे उद्‌बोधन गीतों में सांस्कृतिक वैभव की झलक दिखाई देती है।

'हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती।'

–जयशंकर प्रसाद, चंद्रगुप्त

अकाली सिक्खों के शौर्य का स्मरण कराते हुए 'निराला' ने लिखा :–

'शेरों की मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।'

–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', परिमल

जब मति–भ्रष्ट एवं पद–दलित जाति अपनी सभ्यता और संस्कृति को क्षुद्र समझने लगती है, दूसरी ओर विदेशी अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने में सफल होते हैं। विवेक–च्युत भारतीय सुख की तृष्णा में अपना अमृत–स्रोत त्यागकर विदेशी गरल अपना लेते हैं तो छायावादी कवि भला मौन कैसे रह सकता है। वर्तमान का 'खंडहर' इसी ओर संकेत करता है :

"तुमने मुख फेर लिया
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्राण, साम–गान, सुधा–पान।"

–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', अनामिका

धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास किस प्रकार मानव समाज को कमजोर और पतित बनाता है, जयशंकर प्रसाद ने इसे बखूबी समझा है। धर्म के नाम पर अपने ही परिजनों की बलि देना और समाज से निर्वासित करने की पीड़ा को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है–

टिप्पणी

"हाय धर्म का प्रबल भयानक रूप यह
महापाप को भी उल्लंघन कर गया
कितने गए जलाए, वध कितने हुए
निर्वासित कितने होकर कब–कब नहीं
बलि चढ़ गए, धन्य देवी धर्मान्धते।"

–जयशंकर प्रसाद, कानन–कुसुम

इस प्रकार हम कह सकते हैं, छायावादी कवियों के मन में प्राचीन सीमाओं का तो बोध था और कुछ नया करने की तीव्र अभिलाषा भी थी लेकिन 'नवीन क्षितिज' की कोई स्पष्ट रूपरेखा न थी। पूरा युग ही आने वाली नयी संस्कृति के प्रति स्वप्नदर्शी बना हुआ था। यदि एक ओर गांधी रामराज्य की कल्पना कर रहे थे तो दूसरी ओर रवीन्द्र विश्वमानवता का स्वप्न देख रहे थे। नये सामाजिक मूल्यों की स्थापना, व्यक्ति–स्वातंत्र्य की घोषणा और आत्म–प्रसार की ललक ने कवियों के व्यक्तित्व को अनन्त के प्रति जिज्ञासु बनाया।

राजनीतिक चरित्र

छायावादी काव्यधारा दो महायुद्धों के बीच की कविता है। सन् 1914 से 1919 और 1939 से 1944 के बीच जो कविता लिखी गई उसे सामान्यतः छायावादी कविता के नाम से जाना जाता है। हिंदी के कुछ विद्वानों ने छायावादी काव्य की वेदना और निराशा का संबंध प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजी शासन का अपने वचनों को पूरा न करना, रौलट एक्ट तथा 1919 के अवज्ञा आंदोलन की असफलता के साथ जोड़ा है किंतु यह नितांत असंगत है। असफलता के अनन्तर भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के लक्ष्य, नीति और अदम्य उत्साह में तिल भर भी अंतर नहीं आया। इन्हीं सतत प्रयत्नों और अप्रतिहत उत्साह–शक्ति के परिणामस्वरूप 1947 में स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई। छायावादी कवियों की राजनीतिक आंदोलनों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीनता का कारण तत्कालीन राजनीतिक निराशा नहीं, औद्योगिकता से प्रेरित उनका व्यक्तिवाद है तथा उनका काव्य के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है। यह तो एक संयोग था कि छायावाद का जब जन्म हुआ उस समय राष्ट्रीय आंदोलन चल रहे थे और यदि वे न भी होते तब भी छायावादी काव्य का जन्म अवश्यंभावी था और उसका स्वरूप भी यही होता जो अब हमारे सामने है। डॉ. शिवदान सिंह के शब्दों में, "इसलिए इसी बात को स्पष्ट समझ लेने की जरूरत है कि यदि हमारा देश पराधीन न होता और हमारे यहां राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकता न रही होती, तो भी आधुनिक औद्योगिक समाज पूंजीवाद का विकास होते ही काव्य में स्वच्छंदतावादी भावना और व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति मुखर हो उठती। इसलिए छायावादी कविता राष्ट्रीय आंदोलन या जागृति का सीधा परिणाम नहीं बल्कि पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और संस्कृति के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप हमारे देश और समाज के बाहरी और भीतरी जीवन में जो प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे, उन्होंने जिस तरह सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाई और राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी, उसी तरह सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति को प्रेरणा दी।... इस दृष्टि से ही हम कह सकते हैं कि देश की प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य–

टिप्पणी

साहित्य के प्रभावों को ग्रहण करती हुई छायावादी कविता राष्ट्रीय जागरण के क्रोड़ में पनपी और फूली फली।" हां, राष्ट्रीय आंदोलनों का यह लाभ अवश्य हुआ कि छायावादी व्यक्तिवाद असामाजिक पथों पर न भटका।

छायावादी काव्य के राजनीतिक चरित्र को तत्कालीन कवियों की कविताओं के कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है। निराला की यह कविता जहां तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरतावाद के दर्शन कराती है वहीं राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक परिवेश को भी ध्वनित करती है। 30 वर्ष की आयु में विवेकानंद ने अमेरिका में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और भारतीय गौरव को बढ़ाया। छायावादी कविता ने उसे भी वाणी दी–

अपर ओर करता विज्ञान घोर नाद
दुर्धर शत–रथ–घर्घर विश्व–विजय–वाद।
स्थल–जल है समाच्छन्न
विपुल–मार्ग–जाल–जन्य,
तार–तार समुत्सन्न देश–महादेश,

× × × ×

चूस रहे अन्त्र, मंत्र रहा यही शेष।
बढ़े समर के प्रकरण,

× × × ×

मौलिक मन को मुधार जागे!
मैक्सिम–गन करने को जीवन–संहार
हुआ जहां, खुला वहीं नोबल–पुरस्कार!

राजनीति नागिनी
बसती है, हुई सभ्यता अभागिनी।

× × × ×

बहुत काल बाद
अमेरिका–धर्ममहासभा का निनाद
विश्व ने सुना, कांपी संसृति की थी दरी,
गरजा भारत का वेदान्त–केसरी।
श्रीमत्स्वामी विवेकानन्द
भारत के मुक्त–ज्ञानछन्द
बंधे भारती के जीवन से
गान गहन एक ज्यों गगन से,
आये भारत, नूतन शक्ति ले जगी
जाति यह रंगी।

–सेवा–प्रारंभ / सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

टिप्पणी

निराला की कविता 'राम की शक्ति पूजा' के राम 'राष्ट्रीय मन' के प्रतीक बनकर उपस्थित हुए हैं। राम–रावण युद्ध में जब रावण शक्तिशाली प्रतीत होने लगा तो निराला तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को चित्रित करते हुए कहते हैं–

'अन्याय जिधर, है उधर शक्ति।'
कहते छल–छल हो गए नयन,
कुछ बूंद पुनः ढलके दृगजल

शताब्दियों से पराधीन देश के लोगों को वे अनुकरण छोड़कर मौलिकता लाने का संदेश देते हैं–

'शक्ति की करो मौलिक कल्पना,
करो पूजन'

× × × ×

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।

छायावादी काव्य में प्रस्तुत शक्ति का अर्थ सीधे राजनीति से न जोड़कर समग्र चेतना से जोड़ा जा सकता है। क्योंकि छायावादी काव्य में राष्ट्र जागरण से अधिक समग्र चेतना के जागरण के स्वर मुखर हैं, उसमें अंतर्निहित शक्ति के विकास का रचनात्मक उपक्रम है। यहां राजनीति से अधिक संपूर्ण सांस्कृतिक जागरण प्रधान है, राजनीतिक जागरण वस्तुतः राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण के अंग रूप में देखा जा सकता है, जो पुनर्जागरण की मूलधारा के अनुरूप है। हम यह कह सकते हैं कि छायावाद की राष्ट्रीयता का आधार राजनीति की अपेक्षा संस्कृति है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक पुनर्जागरण का स्वरूप मूलतः संश्लिष्ट है, वह समग्र मानवीय और भारतीय व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रयासशील है। कदाचित यह व्यक्तित्व का विकास ही राजनीतिक चरित्र का निर्धारण कर सकता है।

छायावादी काव्य में शक्ति का आह्वान इस युग के जागरण गीतों में दिखाई देता है। पुनर्जागरण चेतना की बड़ी सूक्ष्म और प्यारी अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। मनुष्य और प्रकृति दोनों की गुप्त चेतना को जगाने का उपक्रम यहां कवि ने सामान्यतः प्रशमित और कभी–कभी ओज की मुद्रा में किया है। छायावादी काव्य में एक बड़ी संख्या इन प्रभाती और जागरण–गीतों की है, जिसमें एक ओर शक्ति और चैतन्य का आह्वान है और वहीं समकालीन संदर्भ में वे राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से जुड़े हैं। 'प्रथम प्रभात', 'आंखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात!', 'बीती विभावरी जाग री!' (प्रसाद), 'जागो फिर एक बार', 'प्रिय मुद्रित दृग खोलो!', 'जागा दिशा ज्ञान', 'जागो, जीवन धनिके!' (निराला), 'जाग बेसुध जाग', 'जाग तुझको दूर जाना!' (महादेवी), 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत' (सुमित्रानंदन पंत) जैसी अनेक जागरण कविताएं अनायास स्मरण हो आती हैं। इनमें से कुछ गीतों में व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्र–जागरण के भाव एक–दूसरे में घुल–मिल गए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि छायावादी कवि जिस सामाजिक पृष्ठभूमि में काव्य रचना कर रहे थे वह एक नये चरित्र निर्माण के प्रति व्यग्र एवं प्रयत्नशील थे। इसमें राजनीतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का समावेश भी हो गया है।

3.18 छायावादकालीन काव्य–भाषा का स्वरूप

टिप्पणी

द्विवेदी युगीन खड़ी बोली से हटकर छायावाद की भाषा धीरे–धीरे चित्रात्मक होती चली गई। इसकी प्रारंभिक प्रक्रिया हमें मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय की रचनाओं में दिखाई देती है जिन्होंने खड़ी बोली के काव्य को कल्पनामय, चित्रात्मक और भावव्यंजक बनाकर अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। छायावाद में अधिकांश रूप से प्रतीकात्मक काव्य का प्रणयन किया गया। प्रकृति के बिंबों को जीवंत रूप देकर, उन्हें नारी रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति तत्कालीन कवियों में दिखाई देती है। कहीं–कहीं तो इतने प्रतीक भर दिए गए हैं कि पाठक के लिए अर्थ ग्राह्यता में बाधा उत्पन्न होती है।

अभिव्यंजनावाद की पद्धति या काव्यशैली पर ही प्रधान लक्ष्य रहने से छायावाद के भीतर उसका बहुत ही रमणीय विकास हुआ है। साम्यभावना और लक्षणा शक्ति के बल पर किस प्रकार काव्योपयुक्त चित्रमयी भाषा की ओर सामान्यतः झुकाव हुआ, यह भी कहा जा चुका है। साम्य पहले उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक– ऐसे अलंकारों के बड़े–बड़े सांचों के भीतर ही फैलाकर दिखाया जाता था। वह अब प्रायः थोड़े में या तो लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा झलका दिया जाता है अथवा कुछ प्रच्छन्न रूपकों में प्रतीयमान रहता है। इसी प्रकार किसी तथ्य या पूरे प्रसंग के लिए दृष्टांत अर्थात विन्यास आदि का सहारा न लेकर अब अन्योक्ति पद्धति ही अधिक चलती है। यह बहुत ही परिष्कृत पद्धति है। पर यह न समझना चाहिए कि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग नहीं होता है, बराबर होता है और बहुत होता है। उपमा में धर्म बराबर लुप्त रहता है। प्रतिवस्तूपमा, हेतुत्प्रेक्षा, विरोध, श्लेष, एकावली इत्यादि अलंकार भी कहीं–कहीं पाए जाते हैं।

कुल मिलाकर छायावादी काव्य के रहस्य पक्ष को छोड़ दिया जाए तो इसकी भाषा प्रवाहमयी, व्यंजक, सरस है जो पाठक को कल्पना लोक की सैर कराने में सक्षम है।

छायावाद की भाषागत एवं कलागत विशेषताओं को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है–

प्रतीकात्मकता– छायावाद में अंतर्मुखी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण बाह्य–स्थूलता का चित्रण न होकर सूक्ष्मता का चित्रण हुआ है। प्रकृति–चित्रण छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रकृति ही के बीच कवि ने अपनी शोभा और भावनाओं को देखा है और अनुभव भी किया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रकृति छायावादी कवि के वैयक्तिक जीवन का प्रतीक बन गई। निःसंदेह इस काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त चित्रण हुआ है किंतु स्मरण रखना होगा कि उसकी स्वतंत्र सत्ता का आभास, जैसा कि संस्कृत–साहित्य में उपलब्ध होता है, कम मिलता है और इस काव्य में उसका आलम्बन रूप में ग्रहण भी बहुत कम हुआ है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया, इससे वह स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व से विहीन हो गई और इसमें प्रतीकात्मकता का व्यवहार किया गया। उदाहरणार्थ, फूल सुख के अर्थ में, शूल दुख के अर्थ में, उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में, झंझाझकोर गर्जन मानसिक द्वंद्व के अर्थ में, नीरद–माला नाना भावनाओं के अर्थ

टिप्पणी

में प्रयुक्त हुए। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के अंकन में भी इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है। प्रेम–चित्रण में लौकिक और अलौकिक दोनों अर्थों की व्यंजना के लालच के फलवरूप इन कवियों में अस्पष्टता आ गई और कविता में अभीष्ट प्रभाव भी न आ सका। छायावादी काव्य में बहुत–सी ऐसी रचनाएं हैं, जिनका विषय लौकिक प्रेम है किंतु साथ–साथ वे आध्यात्मिक प्रेम की भी प्रतीक हैं।

चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली– अन्य अनुपम विशिष्टताओं के अतिरिक्त केवल चित्रात्मक भाषा के कारण हिंदी वाङ्मय में छायावादी काव्य के स्वतंत्र व्यक्ति एवं अस्तित्व माने जा सकते हैं। निःसंदेह द्विवेदी–युग में भाषा में परिष्कार और संस्कार का कार्य संपन्न हुआ, किंतु उसमें सौंदर्य और सुकुमारता की सृष्टि इसी काल में हुई। कविता के लिए चित्रात्मक भाषा की अपेक्षा होती है और इसी गुण के कारण उसमें बिम्बग्राहिता आती है। छायावादी कवि इस कला में परम विदग्ध हैं। "छायावादी काव्य में प्रसाद ने प्रकृति तत्व को मिलाया, निराला जी ने उसे मुक्तक छंद दिया, पंत ने शब्दों को खराद पर चढ़ा कर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले, उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया।" प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियों में भाषा की चित्रात्मकता की सहज छटा देखी जा सकती है–

शशि मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आए।।

छायावादी कवि ने सीधी–सादी भाव–संबंधित भाषा से लेकर लाक्षणिक और अप्रस्तुत–विधानों से युक्त चित्रमयी भाषा तक का प्रयोग किया और कदाचित इस क्षेत्र में उसने सर्वाधिक अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया। छायावादी कवि ने परंपरा–प्राप्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उपमानों की उद्‌भावना की। उसने अप्रस्तुत–विधान और अभिव्यंजना–शैली में शतशः नवीन प्रयोग किये। मूर्त में अमूर्त का विधान उसकी कला का विशेष अंग बना। निराला जी विधवा का चित्रण करते हुए लिखते हैं–"वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी।" छायावादी काव्याधारा के पर्याप्त विरुद्ध लिखने वाले आलोचक डॉ. रामचंद्र शुक्ल को भी लिखना पड़ गया था कि "छायावाद की शाखा के भीतर धीरे–धीरे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं। इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैविध्य, मूर्त–प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पदविन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संगठित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।" उन्होंने पंत काव्य के कुछ उदाहरण भी उद्‌धृत किये– "धूल की ढेरी में अनजान। छिपे हैं मेरे मधुमय गान", "मर्म पीड़ा के हास" और "कौन तुम अतुल रूप अनाम।"

गेयता– छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ–साथ नवीन छंदों का भी निर्माण किया गया। इसमें मुक्तक छंद और अतुकांत कविताएं भी लिखी गईं। छायावादी कवि प्रणव, यौवन और सौंदर्य का कवि है। गीति–शैली उसके गृहीत विषय के लिए उपयुक्त थी। गीति–काव्य के सभी गुण– संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की मसृणता आदि छायावादी कविता में निहित हैं। रामनाथ सुमन के शब्दों में, "इस कवि में जो मस्ती है, भावना अनुभूति की मृदुता है, और

टिप्पणी

मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति काव्य की रचना के अत्यंत उपयुक्त थी।" गीति काव्य के लिए सौंदर्य–वृत्ति और स्वानुभूति के गुणों का होना आवश्यक है, सौभाग्य से ये सारी बातें छायावादी कवियों में मिलती हैं। दूसरी एक और बात भी है कि आधुनिक युग गीति काव्य के लिए जितना उपयुक्त है उतना प्रबंध काव्यों के लिए नहीं। अस्तु, छायावाद के साहित्य में, "प्रगीत, खंड काव्य और प्रबंध काव्य भी लिखे गए और वीर गीति, संबोध गीति, शोक गीति, व्यंग्य गीति आदि काव्य के अन्य रूप विधानों का भी प्रयोग किया गया। छायावादी कवियों की भाषा और छंद प्रयोग केवल बुद्धिविलास, वचन भंगिमा कौशल या कौतुक वृत्ति से प्रेरित नहीं रहा बल्कि उनकी कविता में भाषा भावों का अनुसरण करती दीखती है और अभिव्यंजना अनुभूति का।"

अलंकार विधान– अलंकार–योजना में प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के दो नवीन अलंकारों–मानवीकरण तथा विशेषणविपर्यय का भी साधु उपयोग किया गया है। प्रकृति के स्वरूपों–प्रातः, संध्या, झंझा, बादल, सूर्य, चंद्रमा आदि पर जहां मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है वहां मानवीकरण है। "विशेषण विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है, उसे वहां से हटाकर लक्षण द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पंत ने बच्चों के 'तुतले भय' का प्रयोग उनकी तुतली बोली में व्यंजित भय के लिए किया है।" इसी प्रकार "तुम्हारी आंखों का बचपन खेलता जब अल्हड़ खेल।" छायावादी कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमानों की उद्‌भावना की है, जैसे– "कीर्ति किरण सी नाच रही है" तथा "बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।" इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

गतिविधि

पुस्तकालय अथवा इंटरनेट की सहायता से भारतीय नवजागरण में प्रमुख भूमिका निभाने वाले साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं की सूची तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पहले कवि हैं जिन्होंने उस काल में स्त्री विमर्श को महत्व दिया तथा 'साकेत' के माध्यम से लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की पीड़ा को जगजाहिर किया।

3.19 सारांश

आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते समय हम पाते हैं कि इस युग में जीवन और साहित्य दोनों में 'आधुनिकता' का समावेश हुआ है। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिंदी साहित्य के इस काल को 'आधुनिक' कहा। इस काल में हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, जीवन–पद्धति, राजनीति, शासन–व्यवस्था और

'अपनी प्रगति जांचिए'

40. छायावादी मान–मूल्यों की दृष्टि से छायावाद का प्रथम आलोचक किसे माना जाता है?
41. 'सम्राट अष्टय एडवर्ड पर किसने कविता रची?
42. 'वह तोड़ती पत्थर' के रचनाकार का नाम बताइए?
43. 'राम की शक्तिपूजा' के राम किसके प्रतीक बनकर उपस्थित हुए हैं?
44. छायावाद में अधिकांश रूप से किस प्रकार के काव्य का प्रणयन किया गया?
45. छायावादी कवि साहित्य के अलावा किस विधा के कुशल ज्ञाता थे?

टिप्पणी

विज्ञान से हुआ तथा तत्कालीन साहित्य में भी इन तत्वों का समावेश स्वाभाविक रूप से होने लगा। लगभग दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारत में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिए, जिनकी कल्पना भी नहीं की गई थी। हिंदी जगत ने पश्चिमी जगत के जीवन मूल्यों वाली सभ्यता–संस्कृति, भाषा और भौतिक विज्ञान की शक्ति को चुनौती के रूप में खड़ा पाया। हिंदी जगत ने इन नयी परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और उनसे समझौते का मार्ग भी अपनाया।

आधुनिक काल के साहित्य में जनचेतना के स्वर प्रबल रूप से सुनाई देते हैं। भक्तिकाल का धर्म इस समय इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन गया था। लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा। धर्मसुधारकों ने भी धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। दयानंद सरस्वती एवं राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने तर्क और प्रमाण के आधार पर समाज सुधार कर कुरीतियों के निवारण का प्रयास किया। परिणामतः देशवासियों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की मांग को स्वर दिया। इस युग में हिंदी भाषा और साहित्य को भी नयी दिशा मिली। मुद्रणकला की आधुनिक दृष्टि से इस युग का साहित्य तेजी से तथा नये रूप–रंग में आगे बढ़ा। देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ। देश की सभी भाषाओं में साहित्य का वैविध्य तथा जागरण की चेतना देखी जा सकती है। मुद्रणालयों ने साहित्य को जन–जन तक पहुंचाया, देश को एकसूत्र में बांधने का भी कार्य किया। देश में नवजागरण लाने वाले समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा मुद्रणालयों की इस भूमिका को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

हिंदी भाषा जन–समूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी को हिंदीभाषी जनता के नवजागरण का सांस्कृतिक माध्यम बनाने और सरकारी स्तर पर हिंदी को यथायोग्य स्थान दिलाने का संघर्ष भी उस समय हुआ।

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार के व्यक्तित्व के कारण भारतेंदु युग हिंदी साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश करने का श्रेय भारतेंदु जी को ही है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तन एवं इसके विकास की आधार भूमि का निर्माण इसी युग में हुआ। भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने साहित्य को जन साधारण की वाणी बनाया तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर अगला युग द्विवेदी युग के नाम से जाना गया। इस युग को सुधारवादी युग भी कहा गया। इस युग में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए, ये परिवर्तन तत्कालीन समाज सुधार आंदोलनों द्वारा उत्पन्न हुए। राजा राममोहन राय, ऐनी बेसेंट, दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, रामकृष्ण परमहंस ने समाज सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन तथा गांधीवादी विचारधारा के लोगों ने अपने–अपने

टिप्पणी

तरीके से कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। कई अमानुषिक प्रथाओं के खिलाफ आवाज उठाई गई। निबंध साहित्य की दृष्टि से यह काल बहुत समृद्ध है। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विधा को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक ज्ञान–विषयक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी अनेक उपयोगी निबंधों की रचना की। उन्होंने बेकन के निबंधों का अनुवाद किया। इस युग में प्रकाशित 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', 'इंदु', 'मर्यादा', 'प्रभा' आदि पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों से संबंधित निबंध प्रकाशित होते थे।

द्विवेदी युग में खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति का विकास हुआ और मुक्त छंद की शुरुआत के साथ स्वच्छंदतावाद के बीज उगने लगे। हिंदी की विविध गद्य विधाओं के विकास, भाषा–परिमार्जन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आदि अनेकानेक विशेषताओं के कारण यह युग हिंदी साहित्याकाश में जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान अपने महत्व की ओर सबका ध्यान आकर्षित करता है। इस युग में पौराणिक आख्यानों को समसामयिक संदर्भ में रखकर साहित्य रचना हुई। साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार कर इस युग ने हिंदी साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया।

हिंदी काव्यधारा के विकास में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत व महादेवी वर्मा जैसे प्रमुख साहित्यकार हुए। छायावाद ने न केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर वरन् काव्य–भाषा और संरचना–शिल्प की दृष्टि से भी हिंदी कविता को समृद्ध किया है और उसे उत्कर्षता प्रदान की है। लाक्षणिक वक्रता भरी भाषा इस काल की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस काल में साहित्य, संगीत एवं कला तीनों का समन्वय उत्पन्न हुआ। नयी उपमा, नये प्रतीक, नये अलंकार प्रयुक्त हुए। प्रारंभ में तत्कालीन साहित्कारों ने इस काव्य को गंभीरता से नहीं लिया। छायावाद नाम स्वीकृत होने के पश्चात इसके अभिप्राय को लेकर अनेक मत सामने आए। बाद में भी इसे रहस्यवाद, चित्रमयी भाषा शैली या प्रतीक–पद्धति के रूप में ही मान्यता दी गई।

छायावाद की परिस्थितियां भी विचित्र थीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थितियां बदल रहीं थीं। गांधीजी का आंदोलन उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मज़दूरों के बीच फैल गया। दासता से मुक्ति की भावना जनता में फैल चुकी थी। राष्ट्रवाद और देशप्रेम की भावना अपने चरम पर थी। जाति, धर्म के भेदभाव कम हो रहे थे। पुनर्जागरण ने न केवल यूरोप वरन् भारत को भी प्रभावित किया। मुक्ति की इच्छा में छटपटाते भारतीयों में एक नये उत्साह और नयी उमंग का संचार इन कवियों ने किया। कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने–समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

इस प्रकार आधुनिक काल साहित्यिक विविधताओं से परिपूर्ण रहा। स्वाधीनता संघर्ष और भारतीय नवजागरण के बीच तत्कालीन साहित्यकारों–संत गंगादास एवं भारतेंदु से लेकर द्विवेदी जी के भाषा–सुधार के प्रयासों का साक्षी रहा। यह युग प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की लेखनी से निकले छायावादी बिंबों को लेकर बड़े ही समृद्ध रूप में प्रस्तुत हुआ है।

टिप्पणी

3.20 मुख्य शब्दावली

- **पुनरुत्थान** : पुनः उन्नति करना, फिर से उठना
- **छायावाद** : सौंदर्यमय प्रकृति की कल्पना करके लक्षणा, व्यंजना एवं प्रतीकों के माध्यम से काव्य रचना में अपनी अनुभूति प्रकट करना
- **सत्यान्वेषण** : सत्य की खोज़
- **मुलम्मा** : रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बर्तनों पर किया गया लेप, कलई, आवरण

3.21 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सन् 1857 के बाद
2. सन् 1844 में
3. कच्चे माल की
4. पत्रकारिता
5. दो
6. 29 मार्च, 1857 को
7. इंग्लैंड की सरकार को
8. साम्राज्ञी विक्टोरिया ने
9. 1885 ई में
10. गंगाबख्श
11. 50
12. डॉ. जगन्नाथ शर्मा 'हंस'
13. राजा लक्ष्मण सिंह ने
14. सन् 1873 में
15. 15 साल
16. राष्ट्रीय गौरव
17. 150
18. ब्रजभाषा
19. निबंध
20. विचारात्मक
21. लाला श्रीनिवास दास
22. बाबू तोताराम

टिप्पणी

23. पंडित केशव राम भट्ट
24. कलकत्ता से
25. सामाजिक उत्थान
26. जातीय संगीत
27. सरल–सुलभ
28. कलात्मकता का
29. गहरे उपदेश
30. मैथिलीशरण गुप्त
31. 'साकेत' में
32. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
33. रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'
34. लाला भगवानदीन 'दीन'
35. तृतीय उत्थान
36. 'युगांत'
37. 20
38. सुमित्रानंदन पंत
39. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
40. श्रीमुकुटधर पांडेय
41. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
42. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
43. राष्ट्रीय मन के
44. प्रतीकात्मक
45. संगीत

3.22 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक काल की पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. आधुनिक काल के नामकरण के विषय में विभिन्न विद्वानों के मतों की तुलना करते हुए, अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. उन्नीसवीं शताब्दी में नवजागरण में तत्कालीन साहित्यकारों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

4. भारतेंदु मंडल के कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. भारतेंदु युग में काव्य–भाषा के संघर्ष के स्वरूप पर टिप्पणी लिखिए।
6. द्विवेदी युग में हुए नये काव्य परिवर्तनों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
7. छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि पर एक निबंध लिखिए।
8. अन्य छायावादी कवियों की विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवियों में संत गंगादास के योगदान का विवेचन कीजिए।
2. हिंदी काव्य को भारतेंदु का क्या अवदान रहा? सिद्ध कीजिए।
3. भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना की व्याख्या करते हुए उसकी विशेषताएं बताइए।
4. द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए, प्रमुख रचनाकारों का परिचय दीजिए।
5. छायावाद के नामकरण और सीमांकन का विश्लेषण करते हुए प्रमुख छायावादी कवियों का साहित्यिक परिचय दीजिए।
6. छायावादी कविता के मान–मूल्यों की विश्लेषणात्मक व्याख्या कीजिए।
7. छायावादी काव्य के सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्र का विवेचन कीजिए।
8. छायावाद की काव्य–भाषा की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।

3.23 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. डॉ. नामवर सिंह, *छायावाद,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. डॉ. नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
5. *आधुनिक हिंदी साहित्य,* अज्ञेय, राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली।
6. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, *समकालीन हिंदी कविता,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

इकाई 4 उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप
4.3 प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएं
  4.3.1 लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य
  4.3.2 वैयक्तिक गीति काव्य
  4.3.3 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा
4.4 प्रगतिशील काव्य
4.5 प्रयोगवाद
4.6 नयी कविता
4.7 नवगीत
4.8 समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन
4.9 दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं
  4.9.1 निराला की कविता में दलित एवं जनजातीय चेतना
  4.9.2 नागार्जुन एवं जनचेतना
  4.9.3 डॉ. रामकुमार वर्मा एवं दलित चेतना
  4.9.4 नरेश मेहता के काव्य में दलित–चेतना
  4.9.5 जगदीश गुप्त का काव्य और दलित चेतना
  4.9.6 रामधारी सिंह दिनकर और दलित तथा जनजातीय चेतना
  4.9.7 सुभद्रा कुमारी चौहान एवं स्त्री चेतना
  4.9.8 स्त्री चेतना और अरुण कमल की कविता
  4.9.9 समकालीन अन्य कविताएं एवं चेतना के स्वर
4.10 स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी गद्य साहित्य
4.11 देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य
4.12 स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य
4.13 दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.14 स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.15 जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
  4.15.1 जनजातीय चेतना का स्वरूप
  4.15.2 हिंदी गद्य साहित्य में जनजातीय चेतना
4.16 भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य
4.17 सारांश
4.18 मुख्य शब्दावली
4.19 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.20 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.21 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

पिछली इकाई में आपने आधुनिक काल की पृष्ठभूमि एवं विशेषताओं को जाना। इस इकाई में उत्तर छायावादी युग में सृजित काव्य एवं गद्य के स्वरूप का अध्ययन करेंगे। उत्तर छायावादी काव्य अर्थात आधुनिक हिंदी कविता संक्रमण और वैचारिक ऊहापोह के बीच

टिप्पणी

उद्‌भूत हुई कविता है। यह कविता स्वतंत्रता की चेतना, राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष और स्वतंत्रता के उपरांत उन्मुक्त उल्लास में रची गई है। जी. शंकर कुरुप के शब्दों में यह मंजुल प्रभात था। मैथिलीशरण के शब्दों में वायुमंडल में पुण्य पताका फहरा रही थी। छायावाद की समाप्ति के बाद लिखी गईं कविताओं में लौकिक समाज के बिंब एवं संवेदना, व्यैक्तिक गीति काव्य और राष्ट्रीयता के स्वर ध्वनित होते सुनाई दिए मगर यह स्थिति अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह पाई, समाज में परिवर्तित होती स्थितियों के साथ काव्य के स्वर भी परिवर्तित होते चले गए। यह समय की मांग भी थी, संवेदनशील कवि मन भला इससे अछूता कैसे रह पाता?

काव्यान्दोलन का यह एक ऐसा दौर था जब समकालीन कवियों के काव्य में स्वतंत्रता के बाद भारत के भविष्य की चिंता के स्वर गूंजने लगे। स्वाधीन होने के बाद क्या मिला? यह अवसाद मोहभंग कर रहा था। अब केवल मूल्यों के प्रति आस्था नहीं थी वर्तमान के प्रति असंतोष भी था। मध्यमवर्गीय कवि अनेक प्रकार की वर्जनाओं को तोड़ने में लगा था। अनेक नये कवियों ने भी इस लहर को स्वतंत्रता के बाद अवसाद और मोहभंग की स्थिति से जोड़ा था। दो युद्धों की विभीषिका का सामना करने के बाद सन् 1960 के बाद की पीढ़ी इलियट, पाउंड और बीटल कवियों से प्रभावित हो रही थी। अमृता प्रीतम, जांनिसार अख्तर जैसे अनेक कवियों ने इसे अनुभव किया था। श्रीकांत वर्मा इस अवसाद को 'सारी पृथ्वी से उड़ती है सड़ांध' और 'धूमिल फिरंगी हवाएं' से देख रहे थे। सन् 1960 के बाद अस्वीकृत, निषेध और मोहभंग का प्रसार हो रहा था। हिंदी की अकविता, तेलुगु की दिगंबर पीढ़ी, बांग्ला की क्षुधातुर पीढ़ी और मराठी का दलित साहित्य जैसे अनेक आंदोलन उठ खड़े हुए थे। सत्ता द्वारा सत्य को दबाने और कुचलने के प्रयासों का खुलासा कविताओं में होने लगा था। मुक्तिबोध का कथन था कि यह पोस्टर की कविता है। रघुवीर सहाय मूर्ति बनाकर ढहा रहे थे। शायद यही कविता थी जिसमें सर्वेश्वर भी खोखलेपन को देख रहे थे। यह सारा परिवेश बिखरा पड़ा था। राजेंद्र मिश्र का कथन था कि अब स्टेच्युओं का राज आ रहा है। इस तरह की त्रासद स्थितियों के बीच अनेक कवियों ने अपनी निराशा को अभिव्यक्ति दी थी। कैलाश वाजपेयी, धूमिल, राजकमल चौधरी, श्रीकांत वर्मा, लीलाधर जगूड़ी जैसे अनेक कवियों ने इस आत्म–निर्वासन का सामना किया। साहित्य रचना की जो भी नयी प्रवृत्ति आई उसके साथ–साथ भारतीय भाषाओं के साहित्य में विदेशी प्रभाव भी आए। आधुनिक भारतीय कविता में ये अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। विदेशी प्रभाव के साथ भारतीय साहित्य के उत्तर छायावादी युग में भारतीय चेतना का ही प्रभाव मिलता है। किंतु इसके उपरांत प्रगतिशील काव्य में विदेशी प्रभाव अधिक मुखर है। इसका कारण यह है कि मार्क्सवाद के प्रभाव से प्रगतिशील चेतना भारतीय भाषा साहित्य में अंकित हुई है। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के अनेक आंदोलन प्रयोगशील साहित्य का आधार बने हैं।

सृजनात्मक आंदोलन की यह प्रवृत्ति केवल काव्य के क्षेत्र तक सीमित नहीं रही बल्कि गद्य के क्षेत्र में भी चेतना की लहर फैल गई। विभिन्न गद्य विधाओं में लिखे प्रमुख भारतीय साहित्य का अध्ययन करें तो जनचेतना के स्वर मुखर रूप में मिलते हैं। स्वतंत्रता के बाद लिखे गए गद्य साहित्य में जहां एक ओर देश विभाजन की पीड़ा पसर कर आई वहीं दूसरी ओर इसने दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना का नेतृत्व करने का बीड़ा उठाया। इस दौर में लिखी गईं कहानियों और उपन्यासों में यथार्थ जीवन के चित्र उतर

कर आए हैं। भारतीय साहित्य चेतना ने समूचे वैश्विक धरातल पर पहचान बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। इस इकाई में उत्तरछायावादी साहित्य की प्रकृति एवं स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

टिप्पणी

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उत्तर छायावादी काव्य के स्वरूप का विवेचन कर पाएंगे;
- प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- प्रगतिशील और प्रयोगवादी काव्य की व्याख्या कर पाएंगे;
- नयी कविता की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- नवगीत के रचनाकारों से परिचित हो पाएंगे;
- समकालीन कविता एवं अन्य काव्य परिवर्तनों की पहचान कर पाएंगे;
- दलित चेतना, स्त्री चेतना तथा जनजातीय चेतना की कविताओं का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- हिंदी गद्य के उद्‌भव और विकास का अध्ययन कर पाएंगे;
- स्वाधीनता आंदोलन और देश विभाजन के दौरान हिंदी गद्य की स्थिति का आकलन कर पाएंगे;
- हिंदी गद्य साहित्य में स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ की पहचान कर पाएंगे;
- दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य का विश्लेषण कर पाएंगे;
- हिंदी गद्य साहित्य में स्त्री चेतना एवं विद्रोह के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- हिंदी गद्य साहित्य में जनजातीय चेतना के स्वरों की पहचान कर पाएंगे;
- हिंदी गद्य में भूमंडलीकरण के प्रभावों का विवेचन कर पाएंगे।

4.2 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप

उत्तर छायावादी युग एक प्रकार से संक्रमण का युग रहा है। साहित्य सृजन के क्षेत्र में यह एक नये आंदोलन की शुरुआत थी। यह समय छायावाद के अंत एवं प्रगतिवाद के प्रारंभ के बीच का है। छायावाद की काल सीमा सन् 1918 से 1936 मानी गई है। सन् 1936 में छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की मृत्यु के बाद कवि चतुष्टय में से तीन कवि शेष रह गए–पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा। इन तीनों ने छायावाद के बाद जो काव्य रचा उसमें विशिष्ट परिवर्तन नजर आते हैं जिन्हें छायावाद या किसी अन्य वाद के अंतर्गत नहीं बांधा जा सकता। भारतेंदु युग से चली आ रही राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा इस काल तक आई। हालांकि इन रचनाओं में छायावाद का छिटपुट प्रभाव

भी दिखाई दिया। उत्तर छायावादी युग में तीन प्रकार का साहित्य रचा गया–लौकिक एवं संवेदना युक्त कविताएं, वैयक्तिक गीति काव्य और राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता।

लौकिकता एवं संवेदना की कविता– इस धारा के कवियों में निराला, पंत और महादेवी प्रमुख हैं।

वैयक्तिक गीति काव्य की कविता– इस श्रेणी में हरिवंश राय बच्चन, नरेंद शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि को लिया जा सकता है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता– इस धारा के अंतर्गत मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा सियारामशरण गुप्त का नाम उल्लेखनीय हैं।

4.3 प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएं

प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है–

4.3.1 लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला– निराला के गीत नयी संभावनाओं के सूचक हैं। उनमें लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास परिलक्षित होता है। यह लोकोन्मुखता निराला काव्य में प्रारंभ से दृष्टिगोचर होती है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक–संपृक्त था। इसलिए स्वाभाविक रूप से वे प्रेम सौंदर्य के साथ–साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी अपने में समेटे हुए हैं। वे व्यक्तिगत प्रणय के गीत न गाकर लोक जीवन से संबंधित सुख–दुख, मानव यातना एवं जीवन संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति करते आए हैं। ऐसे समय में उनकी वैयक्तिक प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न होकर लोक–गंधित हो उठती है। निराला की इस प्रवृत्ति को उत्तर छायावादी काल में विशेष रूप से विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। जिसके परिणामस्वरूप उनकी इस प्रवृत्ति ने दो रूप धारण किए– (क) छायावाद से हटकर प्रगतिवादी कविताएं लिखना (ख) छायावादी काव्यधारा के स्वर का अधिक लोकोन्मुखी होना। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा एवं भाव सभी दृष्टियों से छायावादी प्रभाव से पूर्ण मुक्तता परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'प्रेम संगीत', 'गर्म पकौड़ी', 'रानी कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'खजोहरा', 'नये पत्ते', 'स्फटिक शिला' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें प्रगतिशीलता दार्शनिक रूप में नहीं अपितु लोकानुभूतियों के रूप में है। इनकी भाषा लोकभाषा है। मुहावरे तथा शैली भी लोक हैं। लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग है। निराला इस तथ्य से अवगत थे कि लोक जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य एवं व्यापार से नहीं ग्रहण किया जा सकता अपितु उस हेतु भाषा अपेक्षित है।

निराला ने छायावादी 'अणिमा', 'अर्चना' तथा 'आराधना' आदि कविताओं में एक से स्वानुभूतिपरक गीतों की संरचना की है दूसरी ओर 'विजय लक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानंद', 'संत रविदास', 'प्रसाद एवं बुद्ध' आदि व्यक्तियों को अपनी प्रशंसात्मक कविताओं का विषय बनाया है। ये गीत विभिन्न प्रकार के हैं– प्रेम संवेदना प्रार्थना परकता, मानवीय संवेदना आदि की

इनमें अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में भी निराला की ये विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। अनुपात भिन्नता अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद को निराला की विशिष्ट देन है जिसमें भारत को सांस्कृतिक एवं सामाजिक पराजय के गह्वर गर्त से उबारने का दृढ़ संकल्प है। निराला की लोकवादी कविताएं इस युग की नवीन देन हैं यद्यपि उन्हें कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकारा नहीं गया है किंतु भाषा एवं नवीन प्रयोग के रूप में उनका विशेष महत्व है। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जनजीवन से समग्र रूप से जोड़ती है। निराला की इस काल की कविताओं में जीवनानुभूति के स्वरों में टूटन एवं पराजय की प्रमुखता है। ये उन्हें भक्तिभावना की ओर प्रेरित करती है। साथ ही कविता का संतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन एवं उलझाव का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएं उस उलझाव से ग्रसित प्रतीत होती हैं।

सुमित्रानंदन पंत– पंत इस कालावधि में स्वचिंतन युक्त विषय में अधिक विकासशील रहे। सन् 1936 ई. में 'युगांत' की घोषणा करके पंत ने सन् 1939 ई. में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। जहां वे मार्क्सवाद, भौतिक दर्शन तथा जन–जीवन के सत्यों की ओर झुक गए। निराला ने चिंतन के द्वारा नहीं अपितु संवेदना और अनुभव के द्वारा जन–जीवन को अपनाया। इसलिए उनके काव्य को मार्क्सवादी या समाजवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल सका। जनजीवन अपनी समस्त संवेदना के साथ व्यक्त हुआ। पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्वर पर स्वीकारा। इसलिए वे मार्क्सवादी सिद्धांत की अभिव्यक्ति करने में व्यस्त रहे। उन्होंने कविता में मार्क्सवादी दृष्टि के प्रकाश में ग्रामीण जीवन की विविध छवियों का अति रमणीय चित्रांकन किया है। कुशल शिल्पी पंत को ग्रामीण बाह्य जीवन के यथार्थ ने जितना अपनी ओर आकर्षित किया है उतना आंतरिक चेतना ने नहीं।

'ग्राम्या' के पश्चात का कवि अरविंद के प्रभाव में आकर प्रगतिवाद के भौतिक भटकाव से मुक्त होकर आध्यात्मिक लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। इससे वैचारिक स्तर पर छायावाद को एक नवीन दिशा एवं समृद्ध आधार सुलभ हो जाता है। वह मार्क्सवाद से संतुष्ट न होकर उसकी आवश्यकता को स्वीकारता है। प्रारंभ से ही कवि मानव मात्र के सुख, प्रेम एवं शांति का प्रबल कांक्षी रहा है। पंत इस तथ्य से अवगत थे कि एकांगी मार्क्सवाद मात्र भौतिक योग क्षेम की व्यवस्था करने में समर्थ है। इसे पर्याप्त न मानकर पंत अरविंद में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा में लग जाते हैं। समन्वय का यही स्वर उनकी परवर्ती रचनाओं 'स्वर किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'शिल्पी' तथा 'लोकायतन' में दृष्टिगोचर होता है।

पंत की काव्य यात्रा में काव्य पक्ष दबता गया है, धारणा पक्ष उठता गया है जिसके परिणामस्वरूप वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। मार्क्सवाद एवं अरविंद दर्शन दोनों ही पंत काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक एवं सफल नहीं हो सके हैं।

महादेवी वर्मा– 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का उत्कृष्ट काव्य है। प्रेम उनका प्रमुख विषय है। संयोग–वियोग के उभार में प्रेम को विभिन्न दृष्टिकोणों से उन्होंने अपने अनुभव के आलोक में उकेरा है। वेदना उनकी मूल संवेदना है जो विरह जन्य है। करुण वेदना एवं

निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' कुछ आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, उल्लास एवं मिलन भाव द्रष्टव्य हैं–

(1) *सब बुझे दीपक जला लूं।*
फिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(2) *हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन।*
अगरु धूम सी सांस सुधि गंध सुरभित।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की अति संभावना है। लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुंठित करने में सफल हो जाता है। संवेदनाएं सीमित हैं जो विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों के आधार पर अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं। प्रतीक एवं रूपक भी अति सीमित एवं अभिजात हैं।

लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से संपृक्त होकर नये अर्थ का विस्तार करती हैं किंतु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी के प्रमुख प्रतीक चंदन, दीप, मेघ, क्षितिज, मंदिर, करूण, आकाश, धूलि, सागर, विद्युत हैं जिन्हें पुनः–पुनः भावाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है। परिणाम यह होता है कि रहस्यात्मक संकेत उन्हें उलझा लेते हैं। वैयक्तिक एवं छायावादी सीमाओं के होते हुए भी महादेवी छायावाद की विशिष्ट ही नहीं समर्थ कवयित्री हैं तथा 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति है। रहस्य एवं संकोच का आवरण होते हुए भी कवयित्री की अंतरंग निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। कहीं–कहीं उनकी पारदर्शिता समग्र दृश्यों को समेटकर उसी की ओर संकेत करने में लग जाती है जहां उनके गीतों की रचना अति उत्कृष्टता को प्राप्त करती है। महादेवी के गीतों में सूक्ष्मं चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। उनके चित्र रूप जगत तथा भावजगत दोनों के हैं। रूप जगत के चित्रों की संयोजना कवयित्री ने मानसिक संदर्भ में ही की है। लोक परिवेश और लोक भाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द चयन, पद संतुलन, बिंब ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर लय में अपनी अति विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं।

4.3.2 वैयक्तिक गीति काव्य

कवि दृष्टि एवं विषय के दृष्टिकोण से छायावाद एवं वैयक्तिक गीति काव्य में अत्यधिक समानता है। कवि दृष्टि रोमानी है, वस्तु जगत के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अत्यंत भावुक है। इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं अपितु वस्तु जगत की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न स्व सुख–दुखात्मक आवेग से था। इनकी कविताओं में भयंकर आत्म संपृक्ति एवं उत्तेजना मिलती है। इनका काव्य विषय मूलतः सौंदर्य एवं प्रेम तथा उसके कारण उत्पन्न उल्लास एवं विषाद की अनुभूति थी। गीत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। इनके काव्य विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। इनकी कृतियों में संकोच, रहस्यात्मकता तथा आदर्शवादिता को स्थान नहीं मिला है। बड़े उत्साह के साथ स्पष्ट तौर पर ये अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख–दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव का बिंब उकेरने में पूर्ण सफल हैं। 'मैं' द्वारा वैयक्तिक गीत स्व अनुभव व्यक्त करते हैं। वैयक्तिक गीत काव्य का 'मैं' बिना किसी संकोच, मर्यादा, भय या आतंक डर के बोध भाव से राग विराग के साथ स्वतः बह निकलता है।

लौकिक प्रेम इनकी केंद्रीय वृत्ति है। प्रेम के संयोग–वियोग जन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन एवं असंतोष आदि का सघन स्वर इनकी कविताओं में मुखरित हो उठता है। परिवेश, अनुभव एवं संस्कारानुसार कवि स्वरों में वैविध्य पाया जाता है किंतु मूल वृत्ति में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रेम लौकिक सौंदर्यालंबन पर आधारित होने के फलस्वरूप अधिक मूर्तता ग्रहण करता है। इनका हर्ष–विषाद, आदर्श का छलिया नहीं है जो भू–नभ के मध्य झुकना नहीं जानता। पृथ्वी के विशुद्ध धरातल पर यात्रा करने वाला भू परिवेश के मध्य एवं स्व–स्वरूपानुसार अत्यधिक स्पष्ट एवं उघड़ा हुआ होता है। हरिवंश राय बच्चन के 'निशा निमंत्रण' एवं 'एकांत संगीत' काव्य यदि प्रेम के विषाद की गहनता को व्यक्त करते हैं तो मिलन–यामिनी, मिलन की मादकता तथा उमंग को। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह–व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी विद्यमान हैं। यही स्थिति इस धारा के अन्य कवियों अंचल, नवीन एवं दिनकर आदि की कविताओं में भी दृष्टिगोचर होती है।

वैयक्तिक गीति काव्य धारा का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम जन्य व्यथा एवं उदासी सर्वत्र व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद वृत्ति सौंदर्य और प्रेम की पिपासा लिए उड़ान भरती है, उसकी तृप्ति कहीं नहीं हो पाती तो उड़ान की तीव्रता में इनका सामाजिक प्रतिबंधों से टकराव होता है। यह टूटन विरह व्यथा का रूप धारण कर लेती थी जिससे कवि को यह अनुभूति होती थी कि विश्व को उसके ये गीत वासना के गान प्रतीत हो रहे हैं। अनुभव के इन सत्यों को उसका स्वच्छंद हृदय अनियंत्रित, निर्लिप्त भाव से गाना चाहता था। हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में लिखा है–

(1) *"कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।"*

(2) *"वृद्ध को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।"*

(3) *"शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।"*

निराशा एवं उदासी के स्वर की मुखरता मात्र प्रेम मूलक नहीं है अपितु जीवन के अन्य संदर्भों को भी उसकी मुखरता का अवलोक कहा जा सकता है। देश की परतंत्रता, सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, धार्मिक बाह्याडंबरों, आर्थिक विषमता आदि के अनुभव की भयंकरता से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानव पुनः पुनः अपनी टूटन का अनुभव करता है। उसके वैयक्तिक आक्रोश का स्वर संपूर्ण कुरूपताओं को अस्वीकारता हुआ, स्वयं को कहीं स्वीकृत न पाता हुआ 'स्व' में ही प्रत्यावर्तित हो जाता था। स्वयं को आत्मपीड़न, कुंठा, संत्रास, टूटन, घुटन की एक नवीन चादर से आच्छादित कर उन्हीं अनुभूतियों को गाता चलता था। इनके पास जीवन दृष्टि का अभाव था, न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि थी न नवीन समाजवादी दृष्टि। इनके अनुभव ही इनका परिचालन कर रहे थे। इनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनका दृष्टिकोण रोमानी था अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मृत्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहां अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, किंतु खुले हुए बिंबों की रचना में

एक नवीन साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करता है वहां अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख दृष्टिगोचर होने लगता है। एक ओर यह काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाता है तो दूसरी ओर अपनी सार्थकता को किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता।

"कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं।"

–एकांत संगीत

वह अकेला अपने चारों ओर मात्र अवसाद देखता है। अवसाद खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि का साथ ईश्वर ने भी छोड़ दिया है। देवता भी नहीं है। समाज की रूढ़िवादिता भी नहीं है। कोई संस्था नहीं है। उसे किसी का आश्रय अर्थात तिनके का भी सहारा प्राप्त नहीं। सहारा मात्र प्रेयसी के मिलन की आशा है जो दूर कहीं तारा–सी टिमटिमा रही है किंतु प्रेयसी मिलन भी मात्र मृग–मरीचिका है। ऐसी अवस्था में कवि अपनी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष झेलता हुआ जीवन को असफल एवं निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की वैयक्तिक, निराशापूर्ण, निराधार अनुभव–यात्रा के दो परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं–

(i) यह विश्वास निश्चित हो गया है कि जीवन क्षणभंगुर है। इस अवसाद–विषय के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो। भोग के समय आगा–पीछा मत देखो।

(ii) कवि को विश्वास है कि मद्यपान दुखों से छुटकारा दिलाता है इसलिए अपने दुखों को भुलाने के लिए मधु का सहारा लेता है। क्योंकि अन्य कोई सहारा नहीं। इतना ही नहीं वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने हेतु मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है, मधुपान करना चाहता है।

यह मधु शनैः शनैः इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन सत्यों का प्रतीक बन जाता है। 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' में ऐसा ही हुआ है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं–कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल' नरेंद्र शर्मा के 'अग्निशस्य', अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। समाज में व्याप्त असंतोष तथा वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबलता के कारण कवियों में विद्रोही भावना परिलक्षित होती है। विद्रोह के ये दो प्रमुख कारण हैं किंतु इस धारा में व्याप्त समस्त विद्रोह स्वर मूलरूप से समान है। उसमें व्यक्तिगत भावावेश का आधिक्य है। सामाजिक दर्शन तथा रचनात्मक चिंतन अपेक्षाकृत न्यून है।

अभिव्यक्ति की सादगी वैयक्तिक गीति काव्य की प्रमुख विशेषता एवं देन है। कवि अति सीधे–सादे शब्दों का प्रयोग करके अपने गहनातिगहन भावों की अभिव्यक्ति अति सहजता एवं सरलता से करता है। सर्व परिचित चित्रों, तथा सरल, लघु, सारगर्भित कथन

भंगिमा से अपने कथ्य को सहृदय तक प्रेषित कर देता है। इसलिए कवि की शक्तियां–अशक्तियां दोनों अति स्पष्टता से उभर कर सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में खुद को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती तथा अशक्तियां रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पातीं। गीति काव्य के कवियों की संवेदना भक्तिवादी है। किंतु वे स्वयं को जिस माध्यम, परिवेश, प्रकृति, चित्र, बिंब, उपमा, भाषा आदि के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह अति परिचत होता है, लोक के निकटस्थ होता है इसलिए मूर्त की प्रतीति करवाता है। काव्य भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी शब्द चयन और पद विन्यास हमें अपना–सा प्रतीत होता है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग भाषा को जीवंत रूप प्रदान करता है। वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम प्रमुख हैं।

हरिवंशराय बच्चन– वैयक्तिक गीत काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हरिवंश राय बच्चन हैं। धारा की समस्त संभावनाएं एवं सीमाएं बच्चन में समाहित हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। आत्मानुभूति की सघनता वाली कृतियां तीव्र प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं। आत्मानुभूति के साथ अवधारणा का समावेश हो जाने के परिणामस्वरूप प्रभावान्विति टूट–टूट गयी है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से यदि गीत काव्य की उपलब्धियां हैं तो अवधारणाएं अनुभूतियों के रंग में सराबोर हैं। बच्चन ने स्वानुभूति जन्य सौंदर्य, सुख–दुख तथा प्रेम विषयक गीत अति अन्मुक्तता तथा सहजता से गाए हैं। यहीं तक स्वयं को सीमित न करके उन्होंने कविता को सामाजिक विकृतियों के चित्रण तक पहुंचाया है। उनके प्रति विद्रोही भावना भी दृष्टिगोचर होती है। बच्चन के गीतों ने अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप गीति काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की है। लेकिन जब उनमें उत्तेजना आ जाती है, भाषा सपाट हो जाती है, शब्द बिंबों का अपव्यय होता है तथा स्फीति आ जाती है तब कविता अप्रभावी हो जाती है। बच्चन के काव्य में सौंदर्य के धरातल, ऊंचाई–निचाई एवं सपाटता की अत्यधिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। बच्चन ने निर्भय भाव से अपने परिचित विश्व का परित्याग कर यथार्थवादी नवीन विश्व में पदार्पण किया है तथा उसके अनुसार भाषा की खोज की है।

नरेंद्र शर्मा– नरेंद्र शर्मा के गीत अपनी विशिष्टता के फलस्वरूप औरों से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता एवं चित्रात्मकता की प्रधानता है। सुख–दुख का निवेदन बिना किसी माध्यम के सीधे प्रेमपात्र को किया गया है। माध्यम के अतिरिक्त किसी अवधारणा या छल कपट अथवा बांकपने को भी अवसर नहीं मिला है। गीतों के परिवेश में कवि एवं सहृदय दोनों के परिवेश का समन्वय होता है जो कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। ऐसा लगता है, नरेंद्र शर्मा के गीत अपने हैं। इनमें प्राकृतिक परिवेश भी होता है। नरेंद्र के गीति काव्यों का विषय मानवीय सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य तथा तज्जन्य विरह मिलन की अनुभूतियां हैं। इन्होंने सामाजिक यथार्थ का सफल चित्रण किया है। सामाजिक विसंगतियां इनके लिए असह्य हैं इसलिए उनके प्रति इनकी विद्रोही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। नरेंद्र की दृष्टि रोमानी है जिसमें सामाजिकता का समावेश है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'– रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' तीव्र रोमानी संवेदना के कवि हैं। उनकी यायावर प्रवृत्ति के फलस्वरूप उनके सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में रोमानी संवेदना प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती है। रूपासक्ति, वासना, पीड़ा एवं जिजीविषा में इनका उद्दाम रूप ही दिखलाई पड़ता है। वासना की प्रबलता इनके काव्य को सामाजिक संयम से अलग कर देती है। रचनात्मक स्तर पर उनमें गहनता तथा संशिलष्टता का अभाव आ जाता है और उसका स्थान उत्तेजना ग्रहण कर लेती है। 'अंचल' के व्यक्तित्व पर स्नायविक तनाव इतना हावी है कि वे लगातार येनकेन प्रकारेण काव्य में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते रहते हैं। इसके अभाव में उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती है।

4.3.3 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा

आधुनिक काल में 'राष्ट्रीय' शब्द आधुनिकता के समावेश से प्रस्तुत हुआ है। जाति, धर्म, संप्रदाय, निश्चित भू–भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर समग्र देश, उसमें निवास करने वाली सभी जातियों, विभिन्न भूखंडों, संप्रदायों एवं रीति–रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभर कर सामने आया है क्योंकि भूमि, भूमिवासी जन और उनकी संस्कृति को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्र में संस्कृति समाहित होती है। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा की कविताओं में संपूर्ण भारतवर्ष की अखंडता एवं एकता के रूप में राष्ट्रीयता का अर्थ विकसित हुआ। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। उस समय राष्ट्रीयता में अखंडता के स्थान पर हिंदुत्व आदि को प्रधानता दी जाती थी। रीतिकालीन भूषण की राष्ट्रीयता ऐसी ही थी। आजादी से पूर्व सभी धर्म एवं जाति के लोग अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए एकजुट हुए और इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई। स्वाधीनता आंदोलन और उसका देशव्यापी प्रसार राष्ट्रीय क्रिया कलाप में समाहित हो गया। पाश्चात्य राष्ट्रीयता भारतीय राष्ट्रीयता से भिन्न है क्योंकि वहां परतंत्रता नहीं थी। भारतीय राष्ट्रीयता में स्वरक्षा एवं स्वविकास दोनों हैं जबकि पश्चिम में स्वविकास ही प्रधान है। भारत में संस्कृति और भाषा की विविधता होते हुए भी राष्ट्रीय एकता मुख्य है। प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन आध्यात्मिकता राष्ट्रीय एकता का वह मूल स्रोत है जो सबको सूत्रबद्ध करता है। इस कालावधि की राष्ट्रीयता में प्रमुख हैं–

(क) पराधीनता की यातना का अनुभव तथा उससे मुक्ति पाने हेतु किये गए प्रयत्न

(ख) पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना का उद्धार करने हेतु उसमें एकता एवं स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्जवल रूप का प्रस्तुतिकरण तथा

(ग) उपयोगी आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिकता का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन। स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम दो उद्देश्य पूरे हो गए हैं। मात्र तीसरे तत्व की सार्थकता अवशिष्ट है। अब राष्ट्रीयता के तीन मुख्य उद्देश्य हैं– देश का विकास, राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा एवं नवीन राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय परिवेशों के कारण उत्पन्न समस्याएं तथा उनके समाधान खोजने की चेष्टा।

साहित्य में आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ। वर्तमान राष्ट्रीयता मानवीय एवं सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनाओं से संपृक्त होती चली आ रही है। इस काल में राष्ट्रीयता कहीं खंडित रूप में कहीं संश्लिष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस काल में राष्ट्रीयता का मूल रूप से विदेशी शासन के अत्याचारों, उनके कारण जन्मी अनेक जन–यातनाओं तथा जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों के रूप में चित्रण है। दिनकर, सोहन लाल द्विवेदी, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में इसी राष्ट्रीयता की झलक दिखलाई पड़ती है।

सन् 1938 ई. के आस–पास राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार परिलक्षित होता है। परिवेशजन्य कारणों से राष्ट्रीय साहित्य का स्वर उग्रतर, यथार्थोन्मुख तथा लोकोन्मुख होता चला गया। प्रगतिवाद से पूर्व भी शोषक–शोषित की समस्या उठ खड़ी हुई थी। राष्ट्रीयता दिनकर के काव्य में उभर कर आयी।

संस्कृति का संबंध इसी आत्मा अथवा चेतना से होता है। संस्कृति इतिहास के रूप में मानव के लिए पृष्ठभूमि एवं प्रेरणा बनती है तथा वर्तमान चेतना से स्पंदित होकर मानव जीवन का स्वरूप धारण कर लेती है। प्रतिभा संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकारा है। यह प्रयास छायावादोत्तर कृतियों में परिलक्षित होता है।

इस कालावधि में प्रकाशित 'कुरुक्षेत्र', 'जय भारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी' तथा 'विक्रमादित्य' आदि काव्यों में भी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया गया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'इतिहास के आंसू' की फुटकल कविताओं में भी इस संदर्भ का अवलोकन किया जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त– मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। गुप्त ने तत्कालीन राष्ट्र चेतना को अपने काव्यों में मुखरित किया है, जिसमें वैविध्य की स्थिति देखी जा सकती है। आधुनिक काल के इकलौते राष्ट्रीय कवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त हैं। राष्ट्रीयता उनमें कूट–कूट कर भरी थी इसीलिए महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया।

साहित्यिक विशेषताएं– मैथिलीशरण गुप्त की लगभग सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत–प्रोत हैं। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति का नवीनतम रूप प्रस्तुत हुआ है। बुंदेलखंड में जन्म लेने के कारण वे बुंदेलखंडी भाषा अधिक प्रयोग करते थे साथ ही उन्होंने खड़ी बोली को इतना सरल बना दिया और उसमें ब्रज भाषा की मधुरता का समावेश कर दिया। उन्होंने सफल प्रबंध काव्य लिखे। उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएं 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'पंचवटी', 'जयद्रथ वध', 'भारत–भारती' आदि हैं। संयुक्त परिवार के मूल्यों (साकेत) एवं उपेक्षित और शोषित नारी (उर्मिला) की पीड़ा को उभारने में उनके जैसा कोई दूसरा नहीं।

माखन लाल चतुर्वेदी– राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएं माखन लाल ने लिखीं। इन कविताओं का संबंध तत्कालीन राष्ट्रीय व्यवस्था से है। उनकी कविताओं में पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रेजों के अत्याचारों आदि का चित्रण किया गया है।

साहित्यिक विशेषताएं– माखनलाल चतुर्वेदी ने पत्रकारिता के ऊंचे मानदंड स्थापित किए थे। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्र विरोधी किसी भी बात को स्थान नहीं दिया जाता था। प्रभा, कर्मवीर और प्रताप जैसे पत्रों के संपादन द्वारा इन्होंने अंग्रेजी शासन का पुरजोर विरोध किया और युवाओं को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मर–मिटने को प्रेरित किया। उन्होंने कुल

टिप्पणी

19 पुस्तकें लिखीं। इसमें 10 कविता संग्रह, 2 गद्य काव्य, एक कहानी संग्रह, एक नाटक, 3 निबंध संग्रह, एक संस्मरण और एक भाषण संग्रह शामिल है।

आलोचकों ने माखनलाल चतुर्वेदी जी की भाषा शैली पर बेडौल होने का आरोप लगाया है। उनकी भाषा में कहीं कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग है तो कहीं बुंदेलखंडी का ग्राम्य प्रयोग। उनके लिए अभिव्यक्ति और उसकी मौलिकता ज्यादा महत्वपूर्ण थी और नियमों में बंधे रहना स्वीकार्य नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात भी राष्ट्र रक्षा और राष्ट्र निर्माण का उद्घोष इन्होंने अपनी प्रेरणापूर्ण कविताओं के माध्यम से किया। समझौतों के खिलाफ उन्होंने हमेशा जनमानस में चेतना जाग्रत की। उन्होंने लिखा है–

"अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली
यह सुधार समझौतों वाली, मुझको भाती नहीं ठिठोली।"

असहयोग आंदोलन के दौरान इन्हें बिलासपुर जेल में बंद किया गया था, जहां इन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' लिखी। इस कविता के माध्यम से इन्होंने सिर्फ अपने ही नहीं बल्कि संपूर्ण स्वंतत्रता सेनानियों के मनोभावों का चित्रण किया है।

"चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं, प्रेमी–माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊं,
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर हे हरि, डाला जाऊं,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढूं भाग्य पर इठलाऊं।

मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।"

माखनलाल की पहली रचना 'रसिक मित्र' ब्रजभाषा में प्रकाशित हुई थी। उनकी रचनाएं खड़ी बोली में है। कहीं–कहीं उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है और कुछ स्थानों पर आवश्यकतानुसार उर्दू के शब्दों को भी अपनाया है। उनकी शैली भावप्रधान है। उनकी भाषा सुबोध, प्रवाहपूर्ण तो है ही, ओज और प्रसाद गुण से भी पूर्णतः संपन्न है। मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से उसके सौंदर्य में अभिवृद्धि हुई है। उनके काव्य को चार श्रेणियों में रखा जा सकता है–राष्ट्रीयता, प्रेम, प्रकृति और अध्यात्म।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– नवीन सौंदर्य एवं प्रेम संबंधी कविताएं लिखने के कारण छायावादी कवियों का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं। इन्होंने राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया जिसमें राष्ट्रीयता प्रमुख है। संस्कृति के प्रति इनकी विशेष रुचि लक्षित नहीं होती।

साहित्यिक विशेषताएं– बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रीयतावादी धारा के मान्य कवि हैं। 'नवीन' का नाम कविता के क्षेत्र में जितना प्रसिद्ध है उससे कहीं अधिक राजनीति के क्षेत्र

टिप्पणी

में प्रसिद्ध है। नवीन जी के काव्य ग्रंथों में 'कुंकुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबास्तवन', 'उर्मिला' (महाकाव्य) तथा 'मृत्यु के बाद प्राणार्पण' (खंड काव्य) और 'हम विषपायी जनम के' प्रमुख हैं। इनके समस्त कृतित्व की प्रमुख प्रेरणा राष्ट्रीय भावना रही है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रकृति प्रेम, दार्शनिक और रहस्यवादी कविताएं भी लिखी हैं। वस्तु पक्ष की दृष्टि से इनकी रचनाओं को प्रकृतिपरक, प्रेमपरक, राष्ट्रीय, आध्यात्मिक और दार्शनिक श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

राष्ट्रीयता का स्वर अधिक प्रखर होने के कारण उनकी काव्य कृतियों में प्रकृति प्रेम की अविरल भाव–धारा सदैव प्रवाहमान रही। प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण रोमांटिक था। भूमि पर मानव के अवतरण से पूर्व प्रकृति का अवतरण हुआ है–यह तो लोकमान्य सत्य है। इसलिए उन्होंने प्रकृति को मानव की चिरपोषिका के रूप में स्वीकार किया है। सभ्यता के विकास से पूर्व प्रत्येक कार्य के लिए मनुष्य प्रकृति पर निर्भर था। इसी सत्य को मन में रखते हुए नवीन जी ने भी सृष्टि के विकास क्रम में प्रकृति को प्रथम स्थान दिया और मानव को दूसरा। उनके काव्य में प्रकृति का मानवी रूप में चित्रण भी उपलब्ध है। उद्यान का यह वर्णन दर्शनीय है–

फूली–फूली विपिन भर में डोलती है चमेली
मानो मुग्ध, श्वसुर गृह में, पा गई प्रेम–बेली।" –उर्मिला

राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित कवि होने के कारण कवि को कभी–कभी चंद्रमा एवं पवन मुक्ति संदेश सुनाने लगता है, द्विज–कुल जागरण गीत गाता प्रतीत होता है–

मैं हूँ बंद सात तालों में, किन्तु मुक्त है चन्द्र गगन में,
मुक्ति बह रही है क्षण–क्षण, इस मन्द प्रवाहित शिशिर व्यंजन में।

* * *

द्विजकुल ने जागरण मन्त्र निज नीडों से उच्चारे
लतिकाओं ने नव जागृति के हिल–मिल किये इशारे। –रश्मिरेखा

छायावादोत्तर कवियों ने उद्दीपनगत प्रकृति–चित्रण को अधिक महत्व नहीं दिया, तो भी उनके काव्य में इधर–उधर ऐसा चित्रण उपलब्ध है। विरह–व्यथा से पीड़ित कवि को प्रकृति भी अश्रु–विगलिता सी प्रतीत होती है–

टपक टप–टप चले विटप के अश्रु कण
मूल विपदा–मानो बह चली री। –रश्मिरेखा

नवीन जी ने जहां एक ओर अपनी मातृभाषा ब्रजभाषा में अपनी संवेदनाओं को व्यक्त कर आधुनिक साहित्य को समृद्ध किया वहीं दूसरी ओर अकाव्यात्मक शब्दावली के प्रयोग के आरोप भी उन पर लगे। वे अपने हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति के लिए कविता लिखते थे, भाषिक सुधार की ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया।

रामधारी सिंह दिनकर– राष्ट्रीय एवं ओजपूर्ण कविताएं लिखने के लिए रामधारी सिंह दिनकर का अत्यधिक महत्व है। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त कर हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक बन गए। वे बिहार सरकार के अधीन सब रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष तथा भारत सरकार के सलाहकार रहे। ये राज्य सभा सदस्य भी थे।

टिप्पणी

साहित्यिक विशेषताएं–इस काल में सबसे अधिक सशक्त कवि रामधारी सिंह दिनकर थे। संवेदना एवं विचार का सुंदर समन्वय इनमें दृष्टिगोचर होता है। प्रेम सौंदर्य मूलक एवं राष्ट्रीय कविताएं कवि की संवेदना से स्पंदित है। लोकान्मुखता, सहजता इनकी विशेषता है। इनकी कविता में वैयक्तिक कुंठा, अवसाद तथा निराशा का स्थान प्रसन्नता तथा सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया ने लिया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता देश एवं युग सत्य के प्रति जागरूकता है जिसे अभिव्यक्त करने में उन्हें अनुभूति और चिंतन, दोनों स्तरों पर पूर्ण सफलता मिली है।

कवि ने राष्ट्र को उसकी सामयिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं तथा समताओं आदि के रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तु स्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख–साम्राज्य की स्थापना की सुंदर कामना का अनुपम समन्वय किया है–

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मंत्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के।

–कुरुक्षेत्र।

सियारामशरण गुप्त– सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। ये मैथिलीशरण गुप्त के अनुज थे। इनकी कृतियां गांधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत हैं।

साहित्यिक विशेषताएं– सियारामशरण गुप्त ने लगभग 50 ग्रंथ लिखे, जिनमें आर्द्रा, दुवदिल, विषाद, बापू तथा गोपिका इनकी मुख्य काव्यकृतियां हैं। देश की ज्वलंत घटनाओं एवं समस्याओं का चित्रण बड़ी सफलता से इनके काव्य में हुआ है। घटनाओं, अवस्थाओं तथा समस्याओं को तत्कालीन न मानकर वे उन्हें मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं से संदर्भित कर देते हैं। उन्होंने वर्तमान या अतीत की पृष्ठभूमि को आधुनिक मानवता की करुणा, यातना, द्वंद्व से समन्वित करके चित्रित किया है। किसी भी भारतीय घटना का उदात्तीकरण कर उसे वृहत्तर मानवीय मूल्यों का स्तर प्रदान किया है। राष्ट्रीयता के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीयता को भी महत्व दिया है। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों का द्योतन करने वाली प्रमुख कृति है जिसमें कवि ने अपने तरीके से युद्ध की अनिवार्यता, बलिदान, त्याग, यातना, विभीषिका तथा मानवीय करुणा का अद्भुत समन्वय किया है। भाव और भाषा की सरलता और सहज आकर्षक शैली इनके लेखन की विशेषता है।

उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन की परिणति आगे चलकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और अकविता के रूप में हुई।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. उत्तर छायावादी युग में कितने प्रकार का साहित्य लिखा गया?
2. किस छायावादोत्तर कवि के काव्य में लोकोन्मुखता प्रारंभ से दृष्टिगोचर होती है?
3. 'युगांत' की घोषणा किस कवि ने की?
4. करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत होकर लिखा गया महादेवी के प्रारंभिक काव्य का नाम बताइए।
5. किस काव्य धारा का मूल स्वर प्रेम है?
6. 'मधुशाला' के रचनाकार का नाम बताइए।
7. राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा के सर्वाधिक सशक्त कवि का नाम बताइए।

4.4 प्रगतिशील काव्य

टिप्पणी

छायावाद के बाद एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का उदय हुआ। प्रगतिवाद का उदय 1936 में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना से माना जाता है। व्यक्ति की मुक्ति का जो लक्ष्य छायावादी कवियों के सामने था, उसका स्थान समाज और राष्ट्र की मुक्ति ने ले लिया।

राजनीतिक रूप से देश में उग्रवादी एवं उदारवादी आंदोलन चल रहे थे। गांधी जी का सविनय अवज्ञा आंदोलन सारे राष्ट्र में व्याप्त हो चुका था। ज़मींदारी प्रथा, मजदूरों का शोषण देशी रियासतों में जनता के अधिकारों पर बहस चल रही थी। समाजवादी पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। प्रगतिवादी उसे कहा गया जो मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास रखता हो तथा उसी के अनुसार साहित्य रचना करता हो। जबकि प्रगतिशील वह है जो प्रगतिशील मूल्यों में विश्वास करता हो। यह नया दृष्टिकोण था–पुराने रुढ़िबद्ध जीवन मूल्यों का त्याग, शोषण और दमन का विरोध, समानता और लोकतंत्र में विश्वास इसका आधारबिंदु थे।

प्रमुख साहित्यकार

प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिंदी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि भी इससे अछूते नहीं रहे। इसके अलावा रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री भी इसी काव्यधारा की देन थे।

समकालीन हिंदी काव्य परिदृश्य में नागार्जुन को महत्ता प्राप्त है। इनके काव्य में ठेठपन, गहन आंचलिकता व व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता पाई जाती है। प्रमुख काव्य संग्रह हैं– युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, तालाब की मछलियां, प्यासी पथराई आखें आदि।

केदारनाथ अग्रवाल भी इसी काव्यधारा की देन हैं। भावुकता, रुमानी आदर्शवाद इनकी कविता की प्रधान विशेषताएं हैं। 'बसंती हवा', 'चंद्रगहन से लौटती बेर' से इनकी खास पहचान बनी। 'गुलमेंहदी', 'अपूर्वा' तथा 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

शमशेरबहादुर सिंह को प्रयोगवादी भी कहा जाता है। किंतु रूप और शिल्प उन्हें प्रकट सच्चाइयों की तरह लगते हैं। प्रमुख काव्य संग्रह हैं– 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'इतने पास अपने' आदि।

गजानन माधव मुक्तिबोध की दृष्टि मार्क्सवादी रही है। उन्होंने यथार्थ चित्रण के लिए फेंटेसी का प्रयोग किया है, इस प्रकार उनकी रचनाओं में नाटकीयता है। 'चांद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी–भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' उनकी प्रधान रचनाएं हैं।

त्रिलोचन शास्त्री ने मामूली प्रसंगों पर कविताएं लिखीं। 'सॉनेट' उनका प्रधान छंद है। 'धरती', 'दिगंत', 'ताप के तापे हुए दिन', 'उस जनपद का कवि हूं' इनकी प्रधान रचनाएं हैं।

प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएं

प्रगतिवाद का संबंध जीवन और जगत के नये दृष्टिकोण से है। जीवन के प्रति लौकिक दृष्टि ही इस साहित्य का आधार है और यह सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। प्रगतिवादी कवि न इतिहास की उपेक्षा करता है न वर्तमान का अनादर, न ही वह भविष्य के रंगीन सपने बुनता है। कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **सामाजिक यथार्थ दृष्टि–** प्रगतिवादी कवि के पास सामाजिक यथार्थ को देखने की विशेष दृष्टि होती है। एक वर्ग चेतना प्रधान दृष्टि वाला है। कवियों ने वास्तविकता बोध और वस्तुपरक निरीक्षण दोनों पर ध्यान दिया है; यथा–

   बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पांच तमाचे
   इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।

   कवि कभी सामाजिक विषमता को उजागर करता है तो कभी विक्षोभ व्यक्त करता है, कभी अत्याचार के विरुद्ध गर्जना करता है।

2. **परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव–** प्रगतिवाद में प्रकृति और परिवेश के प्रति कवि का लगाव भी ध्यान आकृष्ट करता है। ये कवि प्रकृति में जीवन की सक्रियता का लगाव पाते हैं। इनका प्रकृति बोध भी यथार्थ बोध से विच्छिन्न नहीं है।

3. **जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण–** प्रगतिवादी कवि जीवन की स्वीकृति के कवि हैं। "मुझे विश्वास है कि पृथ्वी रहेगी"– यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रगतिवादी कवि अंधकार और भयानक निराशा में भी एक प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं; यथा–

   रोज कोई भीतर चिल्लाता है कि कोई काम बुरा नहीं
   बशर्ते कि आदमी खरा हो, फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।

4. **भविष्य दृष्टि–** ये कवि यथास्थितिवादी नहीं हैं। सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर हैं। यही इनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि है। उनकी कल्पना स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है।

5. **व्यंग्यात्मकता–** प्रगतिवाद की सबसे प्रमुख विशेषता व्यंग्यात्मकता है। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है– "हिंदी कविता में व्यंग्य कविता का जितना सुंदर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कहीं नहीं।" कथ्य से लेकर छंद, भाषा और लय तक में वे व्यंग्य उपजाने में सफल रहे हैं।

6. **काव्यभाषा, छंद और लय–** प्रगतिवादी कवियों की भाषा का गुण है– संप्रेषणीयता। भाषा सादगीपूर्ण, सरल और सहज है। इनके बिंब भी सीधे–सादे तथा अनलंकृत हैं। लय विन्यास तथा छंद–विधान भी अद्‌भुत है। आवृत्ति युक्त लय सहज ही प्रभावित करती है।

प्रगतिवाद का एक काव्य प्रवृत्ति के रूप में और व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ऐतिहासिक महत्व है। प्रगतिवाद ने कविता की अवधारणा को बदला, साहित्य के रचना–संसार को महत्व दिया। कविता का संसार अधिक यथार्थ, प्रमाणिक, व्यापक और विश्वसनीय लगने लगा।

4.5 प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के बाद का काल 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया गया। सन् 1943 में अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया तथा लिखा– " ..... संगृहीत कवि प्रयोग को कविता का विषय मानते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी।" अज्ञेय के इस कथन से ही 'प्रयोगवाद– की चर्चा होने लगी।

'दूसरे सप्तक' में अज्ञेय ने इसका खंडन किया व कहा– "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है।" किंतु प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया।

सन् 1947 में 'प्रतीक' के प्रकाशन के समय प्रगतिशील कवियों के दृष्टिकोण में भी बदलाव आने लगे। अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक बनकर आगे आए। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रयोगवाद में रचना का कलात्मक उद्देश्य कभी संदिग्ध नहीं रहता, प्रयोगवाद साहित्य के रूप संबंधी नवीन प्रयोगों पर बल देता है तथा साहित्य के सामाजिक पक्ष की अपेक्षा करता है। यह शुद्ध रूप से एक साहित्यिक काव्य आंदोलन था।

प्रयोगवादी काव्य के समय देश स्वतंत्र हो चुका था। मध्यवर्ग के सम्मुख कोई आदर्श नहीं था। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ा। व्यक्ति स्वातंत्र्य की मांग ज़ोर पकड़ने लगी। प्रगतिवादी आंदोलन क्षीण होता जा रहा था। प्रयोगवाद नयी सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं मानते, वरन् काव्य के कलापक्ष और रूपपक्ष पर भी बल देते हैं। अज्ञेय प्रयोग को दोहरा साधन मानते हैं– एक तो सत्य को जानने का साधन तथा दूसरे उसके प्रेषण की क्रिया को जानने का। अतः प्रयोग का संबंध नयी विषय–वस्तु की खोज से भी है तथा उस विषयवस्तु को प्रेषित करने के ढंग में भी है।

प्रमुख साहित्यकार

तारसप्तक के प्रकाशन के साथ प्रारंभ हुई यह काव्यधारा दूसरा सप्तक तक मान्यता प्राप्त कर सकी। अज्ञेय के अतिरिक्त प्रमुख कवि हैं– प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि।

अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक माना जाता है। इनका प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' है। अन्य प्रमुख रचनाएं हैं– 'हरी घास पर क्षण भर', 'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार'। इन्होंने अपनी रचनाओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा, प्रकृति के प्रति लगाव आदि प्रमुख विशेषताएं हैं।

इस युग में गिरिजाकुमार माथुर भी प्रमुख कवि रहे। 'मंजीर' इनकी प्रारंभिक रचना है। इनके काव्य की जमीन प्रेम और सौंदर्य पर आधारित है। 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'जो बंध न सका' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी

टिप्पणी

कविताओं के मुख्य विषय रहे हैं। भारतभूषण अग्रवाल का प्रथम काव्य संग्रह 'छवि के बंधन' है। इसके अतिरिक्त 'जागते रहो', 'मुक्तिमार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'अनुपस्थित लोग', 'एक उठा हुआ हाथ', तथा 'उतना वह सूरज है' आदि इनकी अन्य प्रमुख रचनाएं हैं। इनकी कविताओं में अधिकांशतः दर्द की अभिव्यक्ति हुई है।

नरेश मेहता पर आरंभ में प्रगतिवाद का प्रभाव था, किंतु बाद में इनके स्वर बदल गए। प्रकृति–चित्रण इनका प्रिय विषय रहा है। 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान', 'समय देवता', 'वन पाखी! सुनो!!', 'बोलने दो चीड़ को', 'मेरा समर्पित एकांत' इनकी प्रमुख कृतियां हैं।

शमशेर बहादुर सिंह यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि है, किंतु इनका काव्य सौंदर्यवादी है। इनके काव्य में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। प्रमुख काव्य–कृतियां हैं– 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'चुका भी हूं नहीं मैं' आदि। इनका झुकाव अमूर्त की ओर अधिक है।

मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएं आत्मसंघर्ष का ही प्रतिफलन है, किंतु यह बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित है। ये सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' और 'भूरी– भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' आदि प्रमुख कृतियां हैं।

प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद ने समाज की तुलना में व्यक्ति को, अनुभव को तथा कलात्मकता को श्रेयस्कर माना।

1. **विचारधारा से मुक्ति–** डॉ. नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुंचा सकती; यथा–

   कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
   वही हलेगी सदा
   अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम ?

2. **सत्य के लिए अन्वेषण–** प्रयोगवादी कवियों की प्रधान विशेषता सत्य के लिए अन्वेषण है। इन कवियों का मत है कि प्रयोगवादी कवि सत्य की खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है, जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है।

3. **व्यक्तिवाद–** प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर बल दिया है। 'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज को व्यक्त किया। इन कवियों में व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह, मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजा है।

4. **यथार्थ दृष्टि–** प्रयोगवादी कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। इन कवियों का यद्यपि जीवनानुभव कम था, किंतु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप में ही व्यक्त हुआ। इन कवियों ने नारियों को सामान्य भावभूमि पर चित्रित किया। इनके प्रकृति चित्रण भी यथार्थ–दृष्टि के परिचायक हैं।

टिप्पणी

5. **काव्यभाषा छंद और लय–** प्रयोगवाद की भाषा में शब्द प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया गया है। इनकी भाषा सहज व सरल है तथा संप्रेषणीय है। भाषा में गेयता और आलंकारिकता का अभाव है। इन्होंने छंदमुक्त, तुकमुक्त एवं लयमुक्त रचनाएं कीं। अज्ञेय ने काव्य को 'शब्द' माना है। यद्यपि इन कवियों में गेयता है तथापि गीतों में मोहकता का अभाव पाया जाता है।

6. **प्रतीक और बिंब–** इन कवियों ने प्रतीकों को प्रमुखता दी। ये प्रतीकों को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। कविता में प्रतीक सांकेतिक अर्थ एवं लाक्षणिक वक्रता के सूचक हैं। प्रयोगवादी कविता बिंब निर्माण की दृष्टि से समृद्ध है। प्रकृति संबंधी बिंब अधिक हैं; यथा–

   एक पीली शाम
   पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
   शांत
   मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल।

प्रयोगवादी कविता एक विलक्षण काव्यधारा है, जिसका हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इन कवियों ने सत्यान्वेषण द्वारा जीवन के यथार्थ को काव्य में उतारा।

4.6 नयी कविता

प्रयोगवाद का ही विकसित रूप नयी कविता है। डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन 1954 में हुआ था। 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद के स्थान पर नयी कविता शब्द प्रयोग करना उचित माना है। सन् 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार 'नयी कविता' शब्द का प्रयोग किया गया। 'नयी कविता' शब्द 1954 में पत्रिका के प्रकाशन के फलस्वरूप आरंभ हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी एवं समाजवादी लोगों के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों एवं बुद्धिजीवियों पर पड़ा। इस दौर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों ने जन्म लिया। व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नये लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। राष्ट्र का असंतुलित विकास हुआ और राष्ट्रीय एकता एवं बाहरी दवाबों की समस्याओं का विस्तार हुआ। नयी कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

नयी कविता का अभिप्राय

यह विवाद का विषय रहा है कि नयी कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नयी है और इस काल की कविता को ही नयी कविता कहना कहां तक उचित है। यह विचारणीय विषय है। नयी कविता के समर्थक पहले स्वयं को अज्ञेय से जोड़ने में गौरवान्वित होते थे, धीरे–धीरे ये प्रयोगवाद से स्वयं को विशिष्ट बताने लगे तथा नयी कविता के प्रणेता बन गए।

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कहां की गई?
9. किस प्रगतिवादी कवि ने मुख्य रूप से 'सॉनेट' छंद में कविता रची?
10. तारसप्तक का प्रकाशन पहली बार कब हुआ?
11. किस कवि को प्रयोगवाद का प्रवर्तक माना जाता है?
12. 'धूप के धान' काव्य संग्रह के प्रणेता कौन हैं?
13. किस प्रयोगवादी कवि का कविताओं में आत्मसंघर्ष प्रबल रूप में व्यक्त हुआ है?

टिप्पणी

नयी कविता को परिभाषित करते हुए इन्होंने अनुभूति की अभिव्यक्ति पर बल दिया। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की कविता है। वस्तुतः नयी कविता विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को समेटे हुए है।

नयी कविता के प्रमुख कवि

नयी कविता के कवियों में वैविध्य मिलता है। शमशेर, मुक्तिबोध जैसे कवि जहां मार्क्सवादी थे, वहीं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता प्रयोगवादी। लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती जैसे प्रगतिवाद विरोधी कवि भी थे। नयी कविता के प्रमुख कवियों का सूक्ष्म विश्लेषण निम्न है–

धर्मवीर भारती नयी कविता के प्रमुख कवि हैं। 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'ठंडा लोहा', 'सात गीत वर्ष', आदि चर्चित कृतियां हैं। इन्होंने मिथकों की नयी व्याख्याएं की हैं। रुमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कुंवरनारायण के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'वृहतर जिज्ञासा का काव्य' कहा है। इनकी प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है इसलिए उनकी काव्य–भाषा में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इनकी कृतियां– 'आत्मजयी', 'चक्रव्यूह', 'परिवेशः हम–तुम' में संग्रहीत हैं।

रघुवीर सहाय उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर पड़ा है। इनकी कविताओं में बदलाव का स्वर है तथा वे समकालीन यथार्थ को संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताएं जनपक्षीय हैं। प्रमुख संग्रह है– 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हंसो–हंसो जल्दी हंसो', 'लोग भूल गए हैं' आदि।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता यात्रा में अनेक मोड़ आए। आरंभ में उन पर व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। इनकी कविताओं में निजता व आत्मीयता पाई जाती है। इनकी कविताएं सहज, सरल और सपाट हैं। 'काठ की घंटियां', 'जंगल का दर्द' आदि प्रमुख कृतियां हैं।

केदारनाथ सिंह भी तीसरा सप्तक के कवि हैं। इनकी कविताएं 'अभी बिल्कुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहां से देखो' और 'अकाल में सारस' प्रमुख कृतियां हैं। केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नयी कविता की नकारात्मक प्रकृतियों का प्रभाव नहीं है। इनकी कविता में बिंब प्रमुख हैं।

नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां

नयी कविता का संबंध पूंजीवादी विकास से है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धाराएं रही हैं। एक धारा वह जो अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा मार्क्सवाद से प्रभावित थी। नयी कविता की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. **व्यक्ति–स्वातंत्र्य–** व्यक्ति–स्वातंत्र्य नयी कविता की प्रधान विशेषता थी। नयी कविता के कवियों ने नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। कोई इसे 'लघुमानव' कह रहा था तो कोई 'सहज मानव'। लेकिन यह मानव मध्यवर्गी

टिप्पणी

का ही प्रतिनिधि था। नयी कविता में व्यक्ति–विशेष की आशाओं, निराशाओं, आस्थाओं–अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इस काल में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद प्रमुख है।

2. **आस्था और अनास्था–** नयी कविता में यह प्रश्न भी उठा है। उनके अनुसार, नयी कविता वादों, विचारधाराओं, रुढ़ियों, सामूहिक निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। कुंवरनारायण ने आस्था–अनास्था का प्रश्न उठाया है।

3. **औद्योगिक सभ्यता–** बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी बनाया। इसीलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। कवियों का मत है कि यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएं ही नहीं देता, वह संवेदनशक्ति भी छीन लेता है; यथा–

   अपने ही हथियारों से घबराया मानव
   पत्थर का देव और लोहे का दानव
   यह युग
   अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य।

   इन कवियों ने शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया।

4. **अनुभूतिपरकता–** नयी कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रधान है। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ अनुभव को अभिव्यक्त करने के नये अंदाज से है। इसे ही वे सौंदर्यानुभूति भी कहते हैं। प्रत्येक कवि के रचना के मूल में उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौंदर्यानुभूति, सामाजिक यथार्थ से संपृक्ति कलात्मक क्षमता का हाथ रहता है। क्षणबोध की चर्चा भी कवियों ने प्रमुख रूप से की।

5. **प्रकृति–प्रेम–** प्रकृति संबंधी रचनाएं इन कवियों ने प्रमुख रूप से कीं। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नये कवियों ने भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण किया। इनके काव्य में प्रकृति–चित्रण, समाज निरपेक्ष अधिक है। इन कवियों ने प्रकृति के अनेक बिंब व्यक्त किए हैं। साथ ही कृषक चेतना के भी दर्शन होते हैं।

6. **काव्यभाषा, छंद और लय–** नयी कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौंदर्यबोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। इस काल में गद्य–पद्य की भाषा इतनी निकट आ गई कि विभाजन करना कठिन हो गया। कवियों ने बोलचाल के शब्द प्रयोग किए; यथा–

   देवता इन प्रतीकों से कर गए हैं कूच
   कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

   कवियों ने मुक्तछंद को अपनाया है जिससे गद्यात्मकता को बढ़ावा मिला। नये कवियों ने 'शब्द की लय' के स्थान पर 'अर्थ–की लय' को प्रधानता दी। संगीत से मुक्त कविता को इन्होंने 'शुद्ध कविता' कहा है।

7. **प्रतीक और बिंब–** नयी कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। नये कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। साथ ही जीवन और प्रकृति के विविध

टिप्पणी

रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किए हैं। बिंब–विधान भी इन कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। काव्य–बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः नयी कविता को उत्कृष्ट रूप देने में संश्लिष्ट काव्य–बिंबों का प्रमुख स्थान है।

दरअसल, नयी कविता प्रयोगवाद का विकास है। व्यक्ति स्वातंत्र्य, वैयक्तिक अनुभूति की समझ, क्षणबोध, मानव की लघुता की महत्ता इस कविता की पहचान है। यह सामाजिक यथार्थ की मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियां थीं।

4.7 नवगीत

नवगीत समकालीन हिंदी कविता की महत्वपूर्ण विधा है। इसकी रूपरेखा छठे दशक के उत्तरार्द्ध में तैयार की गई। विषम परिस्थितियों में, कुछ जागरूक रचनाकारों ने 'नवगीत' का उद्घोष किया। लोकचेतना और लोकधुनों के संस्पर्श से इन रचनाकारों ने गीतिकाव्य को एक नयी गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान की। प्रमुख गीतकार हैं– शंभूनाथसिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, ओम प्रभाकर आदि। नवगीत ने अपना संबंध जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से जोड़ा। जीवन के अनुभवों को गीतों में उतारा गया। आम–आदमी के दुःख और संघर्ष के गीत गाए गए। लोकगीतों की जीवंतता, सहज संप्रेषणीयता और सरलता को अपनाकर जनवादी नवगीत को नयी शक्ति और ऊर्जा प्राप्त हुई; यथा–

'रूप के भाग में चीर
अपने तो भाग, मजदूर के भाग हैं
भाल पै स्याम लकीर।

(रमेश रंजक)

काव्यभाषा, प्रतीक और बिंब

इस काल की भाषा सपाट है। कवियों ने सृजनात्मक प्रयोग भी किए हैं। चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सपाटबयानी प्रमुख है। गद्यात्मकता का समावेश है, लय तथा संगीतात्मकता का अभाव पाया जाता है। बिंब एवं प्रतीकों की कवियों ने योजना की है। प्रतीक जीवन से ही लिए गए हैं। बिंबों में जीवन के मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

4.8 समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन

नयी कविता की दोनों धाराओं, व्यक्तिवादी–आधुनिकतावादी तथा प्रगतिशीलता का विकास हम समकालीन कविता में देख सकते हैं। हिंदी में समकालीन कविता जैसी कोई काव्य–प्रवृत्ति नहीं है। नयी कविता के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यान्दोलनों, काव्यधाराओं और काव्य प्रवृत्तियों को ही समकालीन कविता कहा गया है।

वस्तुतः साठ के बाद के दशक की कविता, जिसे साठोत्तरी कविता नाम दिया गया है, कुछ अन्य नाम, अकविता, विद्रोही कविता, नूतन कविता, सहज कविता, विचार कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता आदि विभिन्न नामों के साथ सातवें दशक में उभर रही थी। युवा कवि नये तेवर और नयी भंगिमा प्रस्तुत कर रहे थे परंतु इनमें से एक

टिप्पणी

भी नाम और आंदोलन हिंदी काव्य–परंपरा में स्थायी महत्व नहीं प्राप्त कर सका। सभी आंदोलन क्षणजीवी सिद्ध हुए।

भारत की स्वतंत्रता के बाद जनता में जो उमंग व उत्साह था वह धूल–धूसरित होने लगा। बेरोजगारी, भुखमरी, सूखा, बाढ़ आदि ने लोगों के कष्टों को बढ़ाया। वामपंथी तथा प्रगतिशील आंदोलन भी अंतर्विरोधों के कारण बिखर गया। अतः युवा वर्ग निराशावाद में डूब गया। ऐसे में नकारने के विद्रोही तेवर अपनाते हुए कवि हर चीज को और अपने आपको भी निरर्थक मानने लगे।

इस बीच 1962 के भारत–चीन युद्ध एवं 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध ने स्थितियों को बदतर बना दिया। नक्सलवादी आंदोलन भी प्रारंभ हो गया। धीरे–धीरे परिवर्तन की आकांक्षा ने जन्म लिया, जिसने कविता को नया प्रेरणा संसार दिया। ऐसे में पुनः 1975 के आपातकाल के बाद की स्थिति भयावह हो गई। इससे साहित्यकार सकते में आ गए। राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियां 1977 से बदलने लगीं तथा जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, राष्ट्रीय एकता व अखंडता के प्रश्न उठने लगे। समकालीन कविता में मुख्यतः साठोत्तरी कविता, प्रगतिशील–जनवादी कविता एवं नवगीत परंपरा नामक काव्यधाराएं भी चलीं। समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं–

1. **विचारों से विदाई–** राजनीतिक विचारधारा से इन कवियों का कोई सरोकार नहीं है। इनके लिए व्यक्ति सत्ता तथा अनुभूत सत्य ही काव्य का एवं जीवन का दर्शन है। साथ ही सामाजिक आदर्श भी बौद्धिक चेतना से अनुप्राणित है; यथा–

   कुछ लोग मूर्तियां बनाकर / फिर
   बेचेंगे क्रांति की (अथवा षडयंत्र की)
   कुछ और लोग / सारा समय
   कसमें खायेंगे लोकतंत्र की।

2. **व्यर्थता–बोध–** विचारहीन विद्रोह एवं पराजय–भावना ही कवियों को व्यर्थता बोध की ओर ले गई। यथार्थ के प्रति कुंठा ने इन्हें असहाय बनाया तथा इसे इन कवियों ने नियति मान लिया। यहां विरोध का स्वर व्यंग्य नहीं, ऊब है; यथा–

   चारों तरफ मुर्दानी है
   भीड़ है और कूड़ा है
   हर व्यस्तता
   और अधिक अकेला कर जाती है।

3. **अकेलेपन का भाव–** वर्तमान में मनुष्य यांत्रिक हो गया है, जिससे वह स्वयं को 'अकेला' व 'अजनबी' महसूस करने लगा है। महानगरों की भीड़ में भी वह स्वयं को इकाई के रूप में देखता है, पाता है।

4. **नारी के प्रति पतनोन्मुख दृष्टिकोण–** नारी के प्रति सम्मान का अभाव देखा गया है। नारी को मात्र 'वस्तु' के रूप में देखा एवं व्यक्त किया गया। अगर नारी किसी भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए आई भी तो केवल विकृत रूप में। वह सामूहिक उपभोग की वस्तु के रूप में व्यक्त हुई।

टिप्पणी

5. **निषेधात्मकता–** ये कवि भावुकता, आदर्शवादिता, प्रेम, नैतिक मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। मूल्यों के प्रति यह संदेहवाद और निषेध जीवन में भी व्याप्त दिखाई देता है।

6. **प्रगतिशील जनवादी विचारधारा–** समकालीन कविता के कुछ कवि यथा शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि कवियों की कविताओं पर उक्त व्यक्तिवादी एवं निषेधात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव नहीं पड़ा है। ये प्रगतिशील जनवादी कवि थे इनमें धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल को भी सम्मिलित किया जा सकता है। ये आशावादी विचारधारा के कवि रहे हैं।

प्रमुख कवि

समकालीन कविता के प्रमुख कवि हैं– जगदीश चतुर्वेदी, लीलाधर जगूड़ी, धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, शंभुनाथ सिंह, रमेश रंजक, असद जैदी, इब्बार रब्बी आदि।

समकालीन कविता विविध चरणों से गुजरी है। सपाटबयानी, बिंबात्मकता, यथेष्ट का चित्रण, निषेधात्मकता, जनवादी सोच इसकी प्रधान विशेषताएं हैं। यह कविता युवावर्ग की मानसिकता का प्रतिबिंब है। प्रारंभ में यह अतिक्रांतिकारिता से ग्रस्त थी किंतु बाद में यह संतुलित व संयमित रूप से पाठकों के समक्ष आई।

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. 'नयी कविता' नामक पत्रिका का प्रकाशन कब प्रारंभ हुआ?
15. अज्ञेय ने कौन से सप्तक की भूमिका में प्रयोगवाद के स्थान पर नयी कविता शब्द का प्रयोग किया?
16. नई कविता के एक प्रमुख कवि का नाम बताइए।
17. 'वृहतर जिज्ञासा का काव्य' किस कवि की रचनाओं को कहा गया?
18. समकालीन कविता को किस कवि की रचनाओं ने प्रमुख रूप से प्रभावित किया?
19. नवगीत लेखन की रूपरेखा का निर्धारण कब किया गया?
20. साठ के दशक के बाद की कविता को क्या नाम दिया गया?

4.9 दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं

चेतना हमेशा जगाने, झकझोरने और अपने इर्द–गिर्द देखने को प्रेरित करती है। आत्म चेतना का यह बल साहित्य से प्राप्त होता है। हिंदी में दलित साहित्य की शुरुआत ओमप्रकाश बाल्मिकी कृत 'जूठन' से होती है। कुछ लोग भोजपुरी में रचित हीरा डोम के गीत 'अछूत की शिकायत' से इसका प्रारंभ मानते हैं। हिंदी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं बहुत लिखी गई हैं, ये एक शोध का विषय बन सकती हैं।

हिंदी में दलित साहित्य का सृजन आठवें एवं नौवें दशक से देखा जा सकता है। ओमप्रकाश बाल्मिकी, श्योराजसिंह, डॉ. वियोगी, डॉ. सी.वी. भारती, डॉ. सुमनपाल, सुशीला टाक, निर्मला पुतुल, चंद्रकांत बराठे, आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। बाल्मिकी जी के दो काव्य संग्रह 'सदियों का संताप' तथा 'तुम सब क्या करोगे' प्रकाशित हो चुके हैं। अन्य रचनाकारों में कात्यायनी, गगन गिल का नाम भी उल्लेखनीय है। कुछ कविताओं के जनवादी स्वरों का विश्लेषण हम यहां कर रहे हैं–

4.9.1 निराला की कविता में दलित एवं जनजातीय चेतना

निराला की कविताओं में दलित चेतना से जुड़ाव और इसके प्रभाव का वृहत्तर योगदान रहा है, यह निष्कर्ष उनकी कविताई के विश्लेषण से सहज ही प्राप्त होता है। निराला आधुनिक हिंदी साहित्य में इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण हैं कि वे आजादी के संघर्ष को पूरे ऐतिहासिक संदर्भ में अधिक समग्रता से समझ रहे थे और उसके भविष्य के संदर्भ को भी पढ़ पा रहे

टिप्पणी

थे। निराला ने जल्दी–जल्दी पैर बढ़ाने की पुकार लगायी थी, क्योंकि उन्हें भी आशंका थी कि देर हो सकती है और देर होने से सारा गुड़ गोबर हो जाएगा। देखें, निराला जी की कविता की पंक्ति–

जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली, खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला होगी जहां वे सभ्यता का पाठ पढ़ेंगे। इस अंधेरे का ताला कोई पंडा–पुरोहित नहीं खोल सकता बल्कि धोबी, पासी, चमार, तेली खोल सकते हैं। ऐसे लोग खोल सकते हैं, सुबह–सुबह जिनके दर्शन को भी पंडे–पुरोहित का बड़ा वर्ग अपशकुन बताता रहा है। निराला कहते हैं कि अब ये बनेंगे सूरज के नये सारथी और लाएंगे नया सबेरा। सारी संपत्ति देश की होगी और सारी आपत्ति भी। निराला को शंका थी कि पैर जल्दी–जल्दी न बढ़े तो अनर्थ हो जाएगा, हुआ भी। देखिए निराला की कविता 'राजा ने अपनी रखवाली की' का कुछ अंश–

राजे ने अपनी रखवाली की, किला बनाकर रहा
बड़ी–बड़ी फौजें रखी। चापलूस कितने सामंत आये।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये, पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये, लेखकों ने लेख लिखे
इतिहासकारों ने इतिहास के पन्ने भरे, नाट्य कलाकारों ने कितने नाटक रचे।

कैसी विडंबना है कि जिस राजा पर अपनी रखवाली का दायित्व सौंपकर लोग खुद को सुरक्षित समझ बैठे थे, वे अपनी रखवाली करने की कोशिश से ही संतुष्ट था। पोथियों में जनता को बांधने वाले ब्राह्मणों से देश तथा जनता की रखवाली करने के बदले अपनी रखवाली करने वाले राजाओं, पन्ने भरने वाले इतिहासकारों तथा नाटक रचने वाले कलाकारों सबकी पहचान निराला की कविता करती है। 'चर्खा चला' कविता में निराला साफ–साफ कहते हैं– वेदों के बाद जाति चार भाग में बंटी, यही यमराज है। झींगुर का बयान भी देखने योग्य है–

चूंकि हम किसान सभा के, भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई, पुलिस के हुक्म की तामीली की।
ऐसा यह पेंच है।

झींगुर का डटकर ऐसा बोल सकना निराला की कविता में ही संभव हो सका। 'दगा' कविता को पढ़ने के बाद कोई सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि विकास को भी साम्राज्यवाद और सामंतवाद जाल की तरह बुनता है ओर उसका इस्तेमाल जन–आखेट में बड़ी होशियारी से करता है।

किरणों का जाल फैला।
दिशाओं के होंठ रंगे।
दिन में वैश्याओं जैसे रात में
दगा की इस सभ्यता ने दगा की।

पूरी सभ्यता द्वारा दगा किये जाने की शिकायत के विश्लेषण से यह संकेत साफ–साफ उभर कर सामने आ जाता है कि इस पूरी सभ्यता ने किसी और के साथ नहीं बल्कि दलित जनों के साथ दगा किया। भारतीय राजनीति की दिशा, पत्रकारिता की दृष्टि और साम्यवादी तेवर पर पड़ने वाली निराला की पैनी नजर को कोई सहज ही पहचान सकता है।

दलित चेतना का व्यंग्यात्मक विस्फोट 'कुकुरमुत्ता' में मिलता है तो मजदूर वर्ग की स्थिति और शक्ति दोनों के अंदर आकार पा रहे नव निर्माण के संकल्प का संकेत 'तोड़ती पत्थर' मजदूरनी के प्रतिरूप में मिलता है। 'राम की शक्ति पूजा' में राम की मूल आकांक्षा है कि सीता का उद्धार हो–जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका। और यह जानकी कौन है? निराला की नजर में सीता धरती की प्यारी लड़की है, राजकुमारी नहीं।

सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव मुक्ति निराला की काव्य चेतना का मूलाधार है। निराला की मानवमुक्ति की काव्य चेतना का मूलाधार दलित–चेतना से निर्मित है। इसी मुक्ति के लिए निराला कभी कहते हैं–'जागो फिर एक बार'।

4.9.2 नागार्जुन एवं जनचेतना

नागार्जुन के काव्य में जनवादी क्रांति के स्वर व्यापक रूप से सुनाई देते हैं। नागार्जुन विस्थापित किसान हैं और कवि की हैसियत से 'मध्यवर्ग की दुम' हैं। प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित न होकर भी मध्यवर्ग यहां क्रांति की प्रक्रिया में शामिल है। उसका संबंध प्रशासन–तंत्र से है। पूंजीवादी नौकरशाही का ढांचा चूर करके मजदूर–किसान जो परिवर्तन लाएंगे, उसमें मध्यवर्ग की भूमिका है। यह सपना साकार होगा तब सुजला–सुफला के गीतों से नागार्जुन के कान तृप्त होंगे, बंदूकों और तोपों के धमाकों से नहीं। उनकी रचनाओं में जनवादी क्रांति का कार्यक्रम व्यापक है, उसका वर्ग–मोर्चा भी व्यापक है। किसान कवि नागार्जुन, मध्यवर्ग की दुम नागार्जुन, की भूमिका एक क्रांतिकारी कवि के रूप में अत्यंत गौरवपूर्ण है। यहां उनके द्वारा रचित 'लाल भवानी' कविता की पंक्तियां दृष्ट्व्य हैं–

सेठों और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम,
खेत–खान–दूकान–मिलें सरकार करेगी दखल तमाम;
खेत–मजूरों और किसानों में जमीन बँट जायेगी;
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडरायेगी;
नहीं मिलेगा साजिश करने का मौका गद्दारों को,
वतन–फरोशी का न मिलेगा ठेका ठेकेदारों को;
सपने में भी क्षमा मिलेगी नहीं कभी हत्यारों को,
एक–एक कर कैद करेगी जनता रँगे सियारों को,
नौकरशाही का यह रद्दी साँचा होगा चूरम–चूर,
सुजला, सुफला के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान–मजूर;
इन कानों को तृप्ति मिलेगी, तब उस मस्त तराने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तेलंगाने में।

(हजार–हजार बाँहों वाली)

नागार्जुन की एक–एक पंक्ति, एक–एक शब्द में जनवादी क्रांति के स्वर मुखरित हुए हैं। वतन–फरोशों में अंग्रेजी साम्राज्यवाद से समझौता करने वाले और अमेरिकी साम्राज्यवाद का मुंह निहारने वाले कांग्रेसी शासक भी हैं। यह क्रांति साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के कर्तव्य पूरे करेगी इसलिए देशभक्ति पूर्ण होगी। खेत–मजूरों और किसानों को–जमीन के जोतने वालों को–जमीन का अधिकार मिलेगा, इसलिए यह सामंत विरोधी जनवादी क्रांति होगी। जनवादी क्रांति का दायित्व पूंजीपति वर्ग पूरा नहीं कर सका, उसने साम्राज्यवाद की छांह चुन ली और सामंतों को अपनी छांह में बिठा लिया, इसलिए इस क्रांति का नेतृत्व मजदूर वर्ग करेगा और वह पूंजीवाद को नियंत्रित करके शहरी बेकारी की समस्या सुलझाएगा।

नागार्जुन ने लिखा, "कुछ विद्वानों का हिंदी विरोधी रुख मिथिला निवासियों के लिए सर्वथा घातक है।... हिंदी मिथिला के अंदर घुस अवश्य आयी है।" (चुनी हुई रचनाएं–3) हिंदी इसलिए घुस आयी है कि हिंदी और मैथिली के बीच हिंदी और तमिल की अपेक्षा दूरी बहुत कम है। आंचलिक बोध से जातीय चेतना का अंतर्विरोध स्पष्ट है। 1962 में यह चेतना और उन्नत हुई, जब उन्होंने कहा कि "हमारी केंद्रीय सरकार अग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती, हिंदी–बांग्ला–तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी।" केंद्र सरकार की नीति के समतुल्य विचार करने पर हिंदी–साम्राज्य की जगह अंग्रेजी साम्राज्य का वर्चस्व स्पष्ट हुआ और यह अधिक साफ हुआ कि विभिन्न जातियों की भाषा–संस्कृति का दमन हिंदी नहीं कर रही है, अंग्रेजी कर रही है और हिंदी भी अंग्रेजी से पीड़ित भाषाओं में एक है। 1986 में साम्राज्यवादी चुनौती के संदर्भ में विचार करके नागार्जुन ने सांप्रदायिक विद्वेष के जवाब में जातीय चेतना की सर्वोच्चता प्रतिपादित की और छह हिंदी–भाषी प्रदेशों के आर्थिक–सामाजिक–वैज्ञानिक विकास की समन्वित योजना का प्रस्ताव रखा।

1975 में 'हुकूमत की नर्सरी' कविता में नागार्जुन ने इस संबंध में विचार किया–

दुनिया हमसे पूछती है
लोथ की अखंडता किस काम की?
पुराने रोगों के अपने ही कीटाणुओं ने ही तो
तुमको लोथ बना रखा है न?
तमिलनाडु, बंगाल, नगाभूमि, मिजोरम, केरल...
गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र...
इनको तुम कब तक नयी दिल्ली की जमींदारी बनाकर रखोगे
क्यों नहीं इन सभी प्रदेशों का 'संघशासन'
फेडरल राज्य हो, संयुक्त राज्य हो?

4.9.3 डॉ. रामकुमार वर्मा एवं दलित चेतना

डॉ. रामकुमार वर्मा का 'एकलव्य' यद्यपि छठे दशक से पूर्व ही लेखनी का विषय बन चुका था, किंतु साहित्य जगत के समक्ष वह प्रकाशन के रूप में छठे दशक के आस–पास ही आया। दलित–चेतना के रूप में इस ग्रंथ ने साठोत्तरी कविता में शीर्ष स्थान पाया। इस ग्रंथ में युगों से उपेक्षित दलित–चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना जो परिचय देता है, वह निश्चित ही दलित–चेतना को अमरत्व प्रदान करता है–

टिप्पणी

"जय! गुरुदेव!
एकलव्य दास हूँ!
है निषाद वंश मेरा, श्री हिरण्यधनु हैं मेरे पिता
तृण के समान हूँ मैं मार्ग में जो पदों का
भार बार–बार निज शीश ले,
बढ़ता है नवल हरीतिमा में मोद से।
एक ही चरण से खड़ा है जन्म काल से
अपनी तपस्या में। मैं एक ऐसा तृण हूँ।"

तत्कालीन सामाजिक स्थिति दलितों के प्रति अच्छी नहीं थी। किसी दलित को शिष्य बनाना भी पाप समझा जाता था। अतः द्रोणाचार्य ने दलित निषाद पुत्र एकलव्य को धनुर्विद्या सिखाने हेतु अपना शिष्य नहीं बनाया। विनम्र एवं वीर एकलव्य आचार्य द्रोण को अपना गुरु मानते हुए उनकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर वन में जाकर बाण–विद्या का अभ्यास करने लगा और अद्वितीय तथा महान धनुर्धर बना। किंतु द्रोणाचार्य जैसे विद्वान एवं सवर्ण उसकी बाण–विद्या को सहन नहीं कर पाए, फलस्वरूप गुरु दक्षिणा में उससे हाथ का अंगूठा मांग लिया–

"गुरु–प्रण–पूर्ति करे सब काल के लिए
जय गुरुदेव! यह रही मेरी दक्षिणा।
क्षण ही में अर्धचन्द्र–मुख–बाण से,
तूर्ण से निकाल कर लिया बाम कर में
गुरु–मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से।"

अपने गुरु–ऋण से उऋण होने वाला विनम्र वीर, एवं लगनशील दलित एकलव्य जैसा महान न हुआ न ही कोई होगा।

4.9.4 नरेश मेहता के काव्य में दलित–चेतना

साठोत्तरी कविता में श्री नरेश मेहता के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शबरी' में भी दलित–चेतना मुखरित हुई है। शबरी नाम की दलित नारी सवर्णों के तिरस्कार का शिकार कभी नहीं हुई। सवर्ण भी आज सहर्ष अपनी पुत्रियों का नाम शबरी रखते हैं। सवर्ण नारी सूर्पणखां का नाम तक कोई नहीं लेना चाहता है, न सुनना चाहता है, परंतु असवर्ण एवं दलित नारी शबरी को महर्षि बाल्मीकि ने भी अमरत्व प्रदान किया है। भगवान राम उसके आश्रम पर जाते हैं तथा उसके आदर को स्वीकार कर उसे 'तपोधने' का नाम देकर उसकी सम्मान–वृद्धि करते हैं। साठोत्तरी कविता में दलित–चेतना की प्रतीक शबरी को अनुपम एवं सम्माननीय रूप दिया गया है–

"त्रेता युग की व्यथामयी
यह कथा दीन नारी की
राम–कथा से जुड़कर
पावन हुई, उसी शबरी की।

टिप्पणी

बदल गया था सतयुग
का सारा समाज त्रेता में,
वन–अरण्य की ग्राम्य–सभ्यता
नागर थी त्रेता में।"

श्री नरेश मेहता ऐसे आदर्श कवि हैं जिन्होंने अपने 'शबरी' नामक काव्य में दलित–चेतना को साकार किया है। शबरी भले ही भील जाति की दलित महिला थीं, परंतु साहित्य में जो गौरवपूर्ण स्थान उसने पाया है, कोई दलित नारी क्या सवर्ण भी नहीं पा सकी। वह महान तपस्विनी त्याग तथा परिश्रम की साक्षात प्रतिमूर्ति थीं। श्री नरेश मेहता ने शबरी के माध्यम से दलित–चेतना को साकार कर दिखाया है–

"शबरी की दिनचर्या अब
पूजा प्रबन्ध था करना,
अब थी अभिभावक पूरी
सब पर निगरानी रखना।
अब कभी–कभी प्रवचन में
उल्लेखित होती शबरी
मानो वह परम सती हो
हो भक्त शिरोमणि शबरी।"

शबरी के माध्यम से महाकवि नरेश मेहता ने दलितों की अध्यात्मपरायणता एवं पवित्रता का यशस्वी वर्णन किया है।

वास्तव में साठोत्तरी हिंदी कविता में दलित–चेतना को जो चारुता प्रदान की, वह इससे पूर्व के साहित्य में दुर्लभ है।

4.9.5 जगदीश गुप्त का काव्य और दलित चेतना

साठोत्तरी हिंदी कविता में श्री जगदीश गुप्त ने भी दलित–चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। गुप्त जी का 'शम्बूक' नामक काव्य दलित–चेतना में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है।

'शम्बूक' नाम का दलित पात्र महान तपस्वी था। फिर भी घोर तपस्या करते समय उसका सिर काट दिया गया। वह भी किसी साधारण मानव ने नहीं, अपितु भगवान राम ने। दलितों के प्रति अपमान एवं शोषण तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। इस कलंक को धोने का प्रयास साठोत्तरी हिंदी कविता में हुआ है। समाज इस कुत्सित विचारधारा से मुक्ति पाने के लिए सजग है। श्री जगदीश गुप्त कृत 'शम्बूक' इसका यशस्वी उदाहरण है–

"हे राम!
तुम्हारी रची
रक्त की भाषा में
हर बार
तुम्ही से कहता है

टिप्पणी

शम्बूक मूक,
तज कर्म–वेद–पथ,...
मानव समाज की
ऊर्ध्वमुखी मर्यादा में
तुम गए चूक।"

शम्बूक जैसा दलित तपस्वी समाज के लिए पवित्र उदाहरण है। तपस्या करने का अधिकर तो सभी का है। दलित वर्ण तपस्या क्यों नहीं कर सकता? सवर्ण और असवर्ण तो समाज की देन हैं। हर कोई इनसान है तथा वह अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के अनुसार कार्य कर सकता है।

4.9.6 रामधारी सिंह दिनकर और दलित तथा जनजातीय चेतना

साठोत्तरी हिंदी कविता में दलित–चेतना और जनजातीय चेतना की कड़ी में महाकवि दिनकर महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी कविता अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सिंहनाद करती है। आकाश कुसम की अपेक्षा धरती पर कमल खिलाने का सपना देखती है। उपेक्षित, दलितों, शोषितों के प्रति सहानुभूति दर्शाती है। सामाजिक विषमता और जड़ता को तोड़ने के लिए संघर्ष का भाव जगाती है। वर्ण और जाति व्यवस्था में कराहती मानवता के अभ्युत्थान का विधान रचती है। इसी विधान की सर्जन है 'रश्मिरथी' जिसका नायक कर्ण दलितों, उपेक्षितों और अपमानितों का प्रतिनिधि है। दलित–तारक और त्रिया समुद्धारक के रूप में वह जाति और वर्ण व्यवस्था की आड़ में प्रतिभा और योग्यता की उपेक्षा करने वालों को ललकारता हुआ खुली चुनौती देता है। वह अपने कर्म–कौशल से दलितों का मसीहा तथा 'मनुजता का नया नेता' बनता है। 'महाभारत' के कर्ण और 'रश्मिरथी' के कर्ण में जो कुछ भिन्नता है वह 'दिनकर' की दलित–चिंता की उपज है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'रश्मिरथी' दलित चेतना का दस्तावेज है।

दलित–चिंतन सदियों से शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, अपमानित जन के अधिकार हेतु संघर्ष और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद के विरोध और नकार का चिंतन है। दिनकर ने जातिवाद का विरोध करते हुए 'रश्मिरथी' में कर्ण–चरित के निर्माण को नयी भावना की स्थापना का प्रयास कहा है। 'रश्मिरथी' का कर्ण जाति–धर्म के ठेकेदारों से सीधे टकराता है। यह टकराव एक नयी भावना को जन्म देता है जिसकी ओर दिनकर संकेत करते हैं।

उच्च कुलोत्पन्न होकर भी दयनीय जीवन, योग्यता और पौरुष के बावजूद अपमान एवं लांछन, वीर होकर भी प्रवंचित–पराजय जिस व्यक्ति के जीवन का यथार्थ हों, उसका अंर्तमन दुखी एवं कोलाहलपूर्ण होगा उसका अंदाजा कर्ण–काया प्रवेश से ही हो सकता है। दिनकर ने कर्ण के अंतर्जगत में प्रविष्ट हाहाकार को बहुत गंभीरता और गहराई से देखा है। एक पुरुषार्थी के साथ हो रहे अत्याचार की पीड़ा महसूस की है। उस दर्द में उन्हें भारत के लाखों, करोड़ों दलितों का आर्तनाद सुनाई दिया है। शोषितों–प्रवंचितों के हृदय ताप की धधकती ज्वाला दिखाई दी है। दिनकर यह सब इसलिए देख सके हैं, क्योंकि उनके चिंतन में विवेकानंद, जयप्रकाश नारायण, गांधी और अंबेडकर का चिंतन शामिल रहा है। मार्क्स और साम्यवाद का दर्शन रहा है। यही कारण है कि दिनकर भाग्यवाद और नियतिवाद की अपेक्षा कर्म की महत्ता का जयनाद करते हैं। 'रश्मिरथी' का कर्ण अपने पौरुष के बल पर

टिप्पणी

ही दलित, प्रताड़ित, निरीह, निंदित, निर्धन जन का सखा, बंधु, सहचर बनकर विधि–विधान के विरुद्ध समर के लिए उद्यत होता है–

"जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निरीह हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु, सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।"

उसका यह समर आजीवन चलता रहता है। वह सबसे पहले सामाजिक व्यवस्था एवं संरचना से जूझता है। जाति–धर्म के ठेकेदारों से टकराता है। इस खंड काव्य का आरंभ शौर्य प्रदर्शन के बहाने इस सामाजिक विसंगति के विरोध से ही हुआ है। कौरवों–पांडवों के लिए हस्तिनापुर में आयोजित शौर्य प्रदर्शन में पहुंचकर कर्ण जब अर्जुन को ललकारता हुआ कहता है–

"तूने जो–जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ।
चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।"

तब उसको मिल रही शाबाशी से तिलमिलाये कृपाचार्य को अर्जुन के बचाव के लिए 'जाति' का सहारा लेना पड़ता है। कृपाचार्य 'जाति' के नाम पर ही कर्ण को अर्जुन की प्रतिद्वंद्विता से बाहर रखने की साजिश रचते हैं, तभी पूछते हैं–

"अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन।
नाम–धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन।"

यह प्रश्न किसी दुर्बल मन को और अधिक दुर्बल बनाने के लिए काफी है, लेकिन 'रश्मिरथी' का कर्ण जाति–व्यवस्था–भंजक है। वह क्षुब्ध और कुपित हो पौरुष (भुजबल) को ही जाति का पर्याय मानता है–

"जाति–जाति रटते, जिनकी पूजा केवल पाषंड।
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदंड।"

यहां कर्ण जिस तरह जातिवाद का विरोध करता है, उससे वह दलितों में एक नयी चेतना का संचार करता प्रतीत होता है। वह दलितों का प्रेरणास्रोत बनता है। आधुनिक मानव को पौरुष के प्रति आस्थावान बनाने में कर्ण से अधिक उपयुक्त पात्र कोई नहीं हो सकता।

दिनकर ने उसे विश्वास एवं पौरुष से पूर्ण चित्रित किया है इसीलिए वह कृपाचार्य को निरुत्तर करने में कोई कसर नहीं छोड़ता–

"पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच–कुण्डल से,
पढ़ो उसे जो झलक रहा है, मुझमें तेज–प्रकाश,
मेरे रोम–रोम में अंकित है, मेरा इतिहास।"

हर रचनाकार पौराणिक पात्रों की युगीन प्रस्तुति करता है। अपने युग के अनुरूप उसे ढालता है। कर्ण दिनकर के युग का प्रतिनिधि है। इसीलिए उसमें कबीर की क्रांतिधर्मिता है, विवेकानंद का समभाव है, अंबेडकर का चिंतन है। इसी से कर्ण कभी व्यंग्य करता है, कभी तर्क ओर कभी आत्मचेतना में लीन हो जाता है।

दिनकर 'रश्मिरथी' में कर्ण के 'उद्धार' के माध्यम से व्यक्ति–मानव की प्रतिष्ठा का प्रयास करते हैं। वैयक्तिक गुणों के आधार पर व्यक्ति के मूल्यांकन का आधार रखते हैं। इसीलिए इस कर्ण के समक्ष वर्ण संघर्ष की चुनौती है। अतः अपने जन्म और भाग्य को कोसते रहना उसे श्रेयस नहीं लगता। वह जानता है कि जन्म दैवायत्त है– ईश्वरीय विधान है। उस पर मनुष्य का वश नहीं है फिर उस पर चिंतन और आत्मग्लानि व्यर्थ है–

"किन्तु मनुज क्या करे
जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं
चुनना जाति और कुल अपने बस की है बात नहीं।"

आधुनिक युगचेतना समन्वित कर्ण, जाति के मिथक को तोड़ स्वस्थ सामाजिक संरचना के लिए आतुर है।

दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक कृति भी अपना उल्लेखनीय स्थान रखती है। जातिगत विद्वेष भारतीय समाज को कमजोर बना रहा है। जब तक यह जातिगत भावना भारतीय समाज से पूर्णतया समाप्त नहीं होगी, तब तक भारतीय समाज सशक्त नहीं बन सकेगा–

"सबसे पहले यह दुरित–मूल काटो रे!
समतल पीटो, खाइयाँ–खड्ड पाटो रे!
बहुपाद वटो की शिरा–सोर छाँटो रे!
जो मिले अमृत, सबको समान बाँटो रे!
वैषम्य घोर जब तक यह शेष रहेगा,
दुर्बल का दुर्बल यह देश होगा।"

4.9.7 सुभद्रा कुमारी चौहान एवं स्त्री चेतना

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रथम राष्ट्र–कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्यधरा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। उनका काव्य इसी काव्यधारा की भूमि पर पल्लवित और पुष्पित हुआ है। वे राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के उन रचनाकारों में से एक हैं जो राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय रहने के साथ–साथ सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए एक कारगर हथियार के रूप में साहित्य का सदुपयोग कर रहे थे।

"सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी

* * *

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"

सुभद्रा जी ने ऐसे समय पर स्त्री चेतना को जगाया जब उसे केवल परदे के अंदर रहती अक्रियाशील प्राणी के रूप में देखा जाता था। उनका संपूर्ण जीवन स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने, निरंतर साहित्य लेखन तथा सामाजिक प्रगति और नारी–जागरण के लिए समर्पित रहा। 'झांसी की रानी' जैसी कालजयी कविता लिखकर उन्होंने वीरता व शौर्य की मूर्ति रानी लक्ष्मीबाई के साहस व शौर्यपूर्ण कार्यों से महिलाओं का ऐसा सुदृढ़ वर्ग

तैयार किया जो शत्रुओं की नींद हराम करने में सक्षम था। कवयित्री ने समस्त नारी जाति को लक्ष्मीबाई की तरह वीरांगना बनने की प्रेरणा देकर नारी जागरण का उद्घोष किया। इस कविता के माध्यम से सुभद्रा जी ने पूरे देश को स्वतंत्रता के लिए हंसते–हंसते प्राणोत्सर्ग करने का ऐसा पाठ पढ़ाया कि भारतमाता के हजारों सपूत 'वंदेमारतम' का जयघोष करते हुए लाठियों और गोलियों से जख्मी तथा छलनी हुए और फांसी के फंदों पर निर्भय होकर झूल गए। इस कविता के विषय में उनकी पुत्री सुधा चौहान ने अपनी पुस्तक 'सुभद्रा कुमारी चौहान' में लिखा है–" 'झांसी की रानी' कविता वह मशाल थी जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था। सुभद्रा के हृदय का देश–प्रेम इस कविता के माध्यम से न जाने कितने दिलों में भी देश प्रेम की लौ जला देता था।" आधुनिक हिंदी कविता में यह ऐसा वीर गीत है जो अपनी सहज–सरल भाषा के कारण लोकगीत की तरह लोक मानस का अंग बना हुआ है।

सुभद्रा जी पंद्रह करोड़ भारतीय महिलाओं से असहयोग आंदोलन में भागीदारी का आह्वान करती हैं। वे चाहती हैं कि असहयोग का इतना व्यापक प्रभाव हो कि ब्रह्मांड हिल उठे। 'विजया दशमी' कविता में एक वीर क्षत्राणी का आततायियों के विरुद्ध आक्रोश और अत्याचार के विरोध का स्वर इस प्रकार सुनाई देता है–

"पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ
दहला दें ब्रह्माण्ड सखी।
भारत–लक्ष्मी लौटाने को
रच दें लंका काण्ड सखी।"

उनकी प्रेरणा से सैकड़ों वर्षों से दबी–कुचली व लंबे घूंघट में रहने वाली भारतवर्ष की नारियां 'भारतमाता की जय', 'वंदेमातरम्', 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का जयघोष करती हुई स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ीं। सुभद्रा जी के जीवन का आदर्श मानवता का विकास था। विद्रोहिणी सुभद्रा बचपन से ही छुआछूत की विरोधी थीं। उनके संवेदनशील हृदय ने कभी भी इस भेद–भाव को स्वीकार नहीं किया। गांधी जी के प्रति अनन्य निष्ठा और अहिंसा को संपूर्ण रूप से अंगीकार करने के बाद उनके इस विरोध को और भी बल मिला। जीवन की अंतिम कविता 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो' में सुभद्रा जी ने सामाजिक वैषम्य अनीति और अत्याचार का खुलकर विरोध किया है–

यह निर्मम समाज का बंधन और अधिक अब–सह–न सकूँगी।
यह झूठा विश्वास प्रतिष्ठा झूठी इसमें रह न सकूँगी।
ईश्वर भी दो हैं' यह मानूं' मन मेरा तैयार नहीं है।
किंतु देवता यह न समझना' तुम पर मेरा प्यार नहीं है।।

इस प्रकार सुभद्रा जी के काव्य में स्वाधीनता–आंदोलन से जुड़ा स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न और दलित जातियों के उत्थान का प्रश्न घुल–मिल गया है।

4.9.8 स्त्री चेतना और अरुण कमल की कविता

आधुनिक कवियों में जाने माने कवि अरुण कमल की कविताओं में वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था के खिलाफ, आक्रोश एवं नफरत के स्वर दिखाई देते हैं, साथ ही एक मानवीय

टिप्पणी

व्यवस्था के निर्माण की आकुलता भी दिखाई देती है। परंपरा के बीच जकड़ी स्त्री में जब चेतना की आरंभिक सोच का अंकुरण होने लगता है तो उसे किन मनोस्थितियों एवं परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, उसका सजीव चित्रण उनकी 'स्वप्न' नामक कविता में हुआ है–

"वह बार–बार भागती रही
बार बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाये मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न"

(स्वप्न)

इस कविता में एक औरत बार–बार ससुराल से भागती है, मार खाकर। कभी किसी मंदिर की सीढ़ी पर घंटों बिताती है। फिर अंधेरा होने पर उसी जगह लौट आती है। कभी किसी दूर के संबंधी या परिचित के घर दो चार दिन काटती है। कभी अपने नैहर चली जाती है। पर हफ्ता या महीना भर बाद थक कर उसी जगह लौटती है। यह उसकी विवशता है।

जानती थी वो कहीं कोई रास्ता नहीं है
कहीं कोई अंतिम आसरा नहीं है
जानती थी वो लौटना ही होगा इस बार भी।

फिर भी भागती है। उसके यहां से गंगा भी ज्यादा दूर नहीं थी। रेल की पटरियां भी पास थीं। पर वह अपनी त्रासदपूर्ण नियति को जानते हुए भी कि उसे फिर लौटना पड़ेगा, और मार खानी पड़ेगी; भागती है। कुछ दिन के लिए ही सही। वह मरण का वरण नहीं करती। आत्महत्या का रास्ता नहीं अख्तियार करती है। लिहाजा गंगा नदी का ज्यादा दूर न होना या रेल की पटरियां पास होना उसके लिए कोई विकल्प नहीं रहता। मार खाने से बचने के लिए जीवन को समाप्त करना उसे गवारा नहीं है। क्योंकि वह बार–बार जीवन से मृत्यु नहीं, मृत्यु से जीवन के लिए भाग रही थी। वह स्त्री बार–बार हर रात एक ही सपना देखती है ताकि मुक्ति की इच्छा भूल न जाए।

इस कविता में स्त्री के पास कहीं कोई रास्ता नहीं है और कहीं कोई अंतिम आसरा भी नहीं। जाहिर है, उसे अपना रास्ता खुद बनाना और बनना है। इस स्त्री को इसका बोध है। इस बोध और गहरी जिजीविषा ने उसे रेल की पटरी पर या गंगा में जाने से रोका है। लिहाजा, ससुराल से मार खाकर बार–बार भागना महज पलायन नहीं है बल्कि विकल्प रचने के लिए रास्ता बनाने की प्रक्रिया की एक कड़ी है। इसके साथ ही पिटने की पीड़ा का अहसास बेहद जरूरी है। बगैर इस अहसास के न तो मुक्ति का स्वप्न याद रहेगा और न ही जीवन को बदलने के लिए प्रयास करने की इच्छा ही।

कविता समाज को जागरूक भी बनाती है और बौद्धिक चेतना जगाने का कार्य भी करती है। अरुण कमल की एक कविता प्रस्तुत है–

"भौजी, डोल हाथ में टांगे
मत जाओ नल पर पानी भरने

टिप्पणी

तुम्हारा डोलता है पेट
झूलता है अंदर बँधा हुआ बच्चा
गली बहुत रुखड़ी है
गड़े हैं कंकड़–पत्थर
दोनों हाथों से लटके हुए डोल
अब और तुम्हें खींचेंगे धरती पर
झोर देंगे देह की नसें
उकस जाएँगी हड्डियाँ
ऊपर–नीचे दोलेगा पेट
और थक जाएगा बउआ..."

(धरती और भार)

कविता की निगाह गर्भस्थ शिशु की थकान देखने से भी नहीं चूकती।

4.9.9 समकालीन अन्य कविताएं एवं चेतना के स्वर

इधर स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना को लेकर विपुल मात्रा में कविताएं लिखी जा रही हैं। कवयित्री निर्मला पुतुल का नाम यहां प्रासंगिक है। स्त्री के एकांत के स्वरों को सुनती, उसके भीतर के खौलते इतिहास को पढ़ने की चेष्टा में निरंतर प्रयासरत चर्चित कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती हैं–

"बाबा, मत व्याहन उस देश में
जहां मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियां बेचनी पड़े तुम्हें"

इसी प्रकार प्रातः से लेकर रात तक अनवरत अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते–करते कठपुतली सी नाचती नारी की अंतर्मन की व्यथा को पढ़ने का प्रयास करती वे समाज से स्त्री को समझने की अपील करती हैं–

क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत

घर–प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम।

बता सकते हो
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता।

× × ×

यहां वे स्त्री की खामोशी एवं अंतर्मन की बात सुनती हैं तो अपनी दूसरी कविता में नगाड़े की तरह बजने की कल्पना कर सबको जगाना चाहती हैं–

टिप्पणी

"चाहती हूं मैं
नगाड़े की तरह बजें मेरे शब्द
और निकल पड़ें लोग
अपने–अपने घरों से सड़क पर।"

जातिवाद से ग्रस्त समाज और उसके संस्कारों की तिलमिलाहट को ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपनी इस कविता में महसूस किया और बेबाकी से पूछा है–

"तुमने कहा–
ब्रह्मा के पाँव से जन्मे शूद्र
और सिर से ब्राह्मण
उन्होंने पलटकर नहीं पूछा–
ब्रह्म कहाँ से जन्मा?"

समकालीन कविता की उपलब्धि है कि उसने ऐसे बुनियादी सवाल उठाए हैं कि दलितों और स्त्रियों के वे होंठ, जो एक अरसे से सिले हुए थे, खुले हैं। उन्होंने अपनी खामोशी तोड़ी है। दलितों का एक हिस्सा निम्न से मध्य वर्ग में परिवर्तित हुआ है। उसने बोलने की स्थिति और शक्ति अर्जित की है। संतप्त अनुभवों और उनके विद्रोह का कविता में आना इसका परिणाम है।

दलित कविता के रूप में समकालीन कविता उनकी ओर से खुलकर बोल रही है, जिसे बोलना नहीं आता। समकालीन कविता का एक बड़ा हिस्सा उनकी बोली से गुंजित दिखाई देता है। समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में होने वाला परिवर्तन भी आज की कविताओं में देखने को मिलता है। अनामिका ने 'केरल की लोकधुन पर आधारित' एक कविता लिखी। उन छोटी–छोटी लड़कियों के एहसास जीते हुए, जो बलात्कार को झेल–पचाकर भी सीधी खड़ी हो जाती हैं। यह यातना उन्हें तोड़कर बिखेर नहीं पाती। इस कविता का एक हिस्सा यहां प्रस्तुत है–

"आरारी अरारिआरो...
...उफ, अम्मा, मैंने भी
लेकिन हथियार नहीं डाले
कि जो बाजरा कूटकर
रोटियाँ खिलाई थीं तुमने–
मैंने उनकी
सैरियत तो दी–
मानो न, अम्मा, दी, बिल्कुल दी...जल्दी तो हार नहीं मानी।
थोड़ा–सा खून बहा, उसके छपाके से बांबी के फूल रंग गए,
ओ अम्मा, ओ अम्मा–
मत रोओ लेकिन कि
एक छपाका खून ही तो था,
वो फिर से बन जाएगा।
...आरारी अरारिआरो..."

टिप्पणी

हिंदी कविता की दुनिया में यह छोटी लड़की नयी है। बलात्कार की सारी स्त्री विरोधी ताकत को इसने 'एक छपाका खून' कहकर निर्वीर्य कर दिया। लड़कियां रोटियां पहले भी खाती रहीं लेकिन इस बार वे रोम–रोम तक संचरित होने वाला हिम्मत का रक्त बनीं। शरीर, मन ओर चेतना के साथ स्त्री ने परिस्थितियों से लोहा लेने की तैयारी की। बलात्कार के अपराध–बोध को अपने मन से निकाला।

इस प्रकार समकालीन कविताओं में दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना के स्वर पर्याप्त रूप में मुखरित हुए हैं।

4.10 स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी गद्य साहित्य

साहित्य समाज का सच्चा प्रतिबिंब होता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक परिस्थिति साहित्य को दिशा देती है। हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। स्वाधीनता को लेकर किये गए संघर्ष ने साहित्य को दिशा दी, साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए सामाजिक परिवर्तन भी साहित्य को प्रभावित करते रहे। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन–जन में वैचारिक अभियान जगाने में तत्कालीन साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सच्ची क्रांति तो वैचारिक क्रांति थी, विचारों को झकझोरने और विदेशी सत्ता के खिलाफ एकजुट होने का काम इस काल में रचे गद्य ने किया। जिसके फलस्वरूप कई नये काव्यान्दोलन दिखाई दिए। साथ ही यथार्थवादी गद्य साहित्य भी प्रकाश में आया।

सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। 1757 के प्लासी युद्ध, 1764 के बक्सर युद्ध से अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ें मजबूत कर लीं, तत्पश्चात 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के विफल होने के बाद अंग्रेज सशक्त हो गए थे। 1858 के बाद भारत का शासन ब्रिटेन की महारानी के अधीन हो गया। इस बीच भारत का शासन चलाने के लिए निरंतर वायसराय नियुक्त किए गए, साथ ही 1909, 1919, 1935 के अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश शासन भारत पर अपनी सत्ता निरंतर मजबूत कर रहा था। ब्रिटिश शासन की समाप्ति हेतु क्रांति और अहिंसा दोनों मार्ग अपनाए जा रहे थे। एक ओर जहां भगतसिंह, राजगुरु, चंद्रशेखर आजाद व सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी सक्रिय थे, वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी, मौलाना आजाद एवं वल्लभ भाई पटेल भी सत्य और अहिंसा के मार्ग पर अडिग थे। गांधी जी ने अहिंसा को शस्त्र बनाकर असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान किया। सहित्य द्वारा भी प्रकारांतर से जनजागरण की मशाल जगाने का कार्य जारी था। एक ओर अंग्रेजी और उर्दू को मान्यता देने की वकालत हो रही थी तो दूसरी ओर खड़ी बोली गद्य जन–जन तक अपनी पहुंच बना रहा था।

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की महत्वपूर्ण भूमिका है। द्विवेदी युग में आकर स्वाधीनता आंदोलन अधिक शक्तिशाली हो गया था। भारतीय राजनीति में यह नौरोजी, गोखले और तिलक का युग था। पूरी भारतीय चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादी शक्तियों को देश से बाहर खदेड़ देने के लिए संकल्पबद्ध रूप में सामने आई। भारतीयता

'अपनी प्रगति जांचिए'

21. हिंदी में दलित साहित्य सृजन की प्रक्रिया कब से प्रारंभ हुई?
22. निराला ने अमीरों की हवेली को क्या बनाने की परिकल्पना की?
23. 'कुकुरमुत्ता' के रचनाकार का नाम बताइए।
24. जनवादी क्रांति के स्वर किस कवि के काव्य में व्यापक रूप से सुनाई देते हैं?
25. 'लाल भवानी' के रचयिता का नाम बताइए।
26. आचार्य द्रोण ने एकलव्य को अपना शिष्य क्यों नहीं बनाया?
27. नरेश मेहता ने किस दलित पात्र को सवर्ण समाज में सम्मानीय रूप में प्रस्तुत किया है?
28. रामधारी सिंह दिनकर ने 'रश्मिरथी' में किसके माध्यम से वैयक्तिक गुणों के माध्यम से वर्ण–संघर्ष को चनौती दी है?
29. झांसी की रानी के रचनाकार का नाम बताइए।
30. अरुण कमल के 'स्वप्न' की स्त्री हर रात क्या सपना देखती है?

की तलाश में राम, कृष्ण, शिवजी आदि को अपनाकर एक नये रूप में साहित्य प्रकट हुआ। नारी जागरण संबंधी ओदोलनों की सीधी प्रतिध्वनि 'प्रिय प्रवास', 'मिलन', 'यशोधरा', 'साकेत' जैसे काव्यों में सुनाई दी। काव्य से होती हुई स्वाधीनता आंदोलन की यह लौ गद्य की ओर प्रवृत्त हुई।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका न केवल हिंदी नवजागरण की दिशा में मील के पत्थर के समान रही अपितु भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को गति व बल देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा। नवजागरण की दिशा में महावीर प्रसाद द्विवेदी की सबसे बड़ी देन काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी की प्रतिष्ठा करना है। गद्य और पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली हिंदी को सर्वमान्य बनाने के साथ–साथ उन्होंने खड़ी बोली गद्य को व्याकरणसम्मत रूप दिया, एक मानक भाषा के रूप में उसे आकार प्रदान किया। इसके अलावा हिंदी पाठकों का मानसिक विकास कर उन्हें समसामयिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, आर्थिक हलचलों के प्रति जाग्रत करने का कार्य भी महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया।

आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी साहित्य को अनेक ऐसे रचनाकार प्रदान किये जिनके साहित्य ने स्वाधीनता आंदोलन में रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य किया। मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद जैसे हिंदी के पुरोधा महावीर प्रसाद द्विवेदी की अनुपम देन हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय जनमानस में अपनी अस्मिता व स्वाभिमान का बोध कराकर उन्हें हीन भाव से मुक्त किया। वहीं प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन के जो चित्र साकार हुए और सामाजिक विद्रोह के स्वर उनकी कहानियों व उपन्यासों में सुनाई दिए, वह द्विवेदी जी की ही प्रेरणा के परिणाम थे।

प्रेमचंद का गद्य जीवन की कहानी कहता हुआ आगे बढ़ता रहता है। एक आदमी के जीवन के जितने भी आयाम हो सकते हैं उन सबको प्रेमचंद का गद्य ताकता हुआ चलता है। आज भी देश की अर्थव्यवस्था कृषि एवं गांवों पर टिकी हुई है। प्रेमचंद ने गांवों की समस्याओं को सबसे अधिक उठाया है। वे ऐसे लेखक हैं जिन्होंने भाषा को गढ़ा है। प्रेमचंद ने साहित्य का आस्वाद बदला। हिंदी की जहां–जहां पहुंच होगी बिना प्रेमचंद के वहां भारत के ग्रामीणों के जीवन को समझना आसान नहीं होगा।

महात्मा गांधी के उद्‌बोधन पर प्रेमचंद ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। बाद में उन्होंने 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन किया। 'हंस' उनकी अपनी पत्रिका थी। प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियां और 14 उपन्यास लिखे। उनके उपन्यासों में गोदान, कर्मभूमि, कायाकल्प, मनोरमा, निर्मला, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, वरदान, गबन और सेवासदन हिंदी में और उर्दू में बाजार–ए–हुस्न है। जबकि 'मंगलसूत्र' को वे पूरा नहीं कर सके। उनकी कहानियों में पंच परमेश्वर, ईदगाह, मंत्र, नशा, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात, बूढ़ी काकी, बड़े भाई साहब, बड़े घर की बेटी, नमक का दारोगा, रामलीला, चोरी, जुर्माना, सवा सेर गेहूं, अलग्योझा, वज्रपात, ठाकुर का कुआं, दूध का दाम और कफन आदि प्रमुख हैं। उनके नाटकों में कर्बला व तजुर्बा हैं। वे एक सफल पत्र लेखक एवं पत्रकार भी थे।

प्रेमचंद ने भारतीय किसान के हित के केंद्र में सामंती साम्राज्वादी शोषण की जड़ों को पहचानते हुए अपना लेखन किया। बनारस से मासिक 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और 'हंस' पत्रिका के लिए उन्होंने अपना जीवन खपा दिया। अभाव, बीमारी, अंग्रेज सरकार का विरोध, क्या–क्या उन्हें नहीं झेलना पड़ा।

उधर जयशंकर प्रसाद के माध्यम से 'भारतीयता' भिन्न सांस्कृतिक सार के रूप में निर्मित हो रही थी। हंस, इंदु, हिंदी गल्प माला जैसी पत्रिकाएं आधुनिक भारत की पुनर्रचना के शक्ति स्रोतों को अपने आदर्शों के अनुरूप खोज रही थीं। बीसवीं शताब्दी के इस आरंभिक दौर के बनारस में विविध साहित्यिक हलचलें थीं। काशी में उस समय मैथिलीशरण गुप्त, जैनेन्द्र, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे रचनाकारों का आना–जाना और परस्पर संवाद था। इसके अतिरिक्त शिवपूजन सहाय, उग्र, शांतिप्रिय द्विवेदी और विनोद शंकर व्यास जैसे रचनाकार यहां थे। साहित्य और यथार्थ के रिश्ते को समझने की बेचैनियों के कई रूप थे। प्रसाद और जैनेन्द्र में ही नहीं, प्रेमचंद में भी यथार्थ और यथार्थवाद संबंधी उलझनें बनी हुई थीं।

दूसरी तरफ स्वाधीनता आंदोलन में विशेष भूमिका निभाने वाले हिंदी पत्रकारिता जगत के नींव के पत्थर 'आज' व 'प्रताप' जैसे पत्रों के संपादक क्रमशः बाबू राव विष्णु पराड़कर व गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा पाकर पत्रकारिता जगत में प्रवेश किया। बाबू राव विष्णु पराड़कर ने स्वयं स्वीकार किया है कि "सन् 1906 से, जब मैंने स्वयं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, प्रति मास 'सरस्वती' का अध्ययन मेरा एक कर्तव्य हो गया। मैं 'सरस्वती' देखा करता था, संपादन सीखने के लिए।" गणेश शंकर विद्यार्थी ने तो अपना साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' के सहायक संपादक की हैसियत से ही प्रारंभ किया। इन सब लोगों द्वारा ज्वलंत मुद्दों पर लिखे गए आलेखों ने हिंदी गद्य के प्रसार को नयी दिशा दी।

द्विवेदी जी मुसलमानों, अछूतों और स्त्रियों में शिक्षा प्रसार के समर्थक थे। 'सरस्वती' में अनेक लेख इस संदर्भ में छपते रहते थे। स्त्रियों और अछूतों की तरह भारतीय समाज के एक अभिन्न व उपेक्षित अंग– आदिवासियों से संबंधित अनेक लेख 'सरस्वती' में उन्होंने प्रकाशित किये। वे जानते थे कि प्राचीन संस्कृति पर गर्व राष्ट्रीय आत्मसम्मान का अभिन्न अंग है और स्वाधीनता आंदोलन के लिए यह आत्मसम्मान की भावना अत्यंत मूल्यवान है। इसीलिए 'वेद' शीर्षक निंबध में वे लिखते हैं–"वेद हम लोगों का सबसे श्रेष्ठ और सबसे पुराना ग्रंथ है। वह इतना पुराना है कि ईसाइयों का बाइबिल, मुसलमानों का कुरान, पारसियों की जेन्द–अवेस्ता और बौद्धों के त्रिपिटक आदि सारे धर्मग्रंथ प्राचीनता में उसकी बराबरी नहीं कर सकते।" इसी प्रकार उन्होंने पुरातत्व संबंधी अनेक लेख लिखे। इनके माध्यम से उन्होंने भारतीयों की सोई अस्मिता और स्वाभिमान को जाग्रत करने का महती कार्य किया। उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत का परिचय करवाते हुए भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को रेखांकित किया, जिससे भारतीय नवजागरण को खाद–पानी मिला।

खड़ी बोली में गद्य साहित्य लिखे जाने से भारत की भाषा समस्या का समाधान तो हुआ ही साथ ही इसने साहित्य को दरबारी संस्कृति की कारा से मुक्त कर लोकजागरणवादी परंपरा से जोड़ा। हिंदी साहित्य में साहित्येतर विषयों के माध्यम से भारतीय जनमानस को झकझोरकर स्वदेशाभिमान जाग्रत किया।

'सरस्वती' के एक लेख में वे कहते हैं–"यूरोप के कुछ मदांधा मनुष्य समझते हैं कि परमेश्वर ने एशिया के निवासियों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए ही उनकी सृष्टि की है। जिस एशिया ने बुद्ध, राम, कृष्ण, ईशा, कन्फयुसियस, रवींद्रनाथ और जगदीश चंद्र बसु

को उत्पन्न किया है, उसने दूसरों की गुलामी का ठेका नहीं ले रखा है।" इस प्रकार जो कार्य तत्कालीन समाज सुधारक व राजनेता सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों के माध्यम से कर रहे थे, वही कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। उनके लेखों ने तत्कालीन गद्य लेखकों को उत्प्रेरित किया एवं उनका मार्ग दर्शन किया।

रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक चेतना का विकास स्वाधीनता आंदोलन के साथ ही हुआ। 1857 का महासंग्राम, प्रेमचंद–निराला–रामचंद्र शुक्ल की आकांक्षाएं, प्रगतिशील आंदोलन और मार्क्सवादी विचारधारा– वे बुनियादी स्रोत हैं, जिनसे उनकी आलोचनात्मक दृष्टि निर्मित हुई थी। उनकी नवजागरण की धारणा बुनियादी तौर पर साम्राज्यवाद विरोधी धारणा है। उन्होंने आजीवन इस साम्राज्यवादी प्रचार का विरोध किया कि अंग्रेज भारत का विकास करने आए थे या उनकी कोई प्रगतिशील भूमिका थी। गद्य के सिलसिले में उनका लेख 'शैलीकार बालमुकुंद गुप्त' महत्वपूर्ण है। गद्य में वह किन विशेषताओं को आकर्षक मानते थे, इसका पता इस निबंध से चलता है। लिखा है, "वे (बालमुकुंद गुप्त) शब्दों के अनुपम पारखी थे। हिंदी के साधारण शब्द उनके वाक्यों में नयी अभिव्यंजना शक्ति से दीप्त हो उठते थे।" इसके अलावा, "उनके वाक्यों में सहज बांकपन रहता है। उपमान ढूंढने में उन्हें श्रम नहीं करना पड़ता। व्यंग्यपूर्ण गद्य में उनके उपमान, विरोधी पक्ष को भी परम हास्यास्पद बना देते हैं।" इस शैली का उपयोग भी उनके दिमाग में रहता है। गुलाम भारत में उनकी भूमिका की निशानदेही करते हुए रामविलास जी लिखते हैं–"अपने व्यंग्य शरों से उन्होंने प्रतापी ब्रिटिश राज्य का आतंक छिन्न–भिन्न कर दिया। साम्राज्यवादियों के तर्कजाल की तमाम असंगतियां उन्होंने जनता के सामने प्रकट कर दीं। अपनी निर्भीकता से उन्होंने दूसरों में यह मनोबल उत्पन्न किया कि वे भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बोलें।" इस दृष्टि से प्रतापनारायण मिश्र के निबंध भी तत्कालीन गद्य साहित्य के श्रेष्ठ उदाहरण कहे जा सकते हैं।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का उदय भी ऐसे युग और परिवेश में हुआ जब देश को उनकी परम और उत्कट आवश्यकता थी। राजा राम मोहन राय से आरंभ हुए भारतीय नवजागरण का उन्नयन दिनकर जैसे विलक्षण शलाका–पुरुष द्वारा हुआ। दिनकर का योगदान न केवल पराधीन भारत के प्राणों में पौरुष फूंकने वाले कवि के रूप में है, बल्कि एक गंभीर गद्य–लेखक और वैश्विक मानवता के महान चिंतक के रूप में भी रहा है। हिंदी के 'उर्वशी', कुरुक्षेत्र', और 'रश्मिरथी' समेत 33 काव्य कृतियों के रचयिता और 'राष्ट्रकवि' के विशेषण से विभूषित डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' एक उत्कृष्ट गद्यकार भी थे। उनकी पुस्तकों की कुल संख्या 60 बताई जाती है, जिनमें सत्ताइस गद्य ग्रंथ हैं। इनमें आधी पुस्तकों में निबंध या निबंध के ढंग की चीजें संकलित हैं। दिकनर जी के लगभग एक सौ पच्चीस निबंध संकलित हैं। दिनकर जी सन् 1940 के आसपास गद्य लेखन की ओर गंभीरता से प्रवृत्त हुए। उनका पहला संकलन 'मिट्टी की ओर' 1946 में प्रकाशित हुआ।

गद्य में जहां 'संस्कृति के चार अध्याय' उनकी शीर्षस्थ कृति है, वहीं काव्य में 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' अपने युग की कविता के प्रतिमान हैं। भारतीय नवजागरण व भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से दिनकर का सृजन प्रभावित होता है एवं उसके एक अंग के रूप में उन्हें प्रभावित भी करता है। विज्ञान के अंधाधुंध विकास और उपनिवेशवाद–साम्राज्यवाद के चरम दुष्परिणाम, द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में मानवता के सम्मुख आई चुनौतियों से

जूझने का साहस भी दिनकर के सृजन में मौजूद है। शौर्य, सौंदर्य, वाग्मिता, शब्द–विवेक दिनकर के कृतित्व की मूल पहचान है। चिरंतन भारतीय मनीषा और बहुलता– उदारतावादी, लोकतांत्रिक सोच, सेक्युलर भावना और सामाजिक न्याय की पुरजोर आवाज उठाता उनका कृतित्व भारतीय सृजन–कोश की अक्षय निधि है।

ऐतिहासिक परिदृश्य में नवजागरण कई स्तरों पर हुआ। उत्तर–मध्यकाल के रीतिवादी दौर में पंडितराज जगन्नाथ ने अपनी रचना के साथ–साथ अपने जीवन संघर्ष से काशी के कर्मकांड विरोध का अध्याय लिखा किंतु यह संभवतः समूचे इतिहास का यथास्थितिवाद को मजबूती देने वाला दौर था। यही कारण था कि भारतेंदु ने अपना सबसे पहला और जरूरी कार्य, रीतिवाद विरोध के रूप में निश्चित किया था। भारतेंदु हिंदी नवजागरण की बहुत मजबूत कड़ी थे। 'भारत दुर्दशा' का जैसा सजीव चित्रण उन्होंने किया वह अपूर्व एवं अद्वितीय है। भारतेंदु मंडल की छटा देखिए– बालकृष्ण भट्ट, प्रेमधन, राधाचरण गोस्वमी, प्रताप नारायण मिश्र– सभी गहरी रचनात्मक मैत्री में अभिन्न। साहित्य उनके लिए यश साधना या आत्म प्रकाशन भर नहीं था बल्कि समाज को भीतर से बदलने वाला हथियार था। 'कवि वचन सुधा', 'बाल बोधिनी', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका', 'काशी पत्रिका' जैसी पत्र–पत्रिकाएं साहित्यिक–सामाजिक मुद्दे पर सक्रिय और गंभीर थीं। भारतेंदु मंडल के रूढ़िवाद विरोध का आलम यह कि 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में एक चरित्र अभिनीत करते हुए बालकृष्ण भट्ट ने पिता का श्राद्ध कर दिया था, यह घटना कल्पनातीत है कि उन्हें कितना अस्वीकार, कितनी निंदा झेलनी पड़ी होगी।

उस युग के लेखकों में समाज की पुनर्रचना के लिए रूढ़िभंजन के ऐसे साहस की कमी नहीं थी। साम्राज्यवाद विरोध के साथ भारत की स्वाधीनता की बड़ी स्पष्ट आकांक्षा भारतेंदु में व्यक्त हुई है कि– 'स्वतत्व निज भारत गहें'। एक अलख जगाई जा रही थी जिसमें निज भाषा उन्नति सहित आर्थिक–सामाजिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के साथ कितनी संस्थाएं, अखबार, पत्रिकाएं, रंगमंच, लोकविधाएं आदि साम्राज्यवाद के विरोध के स्वर को दूर तक ले जा रहे थे। यह विरासत अपने पूरे अग्रगामी सार के साथ प्रेमचंद, प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, शिव प्रसाद मिश्र और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसी विभूतियों में फलीभूत हुई है। इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गद्य साहित्य पर्याप्त मात्रा में पुष्पित और पल्लवित हुआ।

4.11 देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य

सन् 1947 का सूर्योदय भारत के लिए आजादी लेकर आया, किंतु साथ ही भारत विभाजन की विभीषिका को भी राष्ट्र को झेलना पड़ा। देश दो हिस्सों, भारत और पाकिस्तान में बंट गया। फलस्वरूप अनेक भीषण दंगे हुए। 1948 में भारत पाक युद्ध, 1965 का द्वितीय भारत पाक युद्ध एवं 1971 का भारत–पाक युद्ध इसी विभाजन के परिणाम रहे।

स्वाधीनता आंदोलन एवं देश विभाजन की त्रासदी से तत्कालीन गद्य साहित्य अछूता न रहा और साहित्य ने समाज को निरंतर दिशा देने का कार्य भी किया। स्वाधीनता आंदोलन के शुरूआती दौर में हिंदी साहित्य में 'भारतेंदु युग' रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के कुशल नेतृत्व में भारतेंदु मंडल के लेखकों ने राष्ट्रभक्ति, समाजसुधार, नवजागरण का संदेश

'अपनी प्रगति जांचिए'

31. आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के निर्माण में किसका योगदान अविस्मरणीय है?
32. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किस पत्रिका के माध्यम से अच्छे साहित्यकार गढ़े?
33. 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन किसने प्रारंभ किया?
34. 'बालमुकुंद गुप्त शब्दों के अनुपम पारखी थे' किसका कथन है?
35. 'संस्कृति के चार अध्याय' के रचनाकार का नाम बताइए।
36. भारतेंदु मंडल के लेखकों की दृष्टि में साहित्य सृजन क्या था?

टिप्पणी

दिया। 'भारत दुर्दशा' कृति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'द्विवेदी युग' को दिशा दी तथा भाषा के परिष्कार का कार्य किया। बालमुकुंद गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी ने अनेक निबंधों, उपन्यासों व कहानियों का लेखन किया। तत्पश्चात जयशंकर प्रसाद व प्रेमचंद का साहित्य में अवतरण हुआ। जयशंकर प्रसाद के नाटकों–चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, ध्रुवस्वामिनी में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय मिलता है। प्रसाद जी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने नाटकों को माध्यम से राष्ट्रजागरण एवं भारतीय संस्कृति के गौरव को स्थापित करने का प्रयास किया। साहित्य एवं समाज दोनों ही प्रसाद के आभारी रहेंगे। प्रेमचंद जिन्हें 'कथा सम्राट' एवं 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि दी जाती है, स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। प्रेमचंद की कहानियां तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का सही प्रतिबिंब हैं। उनके उपन्यास गोदान, गबन, कर्मभूमि, रंगभूमि में शोषक–शोषित संबंध, राष्ट्रीय आंदोलन व क्रांति की चेतना दिखाई देती है। इसी प्रकार उनकी कहानियां मंत्र, कफन, पूस की रात, अलग्योझा, दो बैलों की जोड़ी, आत्माराम, बड़े घर की बेटी, ईदगाह भी तत्कालीन समाज का सच्चा चित्र हैं। इसी कड़ी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि आलोचकों ने आलोचना के क्षेत्र में निरंतर कार्य किया। छायावादी लेखकों ने तत्कालीन मनुष्य की पीड़ा और निराशा का अंकन किया। इस काल को सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रयास कह सकते हैं। तत्पश्चात प्रगतिवादी काल में साहित्यिक आंदोलन हुआ जिसमें मानव को उसकी यथार्थ दशा से अवगत कराने के अनन्तर प्रगति अथवा उत्कर्ष की प्रेरणा दी गई। प्रगतिवादी साहित्यिक आंदोलन का उद्देश्य साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना करना था। जीवन और समाज की वास्तविकता को साहित्य में यथावत चित्रित कर नवीन समाज, नये मानव और नत्य साहित्य की सर्जना करना ही इसका अभीष्ट था। सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष, यथार्थवाद पर बल, विश्व बंधुत्व का भाव, साम्यवादी व्यवस्था का यशोगान, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद तथा सामंतवाद का विरोध तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति इस काल की प्रधान विशेषताएं हैं।

स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी साहित्य में वस्तुगत वैविध्य आया। शिल्प की दृष्टि से अनेक नये प्रयोग हुए। स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में पौराणिक ऐतिहासिक, समस्या नाटक, एकांकी लिखे गए। हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'शपथ', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'दशाश्वमेघ', उदयशंकर भट्ट का 'शक विजय', गोविंद वल्लभ पंत कृत 'ययाति', विष्णु प्रभाकर कृत 'दृष्टि की खोज', लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'मादा कैक्टस', मोहन राकेश कृत 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे–अधूरे, 'आषाढ़ का एक दिन' प्रमुख हैं।

विभाजन के बाद नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे', शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियां गूंजती हैं', मन्नू भंडारी कृत 'बिना दीवारों का घर', भीष्म साहनी का 'तमस' तथा 'हानूश', सुरेंद्र वर्मा का 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक', श्रीमती कुसुम कुमार का 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

स्वतंत्रता के बाद के एकांकीकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, भगवती चरण वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी प्रसिद्ध हैं। निबंध लेखकों में डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. संपूर्णानंद, इलाचंद जोशी अग्रगण्य हैं। ललित निबंध भी लिखे गए। उपन्यास लेखन में प्रेमचंद के अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा,

टिप्पणी

जैनेंद्र कुमार, यशपाल, अमृतलाल नागर का नाम प्रमुख हैं। 'बूंद और समुद्र', 'झूठा–सच', 'शेखर एक जीवनी', 'मैला आंचल', 'बलचनमा' आदि लोकप्रिय उपन्यास रचे गए।

स्वतंत्रता व विभाजन के बाद कहानी के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। नयी कहानी, अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समानांतर कहानी आदि कई प्रकार के नाम प्रचलित हुए। आलोचना के भी कई रूप दिखाई देते हैं। प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, अंतश्चेतनावादी, सैद्धांतिक आलोचना प्रसिद्ध हैं। डॉ. नगेंद्र, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह प्रसिद्ध आलोचक हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य की अन्य गद्य विधाओं, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, पत्र–साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। उक्त विधाओं के विकास के कारण ही आधुनिक काल को 'गद्य–काल' नाम दिया गया।

4.12 स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य

प्रत्येक युग में समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं। स्वतंत्रता के परवर्ती युग में परंपरागत सामाजिक मान्यताएं टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा। परंपरागत मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी के मन में वितृष्णा पैदा हुई। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति एवं समाज के प्रति भी आस्था बदली। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष होने लगा। संयुक्त परिवार प्रणाली टूटने लगी। औद्योगीकरण के कारण नगरीय सभ्यता का विकास हुआ। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्य बदल गए।

पराधीन भारत के साहित्यकारों के सम्मुख 'भारत की स्वाधीनता' का ठोस लक्ष्य था लेकिन स्वाधीन भारत के साहित्यकार के सामने एक नहीं कई जटिल चुनौतियां थीं। प्रसिद्ध साहित्यकार यशपाल जैन ने इस संबंध में कहा था कि "विदेशी दासता तो समाप्त हो चुकी है लेकिन व्यवस्थाओं की दासता से भारतवासी मुक्त नहीं हो पाए हैं। जब तक सर्वसाधाराण का शोषण बना रहता है तब तक जनगण की स्वतंत्रता मिथ्या है। यहां मात्र अधिकार का हस्तांतरण हुआ है। 'ट्रांसफर ऑफ पावर' और जनगण की स्वतंत्रता में अंतर है।" जनगण की स्वतंत्रता में साहित्यकार के सहायक होने की बात करते हुए यशपाल जी ने कहा कि "समाज के दुःख को साहित्यकार बारीकी से समझें। लिखें, मानवीय दृष्टि से उन्हें समझाकर वे समस्याओं को सुलझाने का मार्ग बनावें, ...जनता का सबसे बड़ा शत्रु अंधविश्वास है। इसे चकनाचूर करने के लिए साहित्यकार अपनी लेखनी का सदुपयोग करें।"

स्वाधीन भारत के गद्य लेखकों में यशपाल जी की चिंता मुखर रूप में दिखाई देती है। स्वयं यशपाल जैन ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में मजदूरों की समस्याओं को उठाया है। उनके 'झूठा सच' के जयदेवपुरी और 'मनुष्य के रूप' के भूषण को आलोचक यशपाल जी की प्रतिमूर्ति के रूप में देखते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक, सामाजिक जटिलताओं के कारण सामाजिक जीवन की परिकल्पना पूर्णतः परिवर्तित हो चुकी थी। मानव मूल्यों में ह्रास हुआ। 'अपने–अपने अजनबी' (अज्ञेय), 'सूरज का सातवां छोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'शेखर एक जीवनी' (अज्ञेय), 'पथ की खोज' (देवराज), 'आखिरी दांव' (भगवती चरण वर्मा) आदि उपन्यासों में अकेलेपन, कुंठा, संत्रास और मानसिक यातानाओं का चित्रण मिलता है। 'धर्मपुत्र' (चतुरसेन शास्त्री)

सांप्रदायिक दंगों का चित्र प्रस्तुत करता है। 'मनुष्य के रूप' (यशपाल) में जाति वर्ग भेद का अंकन है। 'गिरती दीवारें (उपेंद्रनाथ अश्क), 'हजूर' (रांगेय राघव), 'बीज' (अमृतराय), 'उखड़े हुए लोग' (राजेंद्र यादव) युवा पीढ़ी के संघर्ष का अंकन करते हैं।

इसी प्रकार नाटकों में भी व्यक्ति, संघर्ष व पारिवारिक विघटन के चित्र हैं। टूटते परिवेश (विष्णु प्रभाकर), छठा बेटा (अश्क), कमला (उदयशंकर भट्ट), आधी रात (लक्ष्मीनारायण मिश्र), मिस्टर अभिमन्यु (लक्ष्मीनारायण लाल) आदि नाटक पारिवारिक संबंधों में विघटन, सामाजिक समस्याओं के चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिंदू–मुस्लिम वैमनस्य 'रामलीला विजय' (बलदेव प्रसाद) का प्रमुख कथानक है। 'त्रिशंकु' (ब्रजमोहन सहाय) जैसे नाटक राजनीति की आलोचना करते हैं। 'अंजो दीदी' (अश्क), 'आधे–अधूरे' (मोहन रोकश) आदि नाटक, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं तो जटिल मानवीय रिश्तों का भी जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं।

स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ को अपनी व्यंग्य रचनाओं में उभारने के लिए हरिशंकर परसाई का स्थान शीर्ष पर है। प्रेमचंद को जिस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौर का प्रतिनिधि लेखक माना जाता है उसी प्रकार हरिशंकर परसाई स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रतिनिधि लेखक हैं। मुक्तिबोध की तरह फैंटेसी उनका सबसे प्रिय माध्यम है। वे बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के ठीक वैसे ही एक मात्र प्रतिनिधि कथाकार और गद्यलेखक हैं, जैसे कि मुक्तिबोध एकमात्र प्रतिनिधि कवि। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की देश और दुनिया की सभी घटनाओं, आंदोलनों, मनोवृत्तियों और महत्वपूर्ण चरित्रों के कलात्मक व्यंग्य–चित्र उनकी रचनाओं में मिल जाएंगे। चंद शाब्दिक रेखाओं से वे एक भरा–पूरा चित्र मूर्त कर देते हैं। उनकी भाषा की तरलता और उसका क्षिप्र प्रवाह इस चित्र को गतिशील बनाकर और भी जीवंत कर देते हैं।

निराला के शब्दों में गद्य अगर 'जीवन संग्राम की भाषा है, तो व्यंग्य इस संग्राम का सबसे शक्तिशाली शस्त्र।' हरिशंकर परसाई (1922–1995) के अचूक हाथों इस शस्त्र के इतने सटीक और शक्तिशाली प्रहार हुए हैं कि देश, दुनिया और समाज की विसंगति और विरूपता का कोई भी कोना और कोई भी क्षेत्र उसकी सीमा में आने से नहीं बचा है। उनकी रचनाएं शब्दों की दुनिया से उठाकर सीधे कर्म के क्षेत्र में ला खड़ा करने की गजब की क्षमता रखती हैं। यह असाधारण क्षमता और अभूतपूर्व शक्ति उन्हें, उनकी विशिष्ट भाषा–शैली, मौलिक कलात्मक पद्धति और किसी भी परिघटना या चरित्र के द्वंद्वात्मक विश्लेषण में अपूर्व सिद्धि से मिली है।

हरिशंकर परसाई वर्तमानता के रचनाकार हैं। उनका साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारत का है। यह साहित्य इस काल के साहित्य की पहचान है। परसाई ने वर्तमान समस्याओं को ही अपने लेखन का आधार बनाया है। आधुनिक काल के किसी अन्य रचनाकार ने वर्तमान समस्याओं तक ही अपने को इतना व्यक्त नहीं रखा। वर्तमान समस्याओं को लिखते समय रचनाकार उन्हीं समस्याओं पर कलम चलाते हैं जिस पर लोगों का ध्यान केंद्रित हो चुका है। ये सीमित वर्तमान के रचनाकार हैं। वर्तमान के मामूलीपन या 'रोजमर्रा' को रचना में इतना प्रतिष्ठित पहले किसी और ने नहीं किया था। यह प्रगतिशीलता का विकास है। जीवन की सामान्य बातों को रचना में स्थान देकर भारतेंदु ने हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तन किया था। वह आधुनिकता प्रगतिशीलता भी थी। बालमुकुंद गुप्त द्वारा लिखित

'शिवशंभु के चिट्ठे' में हम इसी मामूलीपन की प्रतिष्ठा पाते हैं। किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत की विशिष्ट स्थितियों में इस रोजमर्रा के मामूलीपन के महत्व में गुणात्मक परिवर्तन हो गया है। हिंदी में यह मामूलीपन कविता में नागार्जुन और गद्य में हरिशंकर परसाई के लेखन में सबसे ज्यादा दिखलाई पड़ा है। परसाई के पूर्वज इस दृष्टि से केवल बालमुकुंद गुप्त हैं। उनका गद्य विधा की दृष्टि से अत्यंत प्रयोगपूर्ण और नवीन है। वह बालमुकुंद गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' से भी भिन्न है, क्योंकि परसाई की रचना में सतर्क बोध आद्यांत साथ रहता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति जितनी जटिल, छद्मपूर्ण है, परसाई की दृष्टि भी उतनी ही भेदक है। यहां ईमानदारी तो है किंतु वह मध्यकालीन वीरोचित तेवर से रहित है। परसाई की ईमानदारी आदर्श से प्रेरित है किंतु आदर्शवादी नहीं। परसाई की रचना को आजादी के बाद की स्थितियों से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। आजादी के बाद की स्थितियां जैसी घटित हुईं वैसी न होतीं तो परसाई का लेखन भी वैसा न होता जैसा कि है। यह बात कमोवेश तो स्वातंत्र्योत्तर भारत के सभी प्रसिद्ध रचनाकारों के बारे में कही जा सकती है, किंतु सबसे ज्यादा यह लागू होती है परसाई के बारे में। साहित्येतर स्थितियां रचनात्मक अनिवार्यता निर्मित करती हैं और महान साहित्य अनिवार्य होता है। परसाई के लेखन में रोजमर्रा का मामूलीपन अनिवार्य भी बन गया है। उनके प्रचुर और पर्याप्त लेखन का आधार अतिसामान्य, परिचित, वर्तमानकालिक, प्रत्यक्ष जीवन जगत है लेकिन उसका कोई अंश फालतू या महत्वहीन नहीं। भाव–परिधि का यह विस्तार अभिभूतकारी और अश्चर्यजनक है। पढ़ते समय वे जितना सहज लगते हैं विचार करने पर उतने ही जटिल। व्यंग्य निबंधों का यह महाकाव्यात्मक प्रभाव हिंदी की नयी उपलब्धि है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ बनता बिगड़ता हुआ सक्रिय यथार्थ परसाई के निबंधों में विचित्र है। सतर्क वैज्ञानिक बोध परसाई के रचनाकर्म का प्रधान साधक है। वे इस बोध से संस्थानों, रूढ़ियों, आचरण आदि के टुकड़े कर देते हैं और उनका व्यंग्य वास्तविकता प्रकट कर देता है। अमानवीयता की अनुभूति करुणा जगाती है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्वाधीनता आंदोलन के सिद्धांत गायब नहीं हो गए हैं परंतु उनका इस्तेमाल किया जाता है मुखौटों के रूप में। कथनी और करनी में भिन्नता नहीं, विपरीतता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में कथनी–करनी की इस विपरीतता और नाटकीयता को परसाई जी ने अपने व्यंग्य निबंधों में जीवंत किया है। उनके व्यंग्य अधिक अर्थ–भूमि पर स्थित हैं, वे अधिक भाव–भूमि घेरते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो परसाई के व्यंग्य से मनोविकारों का 'व्यायाम' होता है।

स्वाधीनता के पूर्व भारतीयों ने जीवन के घुटन भरे दिन देखे। हिंदी के सफलतम स्वाधीनोत्तर उपन्यासों का विषय भी यही रहा है। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', यशपाल का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'झूठा सच', भगवतीचरण वर्मा का 'भूले–बिसरे चित्र', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', भीष्म साहनी का 'तमस', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद' आदि ऐसे उल्लेखनीय उपन्यास हैं, जिनमें इन स्थितियों के विविध पहलू गहराई से व्यक्त हुए हैं। कहानियों में मोहन राकेश की 'एक ठहरा हुआ चाकू' 'मलवे का मालिक' तथा 'परमात्मा का कुत्ता' उन भयावह दिनों की मार्मिक स्मृतियों को साकार करने वाली कहानियां हैं। हिंदी कहानियों का संसार विशाल है; परंतु जिन कहानियों ने भारतीय जीवन के बहुआयामी परिवर्तन, मूल्य चेतना, स्त्री के घर से बाहर आने

टिप्पणी

की और पुरुषों के साथ ही, समस्त क्षेत्रों में भाग लेने एवं उसके अनेक पहलुओं, घर और दफ्तर, टूटते हुए परिवार, अकेलेपन और संत्रास की अनुभूतियों को अपने में समेटा है तथा उस तीखे एहसास को वाणी दी उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

उपेंद्रनाथ अश्क–'कांकड़ा का तेली', 'डाची', यशपाल–'आदमी का बच्चा', भीष्म साहनी–'चीफ की दावत', अमरकांत–'जिंदगी और जोंक', 'दोपहर का भोजन', उषा प्रियंवदा–'वापसी', फणीश्वरनाथ रेणु–'तीसरी कसम', 'लालपान की बेगम', 'अगिन खोर', कमलेश्वर–'दिल्ली में एक मौत', राजेंद्र यावद–'लक्ष्मी जहां कैद है', शिवप्रसाद सिंह–'कर्मनाशा की हार', शेखर जोशी–'कोसी का घटवार', मार्कण्डेय–'हंसा जाई अकेला', मन्नू भंडारी–'यही सच है', धर्मवीर भारती–'गुल की बन्नो', कृष्णा सोबती–'यारों के यार', विष्णु प्रभाकर–'धरती अब भी घूम रही है', मेहरून्निसा परवेज–'उसका घर', निर्मल वर्मा–'परिंदे', प्रभु जोशी–'पितृऋण', राजकमल चौधरी–'जलता हुआ मकान', 'एक अनार, एक बीमार', दूधनाथसिंह–'रीछ' आदि कहानियों में स्वाधीनोत्तर भारत के जीवन में तेजी से आने वाले अंतर्विरोधों को वाणी मिली है। इस दिशा में क्षमतावान नये लेखकों की भी कमी नहीं है। महिला लेखिकाओं में ममता कालिया, जया यादवानी, सूर्यबाला, चंद्रकांता, मणिका मोहिनी, मेहरून्निसा परवेज, शिवानी आदि उल्लेखनीय हैं।

आज की कहानी उस सड़ी हुई मानसिकता या परंपरा के प्रति बगावत है जो व्यक्ति के विवेक की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। अज्ञेय ने इस विषय पर 'रोज' जैसी प्रभावशाली कहानी लिखी थी–आज उसका विशद विस्तार हुआ है। यानी की शुचिता में बंधी हुई नारी के मूल्यांकन के प्रतिमान बदले हैं। योग्यता एवं दक्षता उसके मूल्यांकन के ठीक वैसे ही प्रतिमान हैं जैसे पुरुषों के। शराबी और परगामी पति की आंसू बहा–बहाकर प्रतीक्षा करने वाली, मार खाने वाली, विवाह के बाद ससुराल की देहरी के भीतर पांव रखने वाली और लाश के रूप में अर्थी पर निकलने वाली औरत, अपनी सत्ता में निराकारता को सार्थक मानने वाली औरत, आज नयी भूमिका में है। लज्जा उसका आभूषण नहीं, मातृत्व उसकी चरम सफलता नहीं। उसके चारों ओर की खिड़कियां खुली हैं, जो बंद हैं उसके विरुद्ध उसका संघर्ष जारी है।

हिंदी उपन्यासों में भी स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ की जीवंत प्रस्तुति हई है। भारतीय जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि पक्षों में व्याप्त होते तनावों एवं अंतर्संघर्षों को उसकी व्यापक परिधि में प्रस्तुत किया गया है। सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परिवेश में जीवन के बदलते मानदंडों और परिवर्तन के रेखांकन को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों में राहुल सांकृत्यायन के प्राक् ऐतिहासिक विषयों पर लिखे उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा', रांगेयराघव का 'मुर्दों का टीला', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'टेराकोटा', यशपाल का 'दिव्या', वृंदावन लाल वर्मा का 'झांसी की रानी' तथा 'मृगनयनी', राजीव सक्सेना का 'पणिपुत्री सोमा', चतुरसेन शास्त्री का 'वयम रक्षामः', 'वैशाली की नगरबधू', जानकीवल्लभ शास्त्री का 'कालिदास', वीरेंद्र कुमार जैन का 'अनुत्तर योगी', नरेंद्र कोहली के 'रामायण' और 'महाभारत' से संबद्ध उपन्यास तथा अमृतलाल नागर का 'खंजन नयन', 'मानस का हंस' आदि उल्लेखनीय हैं। रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'पथ का पाप' में स्वाधीन भारत के ग्रामीण जीवन में आये बदलावों एवं धार्मिक रूढ़ियों का मार्मिक चित्रण किया है।

टिप्पणी

भारत जैसा विशाल देश एक साथ कई युगों, संस्कृतियों, मान्यताओं और विचारधाराओं में जीवन व्यतीत करता है। इन उपन्यासों में एक ओर ग्रामीण जीवन का पिछड़ापन व्यक्त हो रहा है तो दूसरी ओर उत्तर आधुनिकता की बात भी की जा रही है। 'बूंद और समुद्र' की चित्रा राजदान तथा वनकन्या और ताई उसके अलग–अलग छोर हैं। इसी प्रकार यशपाल के 'झूठा सच' की तारा जो अनेक बलात्कारों के बावजूद विकट–से–विकट परिस्थितियों से समझौता नहीं करती हुई अपने करियर की ऊंचाइयों पर पहुंचती है, वहीं बंती परंपरा की देहरी पर अपना सिर पटकती–पटकती जान दे दती है। मनोहर श्याम जोशी के उत्तर आधुनिकता की सड़क से गुजरती नायिका एक ही साथ माता आनंदमयी, छिन्नमस्ता और पुंश्चली सब कुछ है, वहां नैतिकता–अनैतिकता की समस्त अवधारणाएं गड्ड–मड्ड हो गयी हैं। नागार्जुन का 'बलचनामा', 'दुखमोचन', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', रामदास मिश्र का 'पानी के प्राचीर और दिशा' का यथार्थ देखने योग्य है। आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' में भारतीय ग्रामीण जीवन के अनेकानेक रूप अभिव्यक्त हैं। कृष्णासोबती के 'जिंदगीनामा' में स्वाधीनता पूर्व का पंजाब मुखरित हो उठा है। धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' में मध्यवर्ग की व्यथा और जगदंबा प्रसाद दीक्षित के 'मुर्दाघर' का विडंबना पूर्ण संघर्ष अलग–अलग स्तरों पर घटित होता है। निर्मल वर्मा का सारा कृतित्व पाश्चात्य स्मृतिगंध से परिव्याप्त है। अकेलापन उसकी नायिका है और स्मृतियां उसका जीवन। उपेंद्रनाथ अश्क का 'गिरती दीवारें', इलाचंद्र जोशी का 'जहाज का पंछी', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', उदय शंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' तथा 'महाभोज', बलदेव वैद का 'उसका बचपन', उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका', राही मासू रजा का 'आधा गांव', मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', देवेश ठाकुर का 'भ्रम भंग', बदी उज्जमा का 'एक चूहे की मौत', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश', सुरेंद्र वर्मा का 'उसे चांद चाहिए', विनोद कुमार का 'नौकर की कमीज', वीरेंद्र जैन का 'डूब', प्रभाकर माचवे का 'सांचा', गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया', ममता कालिया का 'बेघर' आदि उपन्यास भारतीय जीवन के अलग–अलग आयाम प्रस्तुत करते हैं।

धर्मवीर भारती की कृति 'अंधायुग' में उच्च कोटि की कविता तथा नाटक दोनों का समान रूप से समावेश हुआ है। इसके कथ्य में अपने युग की गहरी पकड़ है। युद्धोपरांत युग, जो मूल्य विभ्रांत है, तथा जिसका नेतृत्व एक अंधे के अधीन है–इस विडंबना और नियति का पूरे नाटक में गहरा एहसास व्यंजित हुआ। दुष्यंत कुमार के 'एक कंठ विषपायी' त्याग की निरर्थकता के तीखे बोध से निष्पन्न है। अगले नाटककारों में मोहन राकेश प्रमुख हैं। उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में अपनी जमीन से कटे हुए आदमी के तीखे एहसास को कालिदास के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इसमें स्वयं राकेश के विस्थापन की व्यथा का गहरा एहसास है। 'आधे–अधूरे' उनके अन्य नाटकों में एक नयी तलाश का नाटक है, जिसमें जो प्राप्त है, वह स्त्री की अतृप्ति का कारण है और नया उसे पुनः पुनः अधूरेपन के बोध से भर देता है। सुरेंद्र वर्मा का नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' इस खोज और अतृप्ति का दूसरा पहलू है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', ललित सहगल का 'हत्या एक आकार की', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', भीष्म साहनी का 'आलमगीर', नंदकिशोर आचार्य का 'जिल्ले सुब्हानी' आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं जिनमें स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ का सजीव चित्रण किया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

37. 'मादा कैक्टस' के रचनाकार का नाम बताइए।
38. 'बिना दीवारों का घर' की रचना किसने की?
39. 'व्यवस्थाओं की दासता से भारतवासी मुक्त नहीं हो पाए हैं'– किसका कथन है?
40. व्यंग्यों के माध्यम से स्वाधीन भारत के यथार्थ को किस रचनाकार ने उभारा?
41. हरिशंकर परसाई के रचनाकार्य का प्रधान साधक क्या है?
42. 'कितने पाकिस्तान' के रचनाकार का नाम बताइए।
43. रांगेय रोघव ने अपने किस उपन्यास में ग्रामीण भारत में आये बदलावों एवं धार्मिक रूढ़ियों का चित्रण किया है?
44. 'अंधायुग' के रचनाकार का नाम बताइए।

4.13 दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में 'दलित' से अभिप्राय उन लोगों से है जिन्हें जन्म, जाति या वर्णगत भेदभाव के कारण शताब्दियों तक सामाजिक न्याय और मानवाधिकार से वंचित रहना पड़ा है। मुख्य रूप से वर्ण व्यवस्था में शूद्र समझी जाने वाली जातियां, छुआछूत की प्रथा के शिकार अछूत, हरिजन और गिरिजन दलित वर्ग के अंतर्गत आते हैं। सामाजिक विडंबना यह है कि मध्यकाल में स्त्री को भी इसी प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ा; इसलिए इस वर्ग में संपूर्ण समाज की आधी आबादी समझी जानेवाली स्त्री जाति भी शामिल है। हम दलित विमर्श की बात करते हैं तो एक ओर तो हम इसका संबंध भूमंडलीकरण के साथ उभरे उत्तर आधुनिक विमर्श से जोड़ते हैं तथा दूसरी ओर उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण के उस अधूरे रह गए पक्ष के साथ जोड़ते हैं जिसका नेतृत्व राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, बालगंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसी महान विभूतियों ने किया।

भारत के संविधान में अनुच्छेद 15 (2बी) के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया कि जाति के आधार पर भारत के किसी भी नागरिक के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसके अलावा लंबे समय तक सामाजिक शोषण और दमन का शिकार रही हरिजन और गिरिजन जातियों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में अलग से सूचीबद्ध किया गया ताकि इनके लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। इन प्रयासों के सुपरिणाम आने लगे हैं जिनमें से एक है भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य की नयी प्रवृत्ति का विकास।

भारत ही नहीं पूरे दक्षिण एशिया में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में चली मानवाधिकारों की हवा ने दलित चेतना को प्रवाहित करने में बड़ा योगदान दिया है। इस क्षेत्र के दलित साहित्यकार जहां एक ओर परंपरागत काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को अपर्याप्त मानते हुए साहित्य की नयी कसौटी की खोज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर वे अफ्रीका और अमेरिका की अश्वेत जातियों के साहित्य से भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। काव्यभाषा में भी इससे सुनिश्चित परिवर्तन आया है, क्योंकि दलित साहित्य मनोरंजन और आनंद के लिए नहीं, समाज को झकझोरने और जगाने के लिए लिखा जा रहा है। इसीलिए कभी–कभी उसका तेवर प्रगतिशील और जनपक्षीय साहित्य के अन्य आंदोलनों के समान प्रतीत होता है।

दलित साहित्य संबंधी सर्वाधिक विवाद इस बात को लेकर रहा कि दलित कौन है और दलित साहित्य का लेखक कौन हो सकता है? वैज्ञानिक अर्थों में सामाजिक दमन व उत्पीड़न का शिकार हर व्यक्ति दलित है। भारतीय सामाजिक संदर्भ में जाति और छुआछूत के आधार पर निम्न जाति समझा जाने वाला व्यक्ति दलित है। कुछ दलित लेखक सिर्फ दलित जाति में पैदा हुए लेखक को ही दलित लेखक मानते हैं जबकि कई लेखकों का यह मानना है कि दलित जीवन को संवेदना व प्रतिबद्धता से समझकर प्रेमचंद जैसा कोई भी मानवतावादी लेखक दलित जीवन पर प्रामाणिकता से लिख सकता है।

प्रेमचंद के साहित्य में हमें दलित चेतना के स्वर दिखाई देते हैं। यह विषय विवाद का हो सकता है कि प्रेमचंद के साहित्य को दलित साहित्य माना जाए या नहीं। कुछ साल

पहले कुछ दलित लेखकों ने प्रेमचंद की 125वीं जन्मतिथि के अवसर पर दिल्ली में 'रंगभूमि' की प्रतियां जला दीं और कुछ वामपंथी लेखकों ने भी इस घटना का समर्थन किया। हम इन सब विवादों से परे हटकर साहित्य में प्रस्तुत दलित चेतना पर विचार करते हैं। इसके लिए किसी लेखक का दलित होना योग्यता नहीं मानी जानी चाहिए।

आज दलित समाज की समस्या केवल अस्पृश्यता नहीं बल्कि उससे कहीं बड़ी चुनौतियां उनके सम्मुख खड़ी हैं। आर्थिक शोषण, व्यभिचार, गरीबी, अपराध, अशिक्षा, विषमता जैसी अनेक समस्याओं से वे जूझ रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद के साहित्य में ये सभी समस्याएं उजागर हुई हैं। सन् 1936 तक के काल–खंड में वे उन सभी समस्याओं को अपने साहित्य में उठाते नजर आते हैं जिनसे आज का दलित समाज जूझ रहा है।

दलित स्त्री चेतना में प्रेमचंद के साहित्य का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। उन्होंने अपनी कहानियों में जो मुद्दे उठाये वे आज भी प्रासंगिक हैं। नारी का जीवन सामाजिक बंधनों एवं पुरुषों के कठोर अनुशासन में गुजरता था। पुरुष आज भी किस प्रकार अपने लम्पट एवं कुटिल व्यवहार से प्रेम का अभिनय कर स्त्रियों को अपने जाल में फांस लेते हैं और विश्वासघात करते हैं इसका बखूबी वर्णन प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'जादू' में दो बहनों के संवाद के माध्यम से किया है। इसमें बड़ी बहन नीला छोटी बहन मीना को उसी लम्पट पुरुष के प्रेमजाल में फंसने से आगाह करती है जिसकी हवस का शिकार वह स्वयं हो चुकी है। 'गोदान' की मालती भी अपने अंतर व बाहर के अंतर्द्वंद्व से जूझती नजर आती है।

प्रेमचंद की कहानियों 'ठाकुर का कुआं', 'मंदिर' और 'सद्गति' में अस्पृश्यता की समस्या को प्रबलता से उठाया गया है। प्रेमचंद ने 'मंदिर' कहानी 1927 में, 'सद्गति' 1937 में तथा 'ठाकुर का कुआं' 1932 में लिखी थी। अपने उपन्यास 'रंगभूमि' और 'गोदान' में उन्होंने सामाजिक–आर्थिक शोषण की पराकाष्ठा का स्पर्श किया है। प्रेमचंद दलितों की शिक्षा के पक्षधर थे। 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी में उन्होंने नथुवा नामक अनाथ भंगी युवक की व्यथा का वर्णन किया है। प्रेमचंद के समय भारतीय समाज में अंग्रेजी सत्ता की गुलामी और पूंजीवादी शोषण दोनों का बाहुल्य था। अपने साहित्य में उन्होंने इन दोनों को वाणी दी। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या को तो उठाया ही, साथ ही दलितों के संगठित होकर संघर्ष करने का व्यापक चित्रण किया है। 'प्रेमाश्रम' में अछूतों से बेगार लिए जाने व किसानों द्वारा भी उनसे बुरा व्यवहार किये जाने का चित्रण किया गया है। 'गबन' के दलित पात्र स्वयं को निम्न जाति का न समझ कर जाति गौरव का परिचय देते हैं।

इधर मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' (1979 में प्रकाशित) में भारतीय समाज के उपेक्षित वर्ग दलितों के उत्पीड़न की व्यथा व्यक्त हुई है कि किस प्रकार राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए शतरंजी चाल चलते हैं और उनका उत्पीड़न करते हैं।

हंस के संपादक राजेंद्र यादव दलित शब्द को काफी व्यापक दायरे में देखते हैं। वे स्त्रियों को भी दलित मानते हैं। पिछड़ी जातियों को भी दलितों में शामिल करते हैं। 'सारा आकाश', 'उखड़े लोग', 'शह और मात' जैसे उपन्यासों के रचियता श्री राजेंद्र यादव ने प्रेमचंद द्वारा 1930 में प्रकाशित पत्रिका 'हंस' का पुनर्प्रकाशन आरंभ करके साहित्यिक मूल्यों को एक नयी दिशा दी। यह अकेली ऐसी पत्रिका है जिसके संपादकीय पर तमाम प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाएं किसी न किसी रूप में बहस करती नजर आती हैं। राजेंद्र यादव ने बड़ी बेबाकी से सामंती मूल्यों पर प्रहार किया और दलित व नारी विमर्श को हिंदी साहित्य जगत

टिप्पणी

में चर्चा का मुख्य विषय बनाने का श्रेय भी उनको है। इस पत्रिका ने दलित और स्त्री विमर्श को एक नयी जमीन दी।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय दलित साहित्य का आरंभ महाराष्ट्र में मराठी भाषा में हुआ। 1960 के आसपास मराठी में 'दलित' शब्द ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई तथा 'अस्मिता' व 'अस्मितादर्श' पत्रिकाएं तथा औरंगाबाद नगर दलित साहित्य की आधारभूमि बना। दलित लेखन की चर्चा मराठी साहित्य तक सीमित न रहकर लगभग पूरी भारतीय सामाजिक– सांस्कृतिक परिवेश तक व्याप्त हो चुकी है।

आधुनिक काल में हिंदी में सितंबर, 1914 को 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'डोम की कविता', 'अछूत की शिकायत' से दलित लेखन की शुरुआत मानी जाती है। हीरा डोम वाराणसी के थे इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती, उनकी यह कविता भोजपुरी उपभाषा में है।

दलित समाज की पीड़ा सर्वप्रथम 15वीं–16वीं शताब्दी में भक्तिकाल के संत कवियों की रचनाओं में ध्वनित हुई थी। कबीर की रचनाएं इसका प्रमाण हैं। हिंदी कथा साहित्य में दलित जीवन को केंद्र में रखकर अनेक कहानियां, उपन्यास तथा इतर विधाओं में भी साहित्य लिखा गया। प्रेमचंद के उपन्यास और कहानिया में 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआं', 'कफन', 'पूस की रात' आदि में दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। पांडेय बेचन शर्मा कृत 'बुधुआ की बेटी', निराला कृत 'कुल्ली भाट', 'चतुरी चमार', अमृतलाल नागर कृत 'नाच्यौ बहुत गोपाल', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', उदयशंकर भट्ट का 'सागर', 'लहरें' और मनुष्य', रेणु का 'मैला आंचल', भैरवप्रसाद गुप्त का 'सती मैया का चौरा', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', भीष्म साहनी कृत 'बसंती', रमणिका गुप्ता का लघु उपन्यास 'सीता और मौसी', मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास, जगदीशचंद्र कृत 'धरती धन न अपना', 'नरकुंड में वास' तथा 'जमीन अपनी तो थी', गिरिराज किशोर कृत 'परिशिष्ट', मधुकर सिंह कृत 'उत्तरगाथा', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', मनमोहन पाठक कृत 'गगन घटा गहरायी', पन्नी सिंह कृत 'पाथरघाटी का शोर', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' आदि उपन्यासों व शिवमूर्ति, संजीव, हबीब कैफी, हृदयेश आदि की कहानियों में दलित जीवन की पीड़ाएं अंकित हुई हैं।

दलित समूह व नारी दोनों उत्पीड़ित हैं, किंतु उत्पीड़न के ढंग व तौर–तरीके भिन्न हो सकते हैं। दलित नारी व उच्चवर्गीय नारी, लिंगभेद के आधार पर समान रूप से उत्पीड़ित हैं किंतु वर्गीय आधार पर दलित नारी, उच्चवर्गीय नारी के हाथों उत्पीड़ित होती है। इसी प्रकार दलित समूह वर्गीय व जातिगत आधार पर कथित उच्च वर्गों से उत्पीड़ित होते हैं, किंतु उनकी अपनी सामाजिक संरचनाएं दलितों द्वारा ही दलितों के उत्पीड़न की स्थितियां भी पैदा करती है।

दलित चेतना की बात आते ही महादेवी वर्मा का लेखन संसार याद आ जाता है। महादेवी के साहित्य में दलित वर्ग का संघर्ष पग–पग पर मुखरित हुआ है। महादेवी के रेखाचित्रों में दलितों के द्वारा दलितों के उत्पीड़न की गाथाएं मिलती हैं। महादेवी के नारी विमर्श को लेकर काफी चर्चाएं हुई हैं, लेकिन उनके दलित वमिर्श पर एकाध टिप्पणी के अतिरिक्त कोई विशेष चर्चा नहीं मिलती। यहां हम उनका विश्लेषण कर रहे हैं–

टिप्पणी

महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' (1941) तथा 'स्मृति की रेखाएं' उस समय की गद्य कृतियां हैं जब दलित जीवन पर चर्चा विमर्श, साहित्य या चेतना के रूप में विशेष उजागर नहीं हुई थी। महादेवी के साहित्य में निम्नवर्ग के दुख–दैन्यपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति उनके रेखाचित्रों में हुई है। उन्होंने इनमें समाज के उन व्यक्तियों को अपनाया है, जिन्हें समाज दीन–दलित मानकर सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखता आया है। वैसे तो उनकी ममता, करुणा और सहानुभूति को प्राप्त करने वाले समाज के सभी दीन–दलित रहे, परंतु समाज द्वारा प्रताड़ित नारी ही इसकी सर्वाधिक अधिकारणी रही है। अतः इस आधार पर महादेवी जी के इन रेखाचित्रों को समाज के दो आधार स्तंभ स्त्री और पुरुष वर्ग में बांट सकते हैं अर्थात एक दलित स्त्री अपने विभिन्न रूपों में विधवा, बाल–विधवा, भंगिन सबिया, कर्मठ पर्वतीय बाला लक्ष्मी, भक्ति, अशिक्षित, अनपढ़ परंतु सेवापरायण नारियां अपनी स्थिति एवं गुणों के साथ मौजूद हैं। दूसरा दलित पुरुष जिनमें रामा (नौकर) सब्जी बेचने वाला अंधा अलोपी, बदलू कुम्हार, चीनी फेरीवाला, ठाकुर आदि ऐसे पात्र हैं जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा हमारे ऊपर इतना प्रभाव डालते हैं कि हम उन्हें भुला नहीं पाते।

हिंदी के प्रतिष्ठित उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने समाज में जाति विभाजन और दलित समस्या को लेकर गंभीर लेखन किया है। अपने उपन्यास 'यथाप्रस्तावित' एवं 'परिशिष्ट' में उन्होंने संस्थाओं में दलित छात्रों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार को केंद्रीय विषय बनाया है। 300 पृष्ठों के इस उपन्यास का प्रकाशन 1984 में हुआ। संपूर्ण उपन्यास में लेखक की संवेदना दलित चरित्रों के साथ रहती है।

दलित चेतना पर कृष्णदत्त पालीवाल की पुस्तक 'उत्तर आधुनिकतावाद और दलित विमर्श' भी एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसमें लेखक एक सर्वथा नवीन समतामूलक, शोषण मुक्त, आत्मसम्मान से परिपूर्ण समाज बनाने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है।

इसके अतिरिक्त हिंदी में 1980 के बाद कई दलित आत्मकथाएं आईं और चर्चित हुईं। (मोहन नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान), दलित साहित्य की वार्षिकी का प्रकाशन आरंभ हुआ (जयप्रकाश कर्दम–1999), दलित कविता सामने आई (ओमप्रकाश वाल्मिकी, श्यौराज सिंह बेचैन, रजतरानी, सुदेश तनवीर), दलित पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ (अपेक्षा, शंबूक, युद्धरत आम आदमी), दलित उपन्यासों की रचना हुई (छप्पर : जयप्रकाश कर्दम, 1994) तथा समीक्षा के क्षेत्र में दलित विमर्श को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। इतना ही नहीं, हिंदी साहित्य के इतिहास का दलित विमर्श की दृष्टि से पुनर्पाठ भी आरंभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप भक्ति साहित्य को नई दृष्टि से व्याख्यायित किया गया। बीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन भी दलित चेतना के संदर्भ में होने लगा है।

4.14 स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध को भारतीय 'नारी–जागरण' एवं उत्तरार्ध को नारी–प्रगति का युग कहा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा, व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं आत्मनिर्भरता से नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चली है। आज की नारी के

'अपनी प्रगति जांचिए'

45. प्रेमचंद ने अपने किस उपन्यास में दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या और उनके संगठित होकर संघर्ष करने का चित्रण किया है?
46. 'महाभोज' के उपन्यासकार का नाम बताइए।
47. 'डोम की कविता' सर्वप्रथम किस पत्रिका में प्रकाशित हुई?
48. 15वीं–16वीं शताब्दी में दलित समाज की पीड़ा किन कवियों की रचनाओं में मुखरित हुई?

सामने अनेक तार्किक, सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समस्याएं मुंह बाएं खड़ी हैं। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर की चाह में 'स्त्री चेतना' अथवा 'स्त्री विमर्श' को स्वर मिला। एक लंबी पुरातन व्यवस्था को तोड़कर, जनसंघर्ष से जुड़कर कदम–कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना नारी अस्मिता की पहचान बन गया है। जनसंचार, पत्रकारिता, शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र, व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

स्त्री चेतना व स्त्री लेखन कई प्रयोगों की गलियों से गुजरता हुआ एक नयी संस्कृति के रास्ते प्रवेश करता है। बौद्धिक और भावनात्मक रूप से जकड़े प्रेम की तलाश करती स्त्री तथा स्वविकास को अधिक महत्व देती हुई विवाह संस्था में विश्वास करती स्त्री के संघर्षों को मुखर करती रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं।

स्त्री साहित्य से संबंधित कहानियों में चंद्रकांता की 'मेरी मां कहा करती थी', ममता कालिया की 'पच्चीस साल की लड़की', दुर्गा सहाय की 'जिरह', क्षमा शर्मा की 'कमीज पहन रहा है' प्रमुख हैं। इन कहानियों में बदलते संबंध, अपसंस्कृति व यौन–संबंधों का वर्णन है। नारी चेतना से संबंधित उपन्यासों में मृदुला गर्ग द्वारा रचित 'चितकोबरा', 'अनित्य' तथा 'कठगुलाब', उषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'पचपन खंभे लाल दीवारें' एवं 'रुकोगी नहीं राधा', चित्रा मुद्गल द्वारा रचित 'आवाँ', नासिरा शर्मा द्वारा प्रणीत 'सात नदियां : एक समंदर', 'जिंदा मुहावरे', 'अक्षयवट', प्रभा खेतान द्वारा रचित 'आओ पेपे घर चलें', 'छिन्मस्ता', 'अपने–अपने चेहरे', 'पीली आंधी', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', मैत्रेयी पुष्पा का 'स्मृति दंश', 'इदन्नमम', 'चाक', 'अल्मा कबूतरी', कृष्णा सोबती का 'दिलो–दानिश', 'समय सरगम' और शिवानी तथा मालती जोशी की रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

महिला सशक्तिकरण की गूंज

सन् 1980 के बाद का समय महिला सशक्तिकरण का भी समय है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कदमताल करते हुए उन्होंने नवीन क्षितिजों को स्पर्श किया। परंपरागत क्षेत्रों के साथ गैर परंपरागत क्षेत्रों, सेना, कृषि, उड्डयन, व्यवसाय आदि में भी उनकी हिस्सेदारी बढ़ी। राजनीति में भी उन्होंने अपने लिए अधिक 'स्थान' की मांग करनी शुरू कर दी। आठवें दशक के अंत में और नवें दशक के शुरुआती दौर में महिला लेखकों की एक बड़ी जमात, तीव्र अनुभूति, नवीन दृष्टि और रचनात्मक सरोकारों के साथ स्त्री मन और स्त्री जीवन का प्रामाणिक स्कैच खींचती है।

अनिता भारती की 'एक थी कोठेवाली' की शिक्षिका गीता, दलित अस्मिता की पुख्ता पहचान के साथ सामने आकर सवर्ण अध्यापिकाओं को चुनौती देती है। गीता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान कूट–कूटकर भरा है, जो जातिगत संकीर्णता को पारकर बौद्धिक और योग्यता के स्तर पर सवर्ण बुद्धिजीवियों को चुनौती देती है।

समकालीन कहानियां स्त्री अस्मिता की लड़ाई का एक ऐसा पक्ष भी सामने लाती हैं, जहां स्त्रियां अपने यौन–शोषण और शारीरिक शोषण के विरुद्ध उठ खड़ी हुई हैं। सदियों से अस्पृश्य समझे जाने वाले समाज की स्त्रियां भोगी जाती रही हैं। अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें बेबस और लाचार बना दिया था किंतु अब उसके सब्र का बांध टूट गया है। वह इसके खिलाफ विद्रोह करने लगी है। वह भी अन्य स्त्रियों की तरह

ही है, फिर उसकी इज्जत क्यों नहीं होती? वह अब दलितपन के कारण लूटी जाना नहीं चाहती। उसका धैर्य आक्रोश बनके फूट पड़ा है। अपनी अस्मिता की रक्षा में उसने हथियार भी उठा लिए हैं। इस तरह ये कहानियां स्त्री चेतना को नया आयाम देती हैं।

कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी', उषा प्रियंवदा की 'पचपन खंभे–लाल दीवारें', मन्नू भंडारी की कहानियां– 'बंद दराजों का साथ', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'अकेली', 'नयी नौकरी' स्त्री सुबोधिनी परंपरा और विद्रोह के संधिकाल में खड़ी स्त्री की कहानियां हैं। इन कहानियों का विश्लेषण करें तो उस समय की स्त्री की सामाजिक स्थिति को बखूबी पहचाना जा सकता है। लेकिन महिला रचनाकारों की यह त्रयी जब तक रचनारत थी, इन्हें महिला लेखन के खांचे में नहीं डाला गया। उनकी कहानियों का जिक्र या समीक्षा मुख्यधारा के रचनाकारों के साथ ही की गई।

इसके बाद 75 के आसपास जब महिलाओं की एक बड़ी जमात ने अपनी धाक जमानी शुरू की तो समीक्षकों के लिए कोई विकल्प नहीं रह गया क्योंकि इसे अनदेखा करना संभव नहीं था। संवेदना के स्तर पर ये रचनाएं आश्चर्यजनक रूप से भिन्न थीं और इसमें मूलभूत अंतर वही था जो एक स्त्री और पुरुष में भावनात्मक और वैचारिक धरातल पर होता है।

पिछले बीस सालों में अगर कुल कहानियों के विषय का विभाजन करें तो हम पाएंगे कि सबसे ज्यादा कहानियां स्त्री के मुद्दों पर ही रची गई हैं। उपन्यास के क्षेत्र में स्त्री समस्याओं पर लिखे गए उपन्यासों की एक बेहद उर्वरा जमीन हिंदी के रचनात्मक साहित्य में देखी गई है।

कृष्ण सोबती की 'मित्रो मरजानी' एक अक्खड़ और दबंग औरत की एकांतिक तस्वीर प्रस्तुत करती है। उषा प्रियंवदा की 'रुकोगी नहीं, राधिका', 'पचपन खंभे, लाल दीवारें' और 'शेष यात्रा' में परंपरा और रूढ़ियों के द्वंद्व में फंसी एक आधुनिक स्त्री द्वारा अपनी अस्मिता को ढूंढने का प्रयास है।

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर है, जो अपने समय से आगे की कहानी कहता है और हर समय का सच होने के कारण कालातीत भी है। शकुन के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि व्यक्ति और मां के इस द्वंद्व में वह न पूरी तरह व्यक्ति बनकर जी सकी, न पूरी तरह मां बनकर। .... क्या वह केवल शुकन की त्रासदी है? अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह नकारती हुई, अपने मातृत्व के लिए संबंधों के सारे नकारात्मक पक्षों को पीछे धकेलती है या उन्हें अनदेखा करती है। हिंदुस्तान की हजारों औरतों की यही त्रासदी है। अलग होने के बाद बच्चों की त्रासदी की कल्पना मात्र से हिंदुस्तान के नब्बे प्रतिशत विवाह टूटने से बच जाते हैं। 'आपका बंटी' सिर्फ बच्चे की त्रासदी का उपन्यास नहीं है। इसमें शकुन की समस्या को भी बहुत गहराई के साथ उठाया गया है। सन् 1980–85 के बाद हिंदी में स्त्री विषयक उपन्यासों की जैसे बाढ़ सी आ गई।

ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' और 'एक पत्नी के नोट्स' में एक मध्यवर्गीय पढ़ी–लिखी महिला का भी अपने पति द्वारा एक सामान्य औरत की तरह ट्रीट किया जाना और गाहे बगाहे व्यंग्य का शिकार होना तथाकथित प्रगतिशील और पढ़े–लिखे वर्ग को बेनकाब करता है। मृदुला गर्ग की 'अनित्य' में दो महत्वपूर्ण स्त्री पात्रों में से एक काजल

एक नारीवादी प्राध्यापक की तरह उभरती है जो अनलिखे इतिहास को दुबारा लिखना चाहती है, भगतसिंह के सिद्धांतों पर विश्वास करती है और उसे पढ़ाती है। हालांकि वह उनके कोर्स में नहीं है। संगीता एक वेश्या की बेटी है लेकिन अपने सिद्धांत खोती नहीं, अपनी अस्मिता के साथ खड़ी होती है।

मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा' और 'मैं और मैं' जिसमें एक औरत और एक लेखिका के दोनों पहलुओं की कशमकश का बड़ी बारीकी से चित्रण किया गया है। और इन सबसे बढ़कर मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' है जिसमें स्त्रियों के इतने विभिन्न रंग रूप और शेड्स हैं कि स्त्री विमर्श की कई अवधारणाओं की पोथी बांधी जा सकती है।

चित्रा मुद्गल का 'एक जमीन अपनी' और 'आवाँ' महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। 'आवाँ' में एक सामाजिक कार्यकर्ता की जमीनी लड़ाई के संघर्ष का पहली बार हिंदी साहित्य में इतना सचेत और बेबाक चित्रण हुआ है। मृणाल पांडे का 'पटरंगपुरपुराण' पढ़कर लगता है कि पूरा एक शहर ऐसी औरतों के नजरिए से देखा–परखा और बयान किया जा रहा है जो अपने घूंघट उलटाकर और अपने खिड़की–झरोखे खोलकर बड़ी पैनी निगाह से कस्बे में होने वाले हर क्रिया–कलाप का जायजा ले रही हैं।

मेहरुन्निसा परवेज का 'कोरजा', जिसमें आदिवासी परिप्रेक्ष्य में एक स्त्री की त्रासदी का वर्णन है, सूर्यबाला का 'मेरे संधि पत्र', मंजुल भगत का 'अनारो', 'गजी' जिसमें पहली बार एक कामकाजी नौकरानी के रोटी–रोजी के संघर्ष के साथ–साथ उसकी ताकत और स्वाभिमान को रेखांकित किया गया है। 'खातुल' जिसमें अपने मुल्क से बेदखल हुआ किरदार मर्द का नहीं, औरत का है जिसे मुहाजिर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अफगानिस्तान से भागकर आई यह शरणार्थी एक कमसिन बच्ची है। जंग के तमाम हादसे और खौफनाक मंजर भुगतने के बाद भी वह अपना मुल्क छोड़कर भागना नहीं चाहती बल्कि उसे आजाद कराने में कुर्बान होना चाहती है।

कमल कुमार के 'यह खबर नहीं' में सत्ता और प्रभुत्वशाली वर्ग के बीच किस तरह का एक प्रतिभाशाली लड़की की अस्मिता को कुचला जाता है, इसका रोमांचकारी यथार्थ वर्णन है। हाल ही में प्रकाशित उनका उपन्यास 'मैं घूमर नाचूं' राजस्थान की एक बाल विधवा के चरित्र को प्रस्तुत करता है और स्त्री आजादी की गूंज को ध्वनित करता है।

नासिरा शर्मा का 'एक और शालमली', जिसमें घर और बाहर अपने अधिकार मांगती आजादी के बाद की उभरती एक अलग किस्म की स्वतंत्रचेता स्त्री है जो पति से संवाद चाहती है, बरबारी का दर्जा चाहती है, प्रेम की मांग करती है जो उसका हक है। इस पात्र का सृजन बेहद सूझबूझ से किया गया है और यह पात्र आधुनिक स्त्री के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नासिरा का एक और उपन्यास, 'ठीकरे की मंगनी' जिसमें बचपन में बिना पैसे के लेन–देन के मंगनी हो जाती है और लड़का बड़ा होने पर शादी करने से मुकर जाता है। इस पर कद्दावर औरत टूटती नहीं, वह अपना एक घर बनाती है, एक वजूद हासिल करती है और मर्द के लौटने पर उसे दुबारा कुबूल नहीं करती। 'कुइयां जान' उपन्यास में पानी की समस्या केंद्र में है पर इस समस्या से रू–ब–रू होती हैं औरतें। इस उपन्यास का सबसे खूबसरूत पहलू है कि औरतों के सामाजिक सरोकार उभर कर आते हैं और औरतें पर्यावरण के मुद्दे पर बात करती हैं।

शिवानी के उपन्यास न सिर्फ शिक्षित मध्यवर्गीय/उच्चवर्गीय स्त्री के संघर्षपूर्ण जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं के कठिन जीवन और जटिल संबंधों का भी जीवंत चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

राजी सेठ का 'तत्सम', चंद्रकांता का 'अपने अपने कोणार्क' तथा 'कथा सतीसर' स्त्री विमर्श की प्रमुख रचनाएं हैं। गीतांजति श्री का 'माई' भी उल्लेखनीय है, जिसमें गांव–कस्बे की एक औरत अपने बच्चों और परिवार के लिए खुद को तिल–तिल होम करती है पर उसका मिटना ही उसके बच्चों में विद्रोह की चिंगारी और अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी रखने का जज्बा जगा जाता है।

प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आंधी' तथा 'छिन्नमस्ता' महत्वपूर्ण हैं। 'छिन्नमस्ता' में परंपरागत दकियानूसी मारवाड़ी परिवार की एक लड़की का बागी निकल आना कैसे पूरे समाज को उसके खिलाफ खड़ा कर देता है, का एक संपूर्ण दस्तावेज है।

मैत्रेयी पुष्पा के बहुचर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' तथा 'चाक' बदलते स्त्री–पुरुष संबंधों का जटिल चित्रण है। मधु कांकरिया का 'सलाम आखिरी' भी इस लिहाज से महत्वपूर्ण है। 'सेज पर संस्कृत' में जैन साध्वियों का धर्म के नाम पर शोषण दबा–छिपा कर रखे जाने का उल्लेख है पर युवा पीढ़ी की एक जैन लड़की शोषण के खिलाफ उठ खड़ी होती है। अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी', अनामिका का 'दस द्वारे का पिंजरा' महत्वपूर्ण रचनाएं हैं, जिसमें पिछली सदी की औरतों का आज के परिप्रेक्ष्य में कद्दावर होने का समूचा बयान है।

आज हिंदी गद्य साहित्य में स्त्री चेतना के स्वर पूरे जोश के साथ उभरते दिखाई दे रहे हैं। आज की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री चेतना की सजीवता को शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है।

4.15 जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य

जनजाति शब्द दो शब्दों जन और जाति से मिलकर बना है, इसका शाब्दिक अर्थ है– जंगली और पहाड़ी स्थानों में रहने वाली जातियां। दुनिया के लगभग सभी देशों में जनजातीय समुदाय का अस्तित्व है। भारत की जनजातियों पर अगर विचार किया जाए तो इसमें 'असम' से लेकर 'केरल' तक की जनजातियां हैं। जनजातियों की दृष्टि से उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारंखड और पश्चिम बंगाल में जनजातियों की संख्या पूर्वोत्तर भारत की तुलना में कम हैं। भारत सरकार द्वारा इन्हें भारत के संविधान की पांचवीं अनुसूची में 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में मान्यता प्राप्त है।

4.15.1 जनजातीय चेतना का स्वरूप

जनजातीय चेतना को समझने से पहले वहां के समाज की प्रकृति एवं स्वरूप को जानना आवश्यक है। समाज की संरचना का विश्लेषण करते हुए मेंडल बॉम ने अपनी पुस्तक 'Society in India' में जनजातीय समाज की बुनियाद को चार बिंदुओं पर केंद्रित बताया। ये बिंदु हैं–

1. उत्तराधिकार
2. श्रम–विभाजन

'अपनी प्रगति जांचिए'

49. बीसवीं सदी के उत्तरार्ध को कौन–सा युग कहा जाता है?
50. 'एक थी कोठेवाली' किसकी रचना है?
51. कृष्णा सोबती की रचना में एक अक्खड़ और दबंग औरत की एकांतिक तस्वीर खींची गई है?
52. हिंदुस्तान की हजारों औरतों की त्रासदी को मन्नू भंडारी ने अपने किस उपन्यास में जीवंत किया है?
53. 'ठीकरे की मंगनी' के उपन्यासकार का नाम बताइए

3. सत्ता का वितरण

4. विशेषाधिकारों का वितरण

इस प्रकार जनजातियों में नातेदारी केवल सामाजिक संगठन का आधारभूत सिद्धांत नहीं है। यह उनके जीवन के विविध पक्षों एवं आयामों से जुड़ी होती है। मेंडल बॉम के अनुसार, "जनजातीय समाज आकार में छोटे होते हैं। यद्यपि संथाल, गोंड तथा भील आदि कुछ जनजातियों का आकार, क्षेत्र, नातेदारी तथा जनसंख्या विस्तृत है।"

मेंडल बॉम, डी.एन. मजूमदार तथा अन्य मानवशास्त्रियों ने जनजातीय सामाजिक संरचना की विस्तृत व्याख्या की है। मेंडल बॉम ने जनजातीय सामाजिक संरचना की गहन एवं गंभीर व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि जनजातीय समाज में व्यक्तियों तथा समूहों के बीच सोपान का अभाव है। खान–पान तथा सहनिवास के आधार पर कोई स्पष्ट सामाजिक दूरी नहीं है। इस प्रकार, जनजातीय सामाजिक संरचना एवं भारतीय जाति संरचना में स्पष्ट अंतर मौजूद है। जनजातीय संरचना में संस्तरण तथा ऊंच–नीच का भेद न होने के कारण छुआछूत का प्रचलन नहीं है। इस प्रकार, आदिम समाज में अस्पृश्यता का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। फलतः जनजातीय समाज में अन्य समाजों की तुलना में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक एकता अधिक प्रभावी है।

मेंडल बॉम ने स्पष्ट किया है कि जनजातीय जीवन में सहज एवं स्वाभाविक संबंधों की लोच होती है। वे प्यार करना जानते हैं तथा प्यार पर कुर्बान होना भी। वे ईमानदार होते हैं। कर्मठ होते हैं। परिश्रमी होते हैं। जनजातीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत किसी भी प्रकार की औपचारिकता का अनुभव नहीं किया जा सकता है। हाल के वर्षों तक जनजातीय क्षेत्रों में मुद्रा का प्रचलन नहीं था। अभी भी अनेक क्षेत्रों में वस्तु–विनिमय का प्रचलन जारी है। जहां तक आर्थिक चेतना का प्रश्न है, तो बैंकों की अभी भी कोई मुकम्मल व्यवस्था नहीं है। हाट तथा पेठियों का प्रचलन है।

जनजातीय समाज में भूमि–स्वामित्व की सामुदायिक व्यवस्था है। वे मिल–जुलकर खेती करते हैं। कहीं स्थानांतरित कृषि की व्यवस्था है तो कहीं स्थायी कृषि की व्यवस्था है। जीवन–निर्वाह की अर्थव्यवस्था के लिए उन्हें कठिन संघर्ष करना होता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें जी–तोड़ परिश्रम करना पड़ता है।

मेंडल बॉम ने जनजातीय समाज की संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके अनुसार जनजातियों में साधारणतः संपत्ति संचय के प्रति कोई आग्रह नहीं होता। अतिरिक्त धन की लिप्सा भी नहीं होती। छल–छद्म तो वे जानते ही नहीं। पूंजी और संपत्ति की दौड़ में उनकी कोई अभिरुचि नहीं है। साथ ही विपणन की भी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं है। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के साथ उनका कोई विशेष संपर्क नहीं है। अक्सर दूर–दराज के जनजातीय गांवों के आदिवासी छोटे–बड़े कस्बों में अपने सामानों को घर–घर घूमकर बेच देते हैं। जनजातीय लोगों के छोटे–छोटे बच्चे अपने इलाके के नजदीक के छोटे स्टेशनों पर कंद–मूल, फल आदि बेचते हुए देखे जाते हैं। इस प्रकार, जटिल बाजार व्यवस्था एवं आर्थिक संरचना के साथ जनजातियों का कोई स्पष्ट लगाव नहीं है। उनका जीवन आनंद और उल्लास से जुड़ा होता है। वे संगीत और नृत्य के प्रति समर्पित होते हैं। आनंद की एक विशिष्ट मनोदशा के साथ जुड़े होते हैं। कठिन संघर्ष करते हैं। उनमें मद्यपान का प्रचलन

है। झारखंड राज्य के अंतर्गत जनजातियों में हरिया एक महत्वपूर्ण शराब है। वे इसे खुद बनाते हैं, पीते हैं, गाते हैं तथा नृत्य करते हैं। जिंदगी के सुख–दुख तथा संघर्ष को भूलकर सो जाते हैं। इस प्रकार मेंडल बॉम के अनुसार जीवन के प्रति उनकी दृष्टि सकारात्मक है।

जनचेतना के प्रमुख चरण के तहत अनुसूचित जनजातियों में लड़के तथा लड़कियों के समाजीकरण की प्रक्रिया के एक प्रमुख अभिकरण के रूप में युवागृह का महत्व है। इन युवागृहों में युवाओं को शस्त्र संचालन, व्यायाम आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों, व्यवहार प्रतिमानों, प्रथागत कानूनों तथा धर्म एवं पर्व–त्योहार से जुड़े विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जाती हैं। उन्हें नृत्य तथा संगीत का प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। ये युवागृह जनजातीय समाज में सामूहिक चेतना तथा शक्ति के प्रतीक माने जाते हैं।

प्रत्येक जनजातीय समाज का निश्चित परिक्षेत्र होता है। उसकी अपनी भाषा होती है। जहां तक चेतना की बात है, सामाजिक व्यवहार और परंपरा निर्वाह में ये शहरी नागरिकों से कहीं अधिक जागरूक और संवेदनशील हैं। आज भी ये समाज शहरी विद्वेष और वैमनस्य से दूर हैं परंतु इन समाजों में भी संक्रमण की स्थिति पैदा हो रही है। आज कई जनजातीय युवा रोजगार और व्यापार की तलाश में छोटे–छोटे कस्बों, नगरों तथा महानगरों की ओर जा रहे हैं। वे भी अब सभ्य कहे जाने वाले समाज का अंग बनकर जीना चाहते हैं।

जनजातीय चेतना में सबसे प्रबल बाधा भाषा की आती है। किसी भी शहरी नागरिक के लिए उनसे संपर्क साधना आसान नहीं होता। जनजातीय समाज अपनी परंपरा को जीते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी इसे हस्तांतरित करते हैं। परंपरागत मूल्यों के प्रति उनकी जागरूकता अब आधुनिक विकास के प्रति भी सजग हो रही है। जनजातीय समाज में नया शिक्षित वर्ग अपने अधिकारों को लेकर जागरूक तो है ही, साथ ही संघर्षशील भी हो रहा है। जनजातियों की अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान तो है ही, अब वे राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति मजबूत करते हुए अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने को आतुर हैं। यही कारण है कि संविधान में प्राप्त अधिकारों को वे न केवल प्राप्त करना चाहते हैं बल्कि उनका पूरा लाभ भी उठाना चाहते हैं। आज जनजातीय समाज के लोगों के पास एक से एक जीवनदायिनी औषधियों, जड़ी–बूटियों की जानकारी होती है, वे इन्हीं से अनेकानेक बीमारियों का इलाज करते आए हैं परंतु वैज्ञानिक स्वास्थ्य सुविधाओं, शल्य चिकित्सा आदि के प्रति वे प्रायः अनभिज्ञ हैं। यहां उनके औषधीय ज्ञान को पहचान देने और आधुनिकतम चिकित्सा सुविधाओं को दूरदराज जनजातीय क्षेत्रों में फैलाने की जरूरत है ताकि सांस्कृतिक जागरूकता के साथ–साथ सर्वांगीण विकास के पथ पर चला जा सके।

4.15.2 हिंदी गद्य साहित्य में जनजातीय चेतना

साहित्य हमें संवेदनशील बनाता है। जनजातीय साहित्य जीवन का साहित्य है। यह प्रकृति का सहयोगी, ऊंच–नीच, भेदभाव व छल–कपट से दूर है। वह समाज की नयी–नयी विचारधाराओं से परिचित हुआ है, जिनके परिप्रेक्ष्य में यह अपनी नयी पुरानी स्थितियों को तौलने लगा है। उसमें अपने होने न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यही बोध उनके साहित्य में झलकता है।

आज के इस दौर में दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श जितनी तेजी से अपनी चेतना के स्वर को मुखरित कर रहे हैं, लगभग उसी रूप में जनजातीय विमर्श भी अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रहा है। जनजातीय साहित्य प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी पहचान बना रहा है। हिंदी साहिय के अंतर्गत कई जनजाति केंद्रित उपन्यास लिखे गए परंतु स्वतंत्रता के बाद ही इनकी संख्या में वृद्धि आई है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य के अंतर्गत जनजातियों के जीवन को लेकर लिखे गए प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपन्यासों में जनजातीय समाज का संपूर्ण परिवेश उभर कर आया है। जनजातीय जीवन को सजीव करने वाले उपन्यास और उनके रचनाकारों का परिचय इस प्रकार है–

'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा), 'कगार की आग', महासागर में निकोबार द्वीप' और 'सुराज' (हिमांशु जोशी), 'कब तक पुकारूं' और 'धरती मेरा घर' (रांगेय राघव), 'काला पादरी' (तेजिंदर), 'गाथा भोगनपुरी' (किशोर कुमार सिन्हा), 'जंगल के आस–पास' (राकेश वत्स), 'जंगल के फूल', 'सूरज किरण की छांव', 'घोटुल', 'जाने कितनी आंखें' (राजेंद्र अवस्थी), 'जहां बांस फूलते हैं' (श्री प्रकाश मिश्र), 'जो इतिहास में नहीं' और 'पहाड़ पर कोहरा' (राकेश कुमार सिंह), 'पांव तले की दूब' और 'सावधान नीचे आग है' (संजीव), 'पाकर जाति का शोर' (पुन्नी सिंह), 'मीगाघाटी' (सोहन शर्मा), 'रेत' (भगवानदास मोरवाल), 'पलाश के फूल' (संतोष प्रीतम), 'वन के मन में' (योगेंद्रनाथ सिंह), 'धूनी तपे तीर' (हरिराम मीणा), 'शैलेष' (शिव प्रसाद सिंह), 'आदिवासी हैं तो समर शेष है' (नितिन कुमार), 'मोर झाल' (श्याम परमार), 'खलीकों की बस्ती' (शिव कुमार श्रीवास्तव), 'मादल का दर्द' (श्याम व्यास), 'सांप और सीढ़ी', 'कस्तूरी' और 'सालबनो के द्वीप' (शानी), 'सागर लहरें और मनुष्य' (उदयशंकर भट्ट), 'चौथी मुट्ठी' (शैलेष मटियानी), 'मौन जाही' और 'जंगल के गीत' (पीटर पाल एक्का), 'कोहरे में खोये चांदी के पहाड़' (जयप्रकाश भारती), 'उत्तर पूर्व', (लालबहादुर वर्मा), 'पहाड़िन' (नारायण), 'अख्य बाला' (ब्रजनंदन सहाय), 'भारत बनाम इंडिया' और 'हस्तक्षेप' (श्रवण कुमार गोस्वामी), 'गुनिया' (कुरमा)।

इन जनजातीय परक उपन्यासों में जनजातियों को केंद्र में रख कर रचना की गई है, परंतु आज कई उपन्यास ऐसे हैं जो बाजार में उपलब्ध नहीं हैं। कुछ प्रमुख हिंदी उपन्यासों का परिचयात्मक विवेचन इस प्रकार है–

रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं' में करनट कबीलों के जीवन यथार्थ का अनेक पक्षों में अंकन हुआ है। इसमें उन्होंने समाज के सर्वथा उपेक्षित उस वर्ग का चित्रण अत्यंत सरल और रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, जिसे सभ्य समाज 'नट' या 'करनट' कहकर पुकारता है। इन कबीलों की कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। करनटों में यह छूट है। वहां कोई बुराई 'सेक्स' के आधार पर नहीं मानी जाती। उपन्यासकार इस भाव को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, "औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा–भला क्या? कौन नहीं करती? नहीं तो मार–मार कर खाल उड़ा देगा दरोगा और तेरे बाप और खसम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कमरा न रहेगा तो क्या करेगी? फिर भी तो पेट भरने को यही करना होगा?" उपन्यास का केंद्रीय विषय करनट समाज खानाबदोश, घोर उत्पीड़ित एवं शोषित है। यह उपन्यास संपूर्ण भारतीय ग्रामीण परिवेश को अपने साथ लेकर चलता हुआ प्रतीत होता है जिसमें करनटों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सोहन शर्मा की 'मीणाघाटी' उपन्यास का कथा परिवेश राजस्थान की मेवाड़ रियासत का है। रियासत में बसे भील, मीणा, छोटे किसान तथा सामान्य जनता अंग्रेज हाकिमों और रजवाड़ों के दोहरे शोषण की शिकार है। मेवाड़ के अरावली पर्वत की मीणा घाटी के मील–मीणें शोषण और जुल्म के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष का शंखनाद करने वाले विद्रोही मील सरदार 'अमरा' के रूप में इस उपन्यास में एक ऐसा पात्र सजीव हुआ है जो भावी पीढ़ियों के लिए आदर्श बना रहेगा।

किशोर कुमार सिन्हा द्वारा रचित उपन्यास 'गाथा भोगनपुरी' एक बंधुआ मजदूर की कहानी है। उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड से संबंधित वह उपन्यास बंधुआ मजदूरों की करुण गाथा कहता है। यह एक ऐसे युवा प्रशासनिक अधिकारी की कथा है जो अपने आस–पास मजदूरों और आदिवासियों को अन्याय से पिसते, शोषित होते देखता है और उनका पक्ष लेने का जोखिम उठाता है। उपन्यास में आदिवासियों की बस्ती को उपन्यासकार ने अत्यंत जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है, "गांव का तीसरा हिस्सा, जो कि इन दोनों हिस्सों से काफी दूर था, आदिवासियों का हिस्सा था। वहां मकान नाम की कोई चीज नहीं थी। सब झोपड़े थे। इन झोपड़ों की संख्या घटती–बढ़ती थी, क्योंकि ये आदिवासी एक जगह ज्यादा दिन टिककर रहने के आदी नहीं थे। जंगल के खुले वातावरण में पले–बसे ये लोग अभी तक पक्के बंद मकानों में रहने के आदी नहीं हो पाए थे... जंगल की लकड़ी बीनना, शहद इकट्ठा करना, जंगली जानवरों को शिकार, तेंदु की पत्ती, कहीं–कहीं खेती– बस यही सब था, जो ये लोग करते थे।"

राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' में झारखंड में रहने वाली जनजातियों के शोषण की करुण कथा है। यह झारखंड के वर्तमान जनजातीय जीवन पर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है। अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद झारखंड के जंगलों में एक नयी शोषक संस्कृति का उदय हुआ। अंग्रेजों ने अपने शासन के समय झारखंड के मूल निवासियों के 'जल–जंगल–जमीन' के पारंपरिक अधिकारों को छीनकर उन्हें इन सभी चीजों से बेदखल कर दिया। आजादी के कई वर्षों बाद भी आदिवासियों की समस्याओं और प्रश्नों की स्थितियों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है, इसकी पुष्टि उपन्यास की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है, "आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएं बनी हैं पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आबंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुंच रहा। कई योजनाएं कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएं तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गयी..., यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा–कटा रहेगा।" इन आदिवासियों पर इतने अत्याचार व शोषण हुए परंतु इन लोगों ने अपनी जनजीवन की जड़ें अपनी भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, मिथक और आस्थाओं को छोड़ा नहीं। आज भी इनकी संस्कृति अपने आप में समृद्ध है।

संजीव द्वारा रचित 'जंगल जहां शुरू होता है' में थारू जनजाति के सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र थारू जनजाति का नायक 'काली' देश की पुलिस, प्रशासन और राजनीति में हताश व निराश हो कर डाकू बनने को मजबूर हो जाता है, परंतु वे अपनी

टिप्पणी

मन की गाथा को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं, "कुमार साहब आपकी और हमारी क्या बिसात है, इस जंगल में? इस जंगल का कोई नियम नहीं है, पता नहीं कब कौन, कैसे, कारण या अकारण ही हम पर वार कर बैठे। यह 'कौन' वह आश्रय भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं, जहां जान बचाने को हम सिर घुसेड़ रहे हैं, वे दिन भर की थकान को दूर करने के लिए रात को नृत्य अवश्य करते हैं।" बीस–एक थारू बालाएं कुछ किशोरियां, कुछ जवान। सभी नंगे पांव, मगर सुंदरता में सभी एक से बढ़कर एक..., सभी नयी रंग–बिरंगी साड़ियों में। न कोई साज, न कोई घुंघरू, फिर भी झमक चला है समटा–

"के जईहें हाजीपुर, के जइहें पटना,
से के जइहें....
अरे के जइहैं अरे बेतिया नौकरिया,
के जइहें....?"

तेजिंदर कृत 'काला पादरी' उपन्यास मध्य प्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्र में घटित घटनाओं और जंगलों के आस–पास सांस लेते जीवन की विवरणात्मक, संवेदनशील और सूक्ष्मता से परिपूर्ण कहानी है। यह उपन्यास यथार्थ के एक अनजाने दुर्गम इलाके की अंतर्यात्रा का अनूठा और प्रामाणिक विवरण है। उपन्यास में धर्मांतरण, राजनीतिक, आर्थिक आदि व्यवस्था के साथ ही साथ आदिवासियों की दयनीय स्थिति को अत्यंत जीवंत रूप में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। भूख से तड़पते आदिवासियों की स्थिति को उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है– "साहब, रात में बच्चा मर गया। उसकी मां ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी मां भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ नहीं खाया था... आदिवासी पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियां खा रहे हैं और जिले के भीतरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर, उनका मांस तक खा रहे हैं।"

श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहां बांस फूलते हैं' में उत्तर–पूर्व में व्याप्त विद्रोह और असंतोष की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने मिजोरम में व्याप्त असंतोष, विक्षोभ के कारणों को पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखने और समझने का प्रयास किया है। उपन्यास के शीर्षक की ओर संकेत करते हुए लेखक लिखते हैं, "मिजोरम में जनश्रुति है कि हर पचास साल की आवृत्ति पर यहां के बांस फूलते हैं। उनके बीजों को खाकर चूहे बहुत बच्चे पैदा करते हैं, जो फसल खा जाते हैं और मिजोरम में अकाल पड़ जाता है। ऐसा ही अकाल 1958 में पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप 1966 का विद्रोह हुआ।" इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में मिजो समाज के अंतरंग पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' बुंदेल खंड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरी जाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाकर मार्मिक चित्रण किया है। कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में और स्त्रियां शराब की भट्टियों पर या किसी के बिस्तर पर। उपन्यास की प्रमुख पात्र कदमबाई अपनी बेटी को इन कार्यों को करने से नहीं रोकती और कहती है, "उसका दारू बेचना, चोरी करना, बार–बार जेल जाना... हमारी बिरादरी का कारोबार यही है, इसमें बुरा क्या है?" मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में कबूतरी जाति के रहन–सहन, खान–पान एवं संस्कृति की विभिन्न पहलुओं को अत्यंत मार्मिक रूप में दर्शाया है।

टिप्पणी

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' नामक उपन्यास के केंद्र में गुरु और मां नलिन्या की संतान कंजर और उसका जीवन है। अपने लोक विश्वास व लोकाचारों की धुरी पर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती एक विमुक्त जनजाति। कंजर जनजाति का इतिहास उपन्यास की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–"कंजर यानी कननन्वरा, काननचर अर्थात जंगलों में घूमने वाला।.... कंजरों की सात उपजातियां हैं, किंतु हैं मुख्य चार ही। अंधति कुछबंध, जो झाड़ू बनाते हैं। पत्थरकट, जो पत्थर काटते हैं। जल्लाद, जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ–साथ फांसी भी देते हैं और रच्छबंध, जो जुलाहों का करघा बनाते हैं।" उपन्यास में लेखक ने संपूर्ण कंजर जातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवंत रूप देने का प्रयास किया है।

जाने माने लेखक, स्तंभकार और जनसंचार माध्यमों के मामलों में सरकार के सलाहकार रहे मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित बी.जी. वर्गीस द्वारा लिखित 'सुरक्षा और आक्रोश' (अनुवाद) का उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। इस पुस्तक में भारत के जातीय संघर्ष और विद्रोह का विस्तृत विवेचन किया गया है। उन्होंने जनजातीय समाज में अशांति और संघर्षों को उत्पन्न करने वाली असुरक्षा की पड़ताल कर सुरक्षा के नये दृष्टिकोण की तलाश की है। देश के उत्तरपूर्व की स्थितियों को उन्होंने 'उत्तर–पूर्व में संघर्ष', 'नगा समस्या', 'अशांत मणिपुर', 'मिजोरम का भिन्न मार्ग', 'त्रिपुरा की प्रसव पीड़ा', 'छत्तीसगढ़ और सलवा जुडूम का उदय' आदि शीर्षकों के तहत वर्णित किया है। इस पुस्तक में आज के जनजातीय समाज के दैनिक संघर्ष को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इधर जनजातीय समाज का अंकन करने वाली कई रचनाएं प्रकाश में आ रही हैं। इस संदर्भ में बस्तर के जनजातीय जीवन और संस्कृति पर राजीव रंजन प्रसाद द्वारा लिखित उपन्यास 'आमचो बस्तर' का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है। इस पुस्तक में बस्तर के वनवासियों के जीवन का सजीव चित्रण किया गया है। वनवासी शांति, उत्सव और उल्लास के साथ जीवन जीने में यकीन रखते हैं। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर छपी तस्वीर ही पूरे बस्तर की कहानी बयान करती है। लेखक राजीव रंजन प्रसाद ने इस उपन्यास में नक्सल हिंसा और आतंक से जूझते बस्तर अंचल की कथा को ऐतिहासिक मिथकों का प्रयोग करते हुए समसामयिकता के साथ प्रस्तुत किया है। पुस्तक में बस्तर अंचल की कला संस्कृति, परंपरा और भाषा जैसे विषयों को स्पर्श करते हुए नक्सल हिंसा की वजह से इस अंचल के सामाजिक आर्थिक विकास में हो रहे विपरीत प्रभावों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी गद्य रचनाकारों ने प्रभावपूर्ण ढंग से जनजातीय चेतना को स्वर दिए हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

54. जनजातीय समाज की संरचना का चित्रण मेंडल बॉम ने अपनी किस पुस्तक में किया है?
55. जनजातीय युवाओं के समाजीकरण की प्रक्रिया में किसकी प्रमुख भूमिका है?
56. जनजातीय चेतना में सबसे प्रबल बाधा किसमें आती है?
57. रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं' में किसकी समस्या उठाई गई है?
58. 'जहां बांस फूलते हैं' में श्रीप्रकाश मिश्र ने कौन–सी समस्या का चित्रण किया है?
59. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरी किसका प्रतिनधित्व करता है?

4.16 भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य

भूमंडलीकरण/वैश्वीकरण वर्तमान में सर्वाधिक चर्चित शब्द रहा है। यह एक प्रकार का वृहद विचार है, प्रस्थापना–परिवर्तनकारी प्रक्रिया है। विश्व की हर बहस में यह सर्वव्यापी 'जटिल कारक' और अनंत परिणाम की तरह रहता है। इसी प्रकार हिंदी में चलने वाली प्रत्येक साहित्यिक–राजनीतिक तथा आर्थिक बहसों में वह जाने–अनजाने आता जाता

रहता है। कुछ विद्वान इसे पश्चिमीकरण का पर्याय मानते हैं। कुछ उसे पश्चिमी पूंजीवाद और संस्थानों का भूमंडलीय फैलाव मानते हैं। भूमंडलीकरण एक जटिल ऐतिहासिक विकास की अवस्था और नये अंतर्विरोधों से 'ग्रस्त' एवं संचालित प्रक्रिया है। भूमंडलीयता में संस्कृति एक उद्योग है, उत्पाद है, ब्रांड है। आज हम जिस सांस्कृतिक उद्योग को बनता देख रहे हैं वह देशी पूंजी के विश्व पूंजी के साथ जुड़ जाने के बाद से तेजी से पनपा है। इससे संस्कृति उपयोग क्षेत्र में आ गई है।

भारतीय जीवन आज ब्रह्मांडीकरण की प्रक्रिया में उदार मानवतावाद के साथ–साथ अर्थवाद के उस प्रभाव से गुजर रहा है जहां हर चीज खरीद–बिक्री की दृष्टि से देखी जाती है। मूल्यचेतना ध्वस्त हो गयी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, परंतु वह गहरे दबावों के दौर से गुजर रही है। हिंदी का सृजन संसार इन हलचलों से भरा है।

भूमंडलीकरण, उदारीकरण, उन्नत प्रौद्योगिकी एवं सूचना–तकनीक के बढ़ते इस युग में सबसे बड़ा खतरा भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए पैदा हुआ है। इतिहास साक्षी है कि जब–जब समाज पथभ्रमित हुआ है या अपसंस्कृति हावी हुई है तो साहित्य ने ही उसे संभाला है। कहा भी गया है कि "साहित्य समाज का दर्पण है।" साहित्य का संबंध सदैव संस्कृति से रहा है और हिंदी साहित्य भारतीय संस्कृति की अस्मिता की पहचान है। संस्कृत वाङ्मय का पूरा सांस्कृतिक वैभव हिंदी साहित्य के माध्यम से ही आम जन तक पहुंचा है। हिंदी गद्य साहित्य का विस्तार क्षेत्र काफी व्यापक रहा है, यहां तक कि उसमें संस्कृत साहित्य की परंपरा और लोक भाषाओं की वाचिक परंपरा की संस्कृति भी समाविष्ट रही है। स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी और उसकी लोकभाषाओं ने घर–घर स्वाधीनता की जो लौ जलायी वह मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं थी, वरन सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए भी थी। भारत में साहित्य, संस्कृति और हिंदी एक दूसरे के दर्पण रहे हैं ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आज के हिंदी गद्य साहित्य ने भी बदलती परिस्थितियों में स्वयं को परिवर्तित और परिवर्धित किया है। विज्ञान–प्रौद्योगिकी से लेकर तमाम विषयों पर हिंदी गद्य लिखा जा रहा है। सूचना क्रांति के दौर में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की समस्त जानकारियों को हिंदी गद्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के प्रयास तेज हो रहे हैं। भूमंडलीकरण का सबसे सशक्त और प्रभावी औजार है, सूचना। यह सूचना इंटरनेट के माध्यम से पूरे भूमंडल की दूरियों को कुछ ही देर में पाट देती है। आज हिंदी में लिखा गया साहिय इंटरनेट पर काफी मात्रा में भले ही उपलब्ध न हो मगर हिंदी में क्या लिखा जा रहा है, कैसा लिखा जा रहा है और यह साहित्य कहां उपलब्ध हो सकता है, इसकी सूचना इंटरनेट पर अवश्य मिल जाती है।

साहित्य युगों का अतिक्रमण करता चलता है, इसके बावजूद उसकी रचना किसी युग–विशेष में होती है, और उस युग विशेष की समस्याएं अपने ढंग से उसके लिए उत्प्रेरक भी बनती हैं। बीसवीं शताब्दी का अंत कैलेंडर के संदर्भ में अपना एक विशेष महत्व रखता है, वह अलग बात है। पर इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण यह है कि इतिहास के इस बिंदु पर साहित्य को एकाएक अनेक प्रकार की विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है।

यह इतना आकस्मिक भी नहीं है। कई शताब्दियों से मुद्रण–तकनीकी का व्यावहारिक लाभ उठाते–उठाते साहित्य के पठ्य रूप का एक चरित्र बन गया है जो उसके पिछले श्रव्य रूप से भिन्न है। पर वही तकनीकी बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में कुछ ऐसी बदली कि साहित्य का पुस्तक–पठ्य रूप अब सहसा कम्प्यूटर, रॉबो, इंटरनेट के जमाने में एक खास तरह का दृश्य–श्रव्य रूप लेता दिखता है। और यहीं साहित्य के लिए बुनियादी चुनौती आती है, रचना के पक्ष में भी और आस्वादन के पक्ष में भी।

कला–अनुभूति का सर्जनात्मक संप्रेषण/संक्रमण सर्वाधिक तो जीवंत मानवीय संपर्क में संभव होता है– जैसे काव्य–पाठ या कि संगीत–समाज में। या फिर रचना की स्थिर मूल अथवा प्रतिकृति में, जैसे कि मुद्रित पुस्तक, चित्र आदि। भावात्मक संबंध इन्हीं स्थिर दशाओं में बनता है। आधुनिक वैद्युतिक संचार–साधन तो एकदम ऐसे त्वरित, तात्कालिक और चलनशील हैं कि बैंजामिन के समय में उनकी कल्पना भी कठिन थी। इन नये संचार–साधनों के द्वारा लगता है कि स्थायी भाव के बिना महज संचारी के आधार पर रस–दशा को प्राप्त करने का यत्न चल रहा हो।

स्वातंत्र्य और न्याय की वेदी पर तटस्थता तथा निष्पक्षता की भावना से प्रेरित होकर साहित्यानुशीलन करना ही रचनाकार का मूल धर्म और कर्म है जिसमें समता, बंधुत्व एवं विश्व कल्याण की भावना निहित है। आज बदलते मूल्यों से प्रभावित साहित्य में मिथकीय चेतना, आस्वादन की समस्या, अंतर्विरोध की समस्या, भूमंडलीकरण, बदलते मानवीय संबंध, सांस्कृतिक समन्वय की आवश्यकता आदि ज्वलंत समस्याओं का विवेचन–विश्लेषण हो रहा है। आधुनिकता के प्रति आग्रह, लोकोन्मुखी चेतना, भारतीयता के पक्षधर, जनपीड़ा के प्रति संवेदनात्मक भाव, शोषित–पीड़ित के प्रति सहानुभूति आदि की भावना आजकल प्रकाशित विविध कृतियों में देखने को मिलती है।

हिंदी आलोचना भूमंडलीकरण के प्रभाव से प्रभावित होते हुए भी भारतीयता के रंग में रंगी हुई है और जीवन मूल्यों के प्रति अधिक सचेत होकर भारतीय तत्व चिंतन के फलक पर अपना निश्चित प्रतिमान ढूंढने के लिए व्यग्र और आतुर है। समाजशास्त्रीय पद्धति, मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणवादी पद्धति यद्यपि पाश्चात्य की देन है फिर भी वैयक्तिक अभिव्यक्ति को सार्वजनिक बनाने के समन्वयात्मक प्रयास हो रहे हैं। कम्प्यूटराइज्ड प्रणाली के इस युग में, औद्योगिक क्रांति के साथ–साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन और जगत में समन्वयवादी धरातल पर ही सामंजस्य की स्थापना कर सकते हैं। ठीक यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी लागू होती है। साहित्य का कल्याण भी इसी में है।

सौंदर्य चेतना की जागृति, पाठकों की ज्ञान संपन्नता, साहित्यानुशीलन की प्रवृत्ति जाग्रत करना, सांस्कृति चेतना जाग्रत करना, साहित्यानुरागी प्रवृत्ति विकसित करना, साहित्य–कला को प्रोत्साहित करना, साहित्य–सर्जना का पथ प्रदर्शन एवं कुत्सित साहित्य का हतोत्साहन आदि साहित्यकार के दायित्व बन जाते हैं। हिंदी आलोचकों ने साहित्यांगों के विशिष्ट गुण–दोष विवेचन की सीमा से परे विश्व साहित्य, विश्व दर्शन, वैश्विक संवेदना को केंद्र में रखकर आलोचना करने की नयी दृष्टि विकसित की है जिसमें पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों वैचारिक अवधारणाएं समन्वित हैं।

सतत विकासोन्मुख रहना ही साहित्य प्रवाह की शुचिता का प्रमाण है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय चिंतन वैश्विक चिंतन के रूप में साहित्यालोचन को गतिशील, क्रियाशील एवं समन्वयशील बनाने में सतत प्रयत्नशील है जिसके मूल में वैश्विक जीवनदर्शन तथा नैतिकवादी मूल्यों के प्रति समर्पण का भाव भी परिलक्षित होता है। प्रतियोगिता के संसार में बाजारवादी मूल्यों के प्रति आग्रह एवं आकर्षण के होते हुए भी, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक धरातल पर, सहभाव समन्विति का स्वर ध्वनित करने वाले हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी गद्य ने भी अपने पंख दूर तक फैलाये हैं। सोवियत रूस और भारत की मैत्री का आधार सांस्कृतिक रहा है। भारतीय लेखकों की रचनाओं के प्रति यहां शुरू से लगाव रहा है। यहां के सुधीजन संपूर्ण साहित्य (आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल) के प्रति रुचि एवं सम्यक ज्ञान रखते हैं। महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस का सफल रूसी अनुवाद वेरन्निकोव ने किया है। अन्य महत्वपूर्ण रूसी हिंदी के विद्वान वी. चेरनीगोव, वी. क्रेस कोविन एवं बाबालिन हैं। रूस में हिंदी की एक बोली ताजिकी विकसित हुई है। इन लोगों के द्वारा गद्य एवं पद्य रचनाओं का रूसी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया जाना एक सराहनीय प्रयास है। पिछले कई दशकों के रूस में हिंदी भाषा में विविध विषयों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक) पर पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं।

मारीशस द्वीप ने हिंदी साहित्य के विकास में पर्याप्त योगदान किया है। क्रियोल मिश्रित भोजपुरी यहां की जनता द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। इस भाषा में सर्वनाम, विभक्तियां तथा क्रियाएं हिंदी की होती हैं पर शेष शब्द क्रियोल से लिए होते हैं। इस द्वीप में साहित्य की लगभग सभी विधाओं काव्य, उपन्यास, कहानी तथा नाटक आदि का साहित्यिक सृजन हुआ है। यहां के प्रमुख साहित्यकारों, जिन्होंने प्रारंभ में यहां पर हिंदी साहित्य की गरिमा को स्थापित किया है, में प्रो. वासुदेव विष्णु दयाल, ब्रजेंद्र भगत मधुकर एवं जयनारायण राय का नाम प्रमुख है। यहां पर अनेक हिंदी उपन्यासों का प्रकाशन हो चुका है। हीरालाल रचित 'सगाई', कृष्ण बिहारी रचित 'पहला कदम' एवं विष्णुदत्त मधुचंद रचित 'फट गयी धरती' महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियां हैं। यहां के सबसे प्रसिद्ध उपन्यासकार अभिमन्यु अनंत हैं। इनकी ग्यारह से अधिक कृतियां अकेले भारत में ही प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका सबसे प्रमुख उपन्यास 'लाल पसीना' है। पत्रों के माध्यम से यहां की साहित्य परंपरा में पर्याप्त वृद्धि हुई है। 'बसंत' तथा 'अनुराग' पत्रों ने कहानी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। कहानियों का प्रमुख संग्रह 'नये अंकुर' प्रमुख हैं। नाटकों में 'जीवन संगिनी' जयनारायण द्वारा रचित माना जाता है। एकांकियों में ब्रजेंद्र भगत के 'आदर्श बेटी' का प्रकाशन किया गया। निबंधों का प्रकाशन भी मारीशस में होता है।

ब्रिटेन में हिंदी कहानी पूरे जोशोखरोश के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है इसका काफी श्रेय तेजेंद्र शर्मा और उनकी संस्था 'कथा' को दिया जा सकता है। लेखिका त्रय दिव्या माथुर (आक्रोश), उषा राजे सक्सेना (प्रवास में) और शैल अग्रवाल लगातार लिख रही हैं और अच्छा लिख रही हैं। उनकी रचनाएं यहां के जीवन को न केवल भारतीय बल्कि एक नारी की दृष्टि से भी देखती हैं। दिव्या माथुर की 'आक्रोश' की

कहानियों में जहां पूर्व की संवेदना है वहीं पश्चिम की वस्तुनिष्ठता भी है। उषा राजे की कहानियां 'प्रवास' में मिले चरित्रों के संस्मरणात्मक बिंदुओं को लेकर बुनी गई परंतु उनमें भाषा और भाव की गहन संवेदना है। शैल अग्रवाल की एक विशिष्ट दृष्टि है जो संभावनाओं से ओत–प्रोत है। किस्सागो कला में प्रवीण तेजेंद्र शर्मा (देह की कीमत, काला सागर, ढिबरी टाइट) की कहानियों में रोचकता और भाव संपन्नता है, उनके विषयों का चुनाव भी विशिष्ट होता है। पद्मेश की कहानियां उनके सघन जीवन अनुभवों से उपजी हैं अतः दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ती हैं। श्रीमती उषा वर्मा भी निरंतर सृजन कर्म में रत हैं और जीवनानुभूतियों को कविता और कहानी दोनों माध्यमों से प्रस्तुत कर रही हैं। उषा राजे सक्सेना द्वारा संपादित 'मिट्टी की सुगंध' और कथा लंदन द्वारा प्रकाशित 'कथा लंदन' कहानी संग्रह यहां के कहानीकारों की कहानी में समर्थता की प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

गद्य साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि नरेश भारतीय की रही है जिनकी पिछले 3 वर्षों में 300 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं– टेम्स के तट से, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर निबंध, सिमट गई धरती (संस्मरणात्मक आत्मकथ्य) और 'इस पार उस पार'। यह साहित्य यहां के जन–जीवन का गहन चित्रण प्रस्तुत करता है और राजनीतिक तथा सामाजिक सवालों से दो चार होता है।

नाटकों की दृष्टि से डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव के ऊधम सिंह, बेगम समरू आदि उल्लेखनीय हैं। हाल ही में उनका नाटक संग्रह 'अनडिक्लेयरड मिस वर्ल्ड' भी प्रकाशित हुआ। उनके नाटकों के कथ्य और भाव संपन्न होते हैं। इधर बी.बी.सी. हिंदी सर्विस की अध्यक्षा अचला शर्मा की रेडियो नाटक की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सिर्फ नाटक की पुस्तकें ही नहीं, हाल में ब्रिटेन में हिंदी के नाटक भी होने लगे हैं। वर्ष 2002 में तेजेंद्र शर्मा द्वारा निर्देशित नाटक 'हनीमून' (हास्य नाटक) बड़ी संख्या में दर्शकों तक पहुंचा, वहीं लेखक, निर्देशक परवेज आलम द्वारा लिखित–निर्देशित नाटक 'पासपोर्ट' (भारतीयों और पाकिस्तानियों के ब्रिटेन में संबंध) भी नयी अभिव्यंजना और प्रयोगों के साथ दर्शकों द्वारा सराहा गया।

स्पष्टतः भूमंडलीकरण ने हिंदी भाषा को नया रूप दिया है। आज हिंदी में ऐसे विद्वानों का बोलबाला है जो उत्तर आधुनिकता, स्त्रीवाद, संरचनावाद, विखंडनवाद को समझते हैं। हिंदी समाज में सूचना–तकनीक के पेंच खुलने लगे हैं। यह नया हिंदी वातावरण है, जिसे सूचना तकनीक, उससे जुड़े जनसंचार और अन्य माध्यमों ने बनाना शुरू किया है। 'हिंदी नेट' ने हमें 'विश्व नागरिक' बना दिया है। इस सदी का साहित्य विज्ञानवाद, मानवतावाद, आतंकवाद, अलगावाद, उत्तर आधुनिकवाद, विखंडनवाद, दलित चेतना, स्त्री–विमर्श से रस ग्रहण करता हुआ, अपना एक वैश्विक परिदृश्य बनाने की ओर उन्मुख हो रहा है। आज के भूमंडलीकरण का साहित्य मनुष्य की चिंता व सरोकारों को लेकर संघर्षशील है।

हिंदी गद्य साहित्य ने भूमंडल के कई छोरों का स्पर्श किया है और अपनी विकास प्रक्रिया में उसकी स्वतंत्र उड़ान भूमंडलीकरण के साहित्याकाश में जारी है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

60. भारतीय जीवन आज भूमंडलीकरण के साथ–साथ अन्य किस प्रभाव से गुजर रहा है?
61. भूमंडलीकरण का सबस सशक्त और प्रभावी औजार क्या है?
62. भूमंडलीकरण से प्रभावित होते हुए भी भारतीय आलोचना किस रंग में रंगी है?
63. 'लाल पसीना' उपन्यासकार का नाम बताइए।
64. पिछले तीन सालों में किस रचनाकार की 300 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं?
65. रेडियो नाटक पर दो पुस्तकें किस रचनाकार की प्रकाशित हुई?

गतिविधि

अपने आसपास स्थित किसी जनजातीय क्षेत्र का दौरा कीजिए और पता लगाइए कि वहां के निवासी जनजातीय चेतना संबंधी साहित्य के प्रति कितनी जानकारी रखते हैं?

क्या आप जानते हैं?

समाज के निम्न वर्ग की निरीह स्त्री पात्रों को अपने साहित्य में स्वर देने वाली महादेवी वर्मा के परिवार में 200 सालों से कोई लड़की पैदा नहीं हुई थी, उसे जन्म लेते ही मार दिया जाता था। महादेवी अपने परिवार में कई पीढ़ियों के बाद पैदा हुईं। महादेवी अपनी दिनचर्या में अक्सर निकटवर्ती गांवों में जाकर जरूरतमंदों की सेवा भी किया करती थीं।

4.17 सारांश

छायावाद की वैयक्तिक अनुभूतियों पर केंद्रित काव्यधारा के बाद विभिन्न प्रकार के साहित्य की रचना हुई। इस काल में रचनाओं में इतना विषय वैविध्य था कि इस दौरान रचित काव्य को छायावाद या किसी अन्य वाद के अंतर्गत नहीं बांधा जा सकता। भारतेंदु युग से चली आ रही राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा इस काल तक आई। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा एवं भाव सभी दृष्टियों से छायावादी प्रभाव से पूर्ण मुक्तता परिलक्षित होती है। इन कविताओं में प्रगतिशीलता दार्शनिक रूप में नहीं अपितु लोकानुभूतियों के रूप में है। इनकी भाषा लोकभाषा है। मुहावरे तथा शैली भी लोक हैं। लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली प्रयुक्त है। निराला की लोकवादी कविताएं इस युग की नवीन देन हैं। निराला ने चिंतन के द्वारा नहीं अपितु संवेदना और अनुभव के द्वारा जन–जीवन को अपनाया। इसलिए उनके काव्य को मार्क्सवादी या समाजवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल सका। जनजीवन अपने समस्त संवेदन के साथ व्यक्त हुआ।

सन् 1936 ई. में 'युगांत' की घोषणा करके पंत ने सन् 1939 ई. में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। जहां वे मार्क्सवाद, भौतिक दर्शन तथा जन–जीवन के सत्यों की ओर झुक गए। पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्वर पर स्वीकारा। इसलिए वे मार्क्सवादी सिद्धांत की अभिव्यक्ति करने में व्यस्त रहे। कविता ने मार्क्सवादी दृष्टि के प्रकाश में ग्रामीण जीवन की विविध छवियों का अति रमणीय चित्रांकन किया है।

महादेवी ने गीति को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। क्योंकि इनके काव्य विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। उनके काव्य में लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से संपृक्त होकर नये अर्थ का विस्तार करती हैं किंतु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। वैयक्तिक एवं छायावादी सीमाओं के होते हुए भी महादेवी छायावाद की विशिष्ट ही नहीं समर्थ कवयित्री हैं तथा 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति है। रहस्य एवं संकोच का आवरण होते हुए भी कवयित्री की अंतरंग

निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। महादेवी के गीतों में सूक्ष्म चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। उनके चित्र रूप जगत तथा भावजगत दोनों के हैं।

निराशा एवं उदासी के स्वर की मुखरता मात्र प्रेम मूलक नहीं है अपितु जीवन के अन्य संदर्भों को भी उसकी मुखरता का अवलोक कहा जा सकता है। देश की परतंत्रता, सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, धार्मिक बाह्याडंबरों, आर्थिक विषमता आदि के अनुभव की भयंकरता से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानव पुनः पुनः अपनी टूटन का अनुभव कर रहा है। उसका वैयक्तिक आक्रोश का स्वर संपूर्ण कुरूपताओं को अस्वीकारता हुआ, स्वयं को कहीं स्वीकृत न पाता हुआ 'स्व' में ही प्रत्यावर्तित हो जाता था। अपने को आत्मपीड़न, कुंठा, संत्रास, टूटन, घुटन की एक नवीन चादर से आच्छादित कर उन्हीं अनुभूतियों को गाता चलता था। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं–कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल', नरेंद्र शर्मा के 'अग्निशस्य', अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। समाज में व्याप्त असंतोष तथा वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना के कारण कवियों में विद्रोही भावना परिलक्षित होती है।

राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा की कविताओं में संपूर्ण भारतवर्ष की अखंडता एवं एकता के रूप मं राष्ट्रीयता का अर्थ विकसित हुआ। इस काल में राष्ट्रीयता का मूल रूप विदेशी शासन के अत्याचारों, उनके कारण जन्मी अनेक जन–यातनाएं तथा जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण है। दिनकर, सोहन लाल द्विवेदी, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में दिखलाई पड़ती है। इस काल में सबसे अधिक सशक्त कवि रामधारी सिंह दिनकर थे। संवेदना एवं विचार का अति सुंदर समन्वय इनमें दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविता में वैयक्तिक कुंठा, अवसाद तथा निराशा का स्थान प्रसन्नता तथा सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया ने लिया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता देश एवं युग सत्य के प्रति जागरूकता है। सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियां गांधीवाद की अभिव्यक्ति से भरपूर हैं। देश की ज्वलंत घटनाओं एवं समस्याओं का चित्रण बड़ी सफलता से इनके काव्य में हुआ है। राष्ट्रीयता के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीयता को महत्व दिया है। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों का द्योतन करने वाली प्रमुख कृति है।

छायावाद के बाद एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का उदय हुआ। प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिंदी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि भी इससे अछूते नहीं रहे। इसके अलावा रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री भी इसी काव्यधारा की देन थे। समकालीन हिंदी काव्य परिदृश्य में नागार्जुन को महत्ता प्राप्त है। इनके काव्य में ठेठपन, गहन आंचलिकता व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता पाई जाती है। प्रगतिवाद का संबंध जीवन और जगत के नये दृष्टिकोण से है। जीवन के प्रति लौकिक दृष्टि ही इस साहित्य का आधार है और यह सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। प्रगतिवादी कवि न इतिहास की उपेक्षा करता है न वर्तमान का अनादर, न ही वह भविष्य के रंगीन सपने बुनता है।

प्रगतिवाद के बाद का काल 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया गया। सन् 1943 में अज्ञेय ने 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही इसका उदय माना जाता है। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं मानते, वरन् काव्य के कलापक्ष और रूपपक्ष पर भी बल देते हैं। प्रयोग का संबंध नयी विषय–वस्तु की खोज से भी है तथा उस विषयवस्तु को प्रेषित करने का ढंग भी है। प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद ने समाज की तुलना में व्यक्ति को, अनुभव को तथा कलात्मकता को श्रेयस्कर माना।

नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन 1954 में हुआ था। व्यक्ति स्वातंत्र्य, वैयक्तिक अनुभूति की समझ, क्षणबोध, मानव की लघुता की महत्ता इस कविता की पहचान है। इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ की मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियां प्रकट हुई थीं। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की कविता है। वस्तुतः नयी कविता विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को समेटे हुए है।

नवगीत समकालीन हिंदी कविता की महत्वपूर्ण विधा है। इसकी रूपरेखा छठे दशक के उत्तरार्द्ध में तैयार की गई। विषम परिस्थितियों में, कुछ जागरूक रचनाकारों ने 'नवगीत' का उद्घोष किया। नवगीत ने अपना संबंध जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से जोड़ा। जीवन के अनुभवों को गीतों में उतारा गया। आम–आदमी के दुःख और संघर्ष के गीत गाए गए। लोकचेतना और लोकधुनों के संस्पर्श से इन रचनाकारों ने गीतिकाव्य को एक नयी गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान की।

नयी कविता के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यान्दोलनों, काव्यधाराओं और काव्य प्रवृत्तियों को ही समकालीन कविता कहा गया है। समकालीन कविता में मुख्यतः साठोत्तरी कविता, प्रगतिशील–जनवादी कविता एवं नवगीत परंपरा नामक काव्यधाराएं भी चलीं। सन् 1962 के भारत–चीन युद्ध एवं 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध और नक्सलवादी आंदोलनों के बीच धीरे–धीरे परिवर्तन की आकांक्षा ने जन्म लिया, जिसने कविता को नया प्रेरणा संसार दिया। समकालीन कविता विविध चरणों से गुजरी है। सपाटबयानी, बिंबात्मकता, यथेष्ठ का चित्रण, निषेधात्मकता, जनवादी सोच इसकी प्रधान विशेषताएं हैं। यह कविता युवावर्ग की मानसिकता का प्रतिबिंब है।

हिंदी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएं बहुत लिखी गई हैं। हिंदी में दलित साहित्य का सृजन आठवें एवं नौवें दशक से देखा जा सकता है। निराला की कविताओं में दलित चेतना से जुड़ाव और इसके प्रभाव का वृहत्तर योगदान रहा है, यह निष्कर्ष उनकी कविताई के विश्लेषण से सहज ही प्राप्त होता है। सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव मुक्ति निराला की काव्य चेतना का मूलाधार है। निराला की मानवमुक्ति की काव्य चेतना का मूलाधार दलित–चेतना से निर्मित है। नागार्जुन के काव्य में जनवादी क्रांति के स्वर व्यापक रूप

से सुनाई देते हैं। उनकी रचनाओं में जनवादी क्रांति का कार्यक्रम व्यापक है, उसका वर्ग–मोर्चा भी व्यापक है। किसान कवि नागार्जुन, मध्यवर्ग की दुम नागार्जुन, की भूमिका एक क्रांतिकारी कवि के रूप में अत्यंत गौरवपूर्ण है। दलित–चेतना के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' ने साठोत्तरी कविता में शीर्ष स्थान पाया। इस ग्रंथ में युगों से उपेक्षित दलित–चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना जो परिचय देता है, वह निश्चित ही दलित–चेतना को अमरत्व प्रदान करता है। श्री नरेश मेहता के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शबरी' में भी दलित–चेतना मुखरित हुई है। शबरी नाम की दलित नारी सवर्णों के तिरस्कार का शिकार कभी नहीं हुई। सवर्ण भी आज सहर्ष अपनी पुत्रियों का नाम शबरी रखते हैं। साठोत्तरी कविता में दलित–चेतना की प्रतीक शबरी को अनुपम एवं सम्माननीय रूप दिया गया है।

साठोत्तरी हिंदी कविता में श्री जगदीश गुप्त ने भी दलित–चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। गुप्त जी का 'शम्बूक' नामक काव्य दलित–चेतना में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। 'शम्बूक' नाम का दलित पात्र महान तपस्वी था। फिर भी घोर तपस्या करते समय उसका सिर काट दिया गया। वह भी किसी साधारण मानव ने नहीं, अपितु भगवान राम ने। दलितों के प्रति अपमान एवं शोषण तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। इस कलंक को धोने का प्रयास साठोत्तरी हिंदी कविता में हुआ है। साठोत्तरी हिंदी कविता में दलित–चेतना और जनजातीय चेतना की कड़ी में महाकवि दिनकर महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी कविता अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सिंहनाद करती है। दलित–चिंतन सदियों से शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, अपमानित जन के अधिकार हेतु संघर्ष और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद के विरोध और नकार का चिंतन है। दिनकर ने जातिवाद का विरोध करते हुए 'रश्मिरथी' में कर्ण–चरित के निर्माण को नयी भावना की स्थापना का प्रयास कहा है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रथम राष्ट्र–कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान ने ऐसे समय पर स्त्री चेतना को जगाया जब उसे केवल परदे के अंदर रहती अक्रियाशील प्राणी के रूप में देखा जाता था। उनका संपूर्ण जीवन स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने, निरंतर साहित्य लेखन तथा सामाजिक प्रगति और नारी–जागरण के लिए समर्पित रहा। 'झांसी की रानी' जैसी कालजयी कविता लिखकर उन्होंने वीरता व शौर्य की मूर्ति रानी लक्ष्मीबाई के साहस व शौर्यपूर्ण कार्यों से महिलाओं का ऐसा सुदृढ़ वर्ग तैयार किया जो शत्रुओं की नींद हराम करने में सक्षम था। कवयित्री ने समस्त नारी जाति को लक्ष्मीबाई की तरह वीरांगना बनने की प्रेरणा देकर नारी जागरण का उद्घोष किया।

आधुनिक कवियों में जाने माने कवि अरुण कमल की कविताओं में वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था के खिलाफ, आक्रोश एवं नफरत के स्वर दिखाई देते हैं, साथ ही एक मानवीय व्यवस्था के निर्माण की आकुलता भी दिखाई देती है। दलित कविता के रूप में समकालीन कविता उनकी ओर से खुलकर बोल रही है, जिसे बोलना नहीं आता। समकालीन कविता का एक बड़ा हिस्सा उनकी बोली से गुंजित दिखाई देता है। समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में होने वाला परिवर्तन भी आज की कविताओं में देखने को मिलता है।

समाज में घटित होने वाली प्रत्येक परिस्थिति साहित्य को दिशा देती है। हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। स्वाधीनता को लेकर किये गए संघर्ष ने साहित्य को दिशा दी, साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए सामाजिक परिवर्तन भी साहित्य को प्रभावित करते रहे। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन–जन में वैचारिक अभियान जगाने में तत्कालीन साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सच्ची क्रांति तो वैचारिक क्रांति थी, विचारों को झकझोरने और विदेशी सत्ता के खिलाफ एकजुट होने का काम इस काल में रचे गद्य ने किया। उस युग के लेखकों में समाज की पुनर्रचना के लिए रूढ़िभंजन के ऐसे साहस की कमी नहीं थी। साम्राज्यवाद विरोध के साथ भारत की स्वाधीनता की बड़ी स्पष्ट आकांक्षा भारतेंदु में व्यक्त हुई है कि– 'स्वतत्व निज भारत गहें'। एक अलख जगाई जा रही थी जिसमें निज भाषा उन्नति सहित आर्थिक–सामाजिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के साथ कितनी संस्थाएं, अखबार, पत्रिकाएं, रंगमंच, लोकविधाएं आदि साम्राज्यवाद के विरोध के स्वर को दूर तक ले जा रहे थे। यह विरासत अपने पूरे अग्रगामी सार के साथ प्रेमचंद, प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, शिव प्रसाद मिश्र और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसी विभूतियों में फलीभूत हुई है। इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गद्य साहित्य पर्याप्त मात्रा में पुष्पित और पल्लवित हुआ।

स्वाधीनता आंदोलन एवं देश विभाजन की त्रासदी से तत्कालीन गद्य साहित्य अछूता न रहा और साहित्य ने समाज को निरंतर दिशा देने का कार्य भी किया। स्वाधीनता आंदोलन के शुरूआती दौर में हिंदी साहित्य में 'भारतेंदु युग' रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के कुशल नेतृत्व में भारतेंदु मंडल के लेखकों ने राष्ट्रभक्ति, समाजसुधार, नवजागरण का संदेश दिया। 'भारत दुर्दशा' कृति इसका इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी साहित्य में वस्तुगत वैविध्य आया। शिल्प की दृष्टि से अनेक नये प्रयोग हुए।

स्वतंत्रता के परवर्ती युग में परंपरागत सामाजिक मान्यताएं टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा। परंपरागत मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी के मन में वितृष्णा पैदा हुई। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति एवं समाज के प्रति भी आस्था बदली। स्वाधीन भारत के साहित्यकार के सामने एक नहीं कई जटिल चुनौतियां थीं। स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ को अपनी व्यंग्य रचनाओं में उभारने के लिए हरिशंकर परसाई का स्थान शीर्ष पर है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति जितनी जटिल, छद्मपूर्ण है, परसाई की दृष्टि भी उतनी ही भेदक है। यहां ईमानदारी तो है किंतु वह मध्यकालीन वीरोचित तेवर से रहित है। परसाई की ईमानदारी आदर्श से प्रेरित है किंतु आदर्शवादी नहीं। परसाई की रचना को आजादी के बाद की स्थितियों से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। स्वाधीनता के पूर्व भारतीयों ने जीवन के घुटन भरे दिन देखे। हिंदी के सफलतम स्वाधीनोत्तर उपन्यासों का विषय भी यही रहा है। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', यशपाल का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'झूठा सच', भगवतीचरण वर्मा का 'भूले–बिसरे चित्र', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', भीष्म साहनी का 'तमस', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद' आदि ऐसे उल्लेखनीय उपन्यास हैं, जिनमें इन स्थितियों के विविध पहलू गहराई से व्यक्त हुए हैं। कहानियों में

मोहन राकेश की 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'मलवे का मालिक' तथा 'परमात्मा का कुत्ता' उन भयावह दिनों की मार्मिक स्मृतियों को साकार करने वाली कहानियां हैं।

भारत ही नहीं पूरे दक्षिण एशिया में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में चली मानवाधिकारों की हवा ने दलित चेतना को प्रवाहित करने में बड़ा योगदान दिया है। इस क्षेत्र के दलित साहित्यकार जहां एक ओर परंपरागत काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को अपर्याप्त मानते हुए साहित्य की नयी कसौटी की खोज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर वे अफ्रीका और अमेरिका की अश्वेत जातियों के साहित्य से भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। काव्यभाषा में भी इससे सुनिश्चित परिवर्तन आया है, क्योंकि दलित साहित्य मनोरंजन और आनंद के लिए नहीं, समाज को झकझोरने और जगाने के लिए लिखा जा रहा है। इसीलिए कभी–कभी उसका तेवर प्रगतिशील और जनपक्षीय साहित्य के अन्य आंदोलनों के समान प्रतीत होता है।

स्त्री चेतना व स्त्री लेखन कई प्रयोगों की गलियों से गुजरता हुआ एक नयी संस्कृति के रास्ते प्रवेश करता है। बौद्धिक और भावनात्मक रूप से जकड़े प्रेम की तलाश करती स्त्री तथा स्वविकास को अधिक महत्व देती हुई विवाह संस्था में विश्वास करती स्त्री के संघर्षों को मुखर करती रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं। आज हिंदी गद्य साहित्य में स्त्री चेतना के स्वर पूरे जोश के साथ उभरते दिखाई दे रहे हैं। आज की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री चेतना की सजीवता को शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है।

जनजातीय जीवन में सहज एवं स्वाभाविक संबंधों की लोच होती है। वे प्यार करना जानते हैं तथा प्यार पर कुर्बान होना भी। वे ईमानदार होते हैं। कर्मठ होते हैं। परिश्रमी होते हैं। जनजातीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत किसी भी प्रकार की औपचारिकता का अनुभव नहीं किया जा सकता है। हाल के वर्षों तक जनजातीय क्षेत्रों में मुद्रा का प्रचलन नहीं था। अभी भी अनेक क्षेत्रों में वस्तु–विनिमय का प्रचलन जारी है। जहां तक आर्थिक चेतना का प्रश्न है, तो बैंकों की अभी भी कोई मुकम्मल व्यवस्था नहीं है। हाट तथा पेठियों का प्रचलन है। जनजातीय साहित्य जीवन का साहित्य है। यह प्रकृति का सहयोगी, ऊंच–नीच, भेदभाव व छल–कपट से दूर है। वह समाज की नयी–नयी विचारधाराओं से परिचित हुआ है, जिनके परिप्रेक्ष्य में यह अपनी नयी पुरानी स्थितियों को तौलने लगा है। उसमें अपने होने न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यही बोध उनके साहित्य में झलकता है। जनजातीय साहित्य प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी पहचान बना रहा है। हिंदी साहिय के अंतर्गत कई जनजाति केंद्रित उपन्यास लिखे गए परंतु स्वतंत्रता के बाद ही इनकी संख्या में वृद्धि आई है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य के अंतर्गत जनजातियों के जीवन को लेकर लिखे गए प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपन्यासों में जनजातीय समाज का संपूर्ण परिवेश उभर कर आया है।

भूमंडलीकरण, उदारीकरण, उन्नत प्रौद्योगिकी एवं सूचना–तकनीक के बढ़ते इस युग में हिंदी गद्य साहित्य ने भी बदलती परिस्थितियों में स्वयं को परिवर्तित और परिवर्धित किया है। विज्ञान–प्रौद्योगिकी से लेकर तमाम विषयों पर हिंदी गद्य लिखा जा रहा है। सूचना क्रांति के दौर में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की समस्त जानकारियों को हिंदी गद्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के प्रयास तेज हो रहे हैं। साहित्य युगों का अतिक्रमण करता चलता है, इसके बावजूद उसकी रचना किसी युग–विशेष में होती है, और उस युग विशेष की समस्याएं अपने

ढंग से उसके लिए उत्प्रेरक भी बनती हैं। बीसवीं शताब्दी का अंत कैलेंडर के संदर्भ में अपना एक विशेष महत्व रखता है। आज बदलते मूल्यों से प्रभावित साहित्य में मिथकीय चेतना, आस्वादन की समस्या, अंतर्विरोध की समस्या, भूमंडलीकरण, बदलते मानवीय संबंध, सांस्कृतिक समन्वय की आवश्यकता आदि ज्वलंत समस्याओं में विवेचन–विश्लेषण हो रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी गद्य ने भी अपने पंख दूर तक फैलाये हैं।

4.18 मुख्य शब्दावली

- **वैयक्तिक** : निजी
- **लौकिक** : लोक संबंधी
- **प्रणय** : प्रेम
- **भौतिकवादी** : संसार को वास्तविक और सत्य सिद्ध करने वाला मत
- **अध्यात्मवाद** : अध्यात्म (आत्मा–परमात्मा) संबंधी सिद्धांतों को मानना
- **अभिजात** : कुलीन, विद्वान
- **युयुत्सावादी** : युद्ध का प्रबल समर्थन करने वाला
- **गह्वर** : दुर्भेद्य एवं विषम स्थान
- **शिलीभूत** : जो जमकर पत्थर हो गया हो
- **नवोन्मेषित** : नयी–नयी चीजों से युक्त

4.19 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. तीन
2. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
3. सुमित्रानंदन पंत
4. दीपशिखा
5. वैयक्तिक गीति काव्य धारा
6. हरिवंशराय बच्चन
7. रामधारी सिंह दिनकर
8. लखनऊ
9. त्रिलोचन शास्त्री
10. सन् 1943
11. अज्ञेय
12. गिरिजाकुमार माथुर
13. गजानन माधव मुक्तिबोध
14. सन् 1954
15. तीसरे तारसप्तक
16. धर्मवीर भारती
17. कुंवरनारायण
18. रघुवीर सहाय
19. छठे दशक के उत्तरार्द्ध में
20. साठोत्तरी
21. आठवें एवं नौवें दशक से
22. किसानों की पाठशाला
23. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
24. नागार्जुन
25. नागार्जुन
26. क्योंकि वह निषाद जाति का था
27. शबरी को
28. कर्ण
29. सुभद्रा कुमारी चौहन
30. मुक्ति का
31. महावीर प्रसाद द्विवेदी का
32. सरस्वती
33. प्रेमचंद ने
34. रामविलास शर्मा का
35. रामधारी सिंह दिकनर
36. जमाने को भीतर से बदलनेवाला हथियार
37. लक्ष्मीनारायण लाल
38. मन्नू भंडारी
39. यशपाल जैन
40. हरिशंकर परसाई
41. सतर्क वैज्ञानिक बोध
42. कमलेश्वर
43. 'पथ का पाप'
44. धर्मवीर भारती
45. कर्मभूमि
46. मन्नू भंडारी
47. सरस्वती
48. संत कवियों
49. नारी प्रगति का युग
50. अनिता भारती
51. मित्रो मरजानी
52. आपका बंटी
53. नासिरा शर्मा
54. सोसाइटी इन इंडिया
55. युवागृहों की
56. भाषा
57. करनट कबीलों की
58. उत्तर–पूर्व में व्याप्त विद्रोह एवं असंतोष का
59. जनजाति का
60. अर्थवाद
61. सूचना
62. भारतीयता के
63. अभिमन्यु अनंत
64. नरेश भारतीय
65. अचला शर्मा

4.20 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. उत्तर छायावादी काव्य के स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
2. राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्यधारा की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उसका महत्व प्रतिपादित कीजिए।
3. वैयक्तिक गीतिकारों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए प्रमुख गीतिकारों का परिचय दीजिए।
4. हिंदी नवगीत लेखन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना की कविताओं पर समीक्षात्मक नोट लिखिए।
6. साहित्य के भूमंडलीकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमुख छायावादोत्तर कवियों का परिचय देते हुए उनकी काव्य रचना शैली का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. प्रगतिशील और प्रयोगवादी काव्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए दोनों के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. नयी कविता और समकालीन काव्य परिवर्तनों में तत्कालीन समाज की छवि का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
4. हिंदी गद्य साहित्य के उद्‌भव एवं विकास का विवेचन करते हुए, स्वाधीनता आंदोलन और देश विभाजन में हिंदी गद्य के स्वरूप में आए परिवर्तनों का मूल्यांकन कीजिए।
5. हिंदी गद्य साहित्य में मुखरित हुए दलित चेतना के स्वरों का मूल्यांकन करते हुए समकालीन दलित साहित्य की समीक्षा कीजिए।
6. आज की महिला लेखिकाएं महिलाओं की समस्याओं को अपने साहित्य में स्वर देने एवं उनका समाधान सुझाने में किस हद तक सफल हुई हैं? समीक्षा कीजिए।

4.21 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*।
- डॉ. रामकुमार वर्मा, *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*।
- रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ. भगीरथ मिश्र, *हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास*।
- डॉ. नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, *भक्तिकालीन इतिहास*।
- डॉ. विजयेंद्र स्नातक, *भक्तिकालीन इतिहास,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।
- डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- डॉ. सुरेश चंद्र निर्मल, *साहित्यिक निबंध,* सस प्रकाशन, मेरठ।
- *हिंदी भाषा : इतिहास और वर्तमान,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।
- रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
- सुधीश पचौरी, *भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श,* प्रवीण प्रकाशन।
- डॉ. सोफिया मैथ्यू, *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना,* सूर्यभारती प्रकाशन।
- *समकालीन हिंदी साहित्य : विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
- डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *भूमिका : दलित साहित्य सृजन के संदर्भ,* कुमार पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली।
- डॉ. तेज सिंह, *अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली।

इकाई 5 हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का उद्‌भव और विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 नाटक
5.3 निबंध
5.4 उपन्यास
5.5 कहानी
5.6 एकांकी
5.7 आलोचना
  5.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना
  5.7.2 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना
  5.7.3 शुक्ल युग में आलोचना
  5.7.4 शुक्लोत्तर युगीन आलोचना एवं आलोचना के प्रकार
  5.7.5 नयी समीक्षा
5.8 जीवनी
5.9 आत्मकथा
5.10 संस्मरण
5.11 रेखाचित्र
5.12 साक्षात्कार
5.13 यात्रा साहित्य
5.14 पत्र साहित्य
5.15 डायरी साहित्य
5.16 रिपोतार्ज
5.17 दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय
  5.17.1 दक्खिनी हिंदी साहित्य का स्वरूप
  5.17.2 दक्खिनी का क्षेत्र
  5.17.3 दक्खिनी का विकास
5.18 उर्दू साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय
  5.18.1 उर्दू की उत्पत्ति एवं नामकरण
  5.18.2 उर्दू का विकास
  5.18.3 उर्दू की प्रमुख विशेषताएं
  5.18.4 उर्दू के विविध काव्यरूप
5.19 हिंदी–उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध
5.20 हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास
5.21 सारांश
5.22 मुख्य शब्दावली
5.23 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.24 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.25 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

पिछली इकाई में आपने उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना के स्वरूप को जाना। इस इकाई में हिंदी गद्य की विविध विधाओं के विकास का विस्तृत अध्ययन करेंगे। आधुनिक युग को गद्य युग के नाम से जाना जाता है। इसका कारण यह है कि गद्य की जितनी विधाओं का विकास आधुनिक युग में हुआ, उतना पूर्व में कभी नहीं हुआ। हिंदी गद्य का बहुमुखी विकास भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में ही खड़ी बोली गद्य साहित्य की विविध विधाओं के विकास का ऐतिहासिक कार्य प्रारंभ हुआ। भारतेंदु युग के पूर्व पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर परिव्याप्त हो चुकी थी। साहित्य के क्षेत्र में यह एक आंदोलन का रूप लेने लगा और भारतेंदु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि संवाहक बने। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने इस साहित्यिक आंदोलन का नेतृत्व किया और अपने निबंधों, नाटकों तथा भाषणों के द्वारा जनता में जागरण का अलख जगाना प्रारंभ किया। उनके पीछे साहित्यकारों की एक ऐसी फौज तैयार हुई जिसने न केवल आधुनिक गद्य के रूप को सजाया–संवारा, बल्कि गद्य की विविध विधाओं के द्वारा सांस्कृतिक जागरण के स्वरूप से जनता की चित्तवृत्ति में मौलिक परिवर्तन लाने का प्रयास भी किया। इसलिए भारतेंदुकालीन साहित्य को सांस्कृतिक जागरण का साहित्य कहा जाता है।

द्विवेदी युग में प्रत्येक साहित्यिक विधा का अंतर्वर्ती प्रवाह बन गया। यहां आकर खड़ी बोली विकसित और परिमार्जित रूप में प्रयुक्त होने लगी। इस युग में सभी प्रकार की गद्य विधाओं का आरंभ एवं विकास हुआ। द्विवेदी युग के पश्चात छायावादी युग में देश राजनीतिक उथल–पुथल से नई करवटें ले रहा था। राष्ट्रीयता के दायित्व बोध से पूरित साहित्यकार भी अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे थे। इस युग में गद्य विधाओं का यथार्थोन्मुखी विकास हुआ। विभिन्न गद्य विधाओं के प्रणयन में अभूतपूर्व प्रगति हुई। स्वतंत्रता के बाद लेखकों के समक्ष ज्वलंत समस्याएं खड़ी थीं। भूख, महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी आदि की मार से समाज में एक ऐसा माहौल बन गया जहां हर व्यक्ति संघर्ष कर रहा था। अब व्यक्ति का संघर्ष बाहर का न होकर अपने भीतर का था। इसलिए व्यक्ति अंतर्मुखी और स्वकेंद्रित हो गया। फलतः इस युग के लेखकों को रचना की एक व्यापक जमीन मिली। परिस्थितियों की भिन्नता ने लेखन के क्षेत्र में कई नयी विधाओं को जन्म दिया। इन नयी गद्य विधाओं के प्रणयन से साहित्य का फलक विस्तार लेने लगा। उपन्यास, कहानी, नाटक एवं निबंध तो पहले से ही बहुत लोकप्रिय विधाएं थीं, किंतु कालांतर में संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा, साक्षात्कार, यात्रा–साहित्य, पत्र–साहित्य और डायरी साहित्य भी लोकप्रिय हो गए। वर्तमान में इन विधाओं में नियमित साहित्य सृजन हो रहा है। यद्यपि परिस्थिति परिवर्तन के साथ–साथ इन विधाओं के विषय भी बदलते रहे, किंतु जन–जीवन से इनका गहरा नाता निरंतर ही बना रहा।

कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए भी न केवल सर्वथा नये प्रतीक, उपमान और बिंब प्रयुक्त हुए बल्कि फ्लैश बैक, चेतना प्रवाह आदि शैलियों के प्रयोग में गद्य का वह रूप भी विकसित हुआ जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक चित्रण की नयी पद्धति विकसित हुई और मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को अभिव्यक्ति का नया आधार प्राप्त हुआ। शिल्प और शैली की दृष्टि से हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य विकसित होता गया। इस इकाई में हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं के उद्भव और विकास का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिंदी गद्य की लोकप्रिय विधाओं से परिचित हो पाएंगे;
- हिंदी नाटक एवं रंगमंच के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी साहित्य को वैचारिक धरातल प्रदान करने वाली निबंध विधा के विकास का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- उपन्यास एवं कहानी साहित्य की विकास यात्रा को जान पाएंगे;
- हिंदी साहित्य में एकांकी विधा के स्वरूप एवं विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- हिंदी साहित्य में आलोचना की मुख्य प्रवृत्तियों और आलोचकों के योगदान का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- जीवनी एवं आत्मकथा के स्वरूप एवं अंतर की पहचान कर पाएंगे;
- संस्मरण एवं रेखाचित्र के बीच अंतर स्पष्ट कर पाएंगे;
- साक्षात्कार, यात्रा साहित्य और पत्र–साहित्य के महत्व को प्रतिपादित कर पाएंगे;
- डायरी साहित्य और रिपोतार्ज की प्रकृति एवं विकास से अवगत हो पाएंगे;
- दक्खिनी हिंदी साहित्य के इतिहास से परिचित हो पाएंगे;
- उर्दू साहित्य के इतिहास एवं हिंदी–उर्दू के पारस्परिक संबंधों की पहचान कर पाएंगे;
- हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के क्रमिक विकास का अध्ययन कर पाएंगे।

5.2 नाटक

हिंदी नाटक साहित्य का उद्भव कब से माना जाए, इस पर विद्वानों में मतभेद है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपने शोध में संवत् 1289 में लिखे गए 'गाय सुकुमार रास' को हिंदी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है। भारतेंदु जी ने अपने पिता गोपालचंद्र द्वारा लिखे 'नहषु' नाटक (1814 ई.) को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित नाटक 'आननंद रघुनंदन' को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। डॉ. सोमनाथ गुप्त, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बाबू गुलाब राय आदि विद्वानों ने इसे संस्कृत शैली का प्रथम हिंदी नाटक माना है। डॉ. विजयेंद्र स्नातक तथा डॉ. कृष्णलाल ने 'नहषु' को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक माना।

हिंदी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरंभ से होता है। सन् 1850 से अब तक के नाटक साहित्य के विकास को चार चरणों में विभाजित कर समझा जा सकता है। ये चरण निम्नवत हैं–

1. भारतेंदु युग (1850 से 1900 ई.)
2. संधि युग (1901 से 1920 ई.)

टिप्पणी

3. प्रसाद युग (1921 से 1936 ई.)

4. प्रसादोत्तर युग (1937 से अब तक)

1. भारतेंदु युग

हिंदी में नाट्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्त्तन भारतेंदु ने किया। भारतेंदु युग नवोत्थान का युग था। भारतेंदु देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा से आहत थे। अतः साहित्य के माध्यम से उन्होंने समाज को जाग्रत करने का संकल्प लिया। समाज को जगाने में नाटक सबसे प्रबल साधन सिद्ध होता है। भारतेंदु ने इस तथ्य को पहचाना और नैराश्य के अंधकार में आशा का दीप जलाने के लिए प्रयत्नशील हुए।

मौलिक नाटक

भारतेंदु जी की मौलिक कृतियों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेमयोगिनी', 'विषस्यविषमौषधम्', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', :अंधेरी नगरी' व 'सती प्रताप' हैं। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवित', 'प्रेम योगिनी', और 'पाखण्ड विडम्बना' में धार्मिक रूढ़ियों और विडंबनाओं से ग्रस्त समाज के पाखंड, आडंबर, भ्रष्टाचार आदि का नाटकीय आख्यान हुआ है।

भारतेंदु युग में अग्रेजों ने बहुत से राजाओं से उनका शासन छीन कर उनका राज्य अपने अधीन कर लिया था। अंग्रेजों के इस नीति की प्रशंसा पर गुलामी के भय के द्वंद्व की परिकल्पना 'विषस्यविषमौषधम्' प्रहसन में साकार हो उठी है। देशोद्धार की भावना का संघर्ष भारतेंदु जी के कहीं अधिक सफल नाटकों 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' में घोर निराशा के भाव के साथ प्रस्तुत होता है। 'भारत दुर्दशा' में भारत के प्राचीन उत्कर्ष और वर्तमान अधःपतन का दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है–

रोवहु सब मिलि के, आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेंदु ने राजनीतिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में नौकरशाही की सटीक आलोचना करते हुए 'अधेर नगरी' प्रहसन लिखा है। 'अंधेर नगरी' के चौपट राजा को फांसी दिलाकर नाटककार कामना करता है कि कभी इस अयोग्य राजा की तरह नौकरशाही भी समाप्त होगी और देश में कुशासन की समाप्ति होगी। अंग्रेजों के शासन से देश मुक्ति की कामना ही 'नीलदेवी' नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभरती है। साथ ही तत्कालीन समाज में तीव्रता से उठ रहे 'नारी स्वातंत्र्य' पक्ष के द्वंद्व को भी प्रस्तुत किया है।

'चन्द्रावली' और 'सती प्रताप' प्रेम की कोमल अभिव्यंजना से अभिभूत नाटक है। 'चन्द्रावली' में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन है। 'सती प्रताप' में भी पति–प्रेम का अनुकरणीय उज्जवल आदर्श है। इस प्रकार भारतेंदु के नाटकों में भी प्रेम–धारा तथा शृंगारिक मोहकता का वातावरण बना रहा है।

अनूदित और रूपांतरिक नाटक

भारतेंदु ने अंग्रेजी, बांग्ला तथा संस्कृत के हिंदी अनुवाद भी किये, जिनमें 'रत्नावली नाटिका', 'पाखण्ड विडम्बना', 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'धमंजय–विजय', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्रा राक्षस' तथा 'दुर्लभ बंधु' आदि हैं। अंग्रेजी से किये गए अनुवादों में भारतेंदु की एक

टिप्पणी

विशेषता यह भी है कि उन्होंने उनमें भारतीय वातावरण एवं पात्रों का समावेश किया है। सभी नाटकों में मानव हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीतों की योजना की है।

नाट्यशास्त्र के गंभीर अध्ययन के उपरांत भारतेंदु ने 'नाटक' निबंध लिख कर नाटक का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है। उन्होंने सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना ही नहीं की, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया है। उनके नाटकों में जीवन और कला, सुन्दरं और शिवं, मनोरंजन ओर लोक सेवा का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। भारतेंदु अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि वे अद्‌भुत नेतृत्व शक्ति से युक्त थे। वे साहित्य के क्षेत्र में प्रेरणा के स्रोत थे। फलतः अपने युग के साहित्यकारों और नाटक तथा रंगमंच की गतिविधियों को प्रभावित करने में सफल रहे। इसके परिणामस्वरूप प्रतापनारायण मिश्र, राधा कृष्ण दास, लाला श्रीनिवास दास, देवकी नंदन त्रिपाठी आदि बहुसंख्य नाटककारों ने उनके प्रभाव में नाट्य रचना की। यह भी विचारणीय है कि भारतेंदु मंडल के नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, समस्या प्रधान, प्रेम प्रधान, राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक आदि सभी कोटियों के नाटक लिखे। इस युग में लिखे गए नाटक परिमाण और वैविध्य की दृष्टि से विपुल हैं।

इस युग में लिखे गए पौराणिक धारा नाटकों में रामचरित, कृष्णचरित संबंधी तथा पौराणिक आख्यानों से संबंधी नाटक लिखे गए। इस धारा के प्रमुख नाटककारों में देवकीनंदन खत्री 'सीता हरण' और 'रामलीला', शीतल प्रसाद त्रिपाठी कृत 'रामचरित्र नाटक', अंबिकादत्त व्यास कृत 'ललिता', हरिहरदत्त दुबे कृत 'महारास', खड्गबहादुर मल्ल कृत 'कल्पवृक्ष', सूर्यनारायण सिंह कृत 'श्यामानुराग नाटिका', अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मणी परिणय', गजराजसिंह कृत 'द्रौपदी हरण', श्री निवासदास कृत 'प्रह्लाद चरित्र', बालकृष्ण भट्ट कृत 'नल–दमयन्ती स्वयंवर' और शालिग्राम लाल कृत 'अभिमन्यु' प्रसिद्ध हैं।

ऐतिहासिक नाटक धारा का प्रारंभ 'नीलदेवी' से होता है। ऐतिहासिक नाटकों में श्रीनिवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर', राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर' और राधाकृष्ण दास कृत 'महाराणा प्रताप' ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

समस्या प्रधान नाटकों में बाल–विवाह–निषेध, पर्दा–प्रथा का विरोध और विधवा–विवाह तथा स्त्री शिक्षा का समर्थन किया गया। श्री राधाचरणदास कृत 'दुःखिनी बाला', प्रताप नारायण मिश्र कृत 'काल कौतुक', बालकृष्ण भट्ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम', काशीनाथ खत्री कृत 'विधवा विवाह', बाबू गोपालराम गहमरी कृत 'विद्या विनोद' आदि नाटक नारी समस्याओं को केंद्र बिंदु मानकर लिखे गए। इन समस्या प्रधान नाटकों का मूल स्वर समाज सुधार है।

प्रेम प्रधान रोमानी नाटकों में श्रीनिवास दास कृत 'रणवीर प्रेम मोहिनी', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'मयंक मंजरी' ओर 'प्रणयिनी परिचय' आदि उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक नाटकों की परंपरा 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि द्वारा चलायी गयी थी। उसका मूल कारण सांस्कृतिक ओर राष्ट्रीय दृष्टि से उपस्थित संक्रांति काल ही था। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट से नवजागरण का आलोक विकीर्ण

टिप्पणी

हो रहा था। भारतेंदु युगीन नाटककारों ने इस जागरण को अभिव्यक्त करने के लिए प्रहसनों को चुना। इस युग में राष्ट्रीय विचारधारा को उजागर करने वाले खड्गबहादुर मल्ल कृत 'भारक आरत', अंबिका दत्त व्यास कृत 'भारत सौभाग्य', गोपालराम गहमरी कृत 'देश देशा', देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'भारत हरण' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। आलोच्य युग के अनेक सफल प्रहसनों में से बालकृष्ण भट्‌ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम', विश्वानन्दन त्रिपाठी कृत 'महा अंधेर नगरी', राधाचरण गोस्वामी कृत 'बूढ़े मुंह मुहांसे', राधाकृष्ण दास कृत 'देशी कुतिया बिलायती बोल' आदि प्रहसनों को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

आलोच्य युग के नाटक साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग के नाटक विषय–वैविध्य से पूर्ण हैं। भारतेंदु युग के नाम से अभिहित इस संक्रांति काल में उत्पन्न अनेक युग प्रश्नों, यथा– कर, आलस्य, पारस्परिक फूट, मद्यमपान, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, धार्मिक अंधविश्वास, पाखंड, छूआ–छूत, आर्थिक शोषण, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, वेश्या गमन आदि को नाटकों का विषय बनाया गया। ऐसा नहीं है कि किसी एक नाटक में इनमें से एक या दो बातों को लिया गया हो, पर अवसर पाते ही सभी बातें एक ही नाटक में गुम्फित हुई हैं। इससे कथानक में भले ही शिथिलता आ गयी हो किंतु जन जीवन की विसंगति अवश्य स्पष्ट हो जाती है। नाटकों में प्रधान रूप से समाज में व्याप्त अशांति और व्यग्रता का चित्रण हुआ है। नाटककार अपने युग के प्रति बड़े सजग दिखाई पड़ते हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से भारतेंदु कालीन नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए लिखे गए। साथ ही पाश्चात्य नाट्य शास्त्र का प्रभाव भी इन पर लक्षित होता है। पाश्चात्य ट्रेजडी की पद्धति पर दुखांत नाटक लिखने की परंपरा भारतेंदु के 'नीलदेवी' नाटक से आरंभ हुई। इस युग के नाटक एक ओर पारसी कंपनियों की अश्लीलता और फूहड़पन की प्रतिक्रिया स्वरूप उठे थे तो दूसरी ओर पाश्चात्य और पूर्व की सभ्यता की टकराहट के परिणामस्वरूप। अभिनेयता की दृष्टि से ये नाटक अत्यधिक सफल हैं। भारतेंदु तथा उनके सहयोगी स्वयं नाटकों में भाग लेते थे और हिंदी रंगमंच को स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। नाटकों के माध्यम से वे जागरण का संदेश देना चाहते थे। इसी कारण भारतेंदु काल में विरचित ये नाटक सुदृढ़ सामाजिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित थे।

2. संधियुग

भारतेंदु के अवसान के साथ परवर्ती युग में नाटक के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अपने युग की समस्याओं को नाट्य रूप प्रदान करने का जो अदम्य साहस भारतेंदु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके दर्शन द्विवेदी युग में नहीं होते। इसके कई कारण थे। प्रथम तो हिंदी के नाटककारों में नाटक के सूक्ष्म नियमों एवं विधियों की योजना की क्षमता न थी। दूसरे, नाटकों के इस उदयकाल की सामाजिक स्थिति विक्षोभ पैदा करने वाली थी। इस प्रवृत्ति ने कुछ कर बैठने की प्रेरणा तो दी किंतु भावों और विचारों को घटनाओं के साथ कलात्मक ढंग से नियोजित करने के लिए मानसिक संतुलन नहीं प्रदान किया। तीसरे, आर्य समाज के आंदोलन से लेखकों पर सुधारवादी जीवन दृष्टि और शास्त्रार्थ शैली का प्रभाव पड़ा जो निश्चय ही नाटकों के कलात्मक विकास में बाधक सिद्ध हुआ। चौथे, पाश्चात्य 'कॉमेडी' के अंधानुकरण के कारण भारतेंदु के उपरांत हिंदी

टिप्पणी

साहित्य में ही प्रहसनों की प्रवृत्ति तीव्रता से पनप उठी। प्रहसनों की वृद्धि ने साहित्यिक एवं कलात्मक अभिनयपूर्ण नाटकों की रचना में व्याघात उपस्थित किया। पांचवें, द्विवेदी युग नैतिकता और सुधार का युग था। नैतिकता ओर आदर्श के प्रतिस्थापन में इनका दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भांति उदारवादी था अतएव भारतेंदु युग की नवीनता परवर्ती युग के स्वभाव के अनुकूल न थी। कठोर नीतिवादी अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद के फलस्वरूप द्विवेदी युग भारतेंदु युग की परंपरा को अग्रसर नहीं कर सका।

उपर्युक्त सभी कारणों के फलस्वरूप आलोच्य युग में मौलिक नाटकों की संख्या बहुत कम है, अनुवाद कार्य पर अधिक बल रहा है। मौलिक नाटकों में साहित्य की दो धाराएं प्रमुख हैं– 1. साहित्यिक नाटक (शौकिया रंगमंच), 2. मनोरंजन प्रधान नाटक (व्यावसायिक पारसी रंगमंच)।

साहित्यिक नाट्य धारा को विकसित करने के उद्देश्य से अनेक नाटक मंडलियों की स्थापना की गयी; जैसे प्रयास की 'हिंदी नाटक मंडली', कलकत्ते की 'नगरी नाटक मंडल', मुज्जफ्फरपुर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिंदी नाट्य समति' सबसे अधिक पुरानी थी। सन् 1893 ई. में यह 'रामलीला नाटक मंडली' के रूप में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापकों में प्रमुख थे– पंडित माधव शुक्ल जो स्वयं अच्छे अभिनेता ओर रंगकर्मी थे और जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार प्रसार के लिए नाटकों को सशक्त माध्यम बनाया था। किंतु हिंदी रंगमंच साधन और समुचित संरक्षण के अभाव में तथा जनता की सस्ती रुचि के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया। फलतः नाटक का साहित्यिक रूप ही सामने आया। संख्या की दृष्टि से आलोच्य काल में लिखे गए नाटक कम नहीं हैं, किंतु मौलिक नाटकों के नाम पर ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों को ही नाटकों में या कथोपकथन में परिवर्तित कर दिया गया।

द्विवेदी युग में इन वृत्तियों के उत्कर्ष के लिए पौराणिक आख्यानों को निःसंकोच ग्रहण किया गया। आलोच्य युग में पौराणिक नाटकों के तीन वर्ग देखने को मिलते हैं–कृष्णचरित संबंधी, रामचरित संबंधी तथा अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं से संबंधित। कृष्ण चरित संबंधी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा', ब्रज नंदन सहाय कृत 'उद्धव', नारायण मिश्र कृत 'कंसवध', शिव नंदन सहाय कृत 'सुदामा' और बनवारीलाल कृत 'कृष्ण तथा कंस वध' उल्लेखनीय हैं। रामचरित संबंधी नाटकों में रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बड़ा', गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्रा' और गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक', नारायण सहाय कृत 'रामलीला' और रामगुलाम लाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' उल्लेखनीय हैं। अन्य पौराणिक घटनाओं से संबंधित नाटकों में महावीर सिंह का 'नल दमयन्ती', सुदर्शनाचार्य का 'अनार्य जल चरित', बांके बिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका', बालकृष्ण भट्‌ट का 'वेणुसंहार', लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी', हनुमंत सिंह का 'सती चरित्र', शिवनंदन मिश्र का 'शकुंतला', जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', बद्रीनाथ भट्‌ट का 'कुरुवन दहन' तथा माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' महत्वपूर्ण हैं।

इन नाटकों का विषय पौराणिक होते हुए भी इनमें पारसी रंगमंच के अनुरूप मनोरंजन उत्पन्न करने के लिए हास–परिहास, शोखी और छेड़छाड़ के वातावरण का ही आधार ग्रहण किया गया है।

पौराणिक नाटकों के साथ ही इस काल में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए जिनमें गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जय माल', शालिग्राम का 'पुरु विक्रम', वृंदावनलाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल', कृष्णप्रकाश सिंह का 'पन्ना', बद्रीनाथ भट्ट का 'चंद्रगुप्त', जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री' आदि प्रमुख हैं।

मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गयी। इस काल में संस्कृत, बांग्ला एवं पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद हुए।

संस्कृत से लाला सीताराम ने 'नागानंद', 'मृच्छ कटिक', 'महावीर चरित', 'उत्तररामचरित', 'मालती माधव' और 'मालविकाग्निमित्र' और कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तर राम चरित' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटकों 'हैमलेट', 'रिचर्ड द्वितीय', 'मैकबेथ' आदि का हिंदी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार मोलियर के नाटकों को लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगानेसाद श्रीवास्तव ने अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित किया।

बांग्ला नाटकों के समर्थ अनुवादकों में गोपालराम गहमरी, रामचंद्र वर्मा तथा रूप नारायण पांडे हैं। भारतेंदु युग तथा प्रसाद युग को जोड़ने वाले बीच के वर्षों में कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं मिलता।

3. प्रसाद युग

प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग प्रवर्तक व्यक्तित्व के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया। प्रसाद की आरंभिक नाट्य कृतियां सज्जन, कल्याणी परिणय, प्रायश्चित, करुणालय और राज्यश्री, द्विवेदी युग की सीमा के अंतर्गत आते हैं। प्रसाद के इन नाटकों में उनका परंपरागत रूप तथा प्रयोगों में भटकती हुई नाट्य दृष्टि ही प्रमुखता से उभर कर सामने आती है। नाटक रचना का प्रारंभिक काल होने के कारण इन कृतियों में प्रसाद की नाट्य कला का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है, वह अपनी दिशा खोजता प्रतीत होता है। यह दिशा उन्हें विशाख, अजातशत्रु, कामना, जन्मेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूंट, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी में प्राप्त हुई। इन नाटकों में प्रसाद ने अपनी विलक्षणता और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

'प्रायश्चित' हिंदी का प्रथम दुखांत मौलिक रूपक है। शिल्प विधान की दृष्टि से प्रसाद ने इसमें सर्वप्रथम पाश्चात्य नाट्य शिल्प को अपनाने का प्रयास किया है। सही अर्थों में 'राज्यश्री' प्रसाद का प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक है। 'विशाख' प्रसाद के पूर्ववर्ती और परवर्ती नाटकों में एक विभेदक रेखा है। इसका कथानक साधारण होते हुए भी देश की तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक ओर सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। यद्यपि प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक ही हैं परंतु इतिहास की पीठिका में वर्तमान की समस्याओं को वाणी देने का विचार प्रसाद ने सर्वप्रथम 'विशाख' नाटक में व्यक्त किया है। भूमिका में वे लिखते हैं, "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में बहुत प्रयास किया है।" और यह वर्तमान स्थिति परतंत्र भारत के राजनैतिक सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई थी। अपनी सत्ता को स्थायी बनाए रखने के लिए ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों में फूट डालने के लिए संप्रदायवाद, प्रांतीयवाद के हथकंडे प्रसाद से छिपे नहीं थे। अतः

इतिहास की पीठिका पर उन्होंने वर्तमान के इन प्रश्नों को यथार्थ दृष्टि से उभारते हुए समन्वयवादी आदर्श समाधान प्रस्तुत किये। युगीन सांप्रदायिक प्रभावों को आत्मसात करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण व बौद्ध धार्मिक संघर्षों को रूपायित किया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक आर्यों और नागजाति तथा आर्य नाग संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचा गया है। 'अजातशत्रु' में आर्य जनपदों का पारस्परिक संघर्ष परोक्ष रूप में युगीन सांप्रदायिक संघर्षों का ही प्रतिरूप है। इस प्रकार अपनी इन प्रौढ़ कृतियों में प्रसाद ने जातीय, क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्वान किया है। इस दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' ओर 'चंद्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'ध्रुव स्वामिनी' प्रसाद की अंतिम कृति है। अन्य नाटकों में प्रसाद विशेष रूप से राजनैतिक प्रश्नों के यथार्थ से जूझते रहे हैं परंतु 'ध्रुवस्वामिनी' में सामाजिक जीवन की वर्तमान युगीन नारी समस्या पर बौद्धिक विचार विमर्श कर यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है।

प्रसाद जी ने हिंदी नाटक की प्रवाहमान धारा को एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा किया। अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झांकी दिखाकर राष्ट्रीय आंदोलन के साथ–साथ अपने देश के अधुनातम निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेंदु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था, प्रसाद के नाटकों ने उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की।

प्रसाद जी ने अपने नाटकों की रचना स्वच्छंदतावादी नाट्य प्रणालियों को आधार बनाकर और उनके मूलभूत तत्वों, कल्पना, भावुकता, सौंदर्य प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छंदता आदि को ग्रहण किया। किंतु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमच हिंदी में नहीं था। इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके।

प्रसादयुगीन अन्य नाटक एवं नाटककार

आधुनिक हिंदी नाटक साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रसाद युग में 'प्रेमी' ने 'स्वर्ण विहान', 'रक्षा बंधन', 'पाताल विजय', 'प्रतिशोध', 'शिवासाधना' आदि नाटक लिखे। इनमें 'स्वर्ण विहान' गीति नाट्य है और शेष गद्य नाटक। प्रसाद ने जहां प्राचीन भारत का चित्रण करते हुए सत्व, प्रेम, अहिंसा व त्याग का संदेश दिया, वहां प्रेमी जी ने मुस्लिम युगीन भारत को नाट्य विषय के रूप में ग्रहण करते हुए हिंदू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के उत्थान और संगठन के लिए इनके नाटक राष्ट्रीय भावना का संचार करने वाले हैं। प्रेमी जी प्रसाद की परंपरा के अनुयायी हैं। परंतु उन्होंने प्रसाद जी की भांति अपने नाटकों को साहित्यिक और पाठ्य ही न रख कर उनको रंगमंच के योग्य भी बनाया। साहित्यिकता और रंगमचीयता का समन्वय ही उनके नाटकों की विशेषता है।

इस युग में धार्मिक–पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना अत्यधिक हुई। इन नाटाकों में कलात्मक विकास विशेष रूप से नहीं हुआ, किंतु युग की नवीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। धार्मिक पौराणिक नाटककारों में अबिंकादत्त त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, सेठ गोविंदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद युग में इतिहास का आधार लेकर अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की गईं। इस समय के नाटककारों की प्रवृत्ति इतिहास की ओर विशेष रूप से गयी क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्तव्य समझा। इस काल की ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इंद्र कृत 'महाराणा संग्रामसिंह', भंवरलाल सोनी कृत 'वीर कुमार छत्रसाल', चंद्रराज भंडारी कृत 'सम्राट अशोक', ज्ञानचंद्र शास्त्री कृत 'जयश्री', प्रेमचंद्र कृत 'कर्बला', जिनेश्वर प्रसाद भायल कृत 'भारत गौरव अर्थात सम्राट चंद्रगुप्त', दशरथ ओझा कृत 'चितौड़ की देवी', और 'प्रियदर्शी सम्राट अशोक', चतुरसेन शास्त्री कृत 'उपसर्ग' और 'अमर राठौर', उदयशंकर भट्ट कृत 'विक्रमादित्य' आदि शामिल हैं। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना ओर मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की।

सामाजिक नाटकों की रचना भी बहुतायत में हुई। सामाजिक नाटकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' और 'हिंदू विधवा नाटक', प्रेमचंद कृत 'संग्राम', ईश्वरी प्रसाद शर्मा कृत 'कृषक दुर्दशा', सुदर्शन कृत 'अंजना', गोविंदबल्लभ पंत कृत 'कंजूस की खोपड़ी', बैजनाथ चावल वाला कृत 'भारत का आधुनिक समाज', नमेश्वरी प्रसाद 'राम' कृत 'अछूतोद्धार' प्रमुख हैं।

प्रसाद युग में शृंगार प्रधान नाटकों का प्रायः ह्रास हो गया था। थोड़ी–बहुत प्रतीकवादी परंपरा चल रही थी, किंतु उसकी गति बहुत धीमी थी। प्रतीक का महत्व वस्तुतः सांकेतिक अर्थ में है। इस अवधि में प्रसाद की 'कामना' के पश्चात सुमित्रानंदन पंत कृत 'ज्योत्सना' इस शैली की उल्लेखनीय रचना है। इसमें पंत की रंगीन कल्पनामयी झांकी का मनोरम स्वरूप व्यक्त होता है। इस युग के हास्य–व्यंग्य नाटकों में जी.पी. श्रीवास्तव का 'दुमदार आदमी', 'गड़बड़ झाला', 'नाम में दम उर्फ जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मियां की जूती मियां के सर', 'भूलचूक', 'चोर के घर छिछोर' 'चाल बेढ़ब', 'साहित्य का सपूत', 'स्वामी चौखटानंद' आदि प्रसिद्ध हैं। इस युग में कतिपय गीति–नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्रमुख हैं– मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ', हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'स्वर्ण विहान', भगवतीचरण वर्मा कृत 'तारा', उदयशंकर भट्ट कृत 'मत्स्य गंधा' और 'विश्वामित्र' आदि।

प्रसाद युग हिंदी नाटकों के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति लेकर आया। इस युग के नाटकों में राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण हुआ है। किंतु रंगमंच से लोगों की दृष्टि हट गयी थी। कथ्य के स्तर पर वे देश की तत्कालीन समस्याओं से जुड़े थे। इतिहास के माध्यम से अपने युग की यथार्थ समस्याओं को अंकित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

4. प्रसादोत्तर युगीन नाटक (1937 से अब तक)

प्रसादोत्तर युगीन नाटक यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। परतंत्र भारत के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य था राष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति और विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना, फलस्वरूप व्यापक स्तर पर पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण की लहर फैल गयी। इस समूचे काल में पुनर्जागरण की शक्तियों का प्रभाव होने के कारण

चेतना के स्तर पर भावुक आवेशात्मक आदर्शवादी प्रवृत्तियों से आक्रांत होना नाटककारों के लिए स्वाभाविक था। यही कारण है कि प्रसादोत्तर काल तक किंचित परिवर्तनों के साथ सभी रचनाकारों की दृष्टि मूलतः आस्था, मर्यादा और गौरव के उच्चादर्शों से मंडित रही। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी नाट्य साहित्य में इब्सन एवं शॉ द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी नाट्यान्दोलन ने भारतीय नाट्य साहित्य की गतिविधियों को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्रसाद के विरोध में समस्या नाटकों का सूत्रपात करके बुद्धिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों का लेखन प्रसाद युग में ही प्रारंभ किया था। उनके 'अशोक', 'संन्यासी', 'मुक्ति का ठहराव', 'राक्षस का मंदिर', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', 'आधी रात' आदि नाटक इसी काल के हैं। किंतु मिश्र के इन नाटकों में भारतेंदु और प्रसाद की नाट्यधारा से भिन्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। मिश्र जी नवीन चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। डारविन द्वारा प्रतिपादित विकासवादी सिद्धांत, फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत और मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांतों ने यूरोप को ही नहीं भारतीय जीवन पद्धति को भी प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप जीवन में आस्था और श्रद्धा की बजाय तर्क को प्रोत्साहन मिला। पश्चिम में इस प्रकार की बौद्धिक चेतना ने समस्या नाटक को जन्म दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मिश्र जी ने हिंदी नाटकों में भावुकता, रसात्मकता और आनंद के स्थान पर तर्क और बौद्धिकता का समावेश किया। 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में पश्चिम के उन्मुक्त प्रेम पर भारतीय दाम्पत्य विधान की विजय दिखाई गयी। 'राक्षस का मंदिर' मिश्र जी का प्रयोगात्मक नाटक है। इसमें इब्सन की यथार्थवादी और शेक्सपीयर की स्वच्छंदतावादी नाट्य पद्धति का समन्वय देखने को मिलता है।

मिश्र जी के नाटकों के साथ हिंदी नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया है। मिश्र जी के सभी नाटक तीन अंकों के हैं। इनमें इब्सन नाट्य पद्धति का अनुसरण कर किसी भी अंक में बाह्यतः कोई दृश्य विभाजन नहीं रखा गया है यद्यपि दृश्य परिवर्तन की सूचना यत्र–तत्र अवश्य दे दी जाती है।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' उन नाटककारों में हैं जिन्होंने प्रसादोत्तर काल में नाट्य परंपरा को निर्भीक और बुनियादी यथार्थ की मुद्रा प्रदान की। उनके प्रमुख नाटक हैं–'जय पराजय', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैदी', 'उड़ान', 'भंवर', 'आदि मार्ग', 'पैंतरे', 'अलग अलग रास्ते', 'अंजो दीदी', 'आदर्श और यथार्थ' आदि। अश्क जी के प्रायः सभी नाटकों में विकसित नाट्य कला के दर्शन होते हैं। वस्तु विन्यास की दृष्टि से इनके नाटक सुगठित, स्वाभाविक, संतुलन एवं चुस्त बन पड़े हैं। उच्च मध्य वर्गीय समाज की रूढ़ियों, दुर्बलताओं, उनके जीवन में व्याप्त 'कृत्रिमता', दिखावे ओर ढोंग का पर्दाफाश करना उनके नाटकों का मूलभूत कथ्य है। यह कथ्य समाज के स्थूल यथार्थ से संबंधित है। कथ्य की स्थूलता और सतही प्रगतिशील यथार्थवादिता ही अश्क के नाटकों की सीमा है, तथापि स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के सम्मोहन से हिंदी नाटक को मुक्त करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने जीवन और समाज को एक आलोचक की दृष्टि से देखा है। इनके अनेक नाटक मंचित तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। इनका योगदान हिंदी नाटक और रंगमंच के लिए एक विशेष उपलब्धि है।

टिप्पणी

आलोच्य युग में कुछ पुराने खेमे के नाटककार; यथा– सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' आदि भी नाट्य साहित्य को समृद्ध करते रहे। सेठ गोविंददास ने 'कर्ण', 'शशि गुप्त' आदि पौराणिक नाटकों और 'हिंसा और अहिंसा', 'संतोष कहां' आदि सामाजिक नाटकों की रचना की। हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' और 'बंधन' सामाजिक नाटक हैं। गोविंद वल्लभ पंत ने आलोच्य युग में 'अंतःपुराण का छिद्र', 'सिंदूर बिंदी' और 'ययाति' नाटकों की रचना की। जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का 'समर्पण' और 'गौतम नन्द' ख्याति प्राप्त रचनाएं हैं।

इसी काल में स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक में परिवर्तन की एक नयी स्थिति दिखाई देती है। प्रसादोत्तर नाटक पहले चरण में यथार्थवादी प्रवृत्ति से अनुप्राणित हुआ और उसके साथ ही समस्यामूलक नाटक का आविर्भाव हुआ, किंतु स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ और समस्या के प्रति जागरूकता के साथ–साथ नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के कई नये आयाम उभरे। इसके अतिरिक्त स्थूल यथार्थ के प्रति नाटककार के दृष्टिकोण में भी अंतर आया।

युगीन परिवेश के ऐतिहासिक संदर्भों में पांचवें दशक तक जीवन के समस्या–संकुल न होने पर भी आम जनता की स्थिति में सुधार और परिवर्तन आने की अभी धुंधली सी आशा दिखाई दे रही थी परंतु छठे दशक के बाद से मीठे मोहक सपने चकनाचूर हो गए। जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककारों ने अपनी ऐतिहासिक एवं सामाजिक रचनाओं द्वारा कुछ सीमाओं के साथ यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया। जगदीश चंद्र माथुर ने 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा' तथा 'दशरथ नन्दन' आदि नाटकों की रचना की। इन नाटकों में क्रमशः मार्क्स एवं फ्रायड के प्रभावसूत्रों को आत्मसात करते हुए छायावादी रोमानी कथा स्थितियों की सृष्टि यथार्थवादी एवं आदर्शवादी धरातल पर की गई है। 'कोणार्क' में कलाकार एवं सत्ता के संघर्ष की समस्या धर्मपद के तार्किक उपकथनों के माध्यम से विश्लेषित हुई है परंतु 'शारदीया' एवं 'पहला राजा' की समस्याएं प्रगतिशील एवं ह्रासशील मूल्यों के संघर्ष की भूमि पर अवतरित होते हुए भी बौद्धिक एवं तार्किक प्रक्रिया के अभाव में यथार्थवादी कला की दृष्टि चिंतन शक्ति को उद्‌बुद्ध नहीं करती क्योंकि माथुर का विशेष बल आंतरिक अनुभूतियों एवं मानवीय संवेदना को जगाने पर है।

पाश्चात्य प्रभाव से स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक ने जो नये आयाम ग्रहण किये, उनकी प्रथम अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में प्रकट हुई। पश्चिम में दो महायुद्धों के बाद नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग हुए। इसके साथ ही युद्ध की परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में भी बड़ा भारी परिवर्तन आया, उसकी अभिव्यक्ति भी नाटक में हुई।

डॉ. धर्मवीर 'भारती' के 'अंधा युग' गीति–नाटक ने हिंदी गीति नाट्य परंपरा को एक नया मोड़ दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत के युद्ध को अनीति, अमर्यादा और अर्द्ध–सत्य से मुक्त माना है। इसीलिए उन्होंने उस काल को अंधायुग कहा है। इस नाटक में मिथकीय पद्धति द्वारा विगत और शाक्त का समन्वय कर, निरंतरता में आस्था उत्पन्न करने का सघन प्रयास किया गया है। 'अंधायुग' के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत के 'रजतशिखर', 'शिल्पी' ओर 'पौषर्ण' में संगृहीत गीति नाट्य, गिरजाकुमार माथुर का 'कल्पान्तर', 'सृष्टि की

टिप्पणी

सांझ', 'लौह देवता', 'संघर्ष', 'विकलांगों का देश' और 'बादली का शाप' तथा दुष्यन्तकुमार का गीतिनाटक 'एक कंठ विषयाती' आदि भी विशेष उल्लेखनीय है।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में 'अंधा कुआं', 'मादा कैक्टस', 'तीना आंखों वाली मछली', 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर', 'रक्त कमल', 'रात रानी', 'दर्पण', 'सूर्यमुख', 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'करफ्यू', 'यक्ष प्रश्न' आदि प्रमुख हैं। 'अंधा कुआं' में आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्राम्य जीवन के सामाजिक और पारिवारिक द्वंद्व का चित्रण है। 'मादा कैक्टस', 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर' और 'रक्त कमल' उनके प्रतीक नाटक हैं। 'तोता मैना' नाटक टेकनीक के नये प्रयोगों को प्रस्तुत करता है। यह नाटक लोकवृत्त पर आधारित है। 'दर्पण', 'रात रानी' समस्यात्मक नाटक हैं। 'दर्पण' में मनुष्य को अपने वास्तविक रूप की तलाश में भटकते हुए दिखाया गया है।

मोहन राकेश ने हिंदी नाटकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर एक नये युग की स्थापना की है। उनके 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे–अधूरे' नाटक निश्चय ही ऐसे आलोक स्तंभ हैं जो सुदूर भविष्य में भी हिंदी नाटक को एक नवीन गति दिशा प्रदान करते रहेंगे। मानवीय संबंधों में विघटन के कारण टूटते हुए व्यक्ति के आभ्यंतर यथार्थ का चित्रण करना इन नाटकों का केंद्रीय कथ्य एवं मूल स्वर है। 'आषाढ़ का एक दिन' कवि कालिदास और उसकी बाल–संगिनी मल्लिका के प्रेम और संघर्ष की कथा पर आधारित है। कालिदास अपने परिवेश एवं मल्लिका से कट जाने के कारण जीवन के नये अर्थ की तलाश में निकल पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सौन्दरनन्द' पर आधारित है। इस नाटक का नंद सुंदरी और गौतम दोनों से निरपेक्ष हो जाने के बाद अलगाव की स्थिति में आंतरिक सत्य की सही तलाश करने के लिए चल पड़ता है, अतः उनका जीवन बोध अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमिका पर ही उभरा है। राकेश की दृष्टि का यह यथार्थ जीवन अर्थों की खोज तक ही सीमित है। किसी परिणति तक पहुंचना राकेश का अभीष्ट भी नहीं है। इसी कारण उनके समस्त नाटकों का समापन किसी निश्चित अंत पर पहुंचकर नहीं होता। 'आधे अधूरे' द्वारा आधुनिक जीवन से साक्षात्कार कराया गया है इसमें महानगर के मध्यम वर्गीय परिवार का चित्रण है। आज के परिवार की टूटन और चूक गए आपसी संबंधों को इस नाटक में बड़े सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश ने अपनी नाट्य सृष्टि में अंतर्निहित यथार्थ को पकड़ने की चेष्टा की है। सभी नाटक रंगमंचीय संभावनाओं से पूर्ण हैं। प्रसाद जी के बाद सर्वाधिक सशक्त नाटककार हम मोहन राकेश को ही कह सकते हैं।

मोहन राकेश के बाद सुरेंद्र वर्मा के नाटक 'द्रोपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवां सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं।

अधुनातन नाटककार मुद्रा राक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, शंकर शेष और भीष्म साहनी भी क्रमशः अपने नाटकों 'योर्स फेथफुली', 'तेंदुआ', 'मरजीवा', 'रोशनी एक नयी है', 'रसगंधर्व', 'एक और द्रोणाचार्य' तथा 'हानूश' के माध्यम से व्यवस्था से संदर्भित समाज एवं व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक यथार्थ संबंधी प्रश्नों से जूझ रहे हैं। इन्होंने जहां एक ओर वर्ग–वैषम्यों की चेतना को जाग्रत करके व्यवस्था के ह्रासशील रूपों का यथार्थ चित्रण किया है वहीं सत्ता के दबाव में पिस रहे आम आदमी की करुण नियति और उससे उत्पन्न संत्रास

टिप्पणी

का भी रूपायन किया है। नये नाटककार सत्यदेव दुबे, रमेश उपाध्याय, रामेश्वर प्रेम, शरद जोशी, गिरीराज किशोर, सुशील कुमार सिंह, बलराज पंडित, मृदुला गर्ग, सुदर्शन चोपड़ा, प्रभात कुमार भट्‌टाचार्य, गंगा प्रसाद विमल, रमेश बक्षी, भगवतीचरण वर्मा, इंद्रजीत भाटिया नये नाटक लिख कर आंतरिक यथार्थ बोध की संपुष्टि में योग दे रहे हैं।

आज की हिंदी नाटकों की उपलब्धि पर विचार करें तो हम पाते हैं कि हिंदी नाटक ने अपनी निरर्थकता और कलाहीनता के घेरे को तोड़कर उल्लेखनीय सर्जनात्मकता प्राप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाया है।

5.3 निबंध

गद्य साहित्य की विविध विधाओं के साथ ही हिंदी निबंध लेखन की शुरुआत भी भारतेंदु युग से होती है तथा इसके विकासक्रम को चार सोपानों में विभक्त किया जाता है–

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)
2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से सन् 1920 तक)
3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)
4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)

हिंदी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अधिकांश निंबध 'भारतेंदु ग्रंथावली' भाग 3, 'भारतेंदु कला' भाग 4 तथा 'भारतेंदु के निबंध' में संकलित हैं। भारतेंदु के निबंधों के विषय ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा इतिहास, धर्म, दर्शन, पुरातत्व आदि तक व्याप्त है। उन्होंने विषय को प्रस्तुत करने में व्यंग्य विनोद की शैली को प्रमुखता दी है, जिससे निबंधों में शुष्कता नहीं आ पाई है। भाषा सर्वत्र सधी हुई तथा विषयानुरूप है। 'खुशी', 'होली', 'त्योहार', 'सूर्योदय', 'भूकम्प', 'स्वर्ग में विचार सभा', 'कंकड़ स्तोत्र', 'अंग्रेजी स्तोत्र' आदि अनेक कतिपय प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय निबंध हैं।

भारतेंदु युग के दूसरे महत्वपूर्ण निबंधकार पं. बालकृष्ण भट्‌ट हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार एडीसन से की है। भट्‌ट जी की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप उनके निबंधों में उभर कर आया है। भट्‌ट जी ने अपने जीवन काल में सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, नैतिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर एक हजार से ऊपर निबंध लिखे थे। इसमें से कुछ 'साहित्य सुमन' तथा 'भट्‌ट निबंधावली' (भाग एक एवं दो) में संकलित है। 'नाक', 'कान', 'बातचीत' जैसे साधारण से प्रतीत होने वाले विषयों पर निबंध लिखने में इन्हें महाराथ हासिल था। हास्य–व्यंग्य और गंभीरता का जैसा सहज संगुंफन इनके यहां है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इनके व्यंग्य मन पर सीधी चोट करते हैं। इनमें शैलीगत वैविध्य भी पर्याप्त मात्रा में है।

भारतेंदु युग के तीसरे उल्लेखनीय निबंधकार पं. प्रताप नारायण मिश्र हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार स्टली से की है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निबंधों में जिस व्यंग्य विनोदपूर्ण शैली का समावेश किया था उसका

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. भारतेंदु के पिता ने कौन–सा नाटक लिखा था?
2. हिंदी नाटक में नवोत्थान का युग किस युग को माना जाता है?
3. 'सीता हरण' नामक पौराणिक नाटक किसकी रचना है?
4. 1983 में स्थापित 'रामलीला नाटक मंडली' के संस्थापकों में प्रमुख नाम किसका था?
5. 'जनमेजय का नाग यज्ञ' नामक नाटक किसकी रचना है?
6. 'स्वर्ग की एक झलक' के नाटककार का नाम बताइए।
7. कथाकार प्रेमचंद ने कौन–सा नाटक लिखा?

टिप्पणी

समुचित विकास करने वाले निबंधकारों में पं. प्रताप नारायण मिश्र का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। हास्य–व्यंग्य के प्रति इनका कितना सम्मान था इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इन्होंने अपने निबंधों के शीर्षक तक ऐसे रखे हैं जिनसे पाठक इनकी इस विशेषता से अनायास परिचित हो जाता है, 'बंदरों की सभा', 'सोने का डंडा और पोंडा', 'समझदार की मौत' आदि शीर्षक इसी कथन की पुष्टि करते हैं। 'बात', 'दांत', 'आप', '1', '2' जैसे अत्यंत सामान्य से प्रतीत होने वाले विषयों पर चमत्कारपूर्ण निबंध लिखने में भी इन्हें कमाल हासिल था। 'निबंध नवनीत', 'प्रताप पीयूष' और 'प्रताप समीक्षा' इनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं।

भारतेंदु युग के अन्य लेखकों में यदि बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' शब्द विन्यास की अद्‌भुत छटा तथा आनुप्रासिक शब्दावली के लिए प्रख्यात हैं तो पं. मोहन लाल विष्णु लाल पांड्या सामयिक घटनाओं तथा भौगोलिक विवरणों से भरपूर निबंध लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। पं. अंबिका दत्त व्यास, काशीनाथ खत्री, पं. महादेव दूबे, पं. मुरलीधर पाठक, पं. हरिमुकुंद शर्मा, पं. हरिश्चंद्र उपाध्याय आदि इस युग के कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं।

भारतेंदु युगीन निबंध साहित्य विषय वस्तु तथा रचना शिल्प, दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे गए। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक आदि सभी का विषयानुरूप प्रयोग किया गया। हास्य–व्यंग्यात्मक शैली तो इस युग की एक अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता है। इस युग के प्रायः सभी निबंधकार अपने युग की विभिन्न प्रत्रिकाओं के संपादक थे। इस युग का अधिकांश निबंध साहित्य 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद चंद्रिका', 'हिंदी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'आनंद कादंबिनी', 'मित्र विलास', 'भारत बंधु', 'भारत जीवन' आदि में प्रकाशित हुआ है। इसका एक स्वाभाविक एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि इस युग के निबंधकारों की भाषा अत्यंत सधी हुई है। परिणामतः हिंदी निबंध साहित्य का यह पहला सोपान अपने सामान्य विषय चयन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण प्रत्येक सहृदय पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ता है।

2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से सन् 1920 तक)

हिंदी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान सन् 1901 से सन् 1920 तक माना जाता है। इस युग का लगभग संपूर्ण साहित्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का परिणाम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं सन् 1901 में बेकन के तेईस निबंधों के हिंदी अनुवाद किये थे जो सरस्वती पत्रिका में छपे थे। सन् 1903 में तो उन्होंने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार भी संभाल लिया था। इस दायित्व का निर्वाह उन्होंने सन् 1920 तक किया। आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य अनेक लेखकों ने इस कालखंड के निबंध साहित्य को समृद्ध किया उनमें सर्वश्री माधव प्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, बाल मुकुंद गुप्त, अध्यापक पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं. पद्‌म सिंह शर्मा, मिश्रबंधु, गणेश शंकर विद्यार्थी, गौरी शंकर हीरा चंद ओझा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. श्याम सुंदर दास प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक कुशल संपादक, सुधी आलोचक तथा उपयोगितावादी निबंधकार थे। निबंध लेखक के रूप में उनका उद्देश्य पाठकों का ज्ञान वर्द्धन करना था।

टिप्पणी

अतएव उन्होंने अपने निबंधों के विषय भी प्रायः ऐसे चुने हैं जो पाठक को नयी जानकारी देने वाले हैं। 'जर्मनी में संस्कृत भाषा का अध्ययन–अध्यापन', 'सर विलियम जोंस ने संस्कृत कैसी सीखी', 'कवि कर्तव्य', 'कवि और कविता' आदि निबंधों के शीर्षक तक इस कथन की पुष्टि करते हैं। 'हंस का नीर–क्षीर विवेक', 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता', 'महाकवि माघ की राजनीति' आदि उनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। आचार्य द्विवेदी का निबंध साहित्य 'रसज्ञ रंजन', 'संचयन', 'साहित्य सीकर', 'लेखांजलि' आदि संग्रहों में संकलित है।

पं. माधव प्रसाद मिश्र ने सांस्कृतिक तथा विचार प्रधान निबंध लिखने के साथ–साथ भावप्रधान निबंध भी पर्याप्त मात्रा में लिखे। 'सब मिट्टी हो गया' इनका सर्वश्रेष्ठ निबंध माना जाता है। 'रामलीला', 'जीवन संग्राम में विजय पाने के उपाय', 'आत्माराम की टें टें' इनके कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंध हैं। तार्किक शैली, तत्सम प्रधान पदावली, पद–पद पर उद्धरण इनकी निबंध शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। इनके निबंध 'माधव प्रसाद मिश्र निबंध माला' में संकलित हैं।

द्विवेदी युग के निबंधकारों में सबसे प्रखर व्यक्तित्व बालमुकुंद गुप्त का है। गुप्त जी पत्रकार थे तथा 'भारत मित्र' का संपादन करते थे। इससे पूर्व ये उर्दू के कई पत्रों का संपादन कर चुके थे। अतएव ये हिंदी में उर्दू की व्यंग्य शैली को साथ लेकर आए। इनकी प्रसिद्धि भी मुख्यतः सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर लिखे गए उन व्यंग्यात्मक निबंधों के कारण है जो 'शिव शंभु का चिट्ठा' तथा 'चिट्ठे और खत' में संकलित हैं। इसमें 'शिव शंभु का चिट्ठा' अधिक लोकप्रिय है। इस चिट्ठे में लॉर्ड कर्जन के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध लिखे गए वे आठ निबंध संकलित हैं जो 'भारत मित्र' तथा 'जमाना' पत्र–पत्रिकाओं में सन् 1904 से सन् 1905 ई. तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। ये चिट्ठे अपने समय में कितने लोकप्रिय थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब ज्योतींद्रनाथ बनर्जी ने इन्हें अंग्रेजी में अनूदित करके प्रकाशित किया तो पूरा संस्करण हाथों–हाथ बिक गया। ये रचनाएं पाठक को तद्युगीन राजनीतिक चेतना से ही परिचित नहीं करातीं अपितु हिंदी भाषा की व्यंजना शक्ति एवं संप्रेषणीयता का अत्यंत पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह ने इस युग के निबंध साहित्य को नीरस निर्वैयक्तिकता से मुक्त करके भावावेश एवं कल्पना की एक ऐसी उड़ान दी है जिसका विकास हमें छायावाद में देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से मनुष्य के भावना जगत को छूना चाहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी शैलीगत विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए लिखा है, "उनकी लाक्षणिकता हिंदी गद्य साहित्य में नयी चीज थी। ....भाषा और भाव की एक नयी विभूति उन्होंने सामने रखी।" 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी ओर प्रेम', 'सच्ची वीरता' तथा 'कन्यादान' इनके अत्यंत प्रसिद्ध निबंध हैं। इन्होंने कुल आठ निबंध लिखे हैं जो 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक' के निबंध में संकलित हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह के समान चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने भी बहुत थोड़े निबंध लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित थे तथा सप्रमाण एवं अधिकारपूर्वक लिखने में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि इन्होंने गूढ़ शास्त्रीय विषयों से लेकर

टिप्पणी

सामान्य विषयों तक पर साधिकार लिखा है। अर्थगर्भित वक्र शैली तथा पांडित्यपूर्ण हास का जैसा सुखद सम्मिश्रण उनके लेखन में मिलता है वैसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है। 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' तथा 'न्याय बेटा' इनके उल्लेखनीय निबंध हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के भाव एवं मनोविकार संबंधी निबंध तथा 'कविता क्या है' आदि कतिपय अन्य निबंध इसी युग में प्रकाशित हुए। उन्होंने अपने निबंधों में गंभीर विचारात्मक चिंतन, तार्किक क्रम तथा प्रभावी व्यंजना पर बल दिया और इस प्रकार निबंध को लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विद्या के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके निबंधकार रूप का पूर्ण उत्कर्ष छायावाद युग में देखने को मिलता है क्योंकि तभी उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'चिंतामणि भाग 1' तथा 'चिंतामणि भाग 2' का प्रकाश हुआ।

सर्वश्री गोविंदनारायण मिश्र, पं. पद्मसिंह शर्मा, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा डॉ. श्यामसुंदर दास इस युग के अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं। पं. गोविंदनारायण मिश्र ने साहित्यिक एवं सामयिक विषयों पर निबंध लिखे।

पं. पद्म सिंह शर्मा बहुभाषाविद् थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिंदी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं में इनकी एक समान गति थी। इन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, कथात्मक, भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे किंतु इन सभी में इनकी विनोदप्रियता का गुण एक समान है।

प्रसिद्ध पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ श्री गणेश शंकर विद्यार्थी अपने वैयक्तिक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। बोल–चाल की सामान्य भाषा तथा आत्मव्यंजक वक्रता प्रधान शैली इनके निबंध लेखन की मूल विशेषताएं हैं। त्याग और बलिदान संबंधी विषयों पर इन्होंने जो निबंध लिखे हैं, वे पाठक को अभिभूत कर देते हैं।

डॉ. श्याम सुंदर दास इस युग के विचारात्मक निबंधकार हैं। इन्होंने प्रायः भाषा एवं साहित्य विषयक निबंध ही अधिक लिखे हैं। इनका सारा ध्यान इस बात की ओर केंद्रित रहा है कि विश्वविद्यालयों में हिंदी को उच्च शिक्षा के अनुरूप गौरव प्राप्त हो सके। 'समाज और साहित्य', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', 'हमारी भाषा', 'हिंदी गद्य के आदि आचार्य' इनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। कथ्य का स्पष्ट एवं विश्लेषणात्मक विवेचन इनकी निबंध शैली के उल्लेखनीय गुण हैं।

इस युग में साहित्य और भाषा विषयक ही नहीं अपितु इतिहास एवं पुरातत्व, भूगोल, धर्म, अध्यात्म, विज्ञान आदि से संबद्ध विषयों पर काफी निबंध लिखे गए। इस युग में भाषा परिष्कार पर पर्याप्त बल दिया गया।

3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)

हिंदी निबंध की विकास यात्रा का तीसरा सोपान 1921 से 1940 तक माना जाता है कुछ आलोचकों ने इस युग को छायावाद और कुछ ने उत्कर्ष काल की संज्ञा दी है।

इस युग के सर्वप्रमुख निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं। उनके अतिरिक्त सर्वश्री बाबू गुलाबराय, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, वियोगी हरि आदि अन्य अनेक निबंधकारों ने इस

टिप्पणी

युग के निबंध साहित्य को समृद्ध किया। शांतिप्रिय द्विवेदी तथा बाबू गुलाबराय का कृतित्व परवर्ती युग में भी देखने को मिलता है।

हालांकि शुक्ल जी के भाव एवं मनोविकार विषयक निबंध सन् 1912 से 1919 की कालावधि के मध्य प्रकाशित हो चुके थे। इस युग में उनके निबंधों का संग्रह 'विचार–वीथि' प्रकाशित हुआ। कालांतर में इस संग्रह के निबंध अपने परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिवर्द्धित रूप में 'चिंतामणि' में संकलित हो गए। चिंतामणि भाग दो के तीन आलोचनात्मक निबंध तथा जायसी ग्रंथावली, भ्रमरगीत सार आदि की भूमिका के रूप में लिखे गए समालोचनात्मक निबंध भी इसी युग में प्रकाशित हुए। आचार्य शुक्ल का निबंध साहित्य उनकी आंतरिक प्रेरणा तथा अभिरुचि का परिणाम है। निबंध कला के क्षेत्र में शुक्ल जी का योगदान यह है कि उन्होंने निबंध को सामान्य लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। शुक्ल जी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंध उनके मनोवैज्ञानिक निबंध हैं। मानव मन की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म एवं सुव्यवस्थित विवेचन करने में उन्हें महारात हासिल है। क्रोध कैसे पैदा होता है, उसका फैलाव किस प्रकार होता है, किन परिस्थितियों में वह वैर में परिणत हो जाता है, आदि बातों को बड़ी खूबसूरती के साथ शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी की खूबी यह है कि विभिन्न मानव वृत्तियों का विवेचन करते समय उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि यह विवेचन मनोविज्ञान की पुस्तक के समान नीरस एवं बोझिल न बन जाए।

बाबू गुलाबराय इस युग के ऐसे निबंधकार हैं जिनका लेखन द्विवेदी युग में प्रारंभ हुआ था और जिन्होंने इस युग में पर्याप्त मात्रा में लिखने के साथ–साथ शुक्लोत्तर युग में भी खूब लिखा। इन्होंने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य–व्यंग्यमूलक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे। वैयक्तिकता, अनुभूति–गहनता, व्यंग्य–विनोद तथा सुबोधता इनकी निबंध शैली के कुछ प्रमुख गुण हैं। 'ठलुआ क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएं' इनके निबंधों के कुछ उल्लेखनीय प्रतिनिधि संकलन हैं।

शुक्ल युग के जिन निबंधकारों ने वैयक्तिकता को निबंध कला का एक अनिवार्य गुण मानते हुए उसे अपने निबंधों में प्रमुख स्थान दिया उनमें पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये एक बहु पठित व्यक्ति थे तथा इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इस अध्ययन का प्रभाव इनके निबंधों पर भी पड़ा है। आध्यात्मिक एवं आलोचनात्मक निबंधों पर इन्होंने खूब खुलकर लिखा है। इनके निबंधों की भाषा में शुद्धता के प्रति आग्रह दिखलाई देता है किंतु इससे वह बोझिल नहीं बनी है। 'पंच पात्र', 'विश्व साहिय', 'मकरंद बिंदु', 'कुछ और कुछ', 'बख्शी जी के निबंध' आदि संग्रहों में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

इस युग में सियारामशरण गुप्त ने अत्यंत हृदयग्राही निबंध लिखे। सावधानीपूर्वक किसी प्रसंग या प्रतीक का चयन करते हुए गांधीवादी दर्शन को ग्रामीण जीवन एवं ग्राम्य प्रकृति के साथ प्रस्तुत करने में सियारामशरण को स्पृहणीय सफलता प्राप्त हुई है। यत्र–तत्र निर्मल हास्य के छींटे तो सोने में सुहागे का काम करते हैं। 'शुष्कोवृक्षः', 'घूंघट', 'घोड़ागाड़ी', 'छुट्टी', 'ऋणी', 'एक दिन' आदि इनके कुछ उल्लेखनीय निबंध हैं। 'झूठ सच' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है।

टिप्पणी

छायावादी कवियों में सर्वाधिक निबंध सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखे। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि पक्ष का सहज समन्वय है, हास्य व्यंग्य का मर्मस्पर्शी विधान है, कविसुलभ भावात्मकता एवं चित्रमयता है। कथ्य की दृष्टि से इनके निबंधों का बहुलांश साहित्य समीक्षा से संबद्ध है तो शैली की दृष्टि से इनके यहां बहुविध प्रयोग मिलते हैं। 'पंत जी और पल्लव', 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म', 'मेरे गीत और मेरी कला', 'रूप और नारी', 'चरखा', 'महात्मा जी', 'नेहरू जी से एक भेंट' इनके कतिपय उल्लेखनीय निबंध हैं। 'प्रबंध पक्ष', 'प्रबंध प्रतिमा', 'प्रबंध पूर्णिमा', 'चाबुक', 'चयन' आदि इनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत ऐसे छायावादी कवि हैं जो निबंध लेखन के क्षेत्र में क्रमशः 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', 'शृंखला की कड़ियां' तथा 'गद्य–पद्य' नाम्नी कृतियों के कारण स्मरण किये जाते हैं। जयशंकर प्रसाद के निबंध उनके व्यापक अध्ययन और सूक्ष्म चिंतन के परिचायक हैं तो महादेवी वर्मा के निबंधों में भारतीय नारी की समस्याओं के मार्मिक चित्र उकेरे गए हैं। पंत के निबंध विचार प्रधान होते हुए भी कवित्वपूर्ण गद्य शैली के परिचायक हैं।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र अपने भावात्मक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। हास्य–व्यंग्य की मीठी चुटकियों से समवेत इनके निबंध में छोटे–छोटे वाक्यों तथा बोलचाल की भाषा का ऐसा सधा हुआ प्रयोग है कि सामाजिक परिस्थितियों का एक प्रभावी चित्र अनायास निर्मित होता चलता है। 'बुढ़ापा' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध निबंध है तथा 'व्यक्तिगत' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। भावात्मक निबंध लिखने वालों में सर्वश्री रायकृष्ण दास, वियोगी हरि तथा शांति प्रिय द्विवेदी का नाम भी स्मरणीय है।

वस्तुतः भारतेंदु ने जिस निबंध कला का ढांचा खड़ा किया पं. बालकृष्ण भट्ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी ने पूर्ण संस्कार किया वही निबंध इस काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन के अभिनव तत्वों के साथ विकसित हुए।

4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

हिंदी निबंध की विकास यात्रा का चौथा सोपान सन् 1941 से अब तक माना जाता है। कालावधि की दृष्टि से यह कालखंड सबसे बड़ा है। इस कालखंड के पहले दो दशकों तक निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव रहा। किंतु, बाद के दो दशकों में भावात्मक तथा व्यंग्य विनोदपरक निबंधों का लेखन हुआ। इस प्रकार आलोच्य युग के निबंध साहित्य को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. विचारात्मक निबंध
2. भावात्मक निबंध
3. हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध।

इस युग के विचारात्मक निबंध दो प्रकार के हैं। उनका एक रूप तो वह है जहां वे समीक्षाशास्त्र से जुड़े रहे हैं ओर दूसरा वह है जिसमें चतुर्दिक फैली समस्याओं को स्वतंत्र चिंतन के साथ जोड़ा गया है। विचारात्मक निबंधों पर साहित्यशास्त्र, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद आदि चिंतन सरिणयों का पर्याप्त दबाव रहा है। इसी

प्रकार से भावात्मक निबंधों के भी अनेक रंग हैं। यदि कहीं वे सांस्कृतिक विरासत तथा नवीन जीवन–बोध को लेकर चले हैं तो कहीं घुमक्कड़ी जीवन से प्राप्त लोक जीवन की गमक लिए हुए हैं। कहीं भावात्मकता का बाहुल्य है तो कहीं सांस्कृतिक स्वर प्रधान हो गया है। हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट की गयी है।

विचारात्मक निबंधों के क्षेत्र में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. नगेंद्र की पहचान उनके समीक्षात्मक निबंधों के कारण बनी तो जैनेंद्र ने स्वतंत्र चिंतन के माध्यम से अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। नवीन जीवन–बोध को सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त करते हुए विचारात्मकता तथा भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में प्रतिफलित हुआ तो सामाजिक विसंगतियों को हरिशंकर परसाई ने बहुत प्रभावी ढंग से उभारा।

आलोच्य युग में एक लंबे समय तक समीक्षात्मक निबंधों की धूम रही। इस प्रकार के निबंधों पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल की निबंध शैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस वर्ग के निबंधकारों में पहला उल्लेखनीय नाम नंददुलारे वाजपेयी का है। उनके प्रारंभिक निबंध छायावादी काव्य से संबद्ध थे जिसमें उन्होंने उसके अंतः सौंदर्य को उद्‌घाटित करते हुए उसकी उपलब्धियों और संभावनाओं का सफल संधान किया था। तदनंतर उन्होंने अपने निबंधों में साहित्यकार की अंर्तवृत्तियों का विश्लेषण किया। साहित्य को किसी वाद से जोड़ना उन्हें कभी काम्य नहीं रहा। आस्था तथा मानव संबंधों की संपन्नता को उन्होंने उच्चकोटि के साहित्य का एक अनिवार्य तत्व माना। अपने जीवन काल में उन्होंने शताधिक निबंध लिखे जो 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', 'नया साहित्य : नये प्रश्न', 'प्रकीर्णिका', 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' आदि पुस्तकों में संकलित है।

शांतिप्रिय द्विवेदी ने आचार्य नंददुलारे वाजपेयी से सर्वथा भिन्न प्रकार के निबंध लिखे। उन्होंने साहित्य समीक्षा के साथ–साथ सांहित्येतर विषयों पर भी निबंध लिखे। व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए संस्कारिता को एक अनिवार्य उपकरण मानते हुए उन्होंने अपने कथ्य का आत्मीयतापूर्ण प्रतिपादन किया। 'वृन्त और विकास', 'धरातल', 'साकल्य', 'आधान', 'चारिका', 'समवेत' आदि में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। शांति प्रिय द्विवेदी के समान रामधारीसिंह दिनकर ने भी अपने वैचारिक चिंतन का आत्मीय प्रतिपादन किया। उनके निबंधों में मानवीय आस्था अत्यंत सहज ढंग से प्रतिफलित हुई है। 'अर्द्ध नारीश्वर', 'मिट्‌टी की ओर', 'रेती के फूल' आदि संग्रहों में संकलित निबंधों में उनकी यह आस्था अत्यंत सहज ढंग से उभर कर आई है।

नंददुलारे वाजपेयी तथा शांतिप्रिय द्विवेदी के समान डॉ. नगेंद्र की प्रारंभिक पहचान भी छायावादी काव्य के समर्थ समीक्षक के रूप में हुई। समीक्षात्मक निबंध लेखन के क्षेत्र में उन्होंने वैयक्तिकता के स्वर को बरकरार रखा। 'यौवन के द्वार पर', 'वाणी के न्याय मंदिर में', 'हिंदी उपन्यास' आदि निबंधों में इस स्वर को साफ पहचाना जा सकता है। लेकिन यह आत्मत्व धीरे–धीरे कम होता चला गया और अंततः उनके निबंधों ने विशुद्ध समीक्षात्मक रूप ले लिया। विषय का सुविचारित तार्किक विभाजन, तदनंतर सुबोध स्पष्ट विवेचन और अंत में समग्र मूल्यांकन इनकी निबंध शैली की मुख्य विशेषताएं हैं। 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण', 'अनुसंधान और आलोचना', 'आलोचक की आस्था' आदि इनके प्रतिनिधि निबंध हैं जो आगे चलकर 'आस्था के चरण' में समवेत रूप में प्रकाशित हुए हैं।

निबंधकार के रूप में जैनेंद्र की पहचान उनके स्वतंत्र चिंतनपरक निबंधों से बनी है। उन्होंने धर्म ओर संस्कृत से लेकर काम, प्रेम, विवाह आदि नानाबिध विषयों पर निबंध लिखे हैं। जैनेंद्र का दार्शनिक चिंतन एकदम निजी है किंतु गांधीवादी होने के कारण उस पर सत्य, अहिंसा, आत्मसमर्पण ओर हृदय परिवर्तन का गहरा रंग है। निजीपन के गुण ने उनके निबंधों को नीरस नहीं होने दिया है। 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय' और 'प्रेम', 'सोच–विचार', 'मंथन', 'इतस्ततः' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

वैयक्तिकता के संस्पर्श से संपृक्त निबंध लिखने वालों में अज्ञेय का नाम भी शीर्ष पर है। 'त्रिशंकु', 'आत्मने पद', 'आलवाल', 'सब रंग और कुछ राग', 'भवन्ति', 'लिखि कागद कोरे', 'अंतरा' उनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं। उनके प्रारंभिक निबंध मनोविश्लेषणवाद के आधार बना कर लिखे गए हैं। उन पर फ्रायड, एडलर तथा जुंग के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समय के साथ–साथ अनेक विचारों में संक्लिष्टता आती चली गयी और उन्होंने समाज, संस्कृति ओर वैयक्तिक मान्यताओं के संबंध में सूक्ष्म चिंतन से ओत–प्रोत निबंध लिखे।

मनोविश्लेषण को आधार बनाकर निबंध लिखने की जो पहल अज्ञेय ने की थी उसे इलाचंद्र जोशी तथा डॉ. देवराज उपाध्याय ने गतिशील रखा। 'साहित्य सर्जना', 'विवेचना', 'साहित्य संतरण', 'विश्लेषण' और 'साहित्य चिंतन' इलाचंद्र जोशी के निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

इस युग में मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर भी निबंध लिखे गए। इस धारा का उन्नयन प्रो. प्रकाशचंद्र गुप्त ने किया। शास्त्रीय वाग्जाल और पांडित्य प्रदर्शन से अलग रह कर सरल एवं स्पष्ट विवेचना करना इनके लेखन की उल्लेखनीय विशेषता है। 'नया हिंदी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। शिवदान सिंह चौहान ने अपने गंभीर और संतुलित लेखन के माध्यम से प्रगतिशील लेखन के आंदोलन को गतिशील रखा। निर्वैयक्तिक शैली में लिखे गए इनके निबंधों में वैज्ञानिक विवेचन तथा मताग्रह की वैचारिक प्रवृत्ति मिलती है। 'साहित्यानुशीलन', 'प्रगतिवाद', 'आलोचना के मान' आदि में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। यशपाल तथा भगवत शरण उपाध्याय ने भी जीवन और साहित्य को इसी दृष्टि से देखा–परखा। यशपाल ने समाज की सड़ी–गली रूढ़ियों तथा ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का जोरदार खंडन किया। यशपाल के प्रतिनिधि निबंध 'न्याय का संघर्ष' और 'बात–बात में बात' में संकलित है तथा भगवतशरण उपाध्याय के प्रतिनिधि निबंध 'ठूंठा आम', 'सांस्कृतिक निबंध' एवं 'साहित्य और कला' में संकलित है।

छायावादोत्तर युग में निबंध लेखन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण पहचान बनाने वाले निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वोपरि है। साहित्यिक–सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त इनके निबंधों में कथ्य की अनौपचारिकता और शैली की सादगी के साथ–साथ विद्वता, गंभीरता और सरसता का मणिकांचन योग मिलता है। विचारात्मकता और भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य इनके निबंधों की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

प्राचीन साहित्य और संस्कृति में पूरी तरह रचे–बसे होने के बावजूद ये कहीं भी मोहासक्त नहीं दिखते। इनकी दृष्टि में अतीत की सार्थकता भविष्य निर्माण के उपयोग में है। 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'कुटज' उनके कतिपय बहु प्रसिद्ध निबंध हैं। 'विचार और वितर्क', 'अशोक के फूल', 'कल्पता' और 'कुटज' में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने हजारी प्रसाद द्विवेदी से भिन्न प्रकृति के भावप्रधान निबंधों की रचना की। माखनलाल चतुर्वेदी के निबंधों में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना को भावात्मक शैली में रूपायित किया गया है। इनके निबंधों को पढ़ते समय गद्य में काव्य का–सा आनंद मिलता है। 'अमीर–इरादे, गरीब इरादे' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है। बेनीपुरी के निबंधों में भावात्मकता का स्वर समाजवाद की धुरी पर अवलंबित है। इनके निबंधों में भारतीय ग्राम जीवन का हृदयग्राही अंकन है। 'वन्दे वीणा विनायको' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की भावात्मकता प्रेरणा के स्वर को अपने केंद्र में लिए हुए है। आत्मपरकता के साथ–साथ तटस्थता तथा भावुकता के साथ व्यंग्य के सन्निवेश ने इनके निबंधों को अत्यंत प्रीतिकर बना दिया है। 'जिंदगी मुस्करायी' तथा 'बाजे पायलिया के घुंघरू' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

भावात्मक निबंधों को घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों से समृद्ध करने वाले निबंधकारों में राहुल सांकृत्यायन, देवेंद्र सत्यार्थी और भदन्त आनंद कौसल्यायन के नाम उल्लेखनीय हैं। देवेंद्र सत्यार्थी के निबंध माटी की महक और लोकजीवन की गमक लिए हुए है।

भदन्त आनंद कौसल्यायन के निबंध भी उनके घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों को निबद्ध किये हुए हैं। ये अपने कथ्य को दृष्टांत कथाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। मानवता इनके निबंधों का मूल स्वर है। इनके निबंधों में संस्मरण का तत्व अत्यंत घुला–मिला है। 'जो मैं भूल न सका', 'जो मुझे लिखना पड़ा' तथा 'रेल का टिकट' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलन है।

मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित निबंधों की जिस परंपरा की शुरुआत प्रकाश चंद्र गुप्त ने की थी उसे डॉ. रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा डॉ. नामवर सिंह ने विकसित किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध शैली को आगे बढ़ाने वाले निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेर नाथ राय के नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। विद्यानिवास मिश्र संस्कृत के प्रकांड पंडित और पश्चिमी साहित्य के अच्छे अध्येता हैं। अतएव उनके निबंधों में प्राचीनता और नवीनता का सहज मिश्रण है। 'छितवन की छांह', 'तुम चंदन हम पानी', 'कदम्ब की फूली डाल', 'आंगन का पंछी और बनजारा मन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कुबेरनाथ राय नयी पीढ़ी के समर्थ निबंधकार हैं। उनके निबंधों में आंचलिकता के साथ–साथ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय का वैभव अत्यंत रमणीय ढंग से अनुस्यूत है। 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गंध मादन', 'विषाद योग', 'मायाबीज' आदि उनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

ललित निबंधों के क्षेत्र में डॉ. धर्मवीर भारती के 'ठेले पर हिमालय', 'कहानी अनकहनी' तथा 'पश्यंती' नामक निबंध संग्रहों का महत्वपूर्ण स्थान है। हल्के–फुल्के व्यंग्य विनोद के माध्यम से हिपोक्रेसी का पर्दाफाश करने में वे माहिर हैं। भाषा एकदम आडंबरहीन और सटीक है।

आधुनिक युग के निंबध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंगत्मक निबंधों की रही है लकिन हिंदी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन कम हुआ है।

5.4 उपन्यास

उपन्यास शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के योग से बना है। 'न्यास' का अर्थ 'रखना', 'स्थापित करना' तथा 'छोड़ना' आदि होता है। न्यू इंगलिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है–"उपन्यास एक काल्पनिक गद्य कथा है अथवा इतिवृत्ति है, जो पर्याप्त दीर्घ होता है और जिसके कथानक में उन चरित्रों और कार्य–व्यापारों का चित्रण होता है जो वास्तविक जीवन के चरित्रों और कार्य–व्यापारों को निरूपित करने का प्रयास करते हैं।"

हिंदी का पहला उपन्यास कौन–सा है, इस विषय में आचार्य शुक्ल, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय तथा डॉ. श्रीकृष्ण लाल सभी एकमत नहीं हैं। कुछ लोग श्रद्धाराम फुल्लौरी का 'भाग्यवती', राधाकृष्ण दास का 'असहाय हिंद' तथा श्रीनिवास दास के 'परीक्षागुरु' को पहला उपन्यास स्वीकार करते हैं। कुछ आलोचक पाश्चात्य समीक्षा की कसौटी के आधार पर 'परीक्षागुरु' को पहला उपन्यास स्वीकार करते हैं। आलोचकों के दूसरे वर्ग का कथन है कि 'भाग्यवती' उपन्यास भले ही अंग्रेजी की औपन्यासिक कला के आधार पर न लिखा गया हो, पर विषय वस्तु की नवीनता की दृष्टि से यह हिंदी का प्रथम उपन्यास ठहरता है। सन् 1918 में प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ था। इसके प्रकाशन के साथ ही उपन्यास के विकास का नया युग प्रारंभ होता है। इसलिए उपन्यास की विकासयात्रा का आधार भी प्रेमचंद को ही बनाया जाता है। हिंदी उपन्यास के विकास को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रेमचंद पूर्ववर्ती युग
2. प्रेमचंद युग
3. उत्तर प्रेमचंद युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

1. प्रेमचंद पूर्ववर्ती युग

इस युग में श्रीनिवास दास ने 'परीक्षागुरु' नामक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा। 'परीक्षागुरु' सीधे अंग्रेजी उपन्यास से प्रभावित है। बांग्ला और अंग्रजी के अतिरिक्त हिंदी का आरंभिक उपन्यासकार संस्कृत कथा साहित्य से भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित दिखाई देता है। किशोर लाल गोस्वामी के 'पुनर्जन्म' या 'सौतिया डाह' में सुशीला तथा सुंदरी का चरित्र,

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. भारतेंदु ने अपने निबंधों में विषय को प्रस्तुत करने में किस शैली के प्रयोग को प्रमुखता दी है?
9. भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकार का नाम क्या है?
10. बालकृष्ण भट्ट ने लगभग कितने निबंध लिखे?
11. 'बंदरों की सभा' नामक निबंध के लेखक का क्या नाम है?
12. सन् 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार किसने संभाला?
13. अध्यापक पूर्ण सिंह ने कितने निबंध लिखे हैं?
14. निबंध को सामान्य लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विधा के रूप में किसने प्रतिष्ठित किया?
15. अज्ञेय के निबंधों पर किसके सिद्धांतों का प्रभाव दिखाई देता है?

वासवदत्ता तथा रत्नावली के आधार पर गठित किया गया है, जबकि देवीप्रसाद उपाध्याय के 'सुंदर सरोजनी' और जगमोहन सिंह के 'श्यामा–स्वप्न' पर भी संस्कृत कथा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अंग्रेजी के बढ़ते अध्ययन के कारण धीरे–धीरे हिंदी का उपन्यास बांग्ला प्रभाव से मुक्त होता गया और सीधे अंग्रेजी तथा अन्य पाश्चात्य साहित्यों के संपर्क में आने के कारण अपना मौलिक रूप धारण करता गया। इस युग के उपन्यासों को तीन वर्गों में बांट सकते हैं– (क) सामाजिक, (ख) ऐतिहासिक, (ग) घटना प्रधान।

सामाजिक उपन्यास एवं प्रमुख उपन्यासकार

इस युग के अधिकांश उपन्यास वैदिक, पौराणिक, आर्य समाजी तथा सनातन धर्मी विचारधाराओं का विरोध करते दिखाई देते हैं। इस युग में एक ओर ईसाई पादरी अपनी कहानियां सुनाकर अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे तथा दूसरी ओर हिंदू देवताओं के खंडन में रोचक कथाओं का निर्माण कर उपन्यास साहित्य को विकसित कर रहे थे।

'परीक्षागुरु' से पूर्व के उपन्यासों का प्रारंभ सामाजिक रचनाओं से होता है। ऐसे उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित व्यंग्य एवं हास्य रस से पूर्ण सामाजिक चित्र मिलते हैं। प्रेमनाथ शर्मा का 'नवबाबू विलास' इस वर्ग की प्रसिद्ध रचना है।

'आलेल घरेर दुलाल' और 'परीक्षागुरु' के बीच हिंदी के दो सामाजिक उपन्यास उल्लेखनीय हैं। पहला है श्रद्धाराम का 'भाग्यवती' और दूसरा है भारतेंदु हरिश्चंद्र की अपूर्ण रचना 'एक कहानी–कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। 'भाग्यवती' को आचार्य शुक्ल ने यद्यपि हिंदी का पहला उपन्यास माना है परंतु यदि सहज स्वाभाविक शैली में वैयक्तिक दृष्टिकोण से यथार्थवादी चित्रण को उपन्यास की कसौटी माना जाए तो उस पर 'भाग्यवती' खरा नहीं उतरता। फुल्लौरी जी मुख्यतः धर्मोपदेशक थे। धर्मोपदेशक तथा समाजसुधार की भावना से अनुप्राणित होकर उन्होंने 'भाग्यवती' की रचना की थी। इसी कारण भाग्यवती के साथ ही प्रायः सारे पात्रों में आदर्श गुणों की प्रतिष्ठा की गयी है। 'एक कहानी– कुछ आप बीती कुछ जग बीती' एक अपूर्ण रचना होने के कारण उसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

श्रीनिवास का 'परीक्षागुरु' उपन्यास कथा की दृष्टि से पहला उपन्यास कहा जा सकता है। उपन्यास का प्रारंभ नाटकीय ढंग से होता है जिसे कथाकार 'नयी चाल' की संज्ञा देता है। इसमें लेखक ने संस्कृत के महाभारत, फारसी के गुलश्ता, अंग्रेजी के लॉर्ड बेकन व गोल्ड स्मिथ आदि से पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया है। प्रेमचंद से पूर्व उपन्यासकार उपन्यास में अपने व्यकित्वत्व को पृष्ठभूमि में रखकर बीच–बीच में स्वयं पाठकों से वार्तालाप करने लगते हैं, पर परीक्षागुरु में यह पद्धति नहीं अपनाई गयी। सिलसिलेवार कथा कहना या अपनी बात करना कथाकार को प्रिय नहीं था। इसी कारण उपन्यासकार कथोपकथन का सहारा लेकर रहस्य को धीरे–धीरे स्पष्ट करता जाता है। युग की आवश्यकता के अनुरूप इसमें उपदेशों को बहुलता मिलती है। इस प्रकार यह एक उद्देश्य प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है।

इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यासकार बालकृष्ण भट्ट हैं। इन्हें भी 'परीक्षागुरु' की परंपरा का उपन्यासकार कहा जा सकता है। इनके तीन उपन्यास– 'नूतन ब्रह्मचारी',

'सौ जवान एक सुजान' तथा 'रहस्यमय कथा' है। 'नूतन ब्रह्मचारी' छात्र तथा छात्राओं को सन्मार्ग पर लाने के लिए लिखा गया है। 'सौ जवान एक सुजान' पर तो स्पष्ट रूप से परीक्षागुरु की छाप देखी जा सकती है।

इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय सामाजिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी प्रमुख हैं। इन्होंने लगभग पैंसठ उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यासों का मूल स्वर परंपरागत रूढ़ियों तथा नवीन सुधारवादी चेतना का संघर्ष है। युगीन ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज जैसे आंदोलनों के विरोध में सनातन धर्म को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न उनकी अधिकांश रचनाओं में मिलता है। इनके सामाजिक उपन्यासों में 'त्रिवेणी या सौभ्गयवेणी', 'लीलावती या आदर्शसती', 'राजकुमारी', 'चपला या नव्यसमाज', 'पुनर्जन्म या सौतियाडाह', 'माधवी माधव', या 'मदन मोहिनी' आदि उल्लेखनीय रचनाएं कही जा सकती हैं।

प्रेमचंद पूर्व के सामाजिक उपन्यासकारों में अयोंध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उपाध्याय जी के दो उपन्यास–'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' है। दोनों ही उपन्यास अपनी भाषागत विशेषता के कारण विशेष प्रसिद्ध हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास एवं प्रमुख उपन्यासकार

प्रेमचंद पूर्ववर्ती हिंदी उपन्यासों में अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रायः अभाव खटकता है। इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों ने इतिहास तथा उपन्यास दोनों की सहज भाव से रक्षा की है। इस युग के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यसकार किशोरीलाल गोस्वामी हैं। इस काल के अधिकांश उपन्यासकार केवल इतिहास का सहारा लेकर ही उपन्यास लेखन करते रहे। इस काल के जिन उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यासों की संज्ञा दी गयी है उनमें इतिहास का अंग बहुत थोड़ा है। पर लेखक इस बात के लिए सदैव जागरूक रहता है कि इतिहास का अनैतिक चित्रण न हो। इस युग के ऐतिहासिक उपन्यास लेखक देश के विभिन्न भागों में घूमते–फिरते रहते थे।

किशोरीलाल गोस्वामी का 'तारबा छात्र कुलकमलिनी', 'कनककुसुम या मस्तानी', 'सुल्तान रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल', 'हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी', 'लवंगलता वा आदर्शबाला', 'मल्लिकादेवी वा बंग सरोजिनी', 'लखनऊ की कब्र वा शाही महल शरा' आदि उल्लेखनीय रचनाएं कही जा सकती हैं।

गोस्वामी जी के अतिरिक्त इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में जयरामदास गुप्त का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी 'काश्मीर पतन', 'रंग में भंग', 'मायारानी', 'परिस्तान का वाजिद अली शाह' आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त युगीन उपन्यासों में मथुरा प्रसाद सिन्हा के 'नूरजहां बेगम व जहांगीर' का नाम लिया जा सकता है।

घटनात्मक उपन्यास एवं प्रमुख उपन्यासकार

प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यास की तीसरी प्रमुख धारा घटनात्मक उपन्यासों की है। इस धारा के उपन्यासों में रोमांस और रंजन– दोनों रूप दिखाई देते हैं। इनमें घटनाओं में तिलस्मी तथा ऐयारी व जासूसी कला का अद्भुत रूप प्रस्तुत हुआ है।

तिलस्मी उपन्यासों की परंपरा के प्रवर्तक देवकीनंदन खत्री हैं। खत्री जी ने 'चंद्रकांत' उपन्यास लिखकर इस परंपरा का प्रवर्तन किया तथा 'चंद्रकांता संतति', 'नरेन्द्र मोहिनी',

'वीरेंद्र वीर', 'कुसुम कुमारी', 'काजर की कोठरी', 'गुप्त गोदना' आदि कृतियों की रचना कर इस परंपरा को समृद्ध किया। इन तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों के सहारे राजकुमार और राजकुमारियों की प्रेम कहानियां वर्णित की गयी है। घटनाओं के विवेचन में विस्तृत तिलस्मों का सहारा लेकर वर्णन को रोचकता प्रदान की गयी है।

खत्री जी के अतिरिक्त इस धारा के उपन्यासाकारों में हरे कृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री के पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

जासूसी उपन्यास एवं प्रमुख उपन्यासकार

इस युग के जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी का महत्वपूर्ण स्थान है। गहमरी जी ने सन् 1868 में बांग्ला से 'हीरे का मोल' उपन्यास अनूदित किया तथा लोकरुचि से प्रभावित होकर 'जासूस' नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। गहमरी जी के उपन्यासों की संख्या लगभग दो सौ है। इनमें कल्पना के साथ बुद्धि के कौशल का भी पर्याप्त सहारा लिया गया है। गहमरी जी के उपन्यासों में प्रमुख रूप से 'अद्‌भुत लाश', 'सरकती लाश', 'खूनी कौन', 'बेगुनाह का खून', 'चक्करदार चोरी', 'माल गोदाम की चोरी' आदि उल्लेखनीय रचनाएं आ सकती हैं। गोपालराम गहमरी के अतिरिक्त इस धारा के लेखकों में रामलाल वर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

घटनात्मक उपन्यास एवं प्रमुख उपन्यासकार

यह तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासों से भिन्न होने के साथ ही मनोरंजन प्रधान भी थे। इन्हें अद्‌भुत रचनात्मक उपन्यास का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। इस काल में उपन्यासों का प्रकाशन बड़ी संख्या में हुआ। अकेले काशी से प्रकाशित उपन्यासों की संख्या पांच सौ से अधिक है। इस परंपरा में निहालचंद वर्मा ('प्रेम का फल'), प्रेम विलास वर्मा ('प्रेम माधुरी' या 'अनंगकांता'), विट्‌ठल दास नागा ('किस्मत का खेल'), बांकेलाल चतुर्वेदी ('खौफनाक खून') आदि महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इसी परंपरा में बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने इन उपन्यासों के साथ राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम की भावना का सन्निवेश कर इस रहस्य रोमांस को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान कर दी। 'प्रतिशोध', 'लालपंजा' तथा 'रक्तमंडल' आदि इस दिशा की महत्वपूर्ण कृतियां कही जा सकती हैं।

उपन्यास की उपर्युक्त इन परंपराओं के साथ ही अनूदित उपन्यासों की एक बृहद परंपरा प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यासों में देखने को मिलती है।

2. प्रेमचंद युग

प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य किसी न किसी रूप में गांधी जी और उनकी रणनीति से प्रभावित दिखाई देता है। प्रेमचंद तथा समकालीन उपन्यासकारों ने समाज के तत्कालीन विगलित रूप को अपनी कृतियों में चित्रित करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। हस युग की औपन्यासिक चेतना रोमांस, तिलस्मी, ऐयारी आदि के दायरे से निकलकर नयी समाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम खोज रही थी।

प्रेमचंद युग के अधिकांश उपन्यासकारों ने अपने को मध्यवर्ग तक ही केंद्रित रखा। प्रेमचंद यह महसूस करने लगे थे कि उपन्यास को जन आंदोलन की तरह जनता के

समीप लाना होगा और इस दिशा में उसे आदर्शवाद और कल्पना के धरातल से उतार कर यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित करना होगा। सामाजिक चेतना के साथ युगीन नारी समस्याएं भी जुड़ती गईं। टूटते समांतवादी समाज और विकासोन्मुख पूंजीवादी व्यवस्था के संधि स्थल पर प्रेमचंद का व्यक्तित्व खड़ा है। नारी की समस्या की दृष्टि से प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में वेश्यावृत्ति के विरोध को मुखर स्वर दिया।

प्रेमचंद ने अपनी कृतियों में तत्कालीन सभी समस्याओं को यथार्थवादी ढंग से देखने का प्रयत्न किया है। उनकी 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' आदि कृतियों में धार्मिक सद्‌भावना की बात किसी न किसी रूप में दुहराई गयी है, जिसका आदर्श रूप 'गोदान' में गोबर तथा मुसलमान दोस्तों के बीच देखा जा सकता है। नारी की समस्याओं के चित्रण के अंतर्गत कुछ ऐसे उपन्यासों जैसे भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'त्यागमयी', गोविंदवल्लभ पंत का 'मदारी', उषा देवी मित्रा का 'वचन का माले' में युगीन नारी के आदर्शों का खुलकर चित्रण किया गया है। विधवा की समस्या तथा उनके दोषों के निराकरण में भी युगीन उपन्यासकार प्रयत्नशील रहे हैं। इस समस्या का निदान पुनर्विवाह के रूप में भी देखा गया है। विधवा समस्या पर प्रमुख रूप से आधारित उपन्यासों में तेजरानी दीक्षित का 'हृदय का कांटा', चंद्रशेखर शास्त्री का 'विधवा के पुत्र', चतुरसेन शास्त्री का 'अमर अभिलाषा', 'आत्मदाह', गंगा प्रसाद श्रीवास्तव का 'गंगा जमुनी' आदि उपन्यास देखे जा सकते हैं।

प्रेम की दिशा में भी युगीन उपन्यासकारों ने लेखनी चला, स्वच्छंद प्रेम का चित्रण किया है। इनमें जाति, धर्म, प्रदेश आदि की सीमाओं को तोड़कर उन्मुक्त प्रेम की चर्चा की गयी है।

प्रेमचंद युग में अभिजात्य वर्ग की समस्याओं को भी यथार्थवादी ढंग से देखने का प्रयत्न किया गया है। प्रसाद के 'कलंक' के सभी सफेदपोश पात्र स्वयं वर्णसंकर है। ग्रामीण समस्याओं को लेकर इस युग में सबसे अधिक रचनाएं प्रस्तुत की गईं। इसका प्रमुख कारण अधिकांश रचनाकारों का ग्रामीण जीवन से सीधे संबद्ध होना था। प्रेमचंद का 'प्रेमाश्रय', 'कायाकल्प', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' आदि में ग्रामीण समस्याओं का स्वर पर्याप्त मुखर है। ग्रामीण क्षेत्र में छुआछूत, ऋण व्यवस्था, जमींदारी, ईर्ष्या, द्वेष, पुलिस तथा शासकों के अत्याचार, मुकदमेबाजी, बेगार, बहुविवाह, अनमेल विवाह, अकाल, अतिवृष्टि, कारखानों के लिए कृषक भूमि का अधिग्रहण आदि की समस्याएं अकेले प्रेमचंद ही नहीं युगीन अन्य उपन्यासकारों ने भी वर्णित की है। इस प्रकार प्रेमचंद तथा युगीन उपन्यासकारों ने अपने युग की आवश्यकताओं को पहचाना और उसे साहित्य के माध्यम से जनता से जोड़ा। प्रेमचंद के अतिरिक्त इस युग के उपन्यासकारों में वृंदावन लाल वर्मा, पांडेयबेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, राधिकारमण प्रसाद सिंह, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि उल्लेखनीय हैं।

वृंदावनलाल वर्मा केवल प्रेमचंद युग के ही नहीं हिंदी उपन्यासों में ऐतिहासिक परंपरा के आज भी प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ ही साथ अनेक सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। उनके ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों में 'मढ़कुंडार', 'लगन', 'संगम', 'कुंडलीचक्र', 'प्रेम की भेंट', 'प्रत्यागत', 'विराट की पद्मिनी',

टिप्पणी

'मुसाहिबजू', 'कभी न कभी', 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'अचल मेरा कोई', 'टूटे कांटे', 'अहिल्याबाई', 'भुवन विक्रम', 'माधव जी सिंधिया' आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं।

पांडेयबेचन शर्मा उग्र यथार्थवादी उपन्यासकार हैं जिन्हें कुछ आलोचकों ने प्रकृतिवादी उपन्यासकार भी कहा। उग्र ने यथार्थवादी दृष्टि से अपने युग के तथाकथित आदर्श समाज का भंडाफोड़ किया है। 'घंटा', 'चंद हसीनों के खतूत', 'दिल्ली के दलाल', 'बुधवा की बेटी', 'शराबी', 'कढ़ी में कोयला', 'फागुन के दिन चार' आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी ऐतिहासिक तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की रचनाएं प्रस्तुत की हैं। उनके उपन्यासों में अंतर्द्वंद्व की अपेक्षा बाह्य निरूपण अधिक मिलता है। 'हृदय की परख', 'खबास का ब्याह', 'अमर अभिलाषा', 'आत्मदाह', 'मंदिर की नर्तकी', 'नीलमणि', 'वैशाली की नगरवधू', 'नरमेघ', 'अपराजिता', 'धर्मपुत्र', 'शोमनाथ', 'आलमगीर', 'वयं रक्षामः', 'गोली', 'सोना' और 'खून' आदि महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

इस युग में भगवती प्रसाद वाजपेयी सबसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन्होंने लगभग तीस उपन्यास लिखे। उनका दृष्टिकोण परिवर्तनशील तथा युग सापेक्ष रहा है। इनकी 'प्रेम', 'पथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'लालिमा', 'प्रेमनिर्वाह', 'पतिता की साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें', 'निमंत्रण', 'गुप्तधन', 'चलते–चलते', 'पतवार', 'मनुष्य और देवता', 'धरती की सांस', 'भूदान', 'यथार्थ से आगे', 'विश्वास का कल' आदि महत्वपूर्ण रचनाएं कही जा सकती हैं।

इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद ने कविता तथा नाटक के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासों की रचना भी की है। आपने अपने उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि से ही उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'कंकाल', 'तितली' तथा 'इरावती' लिखे। 'इरावती' उनका ऐतिहासिक तथा अधूरा उपन्यास है। 'कंकाल' तथा 'तितली' उनके सामाजिक उपन्यास हैं। 'तितली' ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास है जिसमें अपने नाटकों के समान ही प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा सामाजिक एवं पारिवारिक विषमताओं का दिग्दर्शन कराया है। मध्यवर्ग के चित्रण की दृष्टि से उनका महत्वपूर्ण उपन्यास 'कंकाल' है।

प्रसाद के अतिरिक्त छायावादी कवियों में निराला ने भी उपन्यासों की रचना की। अपनी कविताओं में निराला जी का स्वर जितना विद्रोही था उतना उपन्यासों में नहीं है। उनके उपन्यास आदर्शवादी अधिक हैं जिसमें महिलाओं को विशेष रूप से गौरवान्वित करने का प्रयत्न किया गया है। 'अप्सरा', 'अलका', 'निरूपमा', 'प्रभावती', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्लीभाट' आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

आलोच्यकालीन उपन्यासों में विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक के तीनों उपन्यासों– 'मां', 'भिखारनी' और 'संघर्ष' का सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से विशिष्ट महत्व है। युगीन उपन्यासकारों में राधिकारमण प्रसाद सिंह ने उपन्यासों को कलात्मक दृष्टि से संवारने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। उनका चित्रण सत्यानुभूति प्रेरित है। उन्होंने आत्म–कथात्मक तथा संस्मरणात्मक शैली में भी अपने उपन्यासों की रचना की है। 'तरंगें', 'रामरहीम', 'गांधी टोपी', 'टूटा तारा', 'देव और दानव', 'नारी एक पहेली', 'सूरदास' आदि उनकी मत्वपूर्ण कृतियां हैं।

टिप्पणी

इस युग में प्रतापनारायण श्रीवास्तव उपन्यासों में आदर्श के साथ यथार्थ का समन्वय करने के समर्थक कलाकार हैं। उनकी रचनाओं में एक स्वर राष्ट्रीयता का और दूसरा इतिहास का है। 'विदा', 'विजय', 'विकास', 'बयालिस', 'विसर्जन', 'बेकसी का मजार', 'बिमुखी', 'वेदना', 'विश्वास की बेदी पर', 'वंदना' आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

इनके अतिरिक्त प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में गोंविद वल्लभ पंत का विशिष्ट स्थान है। वे मूलतः नाटककार हैं पर उपन्यासों की दिशा में आपने ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। 'प्रतिभा', 'अमिताभ', 'यामिनी', 'नौजवान', 'पर्णा' आदि इनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं। पंत जी के अतिरिक्त उषा देवी मित्रा, राहुल सांकृत्यायन, रूपनारायण पांडे, गौरी शंकर शुक्ल, रमाकांत त्रिपाठी आदि अनेक कथाकारों ने उपन्यास साहित्य को अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर सजाने और संवारने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हिंदी उपन्यास की यह यात्रा श्रद्धाराम फुल्लौरी से प्रारंभ होती हुई प्रेमचंद परवर्ती कथाकरों तक अनवरत चलती दिखाई देती है। उपन्यास कला के विकास की दृष्टि से प्रेमचंद युग अपना विशिष्ट महत्व रखता है।

3. उत्तर प्रेमचंद युग

उत्तर प्रेमचंद युग में न केवल उपन्यास अपितु गद्य की अनेक धाराओं का विकास हुआ। इस युग की तीन महत्वपूर्ण घटनाएं हैं जिनसे उपन्यास की धारा केवल प्रभावित ही नहीं रही अपितु उसमें पर्याप्त परिवर्तन भी आया। पहली घटना है, द्वितीय महायुद्ध और दूसरी है, भारत की स्वतंत्रता। तीसरी है, महात्मा गांधी की हत्या। प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य में इन सारी विभीषिकाओं का कथाकारों ने विशदता से चित्रण किया है।

उत्तर प्रेमचंद युग में मनोवैज्ञानिक एवं आंचलिक उपन्यास लिखे गए। इस युग के उपन्यासकारों ने मनोविश्लेषण, स्वप्न विश्लेषण, प्रत्ययालोकन विश्लेषण, सम्मोह विश्लेषण, शब्द स्मृति परीक्षा तथा इतिवृत्तात्मक आदि मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का सहारा लेकर उपन्यास की रचना प्रारंभ की। जैनेंद्र से प्रारंभ होकर यह धारा इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, देवराज, प्रभाकर माचवे, द्वारिका प्रसाद, नरेश मेहता, रघुवंश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, ब्रज नारायण सिंह आदि के माध्यम से निरंतर विकसित होती जा रही है।

जैनेंद्र कुमार यद्यपि मूलतः गांधीवादी हैं पर तत्कालीन परंपरागत संकीर्ण नैतिकता से निकलकर आत्मचिंतन की ओर प्रवृत्त हुए। उन्होंने प्रेमचंद युग के स्थिर मूल्यों के बाहरी ढांचे को उघाड़कर व्यक्ति की आत्मा तक पहुंचने का प्रयास किया। उनके पात्र अपने अहं को समाज की समग्रता में खोने को तत्पर नहीं होते। इसी कारण उनके पात्र अनेक प्रकार की मानसिक उलझनों और यंत्रणाओं के शिकार हो जाते हैं। जैनेंद्र जी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'सुनीता', 'सुखदा', 'विवर्त', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र' तथा 'जयवर्धन' आदि उल्लेखनीय हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास की धारा में इस युग के दूसरे प्रमुख उपन्यासकार हैं इलाचंद्र जोशी। जोशी जी मनोविश्लेषण पद्धति को कोई वाद न मानकर उसे एक शैली विशेष ही स्वीकार करते हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'घृणामयी' (लज्जा), 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' मुख्य हैं।

इलाचंद्र जोशी के उपरांत मनोवैज्ञानिक उपन्यास की धारा में नया मोड़ प्रस्तुत करने में अज्ञेय का नाम प्रमुख है। 'शेखर और जीवनी' में शेखर जीवन के अंतिम प्रहर में प्रत्यावलोकन करता हुआ अपने अतीत में जीने लगता है पर स्मृतियों का प्रखर आवेग उसे तटस्थ दर्शक बना देता है। इस उपन्यास में सह स्मृतियों के आधार पर आत्मविश्लेषण द्वारा चरित्र के मूल विकास को चित्रित करने में कथाकार को अद्‌भुत सफलता मिली है।

4. स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वातंत्र्योत्तर युग में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आंचलिक उपन्यासों की रचना हुई। 'शेखर एक जीवनी' के बाद मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद अज्ञेय के दो और उपन्यास प्रकाशित हुए–'नदी के द्वीप' तथा 'अपने–अपने अजनबी'। 'नदी के द्वीप' पर डी.एच. लारेंस का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'शेखर एक जीवनी' में जहां कांशंस की सेक्स पर विजय दिखाई है वहीं 'नदी के द्वीप' में सेक्स कान्शंस पर विजयी होता गया है। 'अपने–अपने अजनबी' में आकर कथाकार जीवन की सार्थकता एवं सत्य का खोजी बन जाता है। मानव के अपने अस्तित्व का संकट ही इस उपन्यास का मूल स्वर है।

स्वतंत्रता के बाद इस धारा के उपन्यासकारों में देवराज ने अपने उपन्यासों– 'पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर' तथा 'अजय की डायरी' आदि में मध्यवर्गीय समाज का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। डॉ. देवराज के अतिरिक्त इस धारा के प्रमुख लेखकों में प्रभाकर माचवे (परंतु, द्वाभा और सांचा), द्वारिका प्रसाद (घेरे के बाहर), नरेश मेहता (डूबते मस्तूल), रघुवंश (तंतुजाल), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (सोया हुआ जल) तथा ब्रजनारायण सिंह (बिंदु और घेरे तथा निस्संगता) आदि उल्लेखनीय हैं।

सामाजिक उपन्यास

प्रेमचंद परवर्ती कथाकारों ने बदलते हुए सामाजिक परिवेश को अपने उपन्यासों में विशदता से चित्रित किया है। इस धारा के पूर्व के उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन से जमींदारों, किसानों महाजनों, जातिगत मिथ्याभिमान, नारी मुक्ति का संघर्ष, विधवा की समस्या, वेश्या की समस्या आदि के जो चित्र खींचे थे, उन्होंने इन्हें और व्यापकता प्रदान की। प्रेमचंदोत्तर युग के सामाजिक उपन्यासकारों की दो धाराएं हमें स्पष्टतः देखने को मिलती हैं– सामाजिक उपन्यास और दूसरे समाजवादी उपन्यास। इस धारा के प्रमुख उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, रांगेय राघव आदि उल्लेखनीय हैं।

भगवतीचरण वर्मा के अधिकांश आलोचक उन्हें व्यक्तिवादी कलाकार के रूप में स्वीकार करते हैं पर उनकी अधिकांश कृतियों में उनका समष्टिवादी रूप भी देखा जा सकता है। वे अपनी उपन्यास रचना में सिद्धांत से अधिक अपने अनुभव पर बल देते हैं, इसी कारण उनकी दृष्टि कई बार आलोचकों को व्यक्तिवादी दिखाई देती है। उनके उपन्यासों में 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दांव', 'भूले बिसरे चित्र', 'वह फिर नही आई', 'सामर्थ्य और सीमा', 'थके पांव', 'रेखा', 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहि नचावत राम गोसाईं' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' आदि उल्लेखनीय हैं।

इस युग के उपन्यासकारों में यशपाल का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित होकर वर्ग संघर्ष की भावना को उन्होंने सशक्त ढंग से अपनी कृतियों में प्रस्तुत

किया। उनकी प्रमुख कृतियों में 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', 'दिव्या', 'अमिता', 'झूठा सच' तथा 'तेरी मेरी उसकी बात' आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। देश के विभाजन को लेकर उनका सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास 'झूठा सच' है जिसमें विभाजन की विभीषिका का बड़ा ही मार्मिक एवं यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया गया है।

उपेंद्रनाथ अश्क का प्रेमचंदोत्तर युग के कथाकारों में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने मनोविश्लेषण पद्धति और मार्क्सवादी चेतना से बचते हुए यथार्थ जीवन की झांकी प्रस्तुत की। अश्क जी ने अर्थ और काम की समस्याओं के बीच निम्न मध्य वर्ग के जीवन का प्रभावशाली चित्रण किया है। अश्क जी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'गिरती दीवारें', 'गर्मराख', 'बड़ी–बड़ी आंखें', 'पत्थर–अल–पत्थर', 'शहर में घूमता आईना' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में अमृतलाल नागर का विशिष्ट स्थान है। सामाजिक समस्याओं के चित्रांकन में उनकी दृष्टि संतुलित, तटस्थ एवं निरपेक्ष रही है। उन्होंने न तो व्यक्ति की उपेक्षा की है और न समाज की। व्यक्ति तथा समष्टि का समन्वय उनके उपन्यासों की मूल चेतना है। उनके उपन्यास 'बूंद और समुद्र' में बूंद व्यक्तिवादी चेतना का प्रतीक है और समुद्र समष्टिवादी चेतना है। समाज में व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं 'हर बूंद का महत्व है क्योंकि वही तो अनंत सागर है।' उनकी महत्वपूर्ण कृतियों में 'महाकाल', 'सेठ बांकेमल', बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'नाच्यो बहुत गोपाल' आदि उल्लेखनीय हैं। 'नाच्यो बहुत गोपाल' में नागर जी ने विशेष रूप से हरिजन समाज की कुरीतियों और विषमताओं का हृदयग्राही चित्रण किया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में वर्ग वैषम्य को मिटाकर समता के आधार पर समाज की परिकल्पना करने वाले समाजवादी परंपरा के उपन्यासकार रांगेय राघव का महत्वपूर्ण स्थान है। पूंजीवादी शोषण और दलित वर्गों के साथ सहानुभूति उनके उपन्यासों का मूल स्वर है। अपने जीवन के थोड़े ही समय में रांगेय राघव ने लगभग तीस उपन्यास लिखे जिनमें 'घरौंदे', 'विषादमठ', 'सीधा–सादा रास्ता', 'रत्ना की बात', 'सवाल', 'बोलते खंडहर', 'कब तक पुकारूं', 'पक्षी का आकाश', 'जब जावेगी काली घटा', 'राई और पर्वत', 'हुजूर' तथा 'पाप का पथ' आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक धारा के उपर्युक्त कथाकारों के अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर (निशिकांत तथा तट के बंधन), धर्मवीर भारती (गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा), लक्ष्मीनारायण लाल (धरती की आंखें, बया का घोसाला और सांप, रूपाजीवा तथा मन वृन्दावन), राजेंद्र यावद (शह और मात, सारा आकाश तथा उखड़े हुए लोग) आदि उल्लेखनीय कथाकार हैं जिनके माध्यम से उपन्यास की धारा निरंतर प्रवहमान है।

ऐतिहासिक उपन्यास

उत्तर प्रेमचंद युग में ऐतिहासिक उपन्यास की धारा विकसित होती रही, यद्यपि वृंदावनलाल वर्मा के समान इतिहास को उपन्यास में अवतरित करने वाली सफलता अन्य कथाकारों को उतनी न मिल सकी। आलोच्य काल में ऐतिहासिक उपन्यास की धारा में दो प्रवृत्तियां स्पष्ट देखने को मिलती हैं–पहली है मानवतावादी दृष्टि, जिसमें उपन्यासकार वर्तमान के संदर्भ में अतीत को चित्रित करने का प्रयत्न करता है और दूसरी है मार्क्सवाद की द्वंद्वात्मक

भौतिकवादी दृष्टि, जिसके अंतर्गत कथाकार समाजवादी सिद्धांतों के आधार पर इतिहास का विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रेमचंदोत्तर प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अमृतलाल नागर मानवतावादी दृष्टिकोण के समर्थक कथाकार हैं और राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव आदि मार्क्सवादी चेतना के।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मा' है। 'चारुचंद्रलेख', 'पुनर्नवा' तथा 'अनामदास का पोथा' (अपूर्ण) उनकी महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियां हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्ष के युग के सांस्कृतिक पक्ष को बाणभट्ट के जीवन के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है तथा 'चारुचंद्रलेख' में मध्ययुगीन तंत्रसाधना की आड़ में चल रहे भारतीय राजनीतिक कुचक्रों को सजीवता से चित्रित किया गया है।

अमृतलाल नागर ने मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तु करते हुए अनेक उपन्यास लिखे हैं– 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'मानव का हंस', 'खंजन नयन'। 'शतरंज के मोहरें' उनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें नवाबी जमाने के अवध राज्य की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का विशदता से चित्रण किया गया है।

मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित ऐतिहासिक उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल तथा रांगेय राघव आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। राहुल जी की प्रमुख ऐतिहासिक कृतियां हैं–'सिंह सेनापति जययौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री'।

ऐतिहासिक उपन्यास की धारा में यशपाल जी की महत्वपूर्ण कृति 'दिव्या' है। 'दिव्या' के अंतर्गत बौद्धकालीन नारी की दयनीय स्थिति के माध्यम से तत्कालीन जनजीवन की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

ऐतिहासिक उपन्यास की धारा में रांगेय राघव के 'मुर्दों का टीला', 'प्रतिदान', 'अंधेरे के जुगनू', 'राह न रुकी' आदि उल्लेखनीय कृतियां कही जा सकती हैं। 'मुर्दों का टीला' मोहन जोदड़ो युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता हुआ आर्यों तथा द्रविड़ों के महान संघर्ष की कथा का चित्रण करता है।

इन प्रमुख उपन्यासकारों के अतिरिक्त प्रेमचंद परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों की धारा में शिवप्रसाद की 'बहती गंगा' में काशी के दो सौ वर्षों का इतिहास बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इस धारा के अन्य लेखकों में वीरेंद्र जैन कृत 'मुक्तिदूत', यादवेंद्र शर्मा का 'संन्यासी तथा सुंदरी', बनकाम सुनील कृत 'धूलि और नर्तन', सामंत बीजगुप्त कृत 'इरावती', उमाशंकर का 'कोणार्क' आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

आंचलिक उपन्यास

स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी उपन्यास की धारा में आंचलिक उपन्यास की विधा का पर्याप्त विकास हुआ। अंचल से अभिप्राय है विशिष्ट प्रदेश या भाव विशेष। आचंलिक उपन्यासकार किसी क्षेत्र विशेष का चयन कर विशिष्ट घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से अंचल विशेष की संस्कृति को सजीवता और यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है। प्रेमचंद युग के कथाकार अंचल–विशेष का चित्रण प्रसंगवश ही करते थे। कालांतर में वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों में बुंदेलखंड की जिस संस्कृति का चित्रण किया गया है, वह भी प्रसंगवश हुआ,

कारण कि कथाकार का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण को प्रस्तुत करना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत जैसे–जैसे कथाकार ग्रामीण जीवन की समस्याओं से जुड़ता गया उसे प्रदेश विशेष के वातावरण को सजीवता एवं मार्मिकता से प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव हुई। अतः कथाकारों ने देश के पिछड़े हुए जनपदों को अपने कथानक का आधार बनाया।

आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार एक विशिष्ट क्षेत्र का चयन कर क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, नदी, जल, पहाड़ आदि के विलय में कलात्मक ढंग से सूचनाएं देता हुआ सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का विशदता से चित्रण करता जाता है। मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित नागार्जुन संघर्ष की भावना से अनुप्राणित और शोषण से मुक्त समाज की परिकल्पना करने वाले कथाकार हैं। समाज में पारस्परिक समानता के साथ वर्गगत विषमता को मिटाना ही उनके उपन्यासों का मूल स्वर है। उनके उपन्यासों का अधिकांश कलेवर बिहार के ग्रामीण अंचल से लिया गया है इसी कारण ग्रामीण समस्याओं के यथार्थवादी अंक में उन्हें विशेष सफलता मिली है। वे परपरांगत जड़ होती हुई रूढ़ियों के विरोधी हैं पर कला की दृष्टि से स्थानीय ग्रामीण भाषा के प्रयोग बाहुल्य के कारण उनके कथानकों में एक दुरूहता या अस्वाभाविकता भी आ गयी है। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बटेसर नाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुखमोचन', 'कुंभी पाक', 'हीरक जयंती', 'उग्रतारा' आदि उल्लेखनीय रचनाएं कही जा सकती हैं। कुछ आलोचक आंचलिक उपन्यासों का प्रारंभ नागार्जुन के 'बलचनमा' से मानते हैं पर अधिकांश आलोचक मानते हैं कि आचंलिक उपन्यास की धारा को गति फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' से मिली।

नागार्जुन के 'बलचनमा' उपन्यास की पृष्ठभूमि लगभग वही है जो प्रेमचंद के 'गोदान' की थी पर कथाकार ने एक युवक की आत्मकथा के माध्यम से मिथिला की संस्कृति विशेष का व्यापक चित्रण प्रस्तुत कर शोषण की प्रक्रिया के माध्यम से वर्ग संघर्ष की बात दुहराई है। इसी प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के माध्यम से पूर्णियां जिले के अंचल विशेष को प्रस्तुत किया है। मौलिकता की दृष्टि से इस पर सतीनाथ भादुड़ी के 'ढोडाय चरिमानस' तथा ताराशंकर की 'कथा सरिता' का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'मैला आंचल' में सन् 1942 से 1948 तक के ग्रामीण जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। देश के बदलते हुए राजनीतिक वातावरण का ग्रामीण जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ा है, उसे कायस्थों, यादवों तथा अन्य जातियों के जीवन के माध्यम से प्रस्तुत करने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। इसी प्रकार 'परती परिकथा' का परिवेश भी 'मैला आंचल' जैसा ही है। 'परती परिकथा' में रेणु की दृष्टि अधिक संतुलित रही है। परानपुर गांव की कथा केवल एक प्रतीक है जिसके माध्यम से गांव के जर्जरित हो रहे ढांचे को संवेदना से चित्रित किया गया है। रेणु के अतिरिक्त इस धारा के उपन्यासकारों में उदयशंकर भट्ट, देवेंद्र सत्यार्थी, शैलेश मटियानी आदि उल्लेखनीय हैं।

लघु उपन्यास

स्वतंत्रता के उपरांत सन् 1960 के आसपास आकर उपन्यास की धारा में एक नवीन मोड़ प्रस्तुत हुआ। बृहद उपन्यासों की अपेक्षा लघु उपन्यास का सूत्रपात हुआ। लघु उपन्यास के

टिप्पणी

व्यापक प्रसार के मूल में यांत्रिक मनुष्य की अतिव्यस्तता और बढ़ती हुई कीमतें हैं। लघु उपन्यास में प्रायः एक ही कथा रहती है। प्रासंगिक उपकथाओं के लिए उसमें बहुधा अवकाश नहीं रहता इसी कारण इसमें वातावरण और प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत करने का बहुधा अवकाश नहीं रहता। लघु उपन्यासों की धारा भी हमें दो रूपों में देखने को मिलती है–एक व्यक्तिवादी या मनोवैज्ञानिक जिसमें पात्र के अंतर्मन की ग्रंथियों का विश्लेषण ही प्रमुख रहता है। दूसरा, सामाजिक लघु उपन्यास, जिसमें सामाजिक यथार्थवादी चित्रण को प्रमुखता दी जाती है। इस दिशा में 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'चांदनी के खंडहर', 'वे दिन', 'कस्तूरी', 'मुर्दा घर' आदि उल्लेखनीय लघु उपन्यास कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी उपन्यास की विधा कथानक और शिल्प की दृष्टि से पर्याप्त परिपक्व होती है। जैसे–जैसे जीवन की जटिलता बढ़ती गयी, उपन्यास की अभिव्यक्ति जटिल रूप धारण करती गयी। पाश्चात्य उपन्यासों की विविध शैलियों को आत्मसात करते हुए उपन्यास नित नये रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

16. हिंदी साहित्य का प्रथम उपन्यास किसे माना जाता है?
17. प्रेमचंद का 'सेवासदन' उपन्यास किस ईस्वी में प्रकाशित हुआ?
18. हिंदी उपन्यासों को तिलस्म, ऐय्यारी और जासूसी के इंद्रजाल से बाहर निकालने का श्रेय किसे जाता है?
19. 'झांसी की रानी' के उपन्यासकार का नाम बताइए।
20. अज्ञेय अपनी किस रचना के माध्यम से हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में एक नया मोड़ लाए?
21. 'दादा कामरेड' उपन्यास के रचनाकार कौन हैं?
22. 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के उपन्यासकार का नाम बताइए।
23. रांगेय राघव के किस उपन्यास में मोहन जोदड़ो युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक झलक दिखाई देती है?
24. 'बलचनमां' उपन्यास की रचना किसने की?

5.5 कहानी

हिंदी कहानी का आरंभ ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ। इससे पूर्व उपन्यास और कहानी का भेद स्पष्ट नहीं था। भारतेंदु ने स्वयं 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' नामक उपन्यास को कहानी कहा था। किशोरी लाल गोस्वामी रचित 'इन्दुमती' सन् 1900 ई. में सरस्वती में 'कहानी' के नाम से छपी जबकि गोस्वामी जी ने उसकी रचना 'उपन्यास' के रूप में की थी। यह हिंदी की पहली कहानी मानी जाती है। कुछ विद्वान इससे पूर्व प्रकाशित सैयद इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' को, कुछ राजा शिव प्रसाद सितारे हिंदी–कृत 'राज भोज का सपना' को एवं कुछ अन्य समीक्षक भारतेंदु हरिश्चंद्र रचित 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' को पहली कहानी स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त, रामचंद्र शुक्ल रचित 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला–रचित 'दुलाई वाली' एवं जयशंकर प्रसाद–रचित 'ग्राम' भी समीक्षा–जगत में पहली कहानी के रूप में चर्चित रही हैं। कई आधुनिक समीक्षक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं। इन सब कहानियों में अपने से पूर्व रचित कहानियों से कुछ–न–कुछ नवीनता अवश्य है किंतु कथानक की यथार्थता, अन्विति एवं भाषा–शैली की अकृत्रिमता की दृष्टि से 'इंदुमती' को कहानी–विकास की पहली और 'उसने कहा था' को दूसरी प्रमुख कड़ी माना जा सकता है। अन्य कहानियां भी इन प्रमुख कड़ियों को जोड़ने वाली कड़ियां हैं। संक्षेप में, हिंदी कहानी के विकास को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. भारतेंदु युग
2. द्विवेदी युग
3. प्रेमचंद–प्रसाद युग
4. प्रेमचंदोत्तर युग
5. साठोत्तरी कहानी

टिप्पणी

1. भारतेंदु युग

इस युग में कहानी का आरंभ हुआ। कुछ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, जैसे मुंशी नवल किशोर द्वार संपादित 'मनोहर कहानी', अंगिकादत्त व्यास कृत 'कथा कुसुमकलिका', राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'वामा मनोरंजन', चंडीप्रसाद सिंह कृत 'हास्य रतन'। पर इनमें इतिहास–पुराण–कथित शिक्षा, नीति या हास्य–प्रधान कथा रही हैं; इनमें कलात्मक सौंदर्य नहीं है। भारतेंदु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्‌ट की स्वप्न–कथाएं वस्तुतः कथात्मक निबंध हैं।

2. द्विवेदी युग

हिंदी कहानी का वास्तविक आरंभ 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक के आधार पर लिखित किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी सरस्वती में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष 'सुदर्शन' में भगवानदीन बी.ए. की 'प्लेग की चुड़ैल' कहानी प्रकाशित हुई। 'सरस्वती' में ही रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंग महिला की 'दुलाई वाली' शीर्षक कहानियां प्रकाशित हुईं। 1909 ई. में वृन्दावनलाल वर्मा ने 'राखी–बन्द भाई' नामक एक ऐतिहासिक कहानी लिखी।

1909 में ही 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें जयशंकर प्रसाद की भावात्मक कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनका संग्रह 1912 में 'छाया' नाम से छपा। 1913 में राधिका रमण सिंह की 'कानों में कंगना' नामक एक भावपूर्ण कहानी 'इन्दु' में प्रकाशित हुई।

इसी समय प्रेमचंद की कुछ कहानियां 'जमाना' में प्रकाशित हुई। ये कहानियां उर्दू में थीं। बाद में इन्होंने हिंदी में कहानियां लिखनी आरंभ कर दीं। सरस्वती में इनकी 'सौत', 'पंच परमेश्वर', 'सज्जनता का दंड' आदि कहानियां प्रकाशित हुईं।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी (1883–1920) की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' 1914 ही में 'सरस्वती' में छपी। रचना शिल्प की दृष्टि से यह कहानी बेजोड़ है।

1914–1917 ई. के मध्य 'सरस्वती' में ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन', विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक (1891–1945) की 'रक्षाबंधन', पदुमलाल बख्शी की 'झलमला' कहानियां छपीं।

1918 में काशी से हिंदी गल्पमाला का प्रकाशन हुआ। इसमें प्रसाद जी की कहानियां नियमित रूप से छपने लगीं। इसी में गंगाप्रसाद श्रीवास्तव और इलाचंद जोशी की कुछ प्रारंभिक कहानियां प्रकाशित हुईं।

इसी काल में कुछ बंगला कहानियों का गिरिजाकुमार घोष (पार्वतीनन्दन) और बंग महिला ने हिंदी में अनुवाद किया।

उपर्युक्त कहानियों और कहानीकारों के नामों से स्पष्ट है कि इस काल में हिंदी अपनी एक स्पष्ट पहचान बनाने लगी।

3. प्रेमचंद–प्रसाद युग

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ने इस युग में अनेक जीवंत कहानियां लिखीं। धीरे–धीरे प्रेमचंद हिंदी कहानी आकाश में छा गए। इन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। इनमें मानव स्वभाव व परिस्थितियों का सूक्ष्म विवेचन है। इनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं–आत्माराम, बूढ़ी काकी, हार की जीत, परीक्षा, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात, ईदगाह, बड़े भाई सहाब, कफन इत्यादि।

प्रेमचंद की कहानियों में गांव का जीवन मुखरित हो उठा है। कुछ कहानियां सत्याग्रह–आंदोलन तथा स्कूल व कॉलेज के वातावरण पर भी आधारित हैं। इनकी कहानियों में यथार्थ और आदर्श का अद्‌भुत संयोग है। भाषा की सहायता और बोलचाल के मुहावरे के कारण इनकी कहानियां विशेष लोकप्रिय हैं।

इस काल में दूसरे प्रसिद्ध कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। इनकी महत्वपूर्ण कहानियों में–'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'इंद्रजाल' आदि हैं। इनकी कहानियां यथार्थ पर आधारित न होकर रूमानी हैं। इनकी 'पत्थर की पुकार', 'प्रतिमा' आदि कहानियां संस्कृत गद्य काव्य के समकक्ष हैं। 'आकाशदीप', 'कला', 'देवदासी' आदि कहानियों में मानसिक द्वंद्व का सुंदर चित्रण है। 'आकाशदीप' और पुरस्कार कहानियों में नारी–चरित्र का सुंदर विश्लेषण हुआ है।

इसी काल में विश्वम्भरनाथ कौशिक की कहानियां प्रकाश में आईं। 'गल्पमंदिर', 'चित्रशाला', 'कल्लोल' आदि संग्रहों में इनकी दौ सौ से अधिक कहानियां संगृहीत हैं। इनमें बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज आदि समस्याएं चित्रित हैं। इनके कथानक शहरी जीवन पर आधारित हैं। कौशिक जी की 'ताई' और 'पगली' कहानियां हिंदी जगत में विशेष समादृत हुई हैं। सुदर्शन की 'हार की जीत', 'कवि की स्त्री' आदि कहानियां भी इसी काल में लिखी गयीं। चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक प्रसंगों पर मार्मिक कहानियां लिखीं, जिनमें 'दुखवा मैं कासो कहूं मोरी सजनी' बहुत प्रसिद्ध हुई जो एक बांग्ला कहानी का रूपांतर है। 'भिक्षुराज', 'हल्दीघाटी' आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध कहानियां हैं।

रायकृष्ण दास ने प्रसाद की तरह भावप्रधान कहानियां लिखीं, जिनमें 'अन्तःपुर का आरंभ', 'रमणी का रहस्य' आदि प्रसिद्ध हैं। विनोद शंकर व्यास की 'विधाता', 'अपराध' आदि कहानियां भी भावना–प्रधान हैं।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र ने 'चिनगारियां', 'शैतान', 'बलात्कार', 'चाकलेट' आदि कहानी संग्रहों में समाज के नग्न यथार्थ को उजागर किया है।

जैनेन्द्र की कहानियां घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान हैं। 'हत्या', 'खेल', 'दो चिड़ियां', 'पाजेब' आदि कहानियों में व्यक्ति मन की शंकाओं का चित्रण है। इनकी कहानियों का मुख्य विषय नारी है जो मुक्ति के लिए छटपटा रही है।

अज्ञेय की कहानियों के पात्र बहुमुखी हैं, जो सामाजिक विषमताओं से जूझने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। उनका प्रथम कहानी–संग्रह 'त्रिपथगा' है। इनमें आधुनिक विश्व में होने वाले युद्ध के कारणों की खोज की गयी है। 'कड़ियां', 'रेल की सीटी', 'हरसिंगार' आदि कहानियों में आधुनिक शासन प्रणाली पर परंपरागत मानव मूल्यों को नकारा गया है। इनकी कहानियां भी मनोवैज्ञानिक हैं, पर इन्होंने जैनेंद्र की तरह यथार्थ को नहीं छेड़ा।

इस काल में राधिकारमन प्रसाद सिंह ने 'कानों का कंगना', 'गांधी टोपी' आदि कहानियां समाज सुधार की दृष्टि से लिखी हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'मधुपर्क', 'दीपमालिका', 'मिठाईवाला' आदि कहानियों में सामाजिक विसंगतियों का सशक्त चित्रण है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियां 'इन्स्टालमेंट' संगृहीत हुई। इनमें जीवन की कुरूपताओं का पर्दाफाश किया गया है।

छायावाद के कवि निराला ने 'पद्मा' और 'लिली' आदि कहानियों में काव्यात्मक वातावरण का निर्माण किया। पंत जी की 'पानवाला' कहानी में अनुभूति की प्रधानता है।

राहुल सांकृत्यायन की कहानियां 'सतमी के बच्चे' नामक संकलन में संगृहीत हैं। इनमें आर्थिक विषमता की घुटन प्रकट हुई है।

इस युग की महिला लेखिकाओं में से, सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियां 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' में संगृहीत हैं। उनकी 'पापी पेट' नामक प्रसिद्ध कहानी भी इसी युग में रची गयी। शिवरानी देवी की अनेक सामाजिक कहानियां 'चौमुदी' में छपी। उषादेवी मित्रा की 'पिउ कहां', 'गोधूलि', 'देवदासी' आदि भावुकतापूर्ण कहानियां भी इस काल में प्रकाशित हुईं।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार की 'तोरा', 'आंसू', 'बचपन', 'मास्टर जी' आदि तथा विष्णु प्रभाकर की कुछ कहानियां भी इस काल में प्रकाशित हुईं।

4. प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद के बाद प्रगतिवादी धारा प्रवाहित हुई। यशपाल ने मार्क्सवाद के अनुरूप धन की विषमता पर प्रहार किया। यशपाल पर फ्रायड का भी प्रभाव था। यशपाल के कहानी संग्रह हैं–पिंजड़े की उड़ान, अभिशप्त, सच बोलने की भूल आदि। इनकी कहानियां रोचक हैं और वर्ग संघर्ष तथा व्यंग्य भी इनमें मिलता है।

अज्ञेय जी ने व्यक्ति के नैतिक संघर्ष को मुख्यता दी है। इनकी प्रारंभिक कहानियों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति उभरी, किंतु 'पठार का धीरज' आदि में सामाजिक यथार्थ पर आधारित है। बिंब, प्रतीक और नाटकीयता इनकी कहानियों में प्रचुर हैं। 'विपथगा', 'शरणार्थी', 'ये तेरे प्रतिरूप' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। इलाचंद्र जोशी की कहानियों में भी मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण है। 'खंडहर की आत्माएं', 'डायरी के नीरस पृष्ठ' आदि उनके कहानी संग्रह हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियां मनोविश्लेषण, प्रतीक, सेक्स आदि को आधार पर रचित है। 'डाची' और 'कांगड़ा का तेली' इनकी अच्छी सामाजिक कहानियां हैं। विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानियों में नयी शैली में पुरानी मूल्यों को स्थापित किया है। 'धरती अब भी घूम रही है' इनकी नये बोध की कहानी है।

1950 से पूर्व के कहानीकारों में कमल जोशी, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, चंद्रकिरण सोनरिक्सा, राधाकृष्ण आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनकी कुछ कहानियां पठनीय हैं। 1950 के बाद दोनों प्रकार की कहानियां लिखी गयीं। कुछ में पुरातन मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न था, तथा कुछ में विघटित मूल्यों के कारण त्रास और अनास्था का चित्रण था।

सन् 1944 में 'कहानी' पत्रिका प्रकाशित हुई। इसी समय 1946–47 में 'नयी कहानी' नाम से कहानी की अलग पहचान निर्धारित की गयी।

5. साठोत्तरी कहानी

स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी को नये भारतीय परिवेश को प्रकट करने का सशक्त मार्ग यम बनाया गया और इसमें भाषा–शैली की विविधता आई। फलतः सन् 1950 के आस–पास नयी कहानी के आंदोलन की शुरुआत हुई और कहानी का नामकरण नयी कहानी कर दिया गया।

टिप्पणी

नयी कहानी की प्रमुख विशेषता है–समाज के विभिन्न वर्गों एवं जीवन पक्षों का सूक्ष्म चित्रण। इस चित्रण में भाषा संबंधी परिवर्तन भी आ गए। सामाजिक संबंधों में अलगाव एवं बिखराव तथा व्यक्ति की विभिन्न मनःस्थिति का चित्रण अनेक कहानियों में मिलता है।

सन् 1960 के बाद की कहानियों का एक वर्ग आंचलिक कहानी के नाम से सामने आया। यह नामकरण उन कहानियों के लिए सार्थक हुआ जिनमें क्षेत्र विशेष की आधारभूत समस्याओं को स्थानीय भाषा भेद के साथ चित्रित किया गया। इन कहानियों में नव विकसित कस्बों की मनोवृत्तियों को बड़ी ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया। इन कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों में व्यक्त विशेषकर शासक–प्रशासक वर्ग में व्याप्त कमजोरियों का पर्दाफाश किया गया। अनेक हास्य–व्यंग्य प्रधान कहानियां भी लिखी गयी।

नयी कहानी के प्रमुख लेखकों में निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, रमेश बख्शी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, शेखर जोशी, अमरकांत, मार्कण्डेय, नरेश मेहता, ज्ञानरंजन, राजेंद्र अवस्थी, रवींद्र कालिया, शिवानी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

निर्मल वर्मा की कहानियां मौन होकर भी मुखर हैं। काव्यात्मकता, अस्पष्ट अभिव्यंजना, हेमिंग्वे सी संकेतात्मकता इनकी कहानियों के विशिष्ट गुण हैं। इनके प्रतिनिधि कहानी–संग्रह हैं–'परिंदे', 'जलती झाड़ी', 'पिछली गर्मियों में', 'बीच बहस में', 'कव्वे और काला पानी' आदि। निर्मल वर्मा अनेक वर्षों तक विदेश में रहे, इसलिए पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंधों की विडंबना, शहरी जीवन की कृत्रिमता, दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन की विसंगतियां प्रभावित हुई हैं। इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं– 'इंसान के खंडहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी' आदि। 'मलबे का मालिक', 'मवाली', 'जख्म', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मिस पाल' आदि इनकी बहुचर्चित कहानियां हैं। इनमें घोर यथार्थ का चित्रण व्यंग्य के स्तर पर हुआ है।

कमलेश्वर की कहानियों में कस्बाई मनुष्य के महानगर में पहुंचने से उत्पन्न अकेलापन, सूनापन, घबराहट तथा अजनबीपन झलकता है। इनकी कहानियों में विकास के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। 'देवा की माँ' में यदि पुरानी पीढ़ी के जीवन का चित्रण है, तो 'नीली झील' में मानवीय व्यवहार एवं आकांक्षा के अनेक पहलू उजागर होते दिखाई देते हैं। व्यक्ति मन में एक चाह का चित्रण नीली आंखों और झील के नीले पानी के माध्यम से उभरता है। मांस का दरिया, मानसरोवर के हंस, राजा निबंसिया कमलेश्वर की महत्वपूर्ण कहानियां हैं।

राजेंद्र यादव औपन्यासिक चेतना के कहानीकार हैं तथा वह कहानी को उन्यास के निकट ले जाने का प्रयत्न करते हैं। यादव व्यापक सामाजिक संदर्भों के कहानीकार हैं तथा अस्पष्ट एवं अप्रत्यक्ष कथन के माध्यम से कहानी का ताना–बाना बुनते हैं। 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्मकथा', 'छोटे–छोटे ताजमहल', 'किनारे से–किनारे तक', 'प्रतीक्षा', 'टूटना और अन्य कहानियां', 'अपने पार' आदि इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं।

भीष्म साहनी प्रगतिशील चेतना के ऐसे कहानीकार हैं जो परंपरागत मूल्यों का, विघटन से उत्पन्न स्थितियों का समस्यापरक चित्रण करते हैं तथा एक मौन परंतु

टिप्पणी

प्रभावशाली दिशा देने का प्रयत्न करते हैं। इनके प्रतिनिधि कहानी–संग्रह हैं– 'पहला पाठ', 'भटकती राख', 'शोभा यात्रा', 'निशाचर' आदि। 'चीफ की दावत', 'कठघरे', 'मेड इन इटली' आदि कहानियां नयी कहानी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में कई कहानी आंदोलन सक्रिय हुए, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

सचेतन कहानी–नयी कहानी की प्रतिद्वंद्विता में उभरा 'सचेतन कहानी' आंदोलन। कतिपय समीक्षकों का मानना है कि सचेतन कहानी का नारा उन कहानीकारों के द्वारा लगाया गया, जिनका नाम 'नयी कहानी' के कर्णधारों और शिला–स्तंभों की श्रेणी में आने से छूट गया था। इनमें आनंद प्रकाश जैन, महीप सिंह, राजीव सक्सेना तथा श्याम परमार के साथ–साथ मनहर चौहान, योगेश गुप्त, वेद राही, सुखबीर, जगदीश चतुर्वेदी, हिमांशु जोशी, धर्मेंद्र गुप्त, हृदयेश आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

सचेतन कहानी के सूत्रधार आनंद प्रकाश जैन एवं महीप सिंह है। डॉ. महीप सिंह ने सन् 1964 में बीस सचेतन कहानियों का एक सचेतन कहानी विशेषांक निकाला था।

सहज कहानी–सहज कहानी के आरंभिक प्रवर्तक अमृत राय हैं। सातवें दशक के प्रारंभ में कविता की तर्ज पर अमृतराय ने 'सहज कहानी' शब्द का प्रयोग किया और घोषित किया कि कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए जीवन के कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है।

सक्रिय कहानी–इस कहानी आंदोलन में अमृतराय अकेले पड़ गए। न तो उन्होंने कोई गुट बनाकर अपना विचार प्रतिपादित किया और न ही उन्हें किसी पत्रिका का समर्थन मिला। यही बात राकेश वत्स द्वारा प्रतिपादित 'सक्रिय कहानी' के संदर्भ में भी कही जा सकती है।

इस कहानी–परंपरा के रचनाकारों में रमेश बतरा, सुरेंद्र सुकुमार, राकेश वत्स, सच्चिदानंद धूमकेतु, कुमार संभव आदि के अतिरिक्त श्रवणकुमार, भीष्म साहनी, मणि मधुकर के नाम सम्मिलित किये गए हैं।

अकहानी–जिस प्रकार कविता में क्रमशः नयी कविता के पश्चात 'अकविता' का आगमन हुआ, लगभग उसी प्रकार कहानी में नयी कहानी के बाद 'अकहानी' का प्रादुर्भाव हुआ। नयी कहानी और नयी कविता का व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवाद अकविता और अकहानी में आकर घोर व्यक्तिवाद, अति यथार्थवाद और उच्छृंखल यौनवाद में परिवर्तित हो गया। इस आंदोलन से जुड़े हुए कहानीकारों में प्रमुख हैं–गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, दूधनाथ सिंह आदि। अकहानियों में अधिकांश कहानियां स्त्री–पुरुष के प्रेम–संबंधों को ही चित्रित करती है। अकहानी के अंतर्गत मूड या क्षण की कहानियां आती हैं।

समानांतर कहानी–अकहानी की भोगवादी प्रवृत्तियों को लक्ष्य बनाते हुए कमलेश्वर ने धर्मयुग में 'ऐयाश प्रेतों का विद्रोह' शीर्षक से लेखमाला के अंतर्गत अकहानी के रचयिताओं की थोथी दार्शनिकता को उखाड़ फेंकने का नारा बुलंद किया। समानांतर का विचार–बीज तो सन् 1971 में बोया गया था परंतु सन् 1974 तक पहुंचते–पहुंचते कमलेश्वर ने उसे 'सारिका' के माध्यम से प्रचारित किया। कामतानाथ, मधुकर सिंह, इब्राहिम शरीफ, श्रवण कुमार, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग आदि इस धारा के वरिष्ठ कहानीकार हैं।

टिप्पणी

आंचलिक कहानी–अनेक प्रकार के कहानी आंदोलनों के समानांतर 'आंचलिक कहानी' भी बराबर गतिशील है।

सन् 1950 से आंचलिक कहानी लिखी जा रही है और यह परंपरा निरंतर प्रवाहमान है क्योंकि यह कोई चर्काचौंध उत्पन्न कर समाप्त होने वाला आंदोलन नहीं बल्कि यह तो ग्रामीण परिवेश की धड़कनों को चित्रांकित करने वाला अनुशासन है। तीसरी कसम, ठुमरी, रसप्रिया, लाल की बेगम (फणीश्वरनाथ रेणु), हंसा जाई अकेला, सूर्या, माही (मार्कण्डेय), बिंदा महाराज, मुरदा सराय (शिव प्रसाद सिंह), कपिला, हारा हुआ, भंवरे की जात (शैलेश मटियानी), कोसी का घटवार (शेखर जोशी), अंधेरे में (मधुकर सिंह), करिए छिमा (शिवानी), बैलेंस (बदीउज्जमा), मक्कार (इब्राहिम शरीफ), रथचक्र (हिमांशु जोशी), कचकौंध (गोविंद मिश्र), थूम्बू की राख (खेमराज गुप्त सागर), नवमी की दहलीज (किशोरीलाल वैद्य), पालनहारे (बलराम), अलाव (केशव), मीच्छल टंड, गंदा, मेमना (सुशील कुमार फुल्ल), मंगलाचारी (सुंदर लोहिया), दंश (सुदर्शन वशिष्ठ) आदि चर्चित आंचलिक कहानियां हैं। आज की कहानी लेखिकाओं में तेजरानी पाठक, कमला चौधरी, हेमवती, सत्यवती मलिक, शिवानी, मन्नु भंडारी, कृष्णा सोबती, मृणाल पांडे, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज, दीप्ति खंडेलवाल, ममता कालिया, शशीप्रभा शास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, राजी सेठ, चन्द्रकांता, कुसुम अंसल, लता शुक्ल, सुनीता जैन, सुधा अरोड़ा, मंजुल भगत, अलका सरावगी, गीतांजली श्री आदि का नाम भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त पाश्चात्य कहानियों के कुछ अनुवाद भी हो रहे हैं। हिंदी कहानी आज भी कथ्य और शिल्प के नये प्रतिमान रचती हुई विकास की दिशा में अग्रसर है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. हिंदी कहानी का वास्तविक आरंभ किस पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ?
26. प्रेमचंद ने लगभग कितनी कहानियां लिखीं?
27. 'पुरस्कार' कहानी के रचनाकार का नाम बताइए।
28. 'कहानी' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ?
29. हिंदी कहानी में नये भारतीय परिवेश को प्रकट करने का सशक्त माध्यम कब बनाया गया?
30. आंचलिक कहानियां कब लिखी जाने लगीं?
31. अकहानी के अंतर्गत कौन–सी कहानियां आती हैं?

5.6 एकांकी

एकांकी अर्थात एक अंक के नाटक ने आज नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। विज्ञान के फलस्वरूप मानव के समय और शक्ति की बचत हुई है। फिर भी जीवन संघर्ष में मानव की दौड़–धूप लगातार जारी है। जीवन की व्यस्तता और व्यस्तता के कारण आधुनिक मानव के पास इतना समय नहीं है कि वह बड़े–बड़े नाटकों, उपन्यासों, महाकाव्यों आदि का संपूर्णत: रसास्वादन कर सके और इसलिए गीत, कहानी, एकांकी आदि साहित्य के लघु रूपों को अपनाया जा रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी एकांकी के विकास–क्रम को निम्नलिखित प्रमुख काल–खंडों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भारतेंदु–द्विवेदी युग
2. प्रसाद युग
3. प्रसादोत्तर युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

टिप्पणी

भारतेंदु–द्विवेदी युग

जिस प्रकार भारतेंदु हिंदी में अनेकांकी नाटकों के लिखने वालों में प्रथम नाटककार माने जाते हैं उसी प्रकार हिंदी में सबसे पहला एकांकी भी उन्होंने ही लिखा। यद्यपि इस संबंध में विद्वानों में मतभेद अवश्य है। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि के मत में भारतेंदु तथा उनके समकालीन एकांकीकारों के एक अंक वाले नाटकों में संस्कृत में एक अंक वाले रूपकों का प्रभाव है। वास्तव में वे एकांकीकार किसी 'एकांकी' विधा का नाम तक नहीं जानते थे। इसके विपरीत डॉ. सत्येंद्र, प्रो. लालताप्रसाद, प्रो. रामचरण महेंद्र आदि ने भारतेंदु को हिंदी का प्रथम एकांकीकार माना है। डॉ. सत्येंद्र ने लिखा है कि "यद्यपि एकांकी को नाम से भारतेंदु परिचित नहीं थे और उसके साहित्य का अलग अंग नहीं मानते थे, किंतु आज के विकसित एकांकियों की साहित्य धारा में जो प्रथमावस्था हो सकती है, वह भारतेंदु के एक अंक वाले नाटकों में स्वत: मिलती है। अत: भारतेंदु जी को हिंदी का प्रथम एकांकीकार मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि .... भारतेंदु जी के लिखे मौलिक नाटकों में से 'चंद्रावली' और 'अंधेर नगरी' दो नाटक हैं, शेष सब एकांकी।" अस्तु, भारतेंदु प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875 ई.) से हिंदी एकांकी का प्रारंभ माना जा सकता है।

आलोच्य युग में विषयगत दृष्टिकोण को सामने रखकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियां उभरीं। समाज में प्रचलित प्राचीन परंपराओं, कुप्रथाओं एवं स्वस्थ सामाजिक विकास में बाधक रीति–रिवाजों को दूर करने का प्रयास उन सामाजिक समस्या–प्रधान रचनाओं के माध्यम से किया गया। इन एकांकीकारों ने जहां सामाजिक कुरीतियों पर हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण प्रहार किए वहीं सामाजिक नवनिर्माण के लिए भी समाज को प्रेरित एवं जागृत किया। इन रचनाओं के पात्र भारतीय, जन–जीवन के जीवित एवं सजीव पात्र हैं, जिनके संवादों द्वारा भारतीय भद्र जीवन में प्रविष्ट पाखंड एवं व्यभिचार का भंडाफोड़ होता है।

भारतेंदुकालीन एकांकियों की धार्मिक पौराणिक धारा के अंतर्गत लिखे गए एकांकियों में धार्मिक कथानकों के आधार पर भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी विचारधारा प्रस्तुत की गयी है। इस क्षेत्र में भारतेंदु जी का 'सत्य हरिश्चंद्र' और धनंजय विजय श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरित्र' बदरीनारायण प्रेमधन का 'प्रयाग रामागमन', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' और 'सती चंद्रावली' बालकृष्ण भट्ट का 'दमयंती स्वयंवर', जैनेंद्र किशोर का 'सोमावती' अथवा 'धर्मवती' कार्तिक प्रसाद का 'उषाहरण' गोपाल राम गहमरी का 'प्रह्लाद' खड्गबहादुर मल्ल का 'और निस्सहाय हिंदू', मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या का 'प्रह्लाद' 'द्रौपदी चीर हरण' 'हरदौलिका' आदि में धार्मिक कथानकों पर आधारित पौराणिक एकांकियों के माध्यम से सांस्कृतिक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया।

इस युग में हास्य–व्यंग्य प्रधान एकांकी सर्वाधिक लिखे गए। जो प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। ये प्रहसन धार्मिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विषयों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। इन प्रहसनों पर पारसी रंगमंच का सर्वाधिक प्रभाव है, इसलिए उच्चकोटि का हास्य एवं व्यंग्य इनमें नहीं मिलता। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में बाल–विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यागमन, मद्यपान, विलासप्रियता आदि पर व्यंग्य किया गया है और धार्मिक क्षेत्र में

धार्मिक संकीर्णता और उसकी आड़ में किया पाखंड, पंडागिरी, कर्मकांड, ज्योतिषियों की धोखेबाजी आदि पर आक्षेप किए गए हैं। इस प्रकार के एकांकियों में कमलाचरण मिश्र का 'अद्‌भुत नाटक', श्री जगन्नाथ का 'वर्ण व्यवस्था', माधोप्रसाद का 'वैसाखनंदन', घनश्यामदास का 'वृद्धावस्था विवाह', दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'प्रभात मिलन', अम्बिदादत्त व्यास का 'गौ–संकट' और 'मन की उमंग', देवकीनंदन त्रिपाठी का 'जय नरसिंह की', 'सैकड़ों में दस–दस', 'कलयुगी जनेऊ', 'कलियुगी विवाह', 'एक एक के तीन तीन', 'बैल छः टके का', 'वेश्याविलास' आदि, बालकृष्ण का 'शिक्षादान', खड्‌गबहादुर मल्ल का 'भारत–आरत' आदि उल्लेखनीय हैं।

ये रचनाएं वास्तव में एक अंक के नाटक ही हैं। एकांकी की परंपरा में आते हुए भी इन्हें सभी दृष्टियों से पूर्ण 'एकांकी' नहीं कहा जा सकता। इनमें एकांकी के कुछ तत्व अवश्य पाए जा सकते हैं। इस युग के एकांकीकारों ने शैली को निखारने की ओर ध्यान न देकर समाज–सुधार पर ध्यान दिया।

प्रसाद–युग

आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास संदर्भ में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग अलग–अलग दो युगों के रूप में मान्य होने पर भी हिंदी एकांकी के विकास की दृष्टि से एक ही माने जाते हैं क्योंकि द्विवेदी युग में नाट्यकला की स्थिति में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई और न ही ऐसा प्रतिभा संपन्न एकांकीकार इस युग में हुआ जो इस युग की हिंदी को एकांकी के क्षेत्र में प्रमुखता दिलाता। अतः हिंदी एकांकी के विकास की दृष्टि से द्वितीय युग प्रसाद युग के नाम से जाना जाता है। इस संदर्भ में आधुनिक एकांकी साहित्य की प्रथम मौलिक कृति के रूप में प्रसाद के 'एक घूंट' का उल्लेख किया जा सकता है। यह रचना सन् 1929 में प्रकाशित हुई। यहीं से हम एकांकी के शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखते हैं। फिर भी एकांकी साहित्य में इसके स्थान और महत्व पर विद्वानों में काफी मतभेद है। परंतु पुरानी नाट्य परंपरा के आदर्श पर 'एक घूंट' एकांकी की जो नव्यतर प्रवृत्तियां मिलती हैं, उनके आधार पर उसको आधुनिक एकांकी के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा। रसोद्रेक के लिए संगीत–व्यवस्था, संस्कृत नाट्य प्रणाली का विदूषक, स्वगत कथन आदि प्राचीन परंपराओं के निर्वाह के साथ ही स्थल की एकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण, गतिशील कथानक आदि आधुनिक एकांकी सभी विशेषताएं 'एक घूंट' में मिलती हैं। अतः भारतेंदु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली है तो उसे पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय प्रसाद जी को ही है।

वास्तव में आधुनिक ढंग से हिंदी एकांकियों का विकास प्रसाद युग में ही हुआ क्योंकि इस युग में कुछ युगांतकारी नवीन प्रयोग एकांकी क्षेत्र में हुए। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखना प्रारंभ किया तथा पाश्चात्य तकनीक को अपनाया। स्पष्टतः इस युग में एकांकी नाटकों में पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों की प्रेरणा एवं प्रभाव विद्यमान है। पाश्चात्य नाटककारों, हैनरिक इब्सन, गाल्सवर्दी तथा बर्नाड शॉ आदि का प्रभाव इस युग के एकांकियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ा तथा इससे एकांकी साहित्य को परिपक्वता की स्थिति पर पहुंचने में सहायता मिली।

आलोच्य युग के एकांकियों में अभिनव तत्वों की मान्यता परिलक्षित होती है। अंकों के स्थान पर एकांकी में दृश्यों का प्रयोग हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी संस्कृत

परिपाटी पर रचे गए थे, इस युग में वे नवीन रूपों में विकसित होने लगे। प्राचीनता का मोह छोड़कर नवीन ढंग के एकांकी नाटक लिखे गए जो कथानक की दृष्टि से मानव जीवन के अत्यधिक निकट थे। प्राचीन कथावस्तु में जो कृत्रिमता होती थी उसके स्थान पर सामाजिक, पारिवारिक एवं दैनिक समस्याओं को एकांकी का विषय बनाना प्रारंभ किया गया। ये रचनाएं यथार्थवाद के निकट आयीं। प्राचीन कृत्रिम प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, प्राचीन रंगमंच एवं अस्वाभाविकता के बहिष्कार का स्वर इस युग की रचनाओं में प्रमुखतया प्राप्त होता है। नयी समस्याएं, विचारधारा एवं गद्यात्मक शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारंभ हुआ।

प्रसाद युग में जिन सामाजिक एकांकियों की रचना हुई उन पर युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। प्रसाद युगीन एकांकीकारों का आलोच्य युग की अन्य नवीन समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित हुआ।

तत्कालीन समाज की नग्न विकृतियों का चित्रण करने वाले अनेक एकांकियों की रचना इस युग में हुई। जीवानंद शर्मा कृत 'बाला का विवाह', हरिकृष्ण शर्मा कृत 'बुढ़ाऊ का व्याह', जी.पी. श्रीवास्तव रचित 'गड़बड़झाला' और 'भूलचूक, रामसिंह वर्मा कृत 'रेशमी रूमाल', श्री बदरीनाथ भट्‌ट कृत 'विवाह विज्ञापन', डॉ. सत्येंद्र कृत 'बलिदान' आदि प्रमुख हैं।

इस युग के एकांकियों में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। मंगल प्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह', सुदर्शन कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा', 'राजपूत की हार' तथा 'जब आंखें खुलती हैं' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एकांकी रचनाएं हैं।

प्रसाद युगीन एकांकीकारों ने अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना करके भारतीय जनता को प्राचीन भारतीय गौरव एवं अतीत के स्वरूप का स्मरण कराया। मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह' में राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य प्रेम तथा भारतीय अतीत के गौरवशाली स्वरूप की प्रतिष्ठा है। श्री आनंदी प्रसाद श्रीवास्तव कृत 'नूरजहां', 'चाणक्य और चंद्रगुप्त', 'शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी' ऐतिहासिक कृतियां हैं। श्री ब्रजलाल शास्त्री रचित 'निला', 'दुर्गावती', 'पद्‌मिनी', 'पन्ना', 'तारा', 'किरण देवी' आदि ऐतिहासिक आदर्शवाद से प्रभावित अतीत गौरव को स्पष्ट करने वाली रचनाएं हैं। श्री सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार', 'प्रताप प्रतिज्ञा' आदि में राजपूती शौर्य, राजपूती स्त्रियों का स्वदेश हित हेतु कर्तव्य का पालन एवं देश प्रेम की भावना का प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। सेठ गोविंददास ने तो बहुत ही बड़ी संख्या में ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है।

धार्मिक पौराणिक एकांकी धारा को प्रवाहित करने में राधेश्याम कथावाचक कृत 'कृष्ण–सुदामा', 'शांति के दूत भगवान', 'सेवक के रूप में भगवान कृष्ण', जयदेव शर्मा रचित 'न्याय और अन्याय', जयशंकर प्रसाद कृत 'सज्जन' और 'करुणालय', आनंदी प्रसाद कृत 'पार्वती और सीता', चतुरसेन शास्त्री कृत 'सीताराम', राधा–कृष्ण', हरिश्चंद्र–शैव्या' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रसाद युग में कुछ एकांकीकारों ने धार्मिक पौराणिक एकांकी की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इस युग ने आगामी एकांकीकारों को एक ठोस आधारभूमि प्रदान की जिसमें आधुनिक एकांकी साहित्य और भी स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ।

टिप्पणी

प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर युग में यद्यपि एकांकी की अनेक प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिला है तथापि सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति पर लगभग सभी युगीन एकांकीकारों ने अपनी लेखनी चलाई। प्रस्तुत युग के प्रमुख एकांकीकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने तो अनेक सामाजिक समस्या प्रधान एकांकियों की रचना करके हिंदी एकांकी साहित्य को बहुमूल्य धरोहर प्रदान की है। इन्होंने जीवन की वास्तविकता को अपने एकांकियों का आधार बनाया। इस दृष्टि से इनके 'एक तोले अफीम की कीमत', 'अठारह जुलाई की शाम', 'दस मिनट', 'स्वर्ग का कमरा', 'जवानी की डिब्बी', 'आंखों का आकाश', 'नहीं का रहस्य', 'रंगीन स्वप्न' आदि एकांकी सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्मा जी के समान उपेंद्रनाथ 'अश्क' का ध्यान भी विविध वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर गया। इनकी एकांकी रचनाओं में 'चरवाहे', 'चिलमन', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पहेली', 'सखी डोली', 'अंधी गली', 'तूफान से पहले' आदि सामाजिक दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री शमुदयाल सक्सेना रचित 'कन्यादान', 'नेहरू के बाद', 'मुर्दा का व्यापार', 'नया समाज', 'नया हल नया खेत', 'सगाई', 'मृत्युदान' आदि एकांकी सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बादलों के पार', 'वाणी मंदिर', 'सेवा मंदिर', 'घर या होटल', 'निष्ठुर न्याय' आदि एकांकी रचनाओं में विविध सामाजिक समस्याओं का अंकन किया है जिनमें विधवा समस्या, नारी की आधुनिकता, वर्ग वैषम्य, जातीय बंधन की संकीर्णता, प्राचीन परंपराओं एवं मान्यताओं की अर्थहीनता, पुरुष की वासना लोलुपता एवं पुंश्चलित्व आदि का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। भगवतीचरण वर्मा कृत 'मैं और केवल मैं', 'चौपाल में' तथा 'बुझता दीपक' में पीड़ित मानव की अंतर्वेदना का करुण स्वर उभर कर सामने आया है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'नया समाज', 'अमर ज्योति' तथा 'गांव का देवता' आदि रचनाएं सामाजिक समस्या प्रधान हैं। श्री सद्गुरुचरण अवस्थी ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों को उपयुक्त एवं उचित तर्कों की कसौटी पर कसकर उनको समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया जिनमें बुद्धि, तर्क एवं विवेक का प्राधान्य है। इस दृष्टि से 'हां में नहीं का रहस्य', 'खद्दर' वे दोनों आदि विशेष महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त चंद्रगुप्त विद्यालंकार रचित 'प्यास' तथा 'दीनू' श्री यज्ञदत्त शर्मा कृत 'छोटी बातें', 'सार्थक दुविधा', एस.सी. खत्री रचित 'बंदर की खोपड़ी', 'प्यारे सपने', श्री सज्जाद जहीर रचित 'बीमार' आदि रचनाओं में सामाजिक जीवन के सत्य को उभारते हुए इसका सर्वपक्षीय चित्रण किया गया है।

प्रसादोत्तर युग राजनीतिक क्रांति का युग था। गांधी जी का प्रभाव राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से पड़ रहा था। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र भी राजनीतिक क्रांति को कुचलने के लिए तीव्र गति से चल रहा था। एकांकीकारों ने तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं एवं गतिविधियों का चित्रण करना तथा देशवासियों में देश प्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को प्रबल करना अपना महान कर्तव्य समझा।

आलोच्य युग में कुछ देशद्रोही वैयक्तिक स्वार्थों के कारण ब्रिटिश शासकों का साथ दे रहे थे। ऐसे देशद्रोहियों को देशभक्ति की शिक्षा देने की दृष्टि से एकांकीकारों ने ऐतिहासिक पात्रों के आदर्श एवं त्यागमय चरित्र को प्रस्तुत करके प्राचीन भारतीय गौरव

टिप्पणी

की ओर ध्यान भी आकर्षित करवाया। डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में 'चारुमित्र', 'पृथ्वीराज की आंखें', 'दीपदान', 'रात का रहस्य', 'प्रतिशोध', 'राजा श्री' आदि प्रमुख हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने 'कलिंग विजय' तथा 'शारदीया' शीर्षक एकांकियों की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की है तथा भारतीय सांस्कृतिक वातावरण का प्रभावोत्पादक स्वरूप चित्रित किया है। राष्ट्रीय ऐतिहासिक भावना पर 'सिकंदर', 'जेरुसलम' आदि एकांकियों की रचना करके भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने देश प्रेम का परिचय दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी रचित 'मान मंदिर', 'न्याय मंदिर', 'मातृ भूमि का मान', 'प्रेम अंधा है', 'रूपशिखा' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत ऐतिहासिक रचनाएं हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा रचित 'प्रतिशोध' तथा 'हेलन' में भारत के गौरवमय अतीत की झांकी प्रस्तुत की गयी है। डॉ. सत्येंद्र रचित 'कुणाल', 'प्रायश्चित', 'विक्रम' का 'आत्ममेध' में प्राचीन कथानक लेकर स्वस्थ तथा तार्किक विचारधारा को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा, अतीत कालीन भारतीय गौरव की महत्ता तथा नागरिकों के चारित्रिक बल की अभिवृद्धि करने वाले आदर्श पात्रों की सृष्टि करके लेखक ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में सहयोग प्रदान किया है। गिरिजाकुमार माथुर रचित 'विषपान', 'कमल और रोटी', 'वासवदत्ता' आदि में देशभक्तिपूर्ण आत्म बलिदान तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किए गए शौर्यपूर्ण कार्यों का चित्रण है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'सघमित्रा', 'सिंहल विजय', 'नेत्रदान', 'तथागत' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसादोत्तर युग में अनेक एकांकीकारों ने बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर एकांकियों की रचना करके प्राचीन भारतीय गौरव को वर्तमान के समक्ष रखा है।

आलोच्य युग में अनेक एकांकीकारों ने अनेक हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकियों की रचना करके विभिन्न सम-सामयिक समस्याओं का अभिव्यक्तिकरण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन एकांकीकारों ने उन विभिन्न समस्याओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया जो सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए अभिशाप बनी हुई थीं। उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने विशेष रूप से इस श्रेणी के एकांकियों की रचना की।

मनोवैज्ञानिक एकांकी की प्रवृत्ति का जन्म प्रसादोत्तर युग में आकर हुआ क्योंकि इस समय तक मनोविज्ञान विषय का पर्याप्त विकास हो चुका था। पाश्चात्य एकांकीकारों के प्रभावस्वरूप हिंदी एकांकीकारों ने भी पात्रों के मन की गहराइयों में पहुंचकर उनके मनोभावों के चित्रण को परमावश्यक समझा। जगदीशचंद्र माथुर रचित 'मकड़ी' का 'जाला', भुवनेश्वर प्रसाद रचित 'ऊसर', 'प्रतिमा का विवाह' तथा 'लाटरी' आदि मनोविश्लेषण प्रधान मनोवैज्ञानिक रचनाएं हैं।

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग में एकांकी साहित्य का एक स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है। अनेक पाश्चात्य नाटककारों जैसे इब्सन, शॉ, गाल्सवर्दी, चेखव आदि एकांकीकारों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद प्रारंभ हो गया था। इन अंग्रेजी एकांकियों के हिंदी अनुवादों की मांग रेडियो के क्षेत्र में अधिक थी। इस प्रकार आलोच्य युगीन एकांकीकारों ने विभिन्न नवीन प्रयोगों के द्वारा हिंदी एकांकी साहित्य को समृद्धशाली बनाया।

स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से अब तक)

हिंदी एकांकी के विकास की चौथी अवस्था में हिंदी एकांकियों पर रेडियो का प्रभाव बड़ी गहराई से पड़ा है। रेडियो नाटकों के रूप में नाटकों का नवीन रूप हमारे समक्ष आया। एक सरल व सस्ती मनोरंजन का माध्यम होने के कारण श्रोतागण इसमें रुचि लेने लगे। इसलिए रेडियो एकांकियों की मांग इस युग में अधिक रही।

आलोच्य युग प्रत्येक दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तनों का युग था। इसमें पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियों का समुचित उत्कर्ष हुआ। इस युग में सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न पक्षीय परिवर्तनों और विकास का यथार्थपरक चित्रण करते हुए जहां एक ओर प्रमुख सामाजिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया गया वहां सामाजिक विघटन के कारणों का भी विश्लेषण हुआ। इन एकांकीकारों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर जोरदार शब्दों में की गयी टीका टिप्पणी इस तथ्य का द्योतक है कि इन एकांकीकारों का सामाजिक दृष्टिकोण सुधारवादी है। इस क्षेत्र में विनोद रस्तोगी रचित 'बहू की विदा', कणाद ऋषि भटनागर रचित 'नया रास्ता' तथा 'अपना घर' दहेज की कुप्रथा का पर्दाफाश करते हैं। प्रस्तुत युग के सामाजिक एकांकी में विनोद रस्तोगी, जयनाथ नलिन, लक्ष्मीनारायण लाल, राजाराम शास्त्री, कैलाश देव, विष्णु प्रभाकर माचवे, रेवतीशरण शर्मा, श्री चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, कृष्ण किशोर, करतार सिंह दुग्गल, स्वरूप कुमार बख्शी, गोविंद लाल माथुर आदि ने समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों के चित्र खीचें हैं। इस युग के एकांकीकारों का यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं मानवीय मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह रहा है। विष्णु प्रभाकर के एकांकियों में 'बंधन मुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध' तथा 'इनसान', 'वीर पूजा' आदि प्रमुख हैं।

आलोच्य युग के हिंदी एकांकी में राजनीतिक जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, बंगाल का अकाल, भुखमरी, फॉसीवाद का विरोध, जागीरदारी और देशी नरेशों का जीवन यापन तथा अन्य अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं प्रकट हुई हैं। जयनाथ नलिन की राष्ट्रीय रचनओं में सृजनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। देश की स्वतंत्रता, इसके लिए किया हुआ बलिदान, सर्वोच्य त्याग, सतत उद्योग एवं कर्म की आवश्यकता के महत्व का प्रतिपादन इनकी रचनाओं में हुआ है। इनके 'विद्रोही की गिरफ्तारी', 'देश की मिट्टी', 'युग के बाद', 'लाल दिन' आदि राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण एकांकी हैं। विष्णु प्रभाकर ने जो राजनीतिक भावना से परिपूर्ण एकांकी लिखे उनमें राजनीतिक उथल–पुथल, समाज पर राजनीतिक प्रभाव, स्वतंत्रता आंदोलन तथा राजनीतिक गौरव का चित्रांकन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर युग में अन्य अनेक प्रतिभासंपन्न एकांकीकार भी हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए हिंदी एकांकी को संपन्न एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

संक्षिप्त रूप में, हिंदी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखे गए वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित हुआ जो निश्चित रूप से प्रगति युग कहा जा सकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

32. हिंदी एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु की किस रचना से माना जाता है?
33. एकांकी साहित्य की प्रथम मौलिक कृति किसे माना जाता है?
34. सामाजिक एकांकियों का लेखन किस युग में प्रमुखता से हुआ?
35. मनोवैज्ञानिक एकांकी लेखन का जन्म किस युग में आकर हुआ?
36. हिंदी एकांकियों पर रेडियो का गहरा प्रभाव किस युग में दिखाई देता है?

5.7 आलोचना

'आलोचना' शब्द 'लोच' धातु से बना है। 'लोच' का अर्थ है– 'देखना'। अतः आलोचना का अर्थ है 'देखना'। किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। डॉ. श्यामसुंदर दास के शब्दों में, "साहित्यक्षेत्र के ग्रंथ को पढ़कर उनके गुणों और दोषों की विवेचना करना और उनके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।" आलोचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए डॉ. गुलाबराय जी लिखते हैं, "आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।"

विभिन्न दृष्टिकोणों, प्रयोजनों एवं पद्धतियों की दृष्टि से आलोचना के मूलतः दो भेद किए जा सकते हैं– साहित्यिक समीक्षा एवं वैज्ञानिक समीक्षा। साहित्यिक समीक्षा में समीक्षक का लक्ष्य व्यक्तिगत दृष्टि से कृति के संबंध में निजी अनुभूतियों, धारणाओं एवं मूल्यों को कलात्मक शैली में प्रस्तुत करने का होता है, जबकि वैज्ञानिक समीक्षा में लक्ष्य वस्तुगत दृष्टि से कृति का प्रामाणिक विवेचन, विश्लेषण करते हुए उसके संबंध में सुनिश्चित एवं संतुलित निर्णय देना होता है। वैज्ञानिक समीक्षा में शैली या पद्धति भी भावात्मक न होकर विचारात्मक होती है। वस्तुतः साहित्यिक समीक्षा जहां कला या साहित्य की कोटि में आती है, वहां वैज्ञानिक समीक्षा विज्ञान या अनुसंधान की श्रेणी में रखी जा सकती है।

हिंदी आलोचना का प्रारंभ भी गद्य की अन्य विधाओं के साथ भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में मुद्रण कला का विकास हुआ, राजनीतिक जागृति आई और पत्र–पत्रिकाओं का लगातार प्रकाशन हुआ। अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क से लोगों को नयी–नयी जानकारियां मिलीं। गद्य का विकास भी आधुनिक आलोचना के उद्भव और विकास का सहायक कारण बना। आलोचना के विकास में पाश्चात्य साहित्य और बौद्धिक जागृति प्रधान कारण थे। उस समय पाठक अच्छी पुस्तकों की उपादेयता आंकने लगा। इसी से उसमें आलोचना की प्रवृत्ति पैदा हुई।

हिंदी साहित्य को युगीन परिस्थितियों ने नये आयाम और नये संदर्भ दिए, फलतः आलोचना के पुराने मानदंड अपर्याप्त दिखाई देने लगे और पाश्यचात्य समीक्षा साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके हिंदी आलोचना ने नये युग में प्रवेश किया। आलोचना के प्रारंभिक काल में निंदा–स्तुति की अधिकता रही।

5.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना

आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता एवं पोषक विराट साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी–साहित्य के सभी उपेक्षित अंगों का विकास किया था, अतः आलोचना–साहित्य भी उनके युग परिवर्तनकारी करों के स्पर्श से वंचित कैसे रह सकता था। भारतेंदु से पूर्व रीतिकाल में मौलिक विचारों की प्रवृत्ति तो है किंतु गूढ़ चिंतन और विषय के शास्त्रीय एवं यथार्थ ज्ञान का अभाव है। इसका कारण यही हो सकता है कि उस काल में गद्य

रचना की पुष्ट परंपरा नहीं थी। इस काल में आचार्यों ने प्रायः काव्य के सभी अंगों पर स्थूल रूप से विचार प्रकट किए। अनेक कवियों का काव्यशास्त्रीय विवेचन तो आचार्यत्व की कोटि तक पहुंच गया। आलोचना के आधार युगीन साहित्य की आलोचना के लिए पर्याप्त नहीं थे।

भारतेंदु युग जन–जागरण का युग था। इस युग में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्य दर्शन और चिंतन के क्षेत्र में समस्त भारतीय जनमानस में एक नवीन क्रांति आई। साहित्य का उपयोगितावादी दृष्टिकोण स्वीकार किया जाने लगा। साहित्य में सुरुचि, नैतिकता और बौद्धिकता को प्रधानता मिलने लगी। भारतेंदु युग की आलोचना में इन्हीं तीन तत्वों की प्रमुखता दी गयी। राष्ट्रप्रेम इस काल के साहित्य की प्रधान विशेषताओं में है। अतः आलोचनाओं में भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया गया।

भारतेंदु युग में अधिकांश आलोचनाएं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही विकसित होती रहीं। हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, भारत मित्र, सारसुधा निधि, ब्राह्मण आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लिखित लेख और टिप्पणियों से आलोचना दृष्टि का विकास हुआ। समीक्षा में राष्ट्रीय हित तथा समाज कल्याण को दृष्टि में रखा गया। डॉ. नगेंद्र के अनुसार इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं की प्रधानता रही–

1. रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों की परंपरा की सैद्धांतिक आलोचना।
2. ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली गद्य में लिखी गयी टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना।
3. इतिहास ग्रंथों तथा कवि परिचय के रूप में लिखी गयी आलोचना।

प्रथम वर्ग के अंतर्गत पिंगल, अलंकार, रस, संपूर्ण काव्यशास्त्र पर लक्षण ग्रंथों की रचना की गयी। यथा जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'छंद प्रभाकर' और जगन्नाथ दास रत्नाकर रचित 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' इस युग में रचित पिंगल ग्रंथ है। प्रताप नारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर' उल्लेखनीय है। इसमें लक्षण खड़ी बोली गद्य में दिए गए हैं।

द्वितीय वर्ग की आलोचनाओं में टीकाएं हैं, जिनमें प्रमुख है– लल्लूलाल जी की टीका 'लाल चंद्रिका', जो ब्रजभाषा प्रभावित खड़ी बोली गद्य में एक अच्छी टीका थी। तृतीय वर्ग के अंतर्गत दो इतिहास ग्रंथ लिखे गए– शिवसिंह सेंगर रचित 'शिवसिंह सरोज' इनमें से एक है, किंतु इसमें आलोचना के तत्व नहीं के बराबर हैं। भारतेंदु युग में पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक समीक्षाओं में ही आलोचना का रूप दिखाई देता है। 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका की 'संयोगिता स्वयंवर' और 'बंगविजेता' तथा हिंदी 'प्रदीप' पत्रिका की 'सच्ची समालोचना इस शैली के प्रौढ़ उदाहरण हैं। भारतेंदु युग के मुख्य आलोचक हैं– भारतेंदु, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन और बालकृष्ण भट्ट।

5.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना

भारतेंदु ने नाट्यशास्त्र संबंधी महत्वपूर्ण कृति 'नाट्य' (1883 ई.) की रचना कर आधुनिक हिंदी आलोचना का प्रारंभ किया। इसमें नाटक का शास्त्रीय विवेचन और इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह निबंध यद्यपि संस्कृत नाट्यशास्त्र को आधार बनाकर लिखा गया किंतु इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन नाट्यशास्त्र की जानकारी भी दी गयी है। भारतेंदु जी ने संस्कृत से ब्रज साहित्य तक का गहन अध्ययन

किया। उन्होंने संस्कृत और हिंदी के आचार्यों और कवियों– कालिदास, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, जयदेव, वल्लभाचार्य तथा सूरदास पर जीवनी परक आलोचना प्रस्तुत की और जगह–जगह अपनी तुलनात्मक दृष्टि का भी परिचय दिया। भारतेंदु युग के ही बदरीनारायण चौधरी का भी प्रमुख स्थान है। उन्होंने श्रीनिवासदास रचित 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक और राधाकृष्ण सिंह लिखित 'दुर्गेश नंदिनी' उपन्यास के हिंदी अनुवादों की विस्तृत आलोचना 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में की। इसी से व्यावहारिक हिंदी आलोचना का सूत्रपात माना जाता है।

इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने भी हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने संस्कृत के अनेक कवियों एवं आचार्यों– भवभूति, विल्हण, कालिदास, बाल्मीकि, जयदेव, राजशेखर आदि के जीवन वृत्तांत प्रस्तुत करते हुए जो आलोचनाएं लिखी हैं, वे उल्लेखनीय हैं। उनकी शैली व्यंग्य प्रधान है।

इस प्रकार इन समीक्षकों का ध्यान काव्य के अत्यंत बाह्य और स्थूल पक्ष पर ही था। काव्य के भीतर काव्य जगत में प्रविष्ट होकर उन्होंने विश्लेषण नहीं किया। किंतु यह निश्चित है कि आलोचना के भावी विकास की पूर्वपीठिका भारतेंदु काल में तैयार हो गयी थी।

5.7.2 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

सन् 1900 में 'सरस्वती' के संपादक के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिंदी समीक्षा क्षेत्र में अवतरण हुआ। किंतु उनके आगमन के पूर्व ही–तीन आलोचनात्मक छोटी पुस्तिकाएं और भी प्रकाशित हो चुकी थीं– गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की समालोचना तथा अंबिकादत्त व्यास की 'गद्य काव्य मीमांसा' आदि। द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' 'नैषधचरित–चर्चा', 'विक्रमांक देव चरित चर्चा' आदि ग्रंथ की रचना की। उन्होंने ग्रंथों में प्राचीन एवं नवीन कवियों के गुण–दोषों का विवेचन व्यायात्मक शैली में किया। द्विवेदी जी ने धीरे–धीरे अपनी तर्कशक्ति, विचार क्षमता और सद्विवेकिनी शक्ति का प्रयोग करना शुरू किया। भारतीय और पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों के अध्ययन और चिंतन के फलस्वरूप आलोचना की दृष्टि बहुत कुछ वैज्ञानिक होने लगी। पुस्तकीय समीक्षा से परे हिंदी आलोचना की कई महत्वपूर्ण पद्धतियां द्विवेदी युग में विकसित हुईं। इस युग में 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'माधुरी', 'वीणा', 'विशाल भारत', 'साहित्य समालोचक', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं ने आलोचना के विकास में बहुत योगदान दिया। द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना के पांच रूप मिलते हैं–

1. शास्त्रीय आलोचना 2. तुलनात्मक आलोचना 3. अनुसंधानपरक आलोचना
4. परिचयात्मक आलोचना 5. व्याख्यात्मक आलोचना। प्रथम वर्ग की आलोचनाओं में जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'काव्य–प्रभाकर' तथा 'छंद सारावली' तथा लाला भगवानदीन रचित 'अलंकार मंजूषा' प्रसिद्ध हैं। तुलनात्मक आलोचना में मिश्रबंधुओं द्वारा रचित 'हिंदी नवरत्न' प्रमुख है। लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र ने देव और बिहारी की विशद तुलना करते हुए एक को दूसरे से बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। अनुसंधान परक आलोचना का विकास 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका के प्रकाशन से हुआ। इसके प्रमुख आलोचक हैं– मिश्र बंधु, श्यामसुंदरदास, जगन्नाथ दास रत्नाकर और सुधाकर द्विवेदी। आगे चलकर चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने आलोचना संबंधी समालोचक पत्र निकाला।

परिचयात्मक आलोचना में 'सरस्वती' के माध्यम से स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गयी आलोचनाएं हैं। द्विवेदी जी ने विषय–विवेचन के साथ ही भाषा संबंधी त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यह कार्य उन्होंने अपनी समालोचना द्वारा ही किया। उन्होंने 'समालोचना समुच्चय' नाम से अलग से भी अपना एक निबंध संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें ज्ञान–विज्ञान तथा प्राचीन काव्य से संबंधित उनके कई महत्वपूर्ण लेख संगृहीत हैं। उन्होंने अपनी आलोचना में उन्हीं कृतियों को महत्व दिया जो सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय विकास की भावना फैला रही थीं।

व्याख्यात्मक आलोचना में आलोचना विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखा जाता है तथा नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और सौंदर्यपरक मूल्यों के आधार पर विशद और गंभीर विवेचन किया जाता है। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में 'नीलदेवी', 'परीक्षा गुरु' और 'संयोगिता स्वयंवर' की गंभीर आलोचना करके इस पद्धति को मजबूत किया। किंतु आलोचना की इस गंभीर शैली का पूर्ण विकास आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। इस तरह द्विवेदी युग में आलोचना के दो प्रतिमान मुख्य रहे– एक तो परंपरागत शास्त्रीय दृष्टि जिसके आधार पर आलोच्य कृति के गुण–दोषों का विवेचन किया जाता था। दूसरी, नैतिक सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि जो आलोच्य कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर उसे श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करती थी।

5.7.3 शुक्ल युग में आलोचना

आचार्य शुक्ल साहित्य का एक सुनिश्चित मानदंड एवं समीक्षा की एक विकसित पद्धति लेकर अवतरित हुए। उन्होंने स्थूल नैतिकता या भौतिक लाभ–हानि के प्रश्न को त्याग कर साहित्य की सूक्ष्म भावनाओं के उद्वेलन की शक्ति को साहित्य की कसौटी के रूप में अपनाया। उन्होंने काव्य में सौंदर्य या रस को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया, किंतु फिर भी उसमें कुछ ऐसे तत्वों का समन्वय किया, जिससे उनकी आलोचना सामाजिकता से दूर नहीं जा सकी। वे समाज–हितैषिता को साहित्य का साध्य तो नहीं मानते, किंतु ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं, जो साहित्य को व्यापकता प्रदान करता है। वस्तुतः 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' दोनों में अपूर्व सामंजस्य स्थापित किया। आचार्य शुक्ल ने अपनी आलोचना में विश्लेषण, विवेचन और निगमन जैसे तत्वों को प्रमुखता दी जिनमें आलोचक की तटस्थता का तत्व भी निहित था। कृति को देशकाल के सापेक्ष रखकर परखा गया और मानवीय मूल्यों को प्रमुखता दी गयी। समीक्षा की इस नयी परिपाटी को जन्म देने कर श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही है इसीलिए इस युग को शुक्ल युग के नाम से अभिहित किया गया।

इस युग के आलोचकों ने साहित्य की नैतिक उपयोगिता को स्वीकार किया और वे कला में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा के समर्थक रहे। नीति के उपदेश की वृत्ति के अनुकूल इन आलोचकों ने मुक्तक और गीत की अपेक्षा महाकाव्य को अधिक महत्ता दी। इन आलोचकों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या माना।

इस कोटि की आलोचना की विशेषता है – काव्यशास्त्र के अनुसार चलना। इस युग के आलोचकों ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के तत्वों का उपयोग किया है लेकिन

शुक्ल जी की तरह वे समन्वय नहीं कर सके। हिंदी में कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और निबंधों पर इस युग में शास्त्रीय समालोचना बहुत कम हुई। वैधानिक समालोचना का सबसे सुंदर उदाहरण पं. धर्मेंद्र ब्रह्मचारी द्वारा लिखित 'महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास' है जिसमें रस, अलंकार की दृष्टि से तो विचार किया ही गया है, साथ ही पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों से भी जांचा परखा गया है।

शुक्ल युग के आलोचकों ने आलोच्य कवियों की रचनाओं के अध्ययन के साथ कवि के व्यक्तित्व को समझने समझाने का प्रयत्न किया। वस्तु–विन्यास, रस–पद्धति, अलंकार नियोजन, चरित्र कल्पना, जीवन की व्याख्या आदि का विश्लेषण करके कवि की सामान्य प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना ही आलोचक का मुख्य ध्येय हो गया। शुक्ल युग में आलोचना की एक और पद्धति सामने आई जिसमें कवि के व्यक्तित्व और कलाकृति में अभिन्न संबंध स्थापित किया गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास के विवेचन में इस पद्धति को अपनाया। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक पद्धति का प्रचलन किया। साहित्य को उसकी परिस्थितियों में रखकर आंकने की आलोचनात्मक पद्धति का सूत्रपात शुक्ल जी ने किया। उन्होंने सूर, तुलसी आदि कवियों के महत्व को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर आंका। 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका में शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना क्षेत्र में प्रवेश करते ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया– साहित्यिक रुचि में परिवर्तन। शुक्ल जी ने पूरी साहित्यिक परंपरा का पुनर्गठन किया। उन्होंने अपनी व्यावहारिक आलोचना के माध्यम से हिंदी कवियों का जो क्रमिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वह उनके समय की बदलती रुचि का प्रमाण है। शुक्ल जी ने 'कविता क्या है', 'साहित्य', 'काव्य में रहस्यवाद' आदि निबंधों से सैद्धांतिक समीक्षा का सूत्रपात किया। 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों से उनके व्यापक अध्ययन और गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है। शुक्ल जी ने हिंदी में पहली बार रस–विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रस मीमांसा में रस के शास्त्रीय विवेचन की मौलिक व्याख्या की। उनका मत है कि लोकहृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रसदशा है। इस प्रकार उन्होंने साधारणीकरण की पुनः प्रतिष्ठा की।

श्यामसुंदर दास का भी आलोचना के क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। उन्होंने 'साहित्यलोचन' ग्रंथ की रचना की, जिसमें उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धांतों का समन्वय करके साहित्य समीक्षा को उदार बनाया। बाबूजी का सिद्धांत प्रतिपादन शास्त्रीय एवं तर्कसंगत है। उन्होंने 'कबीर ग्रंथावली की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का इतिहास' तथा 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' एवं 'रूपक रहस्य' की रचना की। गुलाबराय ने 'साहित्य संदेश' नामक आलोचनात्मक पत्रिका का संपादन करके हिंदी आलोचना के प्रचार–प्रसार में काफी योगदान दिया।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी आलोचना क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। 'वाङ्मय विमर्श', 'बिहारी की वाग्विभूति', 'हिंदी साहित्य का अतीत' और 'हिंदी का सामाजिक साहित्य' ग्रंथों की रचना द्वारा मिश्र जी ने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया।

तीसरे दशक की आलोचना के विकास में छायावादी कवियों का भी उल्लेखनीय योगदान है। छायावादी कवियों ने अपनी कविता के बचाव में जो आलोचनाएं लिखीं, उनका

बड़ा महत्व है। उन्होंने आलोचना को नयी दिशा देने के लिए प्राचीन शास्त्रीय साहित्यिक मूल्यों का विरोध तो किया ही, नये मूल्यों के प्रश्न भी खड़े किए। जयशंकर प्रसाद ने 1936 ई. में 'हंस' के अनेक अंकों में काव्य की आलोचना विषयक निबंध लिखे जिसका संकलन बाद में 'काव्य, कला और अन्य निबंध' शीर्षक से हुआ। इन निबंधों में उन्होंने काव्य और कला, रहस्यवाद, नाटकों में रस का स्थान, रंगमंच, यथार्थवाद, छायावाद, आदि के संबंध में अपने विचार प्रकट किए।

सूर्यकांत त्रिपाठी ने 'पंत और पल्लव' शीर्षक निबंधमाला की कविताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया। 'परिमल की भूमिका' में निराला जी ने मुक्त छंद के विवेचन द्वारा हिंदी में एक नये छंद शास्त्र की स्थापना की। साथ ही अनेक पत्रिकाओं में लेख लिखे जिनमें भाषा, छंद, तुक, लय, समसामयिकता, सार्वदेशिकता आदि को लेकर अनेक मौलिक प्रश्न उठाए जो भावी आलोचना के लिए मार्गदर्शक बने।

5.7.4 शुक्लोत्तर युगीन आलोचना एवं आलोचना के प्रकार

शुक्ल परवर्ती युग में हिंदी–समीक्षा का विकास द्रुत गति से हुआ। शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना अपने युग के प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित हुई। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर पड़ने लगा। इन विश्वव्यापी चिंतनधाराओं से भारत भी अछूता नहीं रह सका। फलस्वरूप साहित्य में संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति के लिए तरह–तरह के प्रयोग किए जाने लगे। इस युग में समीक्षा के प्रकार निम्नलिखित हैं–

ऐतिहासिक समीक्षा

इस वर्ग में मुख्यतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. भगीरथ प्रसाद मिश्र आते हैं। आचार्य द्विवेदी ने अपने 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' आदि ग्रंथों द्वारा नूतन आंदोलन के संबंध में अनेक नये तथ्यों का उद्घाटन किया। उनके अन्य समीक्षात्मक ग्रंथ– 'सूरसाहित्य', 'कबीर' आदि भी महत्वपूर्ण हैं जो कि व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत आते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में आदिकाल एवं भक्तिकाल का विवेचन किया एवं कवियों का मूल्यांकन साहित्यिक शैली में किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' एवं 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' द्वारा हिंदी के इतिहास को स्पष्ट किया है।

स्वच्छंदतावादी समीक्षा

छायावाद के साहित्यिक विश्लेषण के लिए स्वच्छंदतावादी एवं सौष्ठववादी समीक्षा पद्धति अपनाई गयी। इस नयी समीक्षा के तत्वों का निर्माण छायावाद की प्रमुख विशेषताओं से हुआ। साथ ही इस समीक्षा पर अंग्रेज़ी कविता के 'रोमांटिसिज्म' का भी प्रभाव पड़ा। इन आलोचकों ने प्राचीन सिद्धांतों से अलग हटकर काव्य में सूक्ष्म सौंदर्य और सौष्ठव देखने का प्रयत्न किया। इन आलोचकों ने 'आनंद' को प्रमुखता दी। स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति के प्रमुख आलोचक हैं – डॉ. नगेंद्र, नंददुलारे वाजपेयी और शांतिप्रिय द्विवेदी। इन आलोचकों ने छायावाद संबंधी प्रश्नों पर शुक्ल जी का विरोध किया।

नंददुलारे वाजपेयी ने द्विवेदी काल के उत्तरार्द्ध में आलोचना क्षेत्र में प्रवेश किया था। प्रारंभ में 'सरस्वती' में उनकी आलोचनाएं प्रकाशित हुईं। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने वाजपेयी जी की आलोचना की दो प्रधान विशेषताएं बताई हैं– कलाकार की अंतर्वृत्तियों का अध्ययन तथा कलाकृति के सौष्ठव का अनुभूतिपूर्ण विश्लेषण। वाजपेयी जी ने द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता तथा नैतिकतावाद से समीक्षा को मुक्त किया। उन पर पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का व्यापक प्रभाव था। वाजपेयी जी को छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी रचनाओं की गंभीर और विस्तृत समीक्षा का श्रेय जाता है। वाजपेयी जी के प्रधान समीक्षा ग्रंथ हैं– हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी 'जयशंकर प्रसाद', 'सूर संदर्भ की भूमिका', 'आधुनिक साहित्य', 'महाकवि सूरदास' और 'नया साहित्य नये प्रश्न' आदि।

डॉ. नगेंद्र भी इसी श्रेणी के आलोचक हैं। छायावादी काव्य की अंतर्मुखी साधना, सौंदर्य चेतना और कलात्मकता के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। 'सुमित्रानंदन पंत' पुस्तक में पंत जी की कविताओं में मनोदशाओं का सुंदर चित्रण किया गया है। 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' में सैद्धांतिक आलोचना है। वे मूलतः रसवादी आलोचक हैं। 'रस सिद्धांत' में उन्होंने रस का पूरा विवेचन कर उसकी पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। वे आधुनिक साहित्य और समसामयिक आंदोलनों से भी जुड़े रहे। नयी समीक्षाः नये संदर्भ में मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट, आधुनिकता का प्रश्न आदि पर भी उन्होंने विचार व्यक्त किए हैं। पाश्चात्य सिद्धांतों की जानकारी देने के लिए उन्होंने 'काव्य बिंब' की रचना की। उन्होंने हिंदी आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से विकसित किया है।

पं. शांतिप्रिय द्विवेदी ने मुख्यतः छायावादी साहित्य पर ही विचार किया है। वे छायावाद पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले समीक्षक थे। वे काव्य से जीवन की प्रेरणा प्राप्ति पर बल देते हैं। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं–'हमारे साहित्य निर्माता', 'कवि और काव्य' तथा 'साहित्यिकी'।

मार्क्सवादी समीक्षा

1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से हिंदी में प्रगतिशीलता का एक नया दौर शुरू हुआ और साथ ही आलोचना में भी नयी मान्यताएं प्रकट होने लगीं। इस साहित्य पर कार्ल मार्क्स की विचारधारा का प्रमुख प्रभाव रहा। सिद्धांतवादी आलोचकों ने भी मार्क्सवाद को आधार बनाया। मार्क्स का दर्शन 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' से जाना जाता है। मार्क्सवादी आलोचकों ने भी कला को जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए शोषित और पीड़ित मानव को अपने साहित्य का आलंबन बनाया। प्रगतिशील साहित्यकार पूंजीवाद संस्कृति के विरोध और जनवादी संस्कृति की कामना लेकर आगे बढ़े। इन आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त और डॉ. रामविलास शर्मा प्रमुख हैं।

शिवदान सिंह चौहान ने 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक से लेख लिखा, जिसमें प्रगतिशील साहित्य के सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया। उनकी प्रमुख रचनाएं हैं– 'आलोचना के सिद्धांत' और 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष'। चौहान जी 'हंस' और 'आलोचना' पत्रिकाओं के संपादक रहे। उनके आरंभिक निबंध 'प्रगतिवाद' में संकलित हैं।

प्रकाशचंद गुप्त ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के विवेचन के साथ हिंदी साहित्य की पुरानी परंपरा और समसामयिक साहित्य का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किया। उनके तीन प्रमुख निबंध संकलन हैं– 'आधुनिक हिंदी साहित्य : एक दृष्टि', 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा', और 'साहित्यधारा'।

डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावादी काव्य और उसमें विशेषकर निराला के साहित्य की व्याख्या से आलोचना–कार्य आरंभ किया। रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद पर भी किया गया आलोचना कार्य महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, 'प्रेमचंद' और 'निराला की साहित्य साधना' हिंदी आलोचना की उपलब्धियां हैं। रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी साहित्य–सिद्धांतों का कोरा सैद्धांतिक प्रतिपादन ही नहीं किया वरन् मार्क्सवादी दृष्टि से समूचे हिंदी साहित्य की परंपरा की नयी व्याख्या प्रस्तुत की। 'आदिकाव्य', 'साहित्य के स्थायी मूल्यों की समस्या : कालिदास', तथा 'भवभूति की करुणा' उनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी गयी। अतः रचना को ठीक–ठीक समझने के लिए रचनाकार के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक समझा गया। वस्तुतः पश्चिमी आलोचक फ्रायड, एडलर और युंग ने साहित्य प्रेरणा के तीन सिद्धांतों की चर्चा की – काम वासना, प्रभुत्व की कामना तथा जीवित रहने की इच्छा। इन सिद्धांतों ने पश्चिमी जगत में तहलका मचा दिया। इसने हिंदी साहित्य को भी प्रभावित किया। हिंदी में अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी के उपन्यास इसी विचारधारा से प्रभावित हैं। नगेंद्र जी ने भी कुछ हद तक इस प्रकार की आलोचनाएं कीं।

अज्ञेय ने विशेषतः एडलर (प्रभुत्व कामना) को अपनाया। इनका समन्वित रूप ही उन्होंने ग्रहण किया। उन्होंने अपने 'त्रिशंकु' नामक निबंध संग्रह में प्रभुत्व कामना और क्षतिपूर्ति के सिद्धांतों को स्पष्ट किया। उल्लेखनीय है कि मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा के साथ–साथ अज्ञेय जी ने बाद में नयी समीक्षा का सूत्रपात किया।

इलाचंद्र जोशी के कला–विवेचन में भी फ्रायड और एडलर के सिद्धांतों का उपयोग हुआ। जोशी जी ने काव्य का चरम लक्ष्य सौंदर्य माना जिसमें मंगल भावना भी निहित है। जोशी जी ने सामंजस्य के सिद्धांत पर बहुत ज़ोर दिया। काव्य का उद्देश्य वे जीवनी–शक्ति प्रदान करना मानते हैं। जोशी जी ने 'साहित्य सर्जना', 'विवेचना', 'साहित्य संतरण', 'विश्लेषण' और 'साहित्य चिंतन' में संगृहीत निबंधों में मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी।

5.7.5 नयी समीक्षा

1950 के बाद हिंदी आलोचना का विकास नये संदर्भों में नयी आवश्यकता की पूर्ति हेतु सही दिशा में अग्रसर हुआ। नयी आलोचना में कृति को ही आधार बनाया गया। नयी आलोचना में रचना की संगति पर विशेष ध्यान दिया गया। रचना की मूल्यगत प्रासंगिकता को भी ध्यान में रखा गया। इससे आलोचना कृति की तह तक पहुंच सकी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य के सिद्धांतों को लेकर साहित्य की जो धारा इस काल में विकसित हुई और उसके जिन मूल्यांकन सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ, उन्हें इस वर्ग में रखा गया। उसे 'नयी कविता' या 'नवलेखन' की तर्ज़ पर 'नयी आलोचना' नाम दिया गया। इस वर्ग के आलोचकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य स्वीकार कर साहित्य की नयी मर्यादाओं की स्थापना की। मानवीय मूल्य, बौद्धिकता, आधुनिकता के महत्व, सृजनात्मकता, विषय की उपेक्षा, काव्य का महत्व एवं कलाकार के अंतर्मन की परख आदि साहित्य–मूल्यों के साथ ही नये समीक्षकों ने काव्य में लय के प्रश्न को भी उठाया।

नयी समीक्षा में अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, नेमिचंद्र जैन, लक्ष्मीकांत वर्मा प्रमुख हैं। इन आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह का शीर्ष स्थान है। नामवर सिंह की आलोचना समाजवादी जीवन दृष्टि और नयी कविता के भाव बोध को लेकर चली है। उनकी पुस्तक 'छायावाद' में छायावादी कविता के छायाचित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया गया है। 'कविता के नये प्रतिमान' में नयी कविता के संदर्भ में काव्य–मूल्यों का प्रश्न उठाया है। उन्होंने कथा–समीक्षा के स्तर को भी उठाया।

अज्ञेय ने हिंदी आलोचना में नयी कविता के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए आधार बनाया। उन्होंने 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में कवियों की आलोचना को कर्म की ओर प्रवृत्त किया। उनके परवर्ती विचारों के लिए 'आत्मनेपद' और 'हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नवलेखन', 'भाषा और संवेदना' तथा 'अज्ञेय और आधुनिक रचनाशीलता' द्वारा नये साहित्य का विवेचन किया है और भाषिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख आलोचक हैं– डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. विजयदेव नारायण साही, डॉ. शंभुनाथ सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, डॉ: देवीशंकर अवस्थी, कमलेश्वर आदि। इन नये आलोचकों द्वारा हिंदी आलोचना में साहित्य को जांचने–परखने के लिए नये मूल्य विकसित हुए, विश्लेषण की नयी प्रणाली बनी, नयी भाषा का विकास हुआ।

5.8 जीवनी

जीवनी हिंदी गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। इसे यद्यपि अर्वाचीन विधा स्वीकार किया जाता है, पर डॉ. त्रिगुणायत का मत है कि यह प्राचीन विधा है। इतना अवश्य है कि इसका गठबंधन साहित्यिकता के साथ आधुनिक युग में ही हुआ है। यह बात दूसरी है कि इसके शास्त्रीय पक्ष पर हिंदी में कम विचार हुआ।

मध्यकालीन वैष्णव भक्तों एवं भक्त कवियों संबंधी वार्ता एवं चरित्र साहित्य उपलब्ध है। इसे जीवनी ना भी माना जाए तो भी इसमें जीवनी के स्रोत तो विद्यमान हैं ही। 'गुसाई चरित्र' को तो तुलसीदास का जीवन–चरित्र माना ही जाता है। नाभादास के 'भक्तमाल' में भक्त कवियों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। यह बात दूसरी है कि इन्हें प्रामाणित जीवन–चरित्र कहने में हिचकिचाहट होती है।

यह भी धारणा है कि हिंदी में 'जीवनी' शब्द अंग्रेज़ी के 'बायोग्राफी' शब्द के आधार पर प्रयुक्त हुआ। जो भी हो, पर जीवनी में किसी वर्णित व्यक्ति के संपूर्ण जीवन

'अपनी प्रगति जांचिए'

37. आलोचना के प्रारंभिक काल में किस तत्व की अधिकता रही?
38. आधुनिक हिंदी आलोचना का प्रारंभ भारतेंदु की किस रचना से माना जाता है?
39. द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना के कितने रूप मिलते हैं?
40. 'समालोचना समुच्चय' किसका निबंध संग्रह है?
41. काव्यशास्त्र के अनुसार सुनिश्चित मानदंडों पर समीक्षा पद्धति की शुरुआत करने का श्रेय किसे जाता है?
42. अंग्रेजी कविता के 'रोमांटिसिज्म' का प्रभाव कौन–सी समीक्षा पर पड़ा?
43. अपने कला–विवेचन में फ्रायड और एडलर के सिद्धांतों का उपयोग किसने किया?
44. 'किस रचनाकार ने कवियों की आलोचना को कर्म की ओर प्रवृत्त किया?

की चर्चा रहती है। शिल्पे की मान्यता है– "जीवनी को नायक के संपूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए और अपने आदर्श रूप में उसे एक विशिष्ट इतिहास होना चाहिए।" डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार– "जीवन–कथा वह साहित्यिक विधा है, जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवन–गाथा के साथ–साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है।"

इस विधा का विकास विभिन्न युगों में इस प्रकार हुआ–

भारतेंदु युग

इस विधा का प्रारंभ भी भारतेंदु युग से ही माना जाता है। भारतेंदु जी ने *'चरितावली'* में विभिन्न व्यक्तियों के छोटे–छोटे जीवन–चरित्र लिखे हैं।

कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीरा, विक्रमादित्य, शिवाजी, अहिल्याबाई के जीवन–चरित्र लिखे। राधाकृष्ण दास ने सूर, नागरीदास और भारतेंदु का जीवन–चरित्र लिखा। देवी प्रसाद ने बाबर, हुमायूं, शेरशाह, अकबर, शाहजहां, राणा सांगा, राणा प्रताप, मानसिंह, बीरबल आदि के चरित्रों पर प्रकाश डाला। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र का जीवन–चरित्र लिखा। डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल के अनुसार– इस युग के जीवनी–लेखकों में रमाशंकर व्यास, जगन्नाथ, बलभद्र मिश्र, काशीनाथ खत्री, पन्नालाल, गोकुलनाथ शर्मा, रत्नाकर, श्रीनारायण, गणेश, गोपालदास, देवगुण शर्मा, अयोध्या उपाध्याय, बालमुकुंद गुप्त, लाला खंगबहादुर 'खंग' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. खंडेलवाल के अनुसार– भारतेंदु युग के जीवनी–साहित्य में तथ्यपरकता है। इसमें प्राचीन भक्त, संत, कवि, धार्मिक नेता, राजा–रानियों और देश–विदेश के महापुरुषों तथा साहित्यकारों का वर्णन है।

द्विवेदी युग

इस युग में मन्मथनाथ गुप्त द्वारा रचित *'गुरुनानक'*, सुंदरलाल का *'हजरत मोहम्मद'*, बलदेव उपाध्याय का *'शंकराचार्य'*, शिवनंदन सहाय का *'भारतेंदु हरिश्चंद्र'*, श्यामसुंदर दास का *'भारतेंदु हरिश्चंद्र'*, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी का *'डॉ. राजेंद्र प्रसाद'*, पं. सीताराम चतुर्वेदी का *'मालवीयजी'*, घनश्याम दास बिड़ला का *'बापू'*, माधवप्रसाद मिश्र का *'स्वामी विशुद्धानंद'* आदि। इसके अतिरिक्त डॉ. राधाकृष्णन, तिलक, नेहरू के भी जीवन–चरित्र लिखे गए। आनंद प्रकाश जैन का कार्य भी सराहनीय है।

इस शृंखला में बनारसीदास चतुर्वेदी का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। इन्होंने 'सत्यनारायण कविरत्न' की जीवनी में उनके गुण–दोषों का सहृदयतापूर्वक वर्णन करते हुए उनके जीवन का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया। गणेशशंकर विद्यार्थी का जीवन–चरित्र और दीनबंधु ऐण्ड्रयूज की जीवनी भी लिखी।

जिस प्रकार गद्य की अन्य विधाओं का परिष्कार हो रहा था, इस काल में जीवनी–साहित्य में भी निखार आया। तत्कालीन स्थितियों, परिस्थितियों के आलोक में, स्वतंत्रता–संग्राम के सेनानियों का जीवन–चरित्र (बनारसीदास चतुर्वेदी) प्रेरणा के स्रोत बने और कुछ जीवनियां पर्याप्त लोकप्रिय हो गयीं।

द्विवेदी युग के बाद

यह काल जीवनी–साहित्य के विशेष विकास का काल है। इस कालखंड में कई श्रेष्ठ जीवनियां सामने आईं। राहुल जी ने मार्क्स, स्टालिन, महात्मा बुद्ध, सिंहल के वीर, नये भारत के नेता, सरदार पृथ्वीसिंह आदि पर लिखा।

डॉ. खंडेलवाल के अनुसार– "इन जीवनियों में लेखक ने चरितनायक के व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक–आर्थिक पक्षों पर विशेष बल दिया।"

बलराज मधोक (श्यामा प्रसाद मुखर्जी), पूर्णचंद्र सनक (चंद्रशेखर आजाद), इंदु विद्यावाचस्पति (महर्षि दयानंद), सेठ गोविंददास (देशरतन राजेंद्र प्रसाद), अमृतराय (प्रेमचंद पर– कलम का सिपाही), मदनगोपाल (प्रेमचंद पर ही कलम का मजदूर), ओंकार शरद (लोहिया), वासुदेवशरण अग्रवाल (हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन) तथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा) प्रमुख हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में द्विवेदी जी ने बाणभट्ट के यायावर एवं प्रतिभाशाली जीवन का साहित्यिक परिचय दिया। यह अपने ढंग की निराली रचना है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने *'निराला की साहित्य साधना'* के प्रथम खंड में निराला के जीवन की झलक दी है, सुमंगल प्रसाद (बापू के साथ), सुशील कुमार (बापू के कारावास की कहानी) भी श्रेष्ठ हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार– "रांगेय राघव ने प्राचीन महापुरुषों और साहित्य–साधकों से संबंधित छोटी–छोटी औपन्यासिक जीवनियां लिखकर इस क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है।"

काका कालेलकर (बापू की झांकियां), विष्णु प्रभाकर (शरतचंद्र पर– आवारा मसीहा), डॉ. राजेंद्र प्रसाद (बापू के कदमों में), जैनेंद्र (अकाल–पुरुष गांधी), भदंत आनंद कौसल्यायन (भगवान बुद्ध), दीनदयाल उपाध्याय (जगतगुरु शंकराचार्य), रामनाथ सुमन (मोतीलाल नेहरू), रामवृक्ष बेनीपुरी (जयप्रकाश नारायण), भारतभूषण अग्रवाल (भारत–भक्त ऐण्ड्रयूज) आदि भी उल्लेखनीय हैं।

5.9 आत्मकथा

संस्मरण और जीवनी के समान ही आत्मकथा भी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लिखा गया वह आख्यान, वृत्तांत या वर्णन है जो वह बड़ी बेबाकी से अपने जीवन के बारे में प्रस्तुत करता है। प्रायः यह व्यक्ति कोई दार्शनिक, विचारक, चिंतक, समाज–सुधारक, उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ या कलाकार होता है जो अपने जीवनानुभव, अनुभूत तथ्यों, परिचित तथ्यों, मान्यताओं आदि को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिशा–निर्देशन करना चाहता है। यह बात दूसरी है कि *'आत्म–प्रशंसा'* की भावना भी कुछ आत्मकथाओं में हो सकती है।

आत्मकथा का साहित्य में विशेष महत्व है। पाश्चात्य विचारक डॉ. ई. एस. बेटरा के अनुसार, "आत्मचरित की भांति अनोखा, अद्‌भुत तथा चमत्कारयुक्त संग्रहालय अन्य कोई साहित्य का रूप नहीं है।"

आत्मकथा का स्वरूप

यद्यपि इस पर कम ही विचार हुआ है, फिर भी कतिपय विद्वानों की निम्न मान्यता है–

1. "आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वप्न–सृष्टि नहीं करता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे–मीठे, उजले–अंधेरे, प्रसन्न–विषण्ण, साधारण–असाधारण संचरण पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करता है।"

–डॉ. भगवतशरण भारद्वाज

2. "आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सफलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता है।"

–डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

आत्मकथा का उद्भव

हिंदी में आत्मकथा साहित्य प्रायः कम है। भारतेंदु युग में अनेक महापुरुषों ने आत्मकथाओं का प्रणयन किया। इस दृष्टि से महर्षि दयानंद के स्वलिखित जीवन चरित को आत्मकथा कहा जा सकता है। आत्मकथा में प्रायः संपूर्ण जीवन का या जीवन के किसी विशिष्ट अंश का क्रमबद्ध वर्णन होता है। इस ढंग की पहली आत्मकथा जैन कवि बनारसीदास की 'अर्द्धकथानक' मानी जाती है। भारतेंदु ने *'कुछ आप बीती–कुछ जग बीती'* में अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयास किया था, पर पूर्ण न हो सकी। इसी क्रम में सन् 1901 में पं. अंबिकादत्त व्यास ने *'निज वृत्तांत'* लिखा। हिंदी की आरंभिक आत्मकथा में स्वामी श्रद्धानंद द्वारा रचित *'कल्याण का पथिक'* महत्वपूर्ण मानी जाती है।

धार्मिक प्रवृत्ति–प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

इस प्रकार की आत्मकथाओं में आत्म–निवेदन और आत्म–निगर्हण के साथ–साथ उन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन को प्रभावित किया था। इस श्रेणी की उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं– वियोगीहरि *(मेरा जीवन–प्रवाह)*, स्वामी दयाल संन्यासी *(प्रवासी की आत्मकथा)*, हरिभाऊ उपाध्याय *(साधना के पथ पर)*, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक (स्वतंत्रता की खोज)।

राजनीतिक प्रवृत्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने अनेक श्रेष्ठ पुरुषों को राजनीति की ओर प्रेरित किया। जीवन में न जाने कितने उतार–चढ़ाव आए, कितनी पीड़ा और विषमता को उन्होंने भोगा। इसका लेखा–जोखा इन आत्मकथाओं में अंकित है– महात्मा गांधी *(मेरी कहानी)*, पंत नेहरू *(मेरी आत्मकथा)*, डॉ. राजेंद्र प्रसाद *(मेरी आत्मकथा)*, वीर सावरकर और भाई परमानंद की भी कुछ रचनाएं कारावास–यात्रा पर हैं *(काले पानी की कारावास कहानी, रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा)*।

कलाकार के जीवन की आत्मकथाएं

कला एक साधना मार्ग है, इस साधना में कष्ट, साधनाकाल की अनुभूतियां आदि होती हैं। इनका भावात्मक शैली में चित्रण इस प्रकार की आत्मकथाओं में होता है। इस कोटि की

उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं– देवेंद्र सत्यार्थी *(चांद सूरज के बीच)*, कन्हैयालाल मुंशी *(स्वप्न सिद्धि की खोज में)*, बाबू गुलाबराय *(हमारी जीवन की असफलताएं)*, डॉ. श्यामसुंदरदास *(मेरी आत्म–कहानी)*, राहुल सांकृत्यायन *(मेरी जीवन–यात्रा)*, आचार्य चतुरसेन शास्त्री *(यादों की परछाइयां)*, बेचन शर्मा 'उग्र' *(अपनी खबर)*, बच्चन *(क्या भूलूं क्या याद करूं)*, यशपाल *(सिंहावलोकन)*, शांतिप्रिय द्विवेदी *(परिव्राजक की प्रजा)*, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी *(मेरी अपनी कथा)*, सेठ गोविंददास *(आत्म–निरीक्षण)*, पं. किशोरीदास बाजपेयी *(साहित्यिक जीवन के संस्मरण)*, छविनाथ पांडे *(अपनी बात)*, वृंदावन लाल वर्मा *(अपनी कहानी)*, डॉ. संपूर्णानंद *(कुछ स्मृतियां और स्फुट विचार)*, उपेंद्रनाथ अश्क *(ज्यादा अपनी कम पराई)*।

इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था, परंतु उनकी बीच में ही मृत्यु हो जाने के कारण यह प्रयास पूर्ण न हो सका। प्रेमचंद ने 'हंस' का 'आत्मकथा अंक' निकाला था, जिसमें अनेक साहित्यकारों ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथाएं या उनके कुछ विशिष्ट अंश लिखे थे।

यह मानते हुए कि यह साहित्य लघु परिमाण में है फिर भी इसे साहित्य का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

आत्मकथा लेखन एवं महिलाएं

आत्मकथा लेखन में आज की महिलाएं अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के लिए चर्चा में हैं। यूं तो आत्मकथा लेखन की शुरुआत भी पहले हो चुकी थी, किंतु प्रकाश में नहीं आयी। 'सरला : एक विधवा की आत्म जीवनी' (2009) में प्रकाशित हुई जबकि यह धारावाहिक रूप में 1915 में ही 'स्त्री दर्पण' में प्रकाशित हो चुकी थी। उसमें लेखिका की जगह एक 'दुखिनी बाला' का नाम छपता था। आज लेखिकाएं अपने जीवन का समग्र चित्रण बेबाकी से अपनी आत्मकथाओं में कर रही हैं। दिनेश नंदिनी डालमिया की आत्मकथा चार भागों में है, जिसमें मारवाड़ी परिवार के अंतःपुर का चित्रण है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी जीवन कथा को उपन्यास के रूप में लिखा है। 'कस्तूरी कुंडल बसे' में जीवन के यथार्थ को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है। अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिक़ट', अजीत कौर की 'खानाबदोश' बहुत चर्चित आत्कथा रहीं। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी' भी चर्चित कृति है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग है। इनके साथ अन्य भाषाओं से अनूदित महिला आत्मकथाएं भी अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के कारण निरंतर चर्चा में रही हैं।

5.10 संस्मरण

'संस्मरण' का शाब्दिक अर्थ होता है, 'सम्यक स्मरण'। सम्यक स्मरण के मूल में होता है– गंभीर चिंतन। मानव जीवन की कटु, तिक्त एवं मधुर स्मृतियां, अनुभूति और संवेदना का संसर्ग प्राप्त करके जब हृदय से निकलती हैं, तब वे संस्मरण का रूप धारण कर लेती हैं। संस्मरण आधुनिक गद्य–साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है।

टिप्पणी

संस्मरण की परिभाषा

1. "संस्मरण लिखने वाला शब्दों द्वारा जीवन की विविध घटनाओं, व्यक्तियों और दृश्यों का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है कि पाठक के सम्मुख वह व्यक्ति, वातावरण या प्रसंग साकार हो उठता है। गद्य में लिखे गए इसी चित्र को संस्मरण कहते हैं।"
   –डॉ. कृष्णदेव शर्मा
2. "भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से रंगकर रोचक ढंग से यथार्थ में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कह सकते हैं।"
   –डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
3. एक अन्य परिभाषा के अनुसार, "संस्मरण गद्य–साहित्य की उस आत्मनिष्ठ विधा को कहते हैं, जिसमें लेखक अपने जीवन की अनंत स्मृतियों में से कुछ विशिष्ट अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अलंकृत करके लाक्षणिक शैली में आत्मीय राग एवं निजी विशिष्टताओं का संबल लेकर रोचक तथा आकर्षक रूप से चित्रित करता है।"

संस्मरण विधा का विकास

भारतेंदु युग में किसी उल्लेखनीय संस्मरण के प्रकाशन का साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से अनेक रोचक संस्मरण प्रकाश में आए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत', 'सभा की सभ्यता' और विज्ञानाचार्य बसु ने 'विज्ञान मंदिर' शीर्षकों से संस्मरण लिखे। इनके अतिरिक्त रामकुमार खेमका ने 'इधर–उधर की बातें', काशी प्रसाद जायसवाल ने 'इंग्लैंड के देहात में', 'महाराज बनारस का कुआं', भोलादत्त पांडेय ने मेरी नयी दुनिया संबंधित 'राम कहानी' की रचना करके संस्मरण साहित्य को विकसित किया। जगद्‌बिहारी सेठ, पांडुरंग, खान खोजे, प्यारेलाल मिश्र आदि ने भी संस्मरण लिखे। इनका उद्देश्य अधिकतर भारतीय पाठकों को पश्चिमी जगत की जानकारी प्रदान करना था। हरिऔध जी के विविध संस्मरण भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हैं जिनका साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है।

द्विवेदी युग के उपरांत एक ओर 'सरस्वती' में राजकुमार खेमका, कृपानाथ मिश्र, रामनारायण मिश्र, भगवान दीन दुबे, रामेश्वरी नेहरू, श्रीमन्नारायण अग्रवाल के यात्रावृत्त–मूलक संस्मरण प्रकाशित हुए तो दूसरी ओर विशाल भारत, सुधा और माधुरी में आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसीदास चतुर्वेदी, मंगलदेव शर्मा के क्रमशः स्वामी श्रद्धानंद, बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाक और पद्म सिंह शर्मा से संबद्ध जीवनीपरक संस्मरण छपे। सुधा में इलाचंद्र जोली रचित 'मेरी प्राथमिक जीवन की स्मृतियां' प्रकाशित हुई। वृंदावनलाल वर्मा के कुछ संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं।

इस काल में कुछ संस्मरण–संकलन भी प्रकाशित हुए। शिवराम पांडेय, श्री राम शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त तथा शिवनारायण टंडन रचित मदनमोहन के संबंध में पुरानी स्मृतियां, शिकार, क्रांतियुग के संस्मरण, झलक आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं। बाबूराम विष्णुराव पराड़कर द्वारा संपादित 'हंस' का 'प्रेमचंद स्मृति अंक' हिंदी के संस्मरण–साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

टिप्पणी

सन् 1907 में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पं. प्रताप नारायण मिश्र के संस्मरण लिखकर इस विधा का सूत्रपात किया, पर इसका व्यवस्थित रूप सन् 1920 के पश्चात माना जाता है। इसके विकास में *'माधुरी'* और *'विशाल भारत'* पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. त्रिगुणायत इसका प्रथम लेखक सत्यदेव परिव्राजक को स्वीकार करते हैं। सन् 1905 के आसपास आपने अमेरिका की यात्रा की और उस यात्रा से संबंधित संस्मरणों का सजीव वर्णन किया जो भाव तथा प्रभाव दोनों से परिपूर्ण हैं।

1938 के बाद के संस्मरण

इस युग के संस्मरण तथा रेखाचित्र लेखन में बनारसीदास चतुर्वेदी का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने 1946 में 'मधुकर' के रेखाचित्र विशेषांक का संपादन किया। हमारे आराध्य (1952) और संस्मरण (1953) शीर्षक से प्रकाशित संग्रहों में इनके अधिकांश स्मरण संपर्क में आने वाले लोगों के अनुभव हैं।

इस युग के कई विख्यात संस्मरण लेखक हैं– पं. सुंदरलाल (बालकृष्ण भट्ट से संबंधित संस्मरण *'विशाल भारत'* में), श्री अमृतलाल चतुर्वेदी (मेरे प्रारंभिक जीवन की स्मृतियां), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी (श्रीधर पाठक विषयक संस्मरण), रूपनारायण पांडेय (द्विवेदी जी), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक संस्मरण), राजा राधिकारमण सिंह ('वे और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि), बाबू श्याम सुंदर (लाला भगवान दीन पर), रामदास गौड़ (राय देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर) आदि ने सुंदर संस्मरण लिखे हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ अच्छे संस्मरण लिखे हैं। पद्मसिंह शर्मा ने *'पद्मराग'* शीर्षक के अंतर्गत सुंदर संस्मरण लिखे। महादेवी वर्मा ने *'पथ के साथी'* नामक संकलन में प्रसाद, पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सियाराम गुप्त आदि पर संस्मरण लिखे हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार– इनमें संस्मरण के साथ–साथ रेखाचित्र की विशेषताओं का समावेश होने के कारण उनके प्रभाव और मार्मिकता में आशातीत वृद्धि हुई है।

इस युग में संस्मरण का रूप और निखरा। महादेवी जी के संस्मरण इस विधा को पर्याप्त निखार चुके थे। इसी क्रम में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लोकमान्य तिलक से लेकर जवाहर लाल नेहरू और सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी, वैज्ञानिक डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर और साहित्यकारों में 'जैनेंद्र' पर भी लिखा।

इस क्रम में अन्य स्मरणीय नाम हैं– श्रीमती शिवरानी (प्रेमचंद : घर में), श्रीनारायण चतुर्वेदी (गुप्त का हास्य व्यंग्य), रामवृक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारें), शांतिप्रिय द्विवेदी (पदचिह्न), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (दीप जले शंख बजे), आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (मृत्युंजय रवींद्रनाथ), रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियां), शंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), काका साहब कालेलकर (स्मरण यात्रा), माखनलाल चतुर्वेदी (समय के घाव), राहुल सांकृत्यायन (बचपन की स्मृतियां), रामनाथ सुमन (हमारे नेता), जैनेंद्र (वे और वे), पं. किशोरी दास बाजपेयी (बालकृष्ण भट्ट), देवेंद्र सत्यार्थी (रेखाएं बोल उठीं), भगवतशरण उपाध्याय (मैंने देखा), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), राय कृष्णदास (जवाहर भाई), उपेंद्रनाथ अश्क (ज्यादा अपनी कम पराई) आदि।

भगवती प्रसाद बाजपेयी (महाप्राण निराला), विनयमोहन शर्मा (लक्ष्मीचंद्र बाजपेयी), देवेंद्र सत्यार्थी (बलराज साहनी), जगदीशचंद्र जैन (चीन की दीवार), डॉ. महादेव साहा (सुनीति कुमार चटर्जी), कुसुमाकर (उग्रजी), मोहनसिंह सेंगर (मानवेंद्र राय), मणिका देवी (उस्ताद अलाउद्दीन खां), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें), डॉ. नगेंद्र (चेतना के बिंब), दिनकर (लोकदेव नेहरू), बच्चन (नये–पुराने झरोखे), ओंकार शरद (लंका महाराजिन), क्षेमचंद्र सुमन (विभिन्न साहित्यकारों के संस्मरण), डॉ. भगवानदास माहौर के क्रांतिकारी बंधुओं पर ('देश की धरोहर' के अंतर्गत)।

इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवंश, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विष्णुकांत शास्त्री के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

5.11 रेखाचित्र

रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है जिसमें किसी विषय–विशेष का उसके बाह्य विशेषताओं को उभारते हुए विभिन्न संक्षिप्त घटनाओं को समेटते हुए, शब्द रेखाओं के माध्यम से सजीव, सरस, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्र उभारा जाता है। इसका कार्य यह है कि वह वर्णित पात्र के रूप–सौंदर्य तथा विभिन्न परिस्थितियों में उसके द्वारा की गयी विभिन्न घटनाओं की सहायता से उसके चरित्र का एक प्रभावपूर्ण एवं संवेदनशील चित्र अंकित कर दे। डॉ. मक्खनलाल शर्मा की मान्यता है– "जिस प्रकार चित्र का उद्देश्य किसी भाव विशेष को द्रष्टा के हृदय में जाग्रत कर देना होता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र भी इतिहास, घटना, मनोविज्ञान, वातावरण आदि की सहायता से अभीष्ट भाव की अनुभूति करा देता है और थोड़ी देर के लिए पाठक एक नवीन मानसिक अवस्था प्राप्त कर रसमग्न हो जाता है।"

रेखाचित्र का जन्म–कुछ विद्वान पद्मसिंह शर्मा को रेखाचित्र का जनक मानते हैं। किंतु स्वतंत्र रूप से और 'रेखाचित्र' नाम से इसका श्रीगणेश करने का श्रेय श्रीराम शर्मा को ही है। इनके *'बोलती प्रतिमा'* शीर्षक में कई रेखाचित्र हैं जिनमें से *'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव', 'वे जीते कैसे हैं'* आदि उनके सुंदर रेखाचित्र हैं।

रेखाचित्र की विकास–यात्रा–यह यात्रा पर्याप्त सुपुष्ट एवं लंबी है। कुछ प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित रेखाचित्रकारों का परिचय यहां प्रस्तुत है–

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंध भी इसी कोटि के माने जाते हैं। ये निबंध हैं– *'रामलाल पांडे', 'चक्करदार चोरी', 'एक पुरानी कथा', 'बंदर की शिक्षा', 'शौर्य की कथा', 'कुंज–बिहारी'* आदि।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार– रेखाचित्र निबंध अधिकतर व्यक्ति–वैशिष्ट्य से युक्त होते हैं, इनमें हास्य, विनोद, व्यंग्य–वक्रता, चुटकी–चकोटी का पुट रहता है। ये निबंध इसी प्रकार के हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी महान शैलीकार थे। परिणामतः उनका योग पाकर साहित्य–रचना का यह रूप चमक उठा। उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए। 'लाल तारा', 'माटी की मूरत', गेहूं और गुलाब'। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है– "रेखाचित्र को इतने साज–संवार के साथ गढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रख सका।

शैलियां बदलती रहती हैं, कहीं संस्मरणात्मकता, कहीं नाटकीयता, कहीं डायरी, पर भाषा सर्वत्र सहज चली हुई होती है, जिसमें छोटे–छोटे भाव भीने वाक्य पाठकों को मुग्ध किए रहते हैं।"

देवेंद्र सत्यार्थी ने भावात्मक रेखाचित्रों का सृजन किया। उनका संग्रह है 'रेखाएं बोल उठीं' जिसमें *'रेखाएं बोल उठीं', 'सौंदर्य बोध', 'आज मेरा जन्म दिन है', 'रवींद्रनाथ ठाकुर', 'अच्छे–भले आदमी की बात', 'चिरनूतन चित्र', 'दादा–दादी'* आदि श्रेष्ठ हैं।

रेखाचित्र को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने में बनारसीदास चतुर्वेदी का भी योगदान कम नहीं है। उन्होंने एक ओर तो उत्कृष्ट कोटि के चालीस रेखाचित्र लिखे, दूसरी ओर उनकी भूमिका में प्रकाश भी डाला– "जिस प्रकार अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लैंस बढ़िया और फिल्म भी काफी सेंसिटव होनी चाहिए उसी प्रकार साफ चित्र के लिए रेखाचित्र में विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भावुकतापूर्ण हृदय दोनों का सामंजस्य होना चाहिए, संवेदनशीलता, विवेक और संतुलन– इन सब गुणों की आवश्यकता है।"

महादेवी वर्मा के कई संग्रह प्रकाशित हुए– *'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं'* और *'पथ के साथी'* आदि। कुछ विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र मानते हैं।

प्रकाशचंद्र गुप्त के *'पुरानी स्मृतियां'* और *'नये स्केच'* संग्रह भी महत्वपूर्ण हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार– "इन्होंने पूर्ण आत्मीयता और कलापूर्ण ढंग से इनको संवारा है। इन्होंने सड़क, नगर, मौहल्ला आदि निर्जीव वस्तुओं में मान, अभिमान, ईर्ष्या–द्वेष, स्नेह, छल–कपट, घृणा–ग्लानि आदि मानवीय भावों का आरोपण कर उन्हें मानव की सहानुभूति और प्यार का पात्र बना दिया है।" गुप्तजी ने कुछ ऐसे रेखाचित्र भी लिखे हैं जिनमें निबंध और रिपोर्ताज के मिले–जुले रूप उभरे हैं। इनकी रचनाओं में राजनीतिक चेतना, समाजवादी दृष्टिकोण, स्नेह, सहानुभूति, करुणा आदि का प्राधान्य है।

'विशाल भारत' पत्रिका के शहीद अंक में विभिन्न लेखकों ने शहीदों के अनेक ऐसे सुंदर रेखाचित्र लिखे थे जिनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व, चरित्र, वेषभूषा कलात्मक ढंग से व्यंजित हो उठा था। 'हंस' ने रेखाचित्र विशेषांक (1939) प्रकाशित किया। इन विशेषांकों से रेखाचित्र विधा को पर्याप्त बल प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित रेखाचित्रकार भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), हवलदार त्रिपाठी सहृदय (रांची का दासौड़ प्रताप), राधा राधिकारमण सिंह (टूटा तारा), देवेंद्र सत्यार्थी (रेखाएं बोल उठीं), सत्यजीत वर्मा (एलबम), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें), इंद्र विद्यावाचस्पति (मैं इनका ऋणी हूं), सेठ गोविंददास (स्मृति कण), आचार्य विनय मोहन शर्मा (रेखा और रंग), चंद्रमौलि बख्शी (संन्यासी बाबा), रामप्रकाश कपूर (अंजो दीदी), हरिशंकर परसाई (बोलती रेखाएं), डॉ. भटनागर (विकृत रेखाएं, धुंधले चित्र संकलन) हैं।

इसके अतिरिक्त संस्मरणात्मक रेखाचित्र और शुद्ध रेखाचित्र लेखकों में बाबू वृंदावन लाल वर्मा, सुरेंद्र दीक्षित, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, बेढव बनारसी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रेमनारायण टंडन, शिवपूजन सहाय, सत्यवती मलिक, रघुवीर सहाय, अविनाश, विद्या माथुर, राजेंद्र कुशवाह, निरंजन नाथ आचार्य, सुरेंद्र दीक्षित, हर्षदेव मालवीय, प्रभाकर माचवे, राहुल सांकृत्यायन, उदयशंकर भट्ट, रेणु, मदन वात्स्यायन, कपिल, मेहताब अली, निर्मल वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि भी उल्लेखनीय हैं।

रेखाचित्र एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और इनकी तालिका भी पर्याप्त लंबी है। फिर भी अभी उत्कृष्ट कोटि के रेखाचित्रों की कमी बनी हुई है। निस्संदेह कुछ रचनाएं ऐसी हैं जिन पर गर्व किया जा सकता है। इसका भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि उसकी पूर्व पीठिका जो बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लेखकों द्वारा निर्मित हुई है, श्रेष्ठ है। यह विधा रोचकता के समावेश के कारण, कहानी के समकक्ष ठहरती है अतः जीवनी, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि से अधिक महत्वपूर्ण है।

5.12 साक्षात्कार

हिंदी में साक्षात्कार विधा का आरंभ भारतेंदु युग से माना जा सकता है क्योंकि उस युग में पं. राधाचरण गोस्वामी ने भारतेंदु हरिश्चंद्र से साक्षात्कार करके उनसे साहित्यिक प्रश्न पूछे थे और पूछे गए प्रश्नों तथा प्राप्त उत्तरों को लिपिबद्ध करके प्रकाशित भी करवाया था। द्विवेदी युग में हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने प्रख्यात संगीतकार विष्णु दिगंबर पुलस्कर से भेंट करके संगीत विषयक प्रश्न पूछे थे और यह भेंटवार्ता 'समालोचना' पत्रिका के सितंबर 1905 के अंत में 'संगीत की धुन' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।

इस साहित्यिक विधा के लिए साक्षात्कार के अतिरिक्त भेंट–वार्ता, विशेष परिचर्चा शब्द भी प्रसिद्ध हैं। साक्षात्कार में किसी क्षेत्र के महान व्यक्ति से पूछे गए प्रश्नों के प्राप्त उत्तरों के आधार पर उस व्यक्ति के विचारों तथा प्रभाव का वर्णन–विवेचन किया जाता है। इस दृष्टि से 'विशाल भारत' में प्रकाशित बनारसीदास चतुर्वेदी की रत्नाकर जी से बातचीत (1931) और प्रेमचंद जी के साथ दो दिन (1932), नामक लेख सर्वप्रथम साक्षात्कार कहे जाते हैं।

1933 में कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने अपने समय की प्रमुख नवोदित कहानी लेखिका उषादेवी मित्रा का साक्षात्कार पत्राचार के माध्यम से लिया था और उनके कहानी तथा साहित्य संबंधी विचारों को सामान्य पाठकों तक पहुंचाया था। सन् 1938 तथा 1939 में प्रभाकर माचवे ने जैनेंद्र कुमार तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल से इंटरव्यू लिए थे जो क्रमशः 'जैनेंद्र के विचार' नामक पुस्तक तथा 'वीणा' के अक्टूबर, 1939 के अंक में प्रकाशित हुए। इन साक्षात्कारों में चित्रात्मक प्रस्तुति देखने को मिलती है। सन् 1941 में डॉ. सत्येंद्र द्वारा संपादित 'साधना' पत्रिका का परिचयांक भेंटवार्ता विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक ने भेंटवार्ता को एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी तथा चिरंजीलाल एकाकी द्वारा क्रमशः भदंत आनंद कौसल्यायन तथा महादेवी वर्मा से ली गई भेंट वार्ताएं इस अंक की महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। 'हंस' पत्रिका के दिसंबर, 1947 के अंक में श्री नरोत्तम नागर द्वारा 'अपने ही घर में सरस्वती का अपमान' नामक पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से ली गई एक महत्वपूर्ण भेंटवार्ता प्रकाशित हुई। इस भेंटवार्ता में निराला ने दो टूक शब्दों में इस बात पर रोष व्यक्त किया था कि राजनेताओं के समक्ष साहित्यकारों को तुच्छ समझा जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

45. स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के जीवन चरित्र किसने लिखे?
46. हिंदी की आरंभिक आत्मकथा किसे माना जाता है?
47. 'पथ के साथी' संस्मरणों के रचनाकार का नाम बताइए।
48. स्वतंत्र रूप से 'रेखाचित्र' का श्रीगणेश करने का श्रेय किसे जाता है?
49. 'बोलती रेखाएं' के रचनाकार का नाम बताइए।

बेनी माधव शर्मा कृत 'कवि दर्शन' साक्षात्कार–साहित्य की प्रथम स्वतंत्र रचना कही जा सकती है। इसमें हरिऔध, श्यामसुंदरदास, रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त आदि से लिए साक्षात्कार संगृहीत हैं। डॉ. पद्मसिंह शर्मा कमलेश की 'मैं इनसे मिला' (1952) कृति में अनेक साहित्यकारों के साक्षात्कार हैं। देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'कला के हस्ताक्षर' में साहित्य, संगीत, अभिनय, चित्रकला आदि से संबद्ध विशिष्ट व्यक्तियों के साक्षात्कार संकलित हैं। डॉ. रणवीर रांग्रा की 'सृजन की मनोभूमि' (1968) में हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों से हुई भेंट–वार्ताएं हैं। दिनकर रचित 'वट पीपल' (1965) और विष्णु प्रभाकर कृत 'कुछ शब्द कुछ रेखाएं' में भी विभिन्न वार्ताएं संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त वीरेंद्र कुमार गुप्त 'समय और हम', रामावतार की 'समय, समस्या और सिद्धांत', सुरेश सिन्हा की 'हिंदी कहानी और फैशन', शरद देवड़ा की 'सात कथा लेखिकाएं और कथा नायिकाएं', तथा 'एक आलोचक की नोटबुक', माजदा असद की 'मेरी मुलाकातें' (1977), सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'अपरोक्ष' (1979), अमृता प्रीतम की 'शोक सुराही' (1979), मनोहरश्याम जोशी की 'बातों बातों में' (1983) तथा कमलकिशोर गोयनका की 'अभिमन्यु अनत : एक बातचीत' (1985) और 'जिज्ञासाएं मेरी : समाधान बच्चन के' (1985) उल्लेखनीय हैं।

इन साक्षात्कारों में तत्कालीन साहित्य की स्थिति पर खुलकर चर्चा की जाती थी। सुरेश सिन्हा ने हिंदी कहानी की तत्कालीन स्थिति के बारे में उपेंद्रनाथ अश्क के विचारों को अपनी लंबी भेंटवार्ता में प्रस्तुत किया है। 'अपरोक्ष' में अज्ञेय से ली गई आठ भेंटवार्ताओं के माध्यम से अज्ञेय के चिंतक एवं दार्शनिक रूप को उभारा गया है। अमृता प्रीतम ने 'शोक सुराही' में देश–विदेश के 22 साहित्यकारों एवं कलाकारों से हुई बातचीत को प्रस्तुत किया है। मनोहरश्याम जोशी ने अपनी भेंटवार्ताओं में साहित्यिक हस्तियों, राजनेताओं, सेनानायकों तथा फिल्म–निर्देशकों से हुई बातचीत को संकलित किया है। कमलकिशोर गोयनका ने अभिमन्यु अनत से की गई अपनी बातचीत में जहां लेखक तथा अभिव्यक्ति के पारस्परिक संबंधों को प्रस्तुत किया है तो बच्चन के साथ की गई बातचीत में बच्चन के कृतित्व एवं व्यक्तिगत जीवन संबंधी प्रश्न पूछे हैं।

आजकल हिंदी की प्रायः सभी पत्र–पत्रिकाओं में साक्षात्कार या भेंट–वार्ताएं प्रकाशित हो रही हैं। इनमें से कुछ का निश्चय ही स्थायी महत्व है।

5.13 यात्रा साहित्य

विभिन्न विद्वानों द्वारा साहित्य जगत में यात्रा साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन किया गया। सुविधा के लिए हम निम्न रूप में इसकी चर्चा कर सकते हैं–

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' (1871–1879) के अंकों में स्वलिखित सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा आदि प्रकाशित की। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'गया यात्रा' और 'विलायत यात्रा' लिखी, जो 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित हुई। श्रीमती हरदेवी (लंदन यात्रा), भगवान दास वर्मा (लंदन का यात्री), दामोदर

टिप्पणी

शास्त्री (मेरी पूर्व और दक्षिण दिग्यात्रा, ब्रज विनोद) आदि ने भी यात्रा ग्रंथ लिखे। कल्याण चंद्र और विभु मिश्र ने 'बद्रीकेदार यात्रा' और 'ब्रजयात्रा' में पद्य का प्रयोग किया।

द्विवेदी युग

इस युग में अनेक अच्छे यात्रा विवरण प्रकाशित हुए। मंगलानंद (मॉरीशस यात्रा), श्रीधर पाठक (देहरादून–शिमला यात्रा), उमा नेहरू (युद्ध क्षेत्र की सैर), लोचन प्रसाद पांडेय (हमारी यात्रा) के यात्रा संस्मरण काफी लोकप्रिय हुए। इनके अतिरिक्त देवकी प्रसाद खत्री ने 'बद्रीनाथ यात्रा', गोपाल राम गहमरी ने 'लंका यात्रा', ठाकुर गदाधर सिंह ने 'चीन में तेरह मास' पुस्तकों में अपने–अपने यात्रा वृत्त प्रस्तुत किए। यात्रा लेखन की दृष्टि से स्वामी सत्यव्रत परिव्राजक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने 'मेरी कैलाश यात्रा' में कैलाश मानसरोवर के प्राकृतिक सौंदर्य का तथा 'अमेरिका दर्शन' तथा 'अमेरिका भ्रमण' में अमेरिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का पर्याप्त विशद, तथ्यपूर्ण एवं रोचक वर्णन किया है।

द्विवेदी–परवर्ती युग का यात्रा–साहित्य

इस युग में रामनारायण मिश्र ने 'यूरोप यात्रा में छह मास' (1932) के अंतर्गत यूरोप के दर्शनीय स्थानों तथा वहां की शिक्षा पद्धति का अच्छा वर्णन किया है। गणेश नारायण सामानी कृत 'मेरी यूरोप यात्रा' में उनके द्वारा अपनी पुत्री को लिखे गए पत्र संकलित हैं। सत्यदेव परिव्राजक के इस युग में भी अनेक यात्रा वृत्त प्रकाशित हुए। यथा–'मेरी जर्मन यात्रा', 'यात्री मित्र', 'यूरोप की सुखद स्मृतियां', 'ज्ञान के उद्यान में', 'नयी दुनिया के मेरे अद्भुत संस्मरण', 'अमरीका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी' इत्यादि।

इस संदर्भ में शिवप्रसाद गुप्त (पृथ्वी प्रदक्षिणा), जवाहरलाल नेहरू (रूस की सैर) के नाम भी यात्रा साहित्य लेखक के रूप में उल्लेखनीय हैं।

यात्रा वृत्त लेखन में राहुल सांकृत्यायन का स्थान अन्यतम है। उनकी 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'मेरी तिब्बत यात्रा' आदि रचनाएं वर्ण्य स्थलों का ऐसा सजीव भौगोलिक तथा सामाजिक चित्र प्रस्तुत करती है कि पाठक स्वयं को लेखक के साथ उपस्थित अनुभव करता है। सेठ गोविंददास ने 'हमारा प्रधान उपनिवेश' में दक्षिण अफ्रीका की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का संपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

प्रो. मनोरंजन ने 'उत्तराखंड के पथ पर' में बद्री–केदार यात्रा का औपन्यासिक शैली में वर्णन किया है। केदाररूप राय कृत 'हमारी विलायत यात्रा' में यूरोप के दर्शनीय स्थलों, विशेषतः प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है।

उत्तरवर्ती युग में भी सत्यदेव परिव्राजक ने 'मेरी पांचवीं जर्मन यात्रा' लिखी। कन्हैयालाल मिश्र आर्योपदेशक ने 'मेरी इराक यात्रा', संतराम ने 'स्वदेश विदेश यात्रा' आदि पुस्तकों की रचना की। इसमें आस्ट्रेलिया यात्रा संबंधी अंश श्रीमती रामेश्वरी नेहरू द्वारा लिखित है। जवाहरलाल नेहरू द्वारा 1953 में लिखित 'आंखों देखा रूस' भी यात्रा साहित्य में उल्लेखनीय है।

यात्रा लेखन में राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे आगे है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' (1939), 'किन्नर देश में' (1948), 'राहुल यात्रावली', 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' (1956)

टिप्पणी

आदि उनके प्रसिद्ध यात्रा वृत्त हैं। उन्होंने 1949 में 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख कर पर्यटकों एवं यायावरों का मार्गदर्शन भी किया। सेठ गोविंददास कृत 'सुदूर दक्षिणपूर्व' (1951), 'पृथ्वी परिक्रमा' (1954) आदि पुस्तकों में विदेशी यात्राओं का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

स्वामी सत्यभक्त ने 'मेरी अफ्रीका यात्रा', कर्नल सज्जन सिंह ने 'लद्दाख यात्रा की डायरी', सूर्यनारायण व्यास ने 'सागर–प्रवास', रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'पैरों में पंख बांधकर' तथा 'उड़ते चलो' (डायरी शैली) लिखकर हिंदी में यात्रा साहित्य को समृद्ध किया है। इनके अतिरिक्त श्री यशपाल ने 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में सोवियत संघ और पूंजीवादी देशों का तथा 'राहबीती' में पूर्वी यूरोप के देशों का सशक्त एवं जीवंत यात्रा वृत्त प्रस्तुत किया है।

रामधारीसिंह दिनकर के यात्रा वृत्त 'देश विदेश' और 'मेरी यात्राएं' में संकलित हैं। भगवतशरण उपाध्याय कृत 'वह दुनिया' (1952) तथा 'कलकत्ता से पीकिंग' में संकलित अधिकांश यात्रा वर्णन रेखाचित्र शैली में लिखे गए हैं। डॉ. सत्यनारायण रचित 'आवारे की यूरोप यात्रा' (1940) तथा 'युद्ध यात्रा' भी उल्लेखनीय यात्रा वृत्त है।

अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) तथा 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) में मनोरम प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है। यशपाल जैन की 'जय अमर नाथ' तथा 'उत्तराखंड के पथ पर' नामक कृतियों में उनकी पर्वतीय यात्राओं के रोचक वृत्तांत हैं। इनकी 'रूस में छयालीस दिन' और 'दक्षिण–पूर्वी एशियायी देश में' (1960) नामक यात्रा विवरण प्रस्तुत किया है। विष्णु प्रभाकर रचित 'हंसते निर्झर दहकती मिट्टी' (1966) भी साहित्यिक दृष्टि से उल्लेखनीय यात्रा वृत्त है।

इनके अतिरिक्त रामकृष्ण रघुनाथ खांडिलकर कृत 'हालैंड में पच्चीस दिन' तथा 'बदलते रूप में', डॉ. नगेंद्र कृत 'तंत्रालोक से यंत्रालोक तक' (1968) तथा 'अप्रवासी की यात्राएं' (1972), मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पारि उतरि उतरि कहि जैछै' एवं क्षितीश वेदालंकर कृत 'बंगलादेश' आदि पठनीय यात्रा वृत्तांत हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिंदी में विदेशी यात्रा वृत्त संबंधी अधिक सामग्री है। प्रकृति के सुंदर चित्रों का भी अच्छा चित्रण है। शैली की दृष्टि से इन यात्रा वृत्तों में निबंध, डायरी तथा पत्र शैली का प्रयोग हुआ है।

5.14 पत्र साहित्य

हिंदी के पत्र साहित्य की दृष्टि से सन् 1904 में महात्मा मुंशीराम द्वारा स्वामी दयानंद सरस्वती के पत्रों का संकलन उल्लेखनीय है। पं. भगवतदत्त ने भी 1909 में ऋषि दयानंद के पत्र और विज्ञापन प्रकाशित किए। इन पत्रों में महर्षि दयानंद का चिंतन व उनकी आलोचना शैली प्रकट हुई है। 1922 में सतीश चंद्र ने 'पत्रावली' का संपादन किया। इसी प्रकार 'विवेकानंद पत्रावली' का प्रकाशन रामकृष्ण आश्रम देहरादून ने किया। 'पत्रावली' नाम से सुभाष चंद्र बोस के 153 पत्र भी प्रकाशित हुए। 'पिता के पत्र–पुत्री के नाम' में पं. जवाहरलाल नेहरू लिखित पत्रों का प्रेमचंद द्वारा किया गया अनुवाद है। शांतिप्रिय आत्माराम ने औरंगजेब के ऐतिहासिक पत्रों का 'आलमगीर के पत्र' (1931) शीर्षक से संपादन किया।

1938 के परवर्ती पत्र साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **व्यक्तिगत पत्रों के संकलन–** भदंत आनंद कौसल्यायन के 'भिक्षु के पत्र', भाग 1–2 (1940), डॉ. वीरेन्द्र वर्मा कृत 'यूरोप के पत्र', सत्य भक्त स्वामी के 'अनमोल पत्र' (1950), सूर्यबली सिंह के 'मनोहर पत्र', बनारसी दास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा द्वारा संपादित 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' (1956), डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तथा हरिशंकर शर्मा द्वारा संपादित 'प्राचीन हिंदी पत्र संग्रह', वियोगी हरि द्वारा संपादित 'बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र', कमलापति त्रिपाठी कृत 'बंदी की चेतना', अमृत राय कृत 'चिट्ठी पत्री' (2 भाग), काका कालेकर द्वारा संगृहीत 'बापू के पत्र', जानकी बल्लभ शास्त्री द्वारा संपादित 'निराला के पत्र', हरिवंशराय बच्चन द्वारा संकलित 'पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम' आदि उल्लेखनीय हैं। ये पत्र प्रायः अपने–अपने क्षेत्र के महान व्यक्तियों से संबद्ध हैं। इनमें अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सामग्री संकलित है।
2. **विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों पर लिखे पत्रों के परिशिष्ट रूप में संगृहीत पत्र–** हरिवंश राय बच्चन कृत 'कवियों में सौम्य पंत' (1960) के परिशिष्ट में 126 मूल्यवान पत्र भी प्रकाशित किए गए हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने 'शांति निकेतन से शिवालिक तक' (1967) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा विभिन्न साहित्यकारों को लिखे पत्रों का संग्रह है। ये पत्र साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान हैं।
3. **पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र–** नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, माधुरी, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी पत्र साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ है। 'हंस' के अक्टूबर 1948 के अंक में प्रकाशचंद गुप्त ने प्रेमचंद के कुछ पत्र प्रकाशित किए थे। बनारसीदास ने सम्मेलन पत्रिका में कुछ ऐसे पत्र प्रकाशित किए जो वासुदेव शरण अग्रवाल के गंभीर चिंतन को प्रकट करते हैं। राष्ट्रवाणी के 'मुक्तिबोध स्मृति अंक' (1965) में प्रकाशित गजानन माधव मुक्तिबोध संबंधी पत्रों में उनके काव्य की रचना प्रक्रिया की झलक मिलती है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में 'संपादक के नाम पत्र', 'आपका पत्र मिला' आदि स्तंभों में भी राजनीति, साहित्य आदि विषयों के कुछ अच्छे पत्र प्रकाशित होते रहते हैं। इस क्षेत्र में वस्तुतः अलग से अनुसंधान की आवश्यकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

50. हिंदी साहित्य में प्रथम साक्षात्कारकर्ता के रूप में किसे जाना जाता है?
51. यात्रा साहित्य का प्रारंभिक लेखन किस युग से शुरू हुआ?
52. यात्रावृत्त लेखन में किसका नाम उल्लेखनीय रूप से लिया जाता है?
53. स्वामी दयानंद सरस्वती के पत्रों का संकलन किसने किया?

5.15 डायरी साहित्य

डायरी एक व्यक्तिगत विधा है। डायरी लेखक और डायरी, जो भी लिखा जा रहा हो उसके गवाह होते हैं। डायरी लेखन के लिए लिखने वाले का लेखक होना जरूरी नहीं है। यह आम आदमी की खास विधा है। निजी भावों को तरलता से अभिव्यक्त कर मन को हल्का करने का एक माध्यम है। कई बार मनुष्य मन की दबी भावनाएं डायरी में अभिव्यक्त होती हैं तो डायरी एकाकीपन को दूर करने का एक माध्यम भी बन जाती है और साथ ही एक सामान्य व्यक्ति को सृजनता की ओर प्रेरित भी कर सकती है। डायरी लेखक का व्यक्ति विशेष से प्रेम या अलगाव आम पाठक से जुड़ जाता है। कई बार डायरी में दूसरों के बारे में भी लिखा जाता है। ऐसी स्थिति में डायरी जर्नल्स का रूप ले लेती है। जर्नल्स प्रायः व्यक्तिगत बातों से ऊपर उठकर लिखा जाता है। जहाज के प्रत्येक कप्तान के लिए जहाज की प्रत्येक दिन की गतिविधियों के लिए जर्नल लिखना जरूरी होता है। वास्कोडिगामा द्वारा लिखे गए यात्रा वृत्तांत को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

डायरी और आत्मकथा में भी कई समानताएं देखी जा सकती हैं। परंतु डायरी रोज लिखी जाती है और आत्मकथा पूरे जीवन की घटनाओं को एकसाथ कलमबद्ध किया गया लेखा–जोखा है।

हिंदी साहित्य में डायरी लेखन की प्रवृत्ति बहुत अधिक समृद्ध नहीं है। डायरी लेखन जनमानस की विधा है। यह हमेशा मौजूद रही है। हिंदी साहित्य में भी डायरी लेखन की प्रवृत्ति उभरी और उसे सामने लाने के प्रयास भी हुए। जाने माने साहित्यकार हिमांशु जोशी द्वारा संपादित 'डायरी अंतर्जीवन के साक्ष्य' के अंतर्गत दस लेखकों के डायरी अंशों का प्रकाशन किया गया है, जिनकी डायरियां इसमें प्रकाशित की गयी हैं वे डायरी लेखक हैं– रमेशचंद्र शाह, महेंद्र राजा जैन, मनोहर काजल, रामेश्वर द्विवेदी, रजनी गुप्त, राजेश जैन, महावीर अग्रवाल, राजेंद्र उपाध्याय, विजय कुमार और शीला त्रिपाठी।

'मेरी डायरी के दो पृष्ठ' में हिमांशु जोशी ने स्वयं लिखा है कि "यों डायरी मेरी सबसे प्रिय विधा है, पर दुर्भाग्य यह रहा कि नियमित रूप से कुछ लिख नहीं पाया। नये साल पर, दो–चार दिन बैठकर कुछ पृष्ठ रंगने के पश्चात वह फिर वर्ष भर वैसे ही धूल फांकती रहती है।" वे आगे लिखते हैं, "हिंदी में डायरी लिखने की परंपरा नहीं के बराबर है। बहुत कम लेखक हैं जो नियमित रूप से कुछ लिखते हों।" इन कथनों से स्पष्ट है कि हिंदी में डायरी लेखन की विधा पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई है। ऐसी बात नहीं है कि लोग डायरी नहीं लिखते लेकिन वे क्या लिखते हैं, यह बहुत महत्व रखता है। हिमांशु जोशी अपनी डायरी में लिखते हैं कि "कुछ वर्ष पूर्व मोहन राकेश की डायरी विशेष चर्चा का विषय बनी थी। मैंने भी पढ़ी, पर किसी हद तक तृप्ति नहीं पाई।.... मोहन राकेश की डायरी में व्यक्तिगत बातें बहुत थीं, पर समय के सरोकार कहां थे? ऐसा ही मुझे तब भी लगा था, जब कविवर सुमित्रानंदन पंत तथा बच्चन जी के सौ पत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए थे। अमिताभ, तेजी बच्चन, इलाहाबाद तक ही सब सीमित था–व्यक्तिगत विवरणों की परिधि तक ही। क्या देश में, विदेश में या चारों ओर के परिवेश में ऐसी एक भी घटना उस दौर में घटित नहीं हुई, जिसका उल्लेख अपने समय के दो अग्रणी कवि करते? उनकी चिंता या चिंतन के सारे विषय कुछ घरेलू बातों तक सीमित रहे।"

इन विचारों का आधार यह है कि डायरी निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र न रहकर युग एवं परिवेश को ध्वनित करती भी प्रतीत होनी चाहिए। उदाहरण के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विश्वविख्यात फ्रेंच शिल्पी दार्शनिक रोमैं रोलां की डायरी है, जिसका हिंदी रूपांतर डॉ. सत्यनारायण शर्मा ने किया। इसका महत्व अक्षुण्ण है। 'रोमैं रोलां की डायरी' साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, युद्ध की विभीषिका की आशंका, मुसोलिनी के सपने को अभिव्यक्त करते हुए युग का इतिहास प्रतिध्वनित कर देती है। रवींद्रनाथ ठाकुर के आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का सार्थक एवं सजीव चित्रण जिस प्रकार 'रौमैं रोलां की डायरी' में हुआ है, वह अद्‌भुत है।

डायरी की आपबीती जब जगबीती बन जाती है तो उसका लेखन सार्थक हो जाता है। डॉ. रमेशचंद्र शाह और मनोहर काजल की डायरियां अपने समय और परिवेश के बारे में बहुत कुछ कह जाती हैं। महेंद्र राजा जैन की 'विदेश की साहित्यिक डायरी' अछूती घटनाओं का बखान करती है। रजनी गुप्त की आपबीती जगबीती का ही रूप ले लेती है। रामेश्वर द्विवेदी की 'कोहरे में बांसुरी' अपने सुरों के साथ बंधने को विवश कर देती है। शीला त्रिपाठी की डायरी अंतर्मन को द्रवित कर देती है। महावीर अग्रवाल की डायरी पढ़ने पर महसूस होता है कि वे अपने बड़प्पन को कितने जतन से ढंक कर चलते हैं। उनकी डायरी 23 अप्रैल, 2001 का एक अंश प्रस्तुत है–

"बिटिया गरिमा जिस युवक से शादी करना चाहती है, दो दिन पहले वह मुझसे मिलने घर आया। मैंने उसे पूछा कि विवाह के बाद रखोगे कहां? उसने कहा, अलग मकान बनवा रहा हूं। मैंने कहा, जाओ, मकान बन जाए तब आना। पिछले दो वर्षों से जितनी जानकारी मिल रही है, उससे लगता यही है कि गरिमा का विवाह इसी युवक अय्यूब खान से करना पड़ेगा।" 18 मई, 2003 को महावीर अग्रवाल ने लिखा.... "गरिमा अग्रवाल ने अय्यूब खान से विवाह करने के लिए आवेदन लगाया है। इतनी सुंदर, सुशील, पढ़ी–लिखी और व्यवहार कुशल होने के बाद भी ऐसा कदम उठा रही है। बात अभी अपने हाथ में ही है, बिटिया को समझा लें तो आवेदन वापस लिया जा सकता है। मैंने उनसे कहा, ये सब पिछले कई वर्षों से मुझे जानकारी में है कि गरिमा प्रत्येक स्थिति में अय्यूब खान से विवाह करने के लिए अड़ी हुई है।" 16 जून की डायरी में अग्रवाल जी ने लिखा–"एक माह हम लोग पूरे तनाव में रहे, गरिमा को हम बड़ा समझाते रहे और गरिमा हम लोगों को समझाने की कोशिश करती रही कि जो लड़का उसने चुना है वह बहुत ही समझदार और योग्य है। एक माह की जद्दोजहद के बाद मजबूरी में ही सही, पत्नी ने भी कोर्ट में जाकर विवाह के लिए अपनी सहमति दे दी।.... (विवाह की तिथि तय हो गयी) इसी क्रम में अनेक मित्रों को दूरभाष से विवाह में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। कलाकार भाऊ समर्थ ने अपने इंटरव्यू में मुझे कहा था कि सारी दुनिया में यदि प्रेम और सद्भाव फैलाना चाहते हैं तो उसका एक ही रास्ता है, हमें अपनी जाति में विवाह बंद करके केवल अंतर्जातीय विवाह ही करना चाहिए। मैंने उनके इस विचार का समर्थन किया था। इस विचार को मेरी ही बिटिया गरिमा सच का बाना पहना रही है।"

शीला त्रिपाठी ने अपनी डायरी 'दुख ही जीवन की कथा रही' में लिखा है– बहुत दिनों से घर में शांति है। अम्मा–पापा लड़ नहीं रहे। याद नहीं पड़ता, जो हम भाई–बहनों में कभी लड़ाई हुई हो। एक–दूसरे को अपना–अपना हिस्सा देने में तत्पर रहने वालों के मध्य लड़ाई क्यों कर हो? एक यही अच्छी बात है जिससे घर जुड़ा गुथा है। सच, हम एक–दूसरे के बगैर नहीं रह सकते।

सब कुछ सही अनुरूप चल रहा हो तो लिखने को कुछ नहीं रहता। शब्द ही नहीं सूझते, अन्यथा आप ही व्यथा कोरेपन पर उकेरने लगती हूं। आज पापा की डायरी हाथ लगी।

"आज पापा की डायरी हाथ लगी तो पढ़ने से खुद को रोक नहीं पाई। जानती हूं, गलत है। पर पापा को समझने का यह जरिया था। ज्यादा नहीं पढ़ पाई। निषेध लगा औलाद के लिए। जितना पढ़ा अंदर तक दहल गयी। वह कितने अकेले हैं। वर्षों से परित्यक्त, बिना स्नेह, प्यार के कोई कैसे ठीक रह सकता है। अम्मा आखिर ऐसा क्यों करती हैं? पापा की गलती क्या इतनी बड़ी थी कि वह पत्नी घर निभाना भूल गईं।"

"... इस घर कलह में निस्संदेह पापा निरीह होते गए, अम्मा प्रचंड। दोनों समानांतर, पर विपरीत दिशा में चल रहे हैं, जिसे हम बच्चों का आलंबन मिला हुआ है। वरना संबंधविच्छेद होते देर नहीं लगती।"

यह अंश निश्चय ही एक परिवार के वृत्तांत को आख्यायित करता है। लेकिन यह 10 मई, 1985 को लिखा गया और 2006 में प्रकाशित हुआ। पूरे 21 साल बाद। छपा यह तब है जब इसका डंक भोथरा हो चुका है। यदि यही अंश बीस साल पहले प्रकट हो जाता तो उस परिवार को एक झंझावात से गुजरना पड़ता। लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि पिता, अम्मा बहुत वृद्ध हो गए होंगे, और क्या पता संसार ही छोड़ गए हों। पहले यह डायरी अंश ज्वालामुखी का पलीता था परंतु अब यह एक निर्दोष फुलझड़ी है।

रामेश्वर द्विवेदी के डायरी अंश 'कोहरे में बांसुरी' शीला त्रिपाठी के डायरी अंश के ठीक उलट है। यह अतीत में नहीं है, वर्तमान में चलता है। 2006 मार्च से लेकर अगस्त 2006 तक। इसमें रामेश्वर द्विवेदी माता, पिता, संतान, बीमारी, नौकरी, गोपन–अगोपन सब आख्यायित करते हैं। डायरी अंश इतना सुगढ़ है जितनी सुगढ़ कहानियां रामेश्वर द्विवेदी लिखते रहे हैं।

महेंद्र राजा जैन की डायरी 1 नवंबर, 2005 के ये अंश ब्रिटेन के पुस्तक प्रेमियों का चित्र खींच देते हैं।

ब्रिटेन में पुस्तक विक्रेताओं के लिए 'सीजन' का मतलब होता है क्रिसमस का समय, जब लोग अपने मित्रों–परिचितों आदि को उपहार में देने के लिए पुस्तकें खरीदते हैं। जितनी पुस्तकें प्रतिवर्ष अक्टूबर, नवंबर ओर दिसंबर के महीनों में बिकती हैं, उनकी संख्या वर्ष भर में बिकी कुल पुस्तकों की लगभग 70 प्रतिशत होती है। डायरी में भी लोग छिपाएं तो फिर कौन–सी जगह खुलने की होगी। रमेश चंद्र शाह की डायरी पढ़ते समय आपको लगता है कि डायरी में एक रचनाकार, एक नागरिक, एक मनुष्य, एक परिवारी सब एक साथ संपूर्ण रूप में उपस्थित हैं– परेशानी, चिंता, आत्मस्वीकृति, कमजोरी, उपलब्धियां सब यहां मौजूद हैं। 1 अगस्त, 1982 की डायरी में शाह साहब ने लिखा, "कल शाम निर्मल जी के यहां गया। अब मैंने निश्चय कर लिया

है– मैं निर्मल जी से कहूंगा– मुझ को पीने को न कहें– मुझे बिलकुल रास नहीं आता यह– उस वक्त भले ही अच्छा लगे बाद में डिप्रेशन ही होता है। अजीब झुंझलाहट होती है मुझे कि ये भी कैसी बाध्यता है। कोई शाम आप बिना इसमें शरीक हुए निर्मल जी के साथ क्यों नहीं गुजार पाते? क्यों? आखिर क्यों? और इसमें भला उनका क्या दोष, मैं ही तो हर बार कमजोर पड़ जाता हूं। क्यों पड़ जाता हूं मैं कमजोर?"

इसके अतिरिक्त हिंदी साहित्य में डॉ. नामवर सिंह द्वारा संपादित तीन खंडों में 'मलयज की डायरी' हिंदी में लिखी गयी डायरियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सन् 1961 से 1982 तक की बिखरी घटनाओं को समेटे हुए यह डायरी अनेक प्रश्न भी खड़े करती है और साथ ही उनका समाधान भी सुझाती है। 'मलयज' की चिंताएं अथवा संघर्ष सिर्फ उनका नहीं समकालीन साहित्य और समाज का एक भाग दिखाई देता है। इस संदर्भ में 'कमलेश्वर की डायरी' का जिक्र करना भी समीचीन रहेगा, जो बेबाकी से अपनी बात कहने का साहस रखती है।

विश्व में कई डायरियां लोकप्रिय हुईं। सभी में अपनी–अपनी तरह की विशेषताएं हैं। अधिकांश डायरी के लिखने वाले लेखक, उपन्यासकार, सेनानायक, कलाकार या राजनीतिज्ञ हुए। लेकिन आज भी सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली, सर्वश्रेष्ठ व सशक्त डायरी तेरह वर्षीय ऐनी फ्रेंक की मानी जाती है। 'द डायरी ऑफ ए यंग गर्ल' नाम से प्रकाशित इस पुस्तक की जितनी कापियां बिकी हैं उतनी किसी और डायरी की अब तक नहीं बिकीं। विश्व की अधिकांश भाषाओं में अनूदित इस डायरी में मात्र उन दो वर्षों का (1942 से 1944) का वर्णन है जब लेखिका का बचपन हिटलर की हुकूमत का शिकार हुआ था। इसी दौरान उसका परिवार जर्मन नाजियों से छिपकर किस तरह जीवन बिताता था, इसका वर्णन आज भी दिल को छू जाता है। और फिर पाठक को रुककर सोचने के लिए मजबूर कर देता है।

डायरी के द्वारा पाठक जाने–अनजाने समकालीन समाज, धर्म, देश, सभ्यता व इतिहास से रू–ब–रू हो जाता है। इन सबको वह डायरी लेखक की दृष्टि से देखता है। कहीं–कहीं संदर्भ मस्तिष्क पर प्रहार करते हैं। डायरी स्वाभाविक रूप से संस्कृति व सांस्कृतिक संवाद की बात भी कर जाती है। जब यह लेखक के 'मैं' से निकलकर समाज पर भी टिप्पणी करती है तो साहित्यिक कृति बन जाती है। जब इसमें घटनाओं का विचारात्मक सूक्ष्म विश्लेषण होता है तो यही फिर दर्शनशास्त्र बन जाती है। इसके माध्यम से जहां आम व समकालीन मशहूर व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, वहीं कुछ बेहद सारगर्भित कथन उभर कर आते हैं।

इस प्रकार हिंदी साहित्य की 'डायरी' विधा पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि निश्चय ही उत्तम कोटि का डायरी लेखन कार्य हुआ है, भले ही संख्यात्मक रूप से हम इसे कम पाएं। परंतु डायरी लेखक यदि डायरी की मूल संवेदना एवं संसार से परिचित होकर गुणात्मक लेखन कार्य करे तो हिंदी साहित्य की डायरी साहित्य में भी संख्यात्मक वृद्धि की प्रबल संभावना है।

5.16 रिपोतार्ज

रिपोर्ताज शब्द का प्रचलन अंग्रेज़ी के 'रिपोर्ट' के पर्यायवाची के रूप में किया गया। यह शब्द फ्रेंच भाषा का है। इसके लिए हिंदी में 'सूचनिका' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। इसका अभिप्राय किसी घटना का यथातथ्य वर्णन है।

डॉ. देवीशरण रस्तोगी के अनुसार, "रिपोर्ट केवल मात्र सूचना होती है; रिपोर्ताज में सूचना के अतिरिक्त कुछ और भी होता है– वह और है – साहित्यिकता। साहित्यिकता ही वह तत्व है जो रिपोर्ट और रिपोर्ताज में भेद–स्थापन करता है।

परिभाषाएं

1. "किसी आंखों–देखी घटना के विस्तृत विवरण के संक्षिप्त तथा सरल शैली में प्रस्तुतीकरण को 'रिपोर्ताज' की संज्ञा दी जाती है।" ***–डॉ. माया अग्रवाल***
2. "जिस घटना में वर्ण्य–विषय का आंखों–देखा तथा कानों–सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हृदयतंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके उसे 'रिपोर्ताज' कहते हैं।" ***–डॉ. ओमप्रकाश सिंहल***

उद्‌भव और विकास

द्वितीय विश्व–युद्ध के समय गद्य की एक नवीन–विधा यूरोप में जन्मी। साहित्यकार स्वयं युद्ध क्षेत्र में गए और वहां के समाचार सर्वथा नये ढंग से भेजे, ये समाचार ही 'रिपोर्ताज' कहलाए। प्रख्यात रूसी लेखक एलिया एहरनबर्ग के लिखे रिपोर्ताज ने विश्व में प्रसिद्धि पाई।

हिंदी में इस विधा का सूत्रपात बंगाल के भयानक अकाल (1943) के दौरान माना जाता है। डॉ. रांगेय राघव स्वयं अकालग्रस्त क्षेत्र बंगाल गए, वहां से जो समाचार भेजे, उन्होंने ही रिपोर्ताज का रूप धारण कर लिया। उनके ये रिपोर्ताज *'तूफानों के नाम'* से प्रकाशित हुए।

परंतु डॉ. देवीशरण रस्तोगी रिपोर्ताज के सूत्रपात करने का श्रेय श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरजी को प्रदान करते हैं– 1926 के गुरुकुल कांगड़ी की रजत–जयंती से संबंधित उनका रिपोर्ताज, हिंदी का पहला रिपोर्ताज माना जाता है। किंतु डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के मतानुसार हिंदी में रिपोर्ताज की परंपरा के सूत्रपात का श्रेय, प्रभाकर जी को नहीं, श्री शिवदान सिंह चौहान को मिलना चाहिए। सबसे पहले सन् 1938 में उन्हीं का रिपोर्ताज *'लक्ष्मीपुरा'* प्रकाशित हुआ था।

हिंदी के प्रसिद्ध रिपोर्ताज

प्रारंभ पर भले ही विवाद हो, पर हिंदी में कई प्रतिष्ठित रिपोर्ताज सामने आए हैं जिनके प्रतिष्ठित लेखक इस प्रकार हैं–प्रकाशचंद्र गुप्त–इनके घटना प्रधान रिपोर्ताज *'रेखाचित्र'* संग्रह में संकलित हैं, जिनमें से *'स्वराज्य भवन', 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल'* महत्वपूर्ण हैं। अमृतराय, प्रभाकर माचवे के भी कई रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। उपेंद्रनाथ अश्क (रेखाएं और चित्र–संकलन – जिसमें पहाड़ों में 'प्रेममय संगीत' प्रमुख है)। रामनारायण

उपाध्याय ('गरीब और अमीर शीर्षक' जिसमें 'नव वर्षांक समारोह' महत्वपूर्ण हैं)। शमशेर बहादुर सिंह (प्लाट का मोर्चा), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (क्षण बोले कण मुस्काए) के साथ विष्णु प्रभाकर के भी रिपोर्ताज सामने आए।

यह क्रम गतिमान रहा और फणीश्वरनाथ रेणु *(एकलव्य के नोट्स)*, भदंत आनंद कौशल्यायन *(देश की मिट्टी बुलाती है)*, शिवसागर मिश्र *(वे लड़ेंगे हजारों साल)*, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय *(खून के छींटे)*, रामकुमार *(पेरिस के नोट्स)*, श्रीकांत वर्मा *(मुक्ति फौज)*, कमलेश्वर *(क्रांति करते हुए आदमी को देखा)*, डॉ. धर्मवीर भारती *(युद्ध यात्रा)*, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी *(मोटर स्टैंड)*, विवेकीराय *(बाढ़ ! बाढ़ !! बाढ़ !!!)*, कैलाश नारद *(धरती के लिए)*, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी *(चीनियों द्वारा निर्मित काठमांडू–ल्हासा सड़क)*, निर्मल वर्मा *(प्रातः एक स्वप्न)*, सतीश कुमार *(क्या हमने कोई षड्यंत्र रचा था)*, बालकृष्ण राव *(कमलकांतजी ने कहा)*, जगदीशचंद्र जैन *(पीरिडा की डायरी)*, अमृतलाल नागर *(गदर के फूल)*, प्रभाकर माचवे *(जब प्रभाकर पाताल गए)*, लक्ष्मीचंद्र जैन *(कागज़ की किश्तियां)* आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

उपसंहार

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि रिपोर्ताज ने हिंदी में अपने लिए अच्छा–खासा स्थान बना लिया है। कितने ही वरिष्ठ साहित्यकारों ने उसमें कलम आजमाई है और उन्हें अपने प्रयासों में सफलता भी मिली है। यह भी निश्चित है कि ज्यों–ज्यों पत्रकारिता का विकास होता जा रहा है, यह परंपरा भी निखरती जा रही है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

54. 'मेरी डायरी के दो पृष्ठ' के लेखक का नाम बताइए।
55. 'मलयज की डायरी' का संपादन किसने किया?
56. 'तूफानों के नाम' से प्रकाशित हिंदी के प्रथम रिपोतार्ज के लेखक का नाम बताइए।
57. 'गदर के फूल' रिपोतार्ज के रचनाकार का नाम बताइए।

5.17 दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय

हिंदी भाषा का व्यवहार उत्तर भारत के एक बड़े खंड पर होता रहा है – पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूर्व में बिहार की सीमा तक तथा उत्तर में पंजाब और उत्तराखंड की सीमा से लेकर मध्य प्रदेश में भोपाल तक इसकी व्याप्ति मानी जाती है। यह स्थूल उल्लेख मात्र है। इस बड़े भूभाग के भीतर ही अनेक क्षेत्रीय बोलियां प्रचलित हैं, परंतु राजस्थानी, ब्रज, हरियाणवी, कन्नौजी, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि अनेक बोलियों के क्षेत्रों में व्यापक आदान–प्रदान की भाषा के रूप में खड़ी बोली सर्वमान्य है। दक्खिनी हिंदी वह कड़ी है जिसमें भारत के उत्तर और दक्षिण भाग की भाषाओं, सांस्कृतिक परंपराओं तथा धार्मिक भावना का समन्वित संबंध दिखाई देता है।

जिस तरह मध्यकाल में नवागंतुकों के सम्मिलन से दक्षिणापथ में परिष्कृत महाराष्ट्रीय प्राकृत का रूप प्रकट हुआ उसी भांति नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में महत्वपूर्ण भाषा हिंदी के परिष्करण में इस प्रदेश ने योग दिया। जहां तक भाषा का संबंध है, प्राचीनकाल से उत्तर–दक्षिण में अनेक भाषाओं की उपस्थिति के बावजूद एक सामान्य भाषा का व्यवहार होता है। अनेक शतियों तक संस्कृत धार्मिक भाषा ही नहीं संस्कृति और राजकाज की भाषा बनी रही। 8वीं शती तक दक्षिण के शासक ताम्रपत्र अथवा शासन पत्र संस्कृत में ही लिखते थे। बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार के कारण तथा उत्तर भारत में प्राकृत को सांस्कृतिक तथा

साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर लेने पर दक्षिण में भी प्राकृत अपनाई गयी। अपभ्रंश काल में दक्षिण के मनीषी पीछे नहीं रहे। यह संपर्क नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के युग में भी सहायक सिद्ध हुआ।

अलाउद्दीन खिलजी से लेकर आसफशाह तक जितने सम्राटों के नेतृत्व में दक्खिन पर आक्रमण हुए, उन सभी अभियानों में सहस्रों परिवार उत्तर भारत से दक्षिण में बस गए। अधिकांश सैनिक या तो हिंदू थे या इस्लाम स्वीकार कर चुके थे। नव मुस्लिमों और हिंदू सैनिकों तथा श्रमिकों के लिए यह संभव नहीं था कि वे अपने सामंतों की सांस्कृतिक भाषा फारसी अथवा मातृभाषा अरबी, तुर्की, पश्तो आदि को भाषा के रूप में अपनाते। ये सैनिक अलग–अलग स्थान से आए थे। कोई अवध से था, कोई बिहार से तो कोई राजस्थान से। उत्तर भारत के विभिन्न प्रांतों से आए हुए ये परिवार घरेलू जीवन में अपनी बोली बोलते थे और दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति से मिलते समय खड़ी बोली का प्रयोग करते थे। धीरे–धीरे दिल्ली के आस–पास की बोली सांस्कृतिक भाषा के रूप में स्वीकार की जाने लगी और ऐसे शब्दों तथा शब्द रूपों का व्यवहार क्रमशः कम होता गया जो किसी विशेष क्षेत्र में ही व्यवहृत होते थे।

इन परिवारों ने अपने पूर्वजों की भाषा को बहुत समय तक सुरक्षित रखा। जो मुसलमान परिवार सीधे दक्खिन में आए, वे लोग धार्मिक दृष्टि से अरबी को और साहित्यिक दृष्टि से फारसी को महत्व देते थे। विदेशी मुसलमानों ने फारसी को सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार कर लिया। अभिजात वर्ग के सामने समस्या थी कि सामान्य जन से किस बोली में बात की जाए। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु खड़ी बोली पर ध्यान दिया गया जो व्याकरण की दृष्टि से सरल थी तथा व्यापक क्षेत्र में बोली जाती थी। बहमनी साम्राज्य की स्थापना के बाद कई परिवार दक्खिन में बसे। इनके लिए भाषा की कठिनाई बड़ी बाधा थी। इनके लिए स्थानीय बोलियां दुरूह थीं यथा तेलुगू, मराठी, कन्नड़ आदि। मुहम्मद तुगलक से लेकर औरंगजेब तक दक्खिनी राज्यों का संपर्क किसी न किसी रूप में दिल्ली से रहा, अतः दिल्ली की खड़ी बोली जिस भांति परिष्कृत होती गयी, उसका बहुत कुछ प्रभाव दक्खिनी पर भी पड़ा, किंतु उसका ढांचा वही बना रहा जो मुहम्मद तुगलक के समय में था। पंजाब, राजस्थान, अवध और बिहार के निवासी खड़ी बोली का उपयोग अपने ढंग से करते थे। साहित्यिक दक्खिनी में भी यह प्रभाव विद्यमान रहा।

इस विषय में मुस्लिम धर्म प्रचारकों और संतों तथा धर्मशास्त्रज्ञों का उल्लेख आवश्यक है। दक्खिनी के मूल निवासियों में धर्म प्रचार करना इन लोगों का मुख्य उद्देश्य नहीं था। इन प्रचारकों का मुख्य उद्देश्य यह था कि सहस्त्रों की संख्या में जो मुसलमान अथवा नव मुसलमान दक्खिन में आकर बस गए थे उन्हें धार्मिक दृष्टि से केंद्रीय भावधारा से पृथक न होने दिया जाए। इस्लाम के प्रचारक अन्तःप्रेरणा से दक्खिन आए थे। ये साधु संत जिस जनता में प्रचार करने के लिए आए थे, उसके लिए खड़ी बोली ही माध्यम बन सकती थी। फलस्वरूप खड़ी बोली का प्रयोग इन संतों ने किया। लगभग डेढ़ सौ वर्ष बीतने पर साहित्य के लिए दक्खिनी का प्रयोग प्रारंभ हुआ। संतों और धर्मशास्त्रों के कारण दक्खिनी में दर्शन और धर्मशास्त्र से संबंधित अनेक अरबी पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त होने लगे।

टिप्पणी

5.17.1 दक्खिनी हिंदी साहित्य का स्वरूप

'दक्खिनी' हिंदी के प्रथम कवि के रूप में 'वली' का नाम लिया जाता है। पुराने लेखकों ने 'दक्खिनी' को 'हिंदी' लिखा है–

हिंदी तो जवान च है हमारी
कहने न लगी हमन कूं भारी
होर फारसी इसत अत रसीला
हर हुर्फ में इश्क है न हीला। *(वजही)*

अन्यत्र भी मीरांजी ने लिखा है–

है अरबी बोल केरे, और फारसी भौंतेरे
ये हिंदी बोलूं सब, उस अर्तो के सबब।

'हिंदवी' और 'देहलवी' नाम भी दक्खिनी के लिए प्रयुक्त होते थे।

जवां हिंदवी मुझ सूं होर देहलवी
ना जानूं अरब होर अजम मसनवी। (अब्दल)

औरंगजेब के आक्रमण के समय हिंदी और दक्खिनी को पृथक–पृथक बताने की आवश्यकता पड़ी। तभी इसका नाम दक्खिनी पड़ा। इस समय खड़ी बोली की इस विशिष्ट शैली के लिए 'दक्खिनी' नाम ही प्रयुक्त होता है। 'दखन की बोली' और 'दखनी' नामों का प्रयोग इब्नेनिशाती और वजही ने किया है–

दखन में जो दखनी मिठी बात का
अदा नइं किया कोई उस घात का
बिसाती जो हिकायत फारसी है
मुहब्बत देखने को आरसी है।

दक्खिनी हिंदी में 'वली' कवि तथा गाबादी थे, जिनको उर्दू साहित्य के इतिहासकारों ने 'उर्दू' या 'रेख्ती' का पहला शायर माना है। सत्रहवीं शताब्दी में ही दक्खिनी शैली की कविता निर्मित हो चुकी थी–

मत गुस्से के शोलों से जलते को जलाती जा
टुक मेहर के पानी से यह आग बुझाती जा
तुज चाल की कीमत से नहीं दिल है मेरा वाकिफ
ऐ नाजभरी चंचल टुक भाव बनाती जा। *(वली कुतुबशाह)*

दक्खिनी हिंदी काव्य गजल, मरसिया, कसीदा, नज्म आदि विधाओं में मिलता है। मरसिया मुहर्रम के समय गाया जाने वाला शोकगीत है जिसमें कर्बला की लड़ाई, हुसैन और हसल की शहादत का करुणरसपूर्ण वर्णन होता है। आगे चलकर लखनऊ के उर्दू शायरों ने 'मरसिया' के अनेक उत्तम काव्य निर्मित किए।

'मसनवी' प्रबंध काव्य की एक विधा है जिसमें न कोई कथानक होता है और न पात्रों का चित्रण होता है। दक्खिनी हिंदी की भाषा–शैली में अरबी–फारसी की शब्दावली की वैसी

टिप्पणी

भरमार नहीं है। दक्खिनी शैली में तेलुगू, कन्नड़ और मराठी के प्रचलित शब्द भी यत्र तत्र मिश्रित दिखाई देते हैं। काव्य उपादान, प्रतीक, उपमान आदि शुद्ध रूप से भारतीय परंपरा के हैं।

इस भाषा शैली में सर्वनाम, परसर्ग, क्रियाएं आदि हिंदी की ही हैं। शब्दावली बोलचाल की है तथा हिंदी एवं दक्षिण की अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। आगे चलकर यही दक्खिनी हिंदी की सरल शैली कवियों द्वारा परिवर्तित कर दी गयी। काव्य उपादान, प्रतीक, अलंकार आदि फारसी काव्य परंपरा के अनुसार हो गए।

सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी ईसवीं में एक नयी भाषा का विकास हुआ जो पहले हिंदवी, रेख्ता, रेख्ती, दखनी या दक्खिनी हिंदी आदि नामों से अभिहित हुई, परंतु बाद में दिल्ली में आकर यह 'जबाने उर्दू' नाम से प्रसिद्ध हो गयी। दक्षिण के गोलकुंडा, औरंगाबाद आदि सल्तनतों के राजाश्रय से इस भाषा में साहित्य रचा जाने लगा था। इस भाषा की आरंभिक कालीन रचनाओं में भारतीय जीवन की झांकी मिलती है, और अलंकार, काव्य उपादान आदि भी भारतीय हैं। 17वीं–18वीं शताब्दियों में विरचित यह साहित्य हस्तलिखित रूप में हैदराबाद के पुस्तकालयों में सुरक्षित है। इस भाषा शैली में कुली कुतुबशाह, आदिलशाह आदि ने भी कविताएं लिखी हैं।

5.17.2 दक्खिनी का क्षेत्र

बोलचाल की दक्खिनी के अनेक रूप मिलते हैं। उसमें तेलुगू, मराठी और कन्नड़ से संबंधित अनेक उपभाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल की दक्खिनी की उत्तरी सीमा के संबंध में ग्रियर्सन ने लिखा है–

"यद्यपि कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती, फिर भी सतपुड़ा की शृंखलाओं और उससे संबंधित पहाड़ियों को परिनिष्ठित हिंदुस्तानी और दक्खिनी की सीमा मान सकते हैं।"

ग्रियर्सन दक्खिनी की दक्षिणी और पश्चिमी सीमा समुद्र तट तक मानते हैं। इसीलिए उन्होंने बंबई और मद्रास के निवासियों द्वारा व्यवहृत दक्खिनी के उदाहरण दिए हैं। बोलचाल की दक्खिनी का प्रयोग विंध्य से समुद्र तट तक दो प्रकार के लोग करते हैं–

1. ऐसे परिवारों के लोग जिनकी मातृभाषा हिंदी है और पीढ़ियों से दक्षिण में रहते हैं।
2. ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा तेलुगू , तमिल हैं। परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी का क्षेत्र बीजापुर, गुलबर्गा और हैदराबाद तक सीमित है। विशेष कारणों से निश्चित अवधि के लिए इस सीमा का विस्तार औरंगाबाद तक हुआ।

5.17.3 दक्खिनी का विकास

दक्खिनी पर स्थानीय बोलियों का प्रभाव पड़ा। यथा मराठी तथा खड़ी बोली में बहुत साम्य है। औरंगजेब के आगमन के समय देवगिरी आए उत्तर भारत के निवासियों की बोली पर मराठी का प्रभाव रहा। दक्खिनी अपनी मूल धारा से परिचय पाती रही और तत्व ग्रहण करती रही। तत्पश्चात गुलबर्गा गए उत्तर भारत के लोगों के कारण भी दक्खिनी का विकास

हुआ। मराठी का प्रभाव भी ग्रहण किया, किंतु द्रविड़कुल की भाषा कन्नड़ से उसने कोई प्रभाव स्वीकार नहीं किया। मराठी आर्यकुल की भाषा है, उसके शब्द खड़ी बोली में सरलता से घुलमिल जाते हैं, किंतु न तो गुलबर्ग और बीजापुर में और न ही गोलकुंडा में कन्नड़ तथा तेलुगू के शब्द साहित्यिक दक्खिनी में स्थान पा सके। मात्र कुछ शब्द ही दक्खिनी में इन भाषाओं के हैं। शब्दावली के संबंध में उपर्युक्त नीति का अवलंबन करते हुए भी दक्खिनी, उच्चारण के विषय में क्षेत्रीय भाषाओं से दूर नहीं रह सकी। दक्खिनी के बोलने का ढंग, स्वरों का उतार–चढ़ाव, महाप्राण तथा अल्पप्राण का उच्चारण, वाक्य में शब्दों की स्थिति को व्यक्त करने वाली 'लय' मराठी से प्रभावित है। इसी प्रकार कर्नाटक में कन्नड़ और आंध्र में तेलुगू का प्रभाव दिखाई देता है। तेलुगू, मराठी और कन्नड़ का उच्चारण जिस ढंग से विशेष क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होता है, उसी ढंग से दक्खिनी का उच्चारण भी परिवर्तित होता है।

दक्खिनी पर गुजराती भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गुजरात के प्रवासियों के कारण बीजापुर ही नहीं गोलकुंडा की दक्खिनी में भी गुजराती के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे। खड़ी बोली जहां बोली जाती है उस क्षेत्र के आस–पास मेवाती, हरियाणवी, पंजाबी और ब्रज बोली जाती है। इन भाषाओं के प्रभाव दक्खिनी में आज भी विद्यमान है। दक्खिनी पर पूर्वी बोलियों का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। शब्दों के बहुवचन, पूर्वकालिक क्रिया, क्रिया के स्त्रीलिंग रूपों और क्रिया विशेषणों पर राजस्थानी का प्रभाव लक्षित होता है। राजस्थानी की झलक भी दक्खिनी में मिलती है, दोनों में कुछ साम्य तथा कुछ वैषम्य मिलता है। पंजाबी भाषा ने भी दक्खिनी पर प्रभाव छोड़ा है। पश्चिमी हिंदी खड़ी बोली से रूप विन्यास ग्रहण करके भी दक्खिनी ने पूरब की बोलियों से संबंध बनाए रखा। क्रियापदों के अतिरिक्त अन्य विषयों में दक्खिनी ने पूर्वी बोलियों के प्रभाव को सुरक्षित रखा है। अवधी के लोकसाहित्य की लोकप्रिय कहानी 'चंदायन' अथवा 'चंदा लोरक' की कहानी दक्खिनी में भी लिखी गयी और जनता ने उसकी प्रशंसा की। दक्खिनी के प्रमुख कवि ख्वाजा वन्देनवाज की रचनाओं का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि उनकी भाषा पर न तो पूर्वी बोलियों का प्रभाव है और न गुजराती का। इसका कारण यह रहा है कि वह अधिकांश समय दिल्ली में रहे, अतः जो भाषा दिल्ली में बोली जाती थी उसी में उन्होंने लिखा। शाह मीरांजी शम्शुल उश्शक और शाह बुरहानुद्दीन जानम की रचनाओं पर मराठी, गुजराती के अतिरिक्त ब्रज का प्रभाव भी है। वजही राजस्थानी से प्रभावित है।

वन्देनवाज गेसूदराज अपने धर्मोपदेश दक्खिनी में दिया करते थे। शिष्य इस उपदेश को लिखते रहते थे। इनकी लिखी फारसी व दक्खिनी की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। गवासी की प्रमुख रचना 'तूतीनामा' है। नुसरती ने 'गुलशनेइश्क' 'अलीनामा' 'तारीखे सिकंदरी' की रचना की। इब्ने निशाती की प्रमुख रचना 'फूलबन' है। वजही ने तीन कथात्मक काव्य लिखे–'तोहके आशिकां', 'पंछीनामा' तथा 'बागे जां फिजा'। वजही की प्रमुख रचना 'सवरस' है।

इस प्रकार आपने दक्खिनी हिंदी साहित्य की विशेषताओं को जाना। वर्तमान में भी बहुत से कवि और लेखक दक्खिनी में लिखते हैं, यद्यपि परिमाण की दृष्टि से यह संख्या

उतनी अधिक नहीं है। वर्तमान में खतीत एवं पद्मनाभन की रचनाएं बहुत लोकप्रिय हैं। दक्खिनी पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा और उन भाषाओं और लोकभाषाओं की विशिष्टताओं को लेते हुए वह विकसित होती गयी।

5.18 उर्दू साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय

उर्दू भाषा का हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। उर्दू भाषा हिंदी से ही विकसित हुई। उर्दू का जन्म स्थान दिल्ली माना गया है। दिल्ली उत्तरी भारत के मध्य में एक ऐसे स्थान पर है जहां शौरसेनी प्राकृत के गर्भ से उत्पन्न होने वाली कई भाषाएं आकर मिलती हैं। ये भाषाएं अलग–अलग होते हुए भी एक हैं। दिल्ली के एक ओर हरियाणवी और बांगरू के प्रदेश हैं, दूसरी ओर खड़ी बोली, पश्चिम में पंजाबी का क्षेत्र आरंभ हो जाता है, दक्षिण पूर्व में ब्रजभाषा का। राजस्थानी और ब्रजभाषा में साहित्य रचना होते हुए भी खड़ी बोली बहुत समय तक केवल बोलचाल की भाषा बनी रही। फिर भी खड़ी बोली में, जो दिल्ली की सर्व–सामान्य भाषा थी, अरबी/फारसी के वे शब्द प्रवेश करते रहे जो राजनीतिक एकता के लिए आवश्यक थे। इसी खड़ी बोली के दो साहित्यिक रूप हैं–

1. उर्दू, जिसमें अरबी–फारसी शब्द अधिक होते हैं और इसे फारसी लिपि में लिखा जाता है।
2. हिंदी, जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक होता है और इसे देवनागरी लिपि में लिखते हैं, अतः उर्दू को भी शौरसेनी अपभ्रंश से विकास पाने वाली भाषाओं में से एक मानना चाहिए, यद्यपि उर्दू का नाम उस भाषा को बहुत समय बाद दिया गया।

मौखिक क्षेत्र में उर्दू और हिंदी लगभग एक ही भाषा के पर्यायवाची से हैं, किंतु साहित्यिक क्षेत्र में फारसी शब्द–बाहुल्य फारसी लिपि एवं छंदशास्त्र के प्रभाव के कारण दोनों में भिन्नता आ जाती है। उर्दू को फारसी भाषा की एक शाखा स्वीकार करने के अनेक कारण हैं– (1) उर्दू में फारसी का बाहुल्य (2) फारसी लिपि में लिखने की प्रणाली (3) फारसी काव्य छंदों का अनुसरण (4) मुसलमान आक्रमणकारियों के किलों एवं राजधानियों से उसका जन्म संबंध। किंतु वास्तविकता यह है कि उर्दू का सीधा संबंध पश्चिमी हिंदी से है जिसे कालांतर में खड़ी बोली के नाम से अभिहित किया गया।

5.18.1 उर्दू की उत्पत्ति एवं नामकरण

उर्दू भाषा का व्याकरण, उसके मुहावरे एवं शब्द भंडार यह पुष्ट करते हैं कि वह हिंदी का ही एक विशेष स्वरूप है। उर्दू में क्रियाएं एवं अव्यव हिंदी के ही हैं। सर्वप्रथम हाब्सन–जाब्सन ने सन् 1886 में हिंदुस्तानी का विवेचन करते समय उर्दू शब्द का प्रयोग किया है। हिंदुस्तानी शब्द वास्तव में विशेषण है, किंतु संज्ञा के रूप में इसके दो अर्थ होते हैं– (1) हिंदुस्तान का निवासी (2) हिंदुस्तानी जबान अथवा हिंदुस्तान की भाषा। आगरा तथा दिल्ली के आस–पास की हिंदी, फारसी तथा अन्य विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से विकसित हुई है। इसका दूसरा नाम उर्दू है। हाब्सन–जाब्सन ने लिखा है– "पुराने एंग्लोइंडियन इसे मूर कहते हैं और स्पेन

तथा पुर्तगाल वालों के अनुसार 'मूर' मुसलमान थे। मूर भाषा की लिपि संस्कृत तथा बंगाल से भिन्न है। इसे नागरी कहते हैं।" स्पष्ट है कि हिंदुस्तानी भी हिंदी का पर्याय था और 19वीं शताब्दी में यह शब्द उर्दूवाची बन गया। केलाग का मत है– "भारत की 25 करोड़ विभिन्न भाषा–भाषी जनता में से 6–7 करोड़ हिंदी भाषी हैं। उत्तरी भारत में हिंदी बनारस, इलाहाबाद, मथुरा से लेकर हिमालय के गंगोत्री केदारनाथ तथा बद्रीनाथ तक बोली जाती है। इसके अतिरिक्त यह महाराज सिंधिया, जयपुर तथा अन्य राजपूत राजाओं के राज्य में प्रचलित है। संक्षेप में इसका विस्तार चौबीस लाख वर्गमील के क्षेत्रफल में है, केवल बड़े–बड़े नगरों में मुसलमानों तथा सरकारी दफ्तरों के कारण लोग फारसी मिश्रित हिंदी का (जिसे उर्दू भी कहते हैं) व्यवहार करते हैं।" स्पष्ट है कि उर्दू का व्यवहार मुसलमान नागरिकों तथा सरकारी दफ्तरों में अधिक हुआ।

उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। श्री मुहम्मद हसल आज़ाद अपने ग्रंथ 'आबेहयात' में लिखते हैं कि इतनी बात हर शख्स जानता है कि हमारी जबान ब्रजभाषा से निकली है और ब्रजभाषा खास हिंदोस्तानी जबान है। मीर अम्मन देहलवी इसे 'बाजारी' और 'लश्करी' भाषा मानते हैं और लिखते हैं कि "जब अकबर बादशाह तख्त पर बैठे, तब चारों ओर के मुल्कों से सब कौम कदरदानी और फैजरसानी इस खांदान लासानी की सुनकर हुजर में आकर जमा हुए। लेकिन हर एक की गोयाई और बोली जुदा थी। इकट्ठे होने से आपस में लेन–देन, सौदा–सुल्प, सवाल–जवाब करते–करते यह जबान उर्दू की मुकर्रर हुई।" श्री टी. ग्राहम बेली उर्दू को पंजाब में उत्पन्न हुआ मानते हैं। उनके विचार में लाहौर में उस समय पुरानी खड़ी बोली प्रचलित थी उसी को विदेशियों ने अपने व्यवहार की भाषा बनाया। इस प्रकार, फौज की भाषा जो बाद में उर्दू कहलाई, खड़ी बोली से उत्पन्न हुई। जार्ज ग्रियर्सन बोलचाल की ठेठ हिंदुस्तानी भाषा से ही साहित्यिक उर्दू और हिंदी की उत्पत्ति मानते हैं। मुहम्मद मीर हसन आज़ाद तथा मीर अम्मन के विचार वैज्ञानिक नहीं हैं। टी. ग्राहम बेली तथा डॉ. ग्रियर्सन के मत में वैज्ञानिकता है। इसके अनुसार, ठेठ हिंदुस्तानी एक ओर उर्दू तथा दूसरी ओर साहित्यिक हिंदी में परिणत हो जाती है। इस प्रकार, उर्दू की उत्पत्ति हिंदी से ही हुई। उर्दू की जबान वस्तुतः एक वर्ग विशेष की भाषा है और यह ठेठ हिंदी में अरबी–फारसी शब्दों का मुहावरों के सम्मिश्रण से अपना रूप धारण करती है। इंशा अल्ला खां कहते हैं– 'जबान उर्दू जो पुसाहत (शिष्टता) व ललामत (प्रौढ़ता) की कान मशहूर है वह हिंदोस्ता के बादशाह की जिसके सर पर फसाहत का जात जेब (शोभा) देता है और चंद अमीरों और उनके मुसाहिबों (सभासदों) और चंद महिलाओं मिस्ल (जैसे) बेगम व खानम की और कसबियों की जबान है और लफ्ज उनमें इस्तेमाल हुआ, उर्दू हो गया।'

भारत में यात्रा हेतु आने वाले मुसलमान यात्रियों ने फारसी भाषा में यात्रा का विवरण लिखते समय यहां की भाषाओं के लिए हिंदी या हिंदुई शब्द का प्रयोग किया था। सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने हिंदी और हिंदुई के साथ 'जबाने देहली' नामक एक और प्रयुक्त भाषा का उल्लेख किया है। मीर हसन और मीर तकी मीर ने अपने तबकीरों में रेख्ता का उल्लेख किया है। रेख्ता हिंदी की वह शैली है जिसमें फारसी शब्दों का

सम्मिश्रण हो। रेख्ता की व्याप्ति अधिक है। रेख्ता को उर्दू कहना उचित नहीं। भाषा के अर्थ में रेख्ता का प्रयोग उर्दू से प्राचीन है। रेख्ता वास्तव में पुरुषों की भाषा है। इसी भाषा को जब स्त्रियां प्रयोग करती हैं तो इसका रूप परिवर्तित हो जाता है। इसे रेख्ती कहते हैं। इस भाषा की साहित्यिक अवस्था दक्षिण में प्रारंभ होने के कारण इसे कुछ समय तक दखिनी भी कहते रहे।

मुगलों के उन्नतिकाल में महल और सैनिक पड़ाव से संबंधित होने के कारण इसे 'उर्दू–ए–मुउल्ला तथा 'जबाने उर्दू' भी कहा गया। 19वीं शताब्दी के कुछ ही पूर्व उर्दू शब्द का प्रयोग एक भाषा विशेष के लिए किया जाने लगा। टी ग्राहम बेली के अनुसार भाषा के अर्थ में उर्दू का प्रयोग मसहफी ने किया; यथा–

खुदा रक्खे जवां हमने सुनी है मीर वो मिरजा की,
कहें किस मुंह से हम ए 'मसहफी' उर्दू हमारी है।

वस्तुतः उर्दू की उत्पत्ति राजनीतिक कारणों से मुसलमानी राजदरबार में और फौज में हुई थी। हिंदी भाषा में बोलियों– खड़ी बोली और ब्रजभाषा में फारसी तथा अरबी के शब्दों के मेल से यह शैली प्रारंभ हुई। मुगल बादशाहों, नवाबों, दरबारी नव मुसलमानों तथा दरबारी हिंदुओं ने इसे मुगल शासन एवं मुगल राज्य के बाद भी अपनाया और साहित्यिक रूप दिया। तदुपरांत अंग्रेज़ी के प्रोत्साहन से यह एक स्वतंत्र भाषा मानी जाने लगी।

5.18.2 उर्दू का विकास

उर्दू गद्य साहित्य के आरंभ के लिए उत्तर भारत की परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं। यहां के हिंदुओं में हिंदी तथा मुसलमानों में फारसी का प्रचार था। दरबारी एवं सभ्य कहलाने वाले लोग फारसी में ही लिखना–पढ़ना पसंद करते थे। उर्दू कवियों के काव्य संग्रह, जिनमें कवियों के संबंध में लिखना अभीष्ट होता था, फारसी में ही लिखे जाते थे। उर्दू पद्य का ही प्रयोग विशेष रूप से था।

उर्दू गद्य साहित्य की खोज में मौलवी अब्दुल हक और हकीम शम्शुल्लाह कादिरी का प्रयास विशेष रूप से सराहनीय है। इसकी खोज से कई ग्रंथ प्रकाश में आए। उनके आधार पर आठवीं शताब्दी हिजरी से ही पद्य साहित्य का आरंभ निश्चित हुआ, जबकि गद्य साहित्य सूफी साधुओं एवं फकीरों की कहावतों एवं उपदेशों का संग्रह है।

शेख ऐनुद्दीन गंजुल इस्लाम की रचनाएं धार्मिक हैं। ख्वाजा वंदेनिवाज हजरत, सैयद गेसूदराज गुलबर्गवी कृत 'मेराजुल आशकीन' से उस समय की भाषा का ज्ञान हो जाता है। शाह भीरानजी शम्शुल उश्शक बीजापुरी की पुस्तक 'शरह मरगुबुल कुलुब' और इन्हीं के पुत्र शाह बरहानुद्दीन जानम की 'जनतरंग' तथा 'गुलबास' पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। मौलाना वजही की 'सबरंग', मीरान याकूब का शुमायल इन्किया बदलादुल इत्किया का उर्दू अनुवाद 1687 में हुआ। इस प्रकार, स्पष्ट है कि उर्दू पद्य की तरह उर्दू गद्य का आरंभ भी दक्षिण में हुआ। इन पुस्तकों में 'दह मजलिस' प्रमुख है जिसमें प्रारंभिक गद्य देखा जा सकता है। 'नौतर्ज मुरस्सा' दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसकी शैली भी अलंकृत और फारसी–अरबी के शब्दों से पूर्ण है।

उत्तरी भारत में उर्दू गद्य का विकास जॉन गिलक्राइस्ट, जो फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिष्ठाता थे, ने किया। ये उर्दू के परिपोषक थे। उन्हीं के उद्योग से फारसी के स्थान पर उर्दू सरकारी भाषा बन गयी। इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं तथा विद्वानों का जमघट फोर्ट विलियम कॉलेज में कर दिया। मीर अम्मन, अफसोस, हुसैनी, हैदरी, लल्लूलाल, निहालचंद्र, इकराम अली, सैयद मुहम्मद मुनीर, शेर अली और मदारीलाल गुजराती, उन हिंदुस्तानी व्यक्तियों में हैं जिन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज की छत्रछाया में उर्दू गद्य को विकसित किया। इसके अतिरिक्त विदेशी लेखक, कप्तान रोबक, कप्तान टेलर, डॉ. हंटर, पादरी बेंजामिन शुल्ज आदि की सेवाएं भी प्रशंसनीय हैं। इन लेखकों का उद्देश्य पूर्ण रूप से साहित्यिक नहीं था फिर भी उर्दू गद्य के विकास में इन सभी लेखकों का योगदान है।

फोर्ट विलियम कॉलेज के लेखकों में हैदरबक्श हैदर ने सबसे अधिक पुस्तकों की रचना की किंतु सभी प्रकाशित नहीं हुईं। हैदरी की रचनाओं में 'किस्सये महरो माह', 'लैला–मजनू', 'हफ्त पैकर', 'तारीखे–नादिरी', 'गुल्शने हिंद', 'तोता कहानी', 'आराइशे महफिल' आदि प्रसिद्ध हैं। मीर अम्मन ने अपनी भाषा को सरल बनाए रखा है और हिंदी शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक झुकाव प्रदर्शित किया है, जबकि हैदरी ने फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक किया है।

मीर बहादुर अली 'हुसैनी' के चार प्रसिद्ध ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हैं– इखलाक हिंदी 'नस्त्र बेनजीर', 'रिसाला गिलक्राइस्ट', शहाबुद्दीन ताबीश के 'तारीखे आसाम' का अनुवाद। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'किस्सा–लुकमान' तथा कुरान के अनुवाद में भी सहायता प्रदान की थी। मिर्जा कासिम अली 'जवान' की पुस्तकों में कालिदास की 'शकुंतला' का उर्दू अनुवाद, 'सिंहासनबत्तीसी' का अनुवाद, 'तारीखें फरिश्ता' का अनुवाद तथा 'बारहमासा' का नाम प्रमुख है। निहालचंद्र लाहौरी ने ताजुलमुल्क और बकावली की कहानी का फारसी में अनुवाद किया। निहालचंद्र ने इसका नाम 'मजहबे इश्क' कहा। लाहौर के कवि बेनीनरायन जहां ने 'चार गुलशन' नामक प्रेमकथा तथा 'दीवाने जहां' नामक कवियों का तजकिरा कप्तान रोबक के अनुरोध पर लिखा।

इन लेखकों के अतिरिक्त अमानतुल्लाह 'शेदा', हफीजद्दीन, इकराम अली, खलील अली अश्क और मिर्जा जान तपिश ने भी उर्दू गद्य की विभिन्न पुस्तकें लिखकर उर्दू गद्य साहित्य के भंडार में वृद्धि की। लल्लूलाल जी ने भी एक पुस्तक *'लतायक–हिंदी'* नाम से लिखी थी। इन लेखकों ने पुस्तकों की रचना स्वेच्छा से न करके अंग्रेज़ पदाधिकारियों की इच्छानुसार की थी। इन लेखकों की रुचि या तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता है। इन लेखकों ने अधिकांश अनुवाद ही किए थे।

फोर्ट विलियम कॉलेज के अलावा भी उर्दू में कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनमें मुहम्मद हुसैन 'कलीम' ने 'फुसूसुल–हेकम' का उर्दू गद्य में अनुवाद किया। इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की। इंशा की एक और पुस्तक 'सिल्के–गहर' उपलब्ध हुई है। इनकी 'दरियाए–तलाफत' भी प्रसिद्ध पुस्तक है। इसे उर्दू भाषा का प्रथम व्याकरण भी कहा जाता है। फकीर मुहम्मद खां गोया द्वारा रचित 'बुस्ताने हिकमत' भी प्रसिद्ध पुस्तक है। 'अलिफ–लैला' का अनुवाद भी इन्होंने किया।

मिर्जा गालिब ने उर्दू पद्य में नवीन विचारों का समावेश किया। उनकी प्रमुख पुस्तकों में 'लतायक गैबी', 'तेज तेज' और 'नाना गालिब' हैं। इनके उर्दू लिखित पत्र भी बहुत लोकप्रिय हुए। ख्वाजा गुलाम गौस भी पत्र लेखन के लिए प्रसिद्ध थे।

इस प्रकार, उर्दू गद्य एवं पद्य धीरे–धीरे लोकप्रिय होता गया। छापेखाने के अस्तित्व में आते ही उर्दू में साहित्य–रचना का क्रम बढ़ता चला गया। तत्पश्चात आधुनिक युग में सर सैयद अहमद खां ने उर्दू साहित्य को परिपक्व किया। वे एक नेता, वक्ता, दार्शनिक, सुधारक तथा राजनीतिज्ञ थे। उनकी योग्यता एवं लोकप्रियता के कारण बहुत से लेखक उनसे प्रभावित हुए। उन्होंने 'तहजीबुल–इखलाक' को प्रकाशित किया, साथ ही पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार किया। मुसलमानों के लिए इन्होंने 1886 में 'मोहम्डन एजूकेशन कान्फ्रेंस' स्थापित की। अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज भी इन्हीं की देन थी। धीरे–धीरे सांप्रदायिकता का राग अलापने के कारण उर्दू साहित्य भी वर्ग विशेष की बपौती बन गया।

5.18.3 उर्दू की प्रमुख विशेषताएं

उर्दू कविता फारसी का अनुकरण करती है। उर्दू काव्य में भी फारसी छंदों की बहुलता है। साथ ही फारसी में विषयों को भी उर्दू ने आत्मसात कर दिया है। इसी अनुकरण के फलस्वरूप कविता वास्तविकता से दूर हट कर नकल मात्र बन गयी। इस संदर्भ में सर चार्ल्स लायल का कथन उल्लेखनीय है– "उर्दू कविता फारसी कविता का अनुकरण करती है और वही विषय बार–बार दोहराती है। यही कारण है कि उर्दू कविता की विशेषता नवीन भावना और विषय न होकर शाब्दिक चमत्कार मात्र रह गया।"

उर्दू में तुकबंदी का आधिक्य है। इसी तुकबंदी के आग्रह के कारण भावों की सहज और सरल अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। उर्दू कविता में अस्वाभाविक प्रेम का चित्रण किया गया है। उर्दू के अधिकांश प्रारंभिक कवित्त सूफी विचारधारा के थे। उर्दू के सर्वप्रथम कवि वली भी सूफी ही थे, इसी तरह ख्वाजा मीर दर्द भी फकीर ही थे। मीर और सौदा की रचनाओं में सूफी विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

उर्दू में शृंगारी कविता का प्रारंभ सूफी मत एवं दरबारियों के प्रभाव तथा फारसी शृंगारी कविता के अनुकरण के कारण हुआ। शृंगार के वियोगात्मक एवं संयोगात्मक दोनों स्वरूपों की चर्चा उर्दू में मिलती है। लौकिक विरह के द्वारा कवि अलौकिक विरह की ओर संकेत करता है। शृंगार की अभिव्यक्ति गजलों में अधिक हुई है।

उर्दू कविता का आरंभ दरबारी प्रश्रय में हुआ था। दरबारी प्रभाव के कारण विषय सीमित हो गए। इसी कारण नवाब या वजीर की प्रशंसा की गयी। उर्दू कविता में प्रकृति चित्रण कम हुआ। उर्दू साहित्य में भी ऐहिक आकांक्षाओं का चित्रण अधिक नहीं है। जीवन से विमुखता एवं परमेश्वर से दीनतापूर्ण विनय आदि विषयों पर पर्याप्त लिखा गया है। काव्य में एक विशेष प्रकार की उदासीनता एवं करुणा दिखाई देती है।

गुरु (उस्ताद) एवं शिष्य (शागिर्द) का संबंध उर्दू कविता में विशेष महत्व का है। शिष्य अपने गुरु का अनुकरण करना श्रेष्ठ समझता है। कालांतर में उर्दू में विषयों की नवीनता, भावों की मौलिकता एवं उपमानों का परिचित प्रयोग प्रारंभ हो गया है।

वस्तुतः उर्दू कविता अत्यंत भावपूर्ण है। उसमें एक अनोखा माधुर्य एवं सूक्ष्मता है। यह प्रेमरस से पूर्णरूपेण सराबोर है। दुःख के गीत, प्रेम की विफलताएं, विरह–वेदना आदि पर बहुत मार्मिक कविता उर्दू में हुई।

5.18.4 उर्दू के विविध काव्यरूप

उर्दू में कई काव्यरूप विकसित हुए। उर्दू के प्रमुख काव्य–रूप गजल, किता, मसनवी, कसीदा, रुबाई, वासोख्त और गीत आदि हैं। उर्दू का छंदशास्त्र फारसी और अरबी का अनुकरण करता है। लिखित शब्दों के साथ उच्चरित शब्दों की भी गणना होती है।

- **गजल**

गजल में अधिकांशतः प्रेम संबंधी विषयों का प्रतिपादन होता है। यद्यपि इसमें सूफी दर्शन, देशभक्ति, नैतिक सिद्धांत और राजनीति आदि विषयों की चर्चा भी सरल एवं मधुर ढंग से वर्णित रहती है, पर गजलों का जन्म केवल प्रेम चर्चा के लिए हुआ था। गजल का पहला और अंतिम शेर 'मकता' कहलाता है। दार्शनिकता इनकी प्रधान विशेषता होती है।

- **कसीदा**

कसीदा उन शेरों को कहते हैं जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा हो। कसीदा लिखने के लिए दरबारी कायदे, कानून और लोक–व्यवहार से भिज्ञ होना अत्यंतावश्यक है। भूमिका के शेरों में अन्य विषयों का प्रतिपादन हो सकता है, किंतु उसका संबंध किसी–न–किसी रूप में प्रशंसा के शेरों से होना चाहिए। कसीदे का कलेवर भी गजल का सा होता है।

- **मसनवी**

यह युद्ध और प्रेम के आख्यानों के लिए अधिकांशतः प्रयुक्त होती है। मसनवी के लिए सामान्यतः 8 छंद निर्धारित हैं। मसनवी लंबी कविता होती है। यह पद्यबद्ध कथा होती है। आधुनिक मसनवियों में राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों का समावेश कर दिया गया है।

- **मरसिया**

'मरसिया' अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है–मरने वालों के गुणों का इस प्रकार वर्णन करना कि सुनने वालों के हृदय में करुणा जाग्रत हो जाए। उर्दू काव्य प्रारंभ से ही धार्मिक प्रेरणा से युक्त था। मरसियों में मुख्यतः करुण, वीर और रौद्र रस की प्रधानता रहती है।

- **रुबाई**

रुबाई चार मिसरों का छंद है जिनके पहले, दूसरे और चौथे मिसरों का एक ही रदीम और काफिया होना आवश्यक है। रुबाई के छंदों को एक ही झटके के साथ पढ़ा जाता है।

- **किता**

'किता' का अर्थ 'टुकड़ा' होता है। वास्तव में इसे गज़ल या कसीदे का एक टुकड़ा ही समझना चाहिए। कभी–कभी गज़ल के बीच में भी किताबंद शेर आ जाते हैं।

- **शेर**

बराबर मात्राओं को दो पंक्तियों से मिलाकर एक 'शेर' तैयार होता है। प्रत्येक पंक्ति को अलग–अलग मिसरा कहा जाता है। पंक्तियों के हर समूह को 'बंद' कहते हैं।

यदि यह कहा जाए कि उर्दू साहित्य नये मोड़ पर पहुंचते–पहुंचते अपनी कुंठाओं से मुक्ति पाकर मानवता के उन्नयन का समर्थक और उनको प्रस्तुत करने का माध्यम बन गया, तो अत्युक्ति न होगी। परंतु उर्दू को लिपि के मामले में स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि उर्दू भारतीय परिवेश में भारतीय प्रवृत्तियों को अपनाए। उर्दू को जीवित, सुसंपन्न और उत्तरोत्तर प्रगतिशील बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी के साथ उसके कृत्रिम भेद की जो दीवार खड़ी की गयी है उसे गिरा दिया जाए। वस्तुतः उर्दू का भविष्य आशापूर्ण है। आधुनिक रचनाएं इस बात का प्रमाण हैं। इस प्रकार उर्दू साहित्य ने हिंदी के विकास में पर्याप्त योगदान दिया।

5.19 हिंदी–उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध

हिंदी मध्य देश की भाषा को कहा जाता था, तथा मुगलकाल में बाजार में बोली जाने वाली भाषा उर्दू–ए–मुअल्ला कहलायी। यह भाषा तत्कालीन खड़ी बोली होगी, जिसमें अरबी–फारसी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। यही भाषा वर्तमान उर्दू का प्रारंभिक रूप रही। इस समय हिंदी शब्द केवल बोलचाल की भाषा के रूप में सीमित होने लगा और नयी काव्य भाषा 'उर्दू' कही जाने लगी।

हिंदी और उर्दू में एक ही प्रमुख भाषिक अंतर है। दोनों भाषाएं अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। संसार में शायद यही एक उदाहरण है, जहां एक ही भाषा रूप दो भिन्न भाषाओं के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में हिंदी और उर्दू भाषाएं विकास यात्रा में भिन्न रास्तों पर चल रही हैं। स्वतंत्रता से पूर्व उर्दू और हिंदी प्रमुखतः साहित्य और जनसंपर्क की भाषाएं थीं। इस कारण दोनों की शब्दावली में कोई विभेद नहीं था– सिर्फ कुछ लेखकों की अधिक संस्कृतनिष्ठ शैली होती थी या कुछ की अरबी–फारसी के शब्दों से भरी उर्दू शैली। किंतु स्वतंत्रता के बाद हिंदी ने संस्कृत की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाया तथा उर्दू ने अरबी–फारसी के शब्दों का सहारा लिया। इसी कारण दोनों की शब्दावली में अंतर आया तथा दोनों भाषाओं में परस्पर बोधगम्यता में कमी आयी। कहने का तात्पर्य यह है कि व्याकरणिक संरचना एक होते हुए भी हिंदी और उर्दू की धाराएं अलग हो गईं।

5.20 हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास

पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में जाना जाता है। भारत में पत्रकारिता का आरंभ सन् 1780 में जेम्स ऑगस्टस हिकी ने कलकत्ता में *'बंगाल–गजट'* नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन से हुआ। भारतीय भाषाओं में सबसे पहले बांग्ला में समाचार–पत्र प्रकाशित हुए। हिंदी में पत्रकारिता के प्रारंभ होने से पूर्व भारत में अंग्रेजी, बंगाली, फारसी और गुजराती भाषाओं में पत्रकारिता आरंभ हो चुकी थी।

टिप्पणी

हिंदी में देवनागरी लिपि में हिंदी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तंड' था जिसे पं. जुगल किशोर ने 30 मई, 1826 को निकाला। किंतु लगभग डेढ़ वर्ष बाद इसे बंद करना पड़ा। सन् 1850 में यह पुनः प्रारंभ किया गया। हिंदी पत्रकारिता के विकास को निम्न चरणों में देख सकते हैं–

(1) **प्रारंभिक युग (1826–1867)**– 'उदन्त मार्तंड' से इसका प्रारंभ हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था, जिसने हिंदी को एक नयी दिशा दी। 1852 में आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन हुआ। सन् 1829 में राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' साप्ताहिक पत्र का संपादन किया, यह चार भाषाओं हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला तथा फारसी में प्रकाशित होता था। 1854 में कलकत्ता से 'समाचार सुधावर्षण' नाम दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। इसके संपादक श्याम सुंदर सेन थे। राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में इस पत्र की प्रमुख भूमिका रही। यह काल पत्रकारिता का प्रारंभिक काल था, जिसमें हिंदी पत्रों का कोई स्वरूप निर्धारित नहीं हुआ था।

(2) **भारतेन्दु युग (1868–1900)**– इस काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट तथा बालमुकुंद गुप्त जैसी प्रतिभाओं ने हिंदी पत्रकारिता को नयी दिशा प्रदान की। भारतेंदु ने 'कविवचनसुधा' मासिक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' तथा 'बाल बोधिनी' पत्रिका भी निकाली, जिनका प्रमुख स्वर राष्ट्र प्रेम था। 1877 में बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' नामक मासिक पत्रिका निकाली। बालमुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र' नामक पत्र निकाला तथा प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना की। इसके अतिरिक्त इस काल में 'उचित वक्ता', 'हिंदी–बंगवासी', 'आर्यमित्र', 'भारतोदय' पत्रिकाएं भी प्रमुख थीं।

(3) **द्विवेदी युग (1900–1920)**– इस युग में भारतीय राजनीति में बाल गंगाधर तिलक का प्रभाव बढ़ने लगा था। इन्होंने 'केसरी' का हिंदी संस्करण निकाल पत्रकारिता को नयी दिशा दी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन किया। इसमें नैतिकता सुधारवाद तथा देशभक्ति का स्वर प्रमुख था। इस काल में 'प्रभा', 'चांद', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं ने भी अपना स्वरूप बदला। माखनलाल चतुर्वेदी ने 1909 में 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। इसके अतिरिक्त 'नृसिंह', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'देवनागर' इस युग की अन्य प्रमुख पत्र–पत्रिकाएं थीं।

(4) **स्वतंत्रता पूर्व युग (1920–1947)**– राजनीतिक रूप से इस काल में महात्मा गांधी का प्रभाव रहा। इस युग का पत्र–पत्रिकाओं में 'चांद', 'प्रभा', 'माधुरी', 'विशाल भारत', 'हंस' आदि विशेष महत्वपूर्ण रहीं। इसके अलावा कुछ मासिक व साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए जिनमें 'मतवाला', 'जागरण' तथा 'भारत' प्रमुख हैं। 1920 में बनारस से 'आज' पत्र प्रारंभ हुआ।

(5) **स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से अद्यावधि)**– स्वतंत्रता के बाद नये भारत के निर्माण, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास, हिंदी के द्वारा ज्ञान–विज्ञान के

टिप्पणी

उद्घाटन, साहित्य और शोध को बढ़ावा आदि उद्देश्य लेकर पत्रकारिता आगे बढ़ी। दैनिक समाचार पत्रों में 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'भास्कर', 'आज', 'नयी दुनिया', 'पंजाब केसरी', 'हिंदुस्तान', 'नवभारत टाइम्स' प्रमुख रूप से निकल रहे हैं। पत्रिकाओं में 'कादम्बिनी', 'सरिता', 'योजना', 'आलोचना', 'नवगीत', 'साहित्यानुशीलन', 'माधुरी' प्रधान हैं। वर्तमान में लघु पत्रिकाएं– 'वागार्थ', 'विकल्प', 'कथा', 'दस्तक', 'दस्तावेज', 'शेष', 'वर्तमान साहित्य', 'पहल' आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्षतः हिंदी पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम से लेकर अब तक संघर्ष एवं उपलब्धियों के अनेक दौर देखे हैं। यह राष्ट्र की राजनीतिक–सामाजिक चेतना को सदा साथ लेकर चली है। वर्तमान में हिंदी पत्र–पत्रिकाएं व्यावसायिक स्पर्धा में अपनी–अपनी श्रेष्ठता के नये आयाम स्थापित कर रही हैं।

गतिविधि

इंटरनेट की सहायता से ऐसे रचनाकारों की सूची तैयार कीजिए जिनका लेखन सामाजिक सरोकारों से हमेशा जुड़ा रहा।

क्या आप जानते हैं?

दिल्ली स्थित मंडी हाउस में समय–समय पर ऐतिहासिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय भाषा के नाटकों का मंचन होता रहता है।

5.21 सारांश

राष्ट्रीय जागृति के साथ ही हिंदी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कार्य प्रारंभ हो गया। इसी क्रम में नाटक लिखे जाने लगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस बात को स्वीकार किया कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।'' भारतेंदुजी के असमय अवसान से हिंदी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध–सा आ गया था। यद्यपि, अनूदित नाटकों की कमी न थी। नाट्य शिल्प में जैसा विकास और भावबोध में जैसा विस्तार अपेक्षित था, वह भारतेंदु जी के अवसान के बाद और जयशंकर प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व नहीं आ सका। भारतेंदु युग में हिंदी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगांतरकारी प्रतिभा लेकर आए। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से हिंदी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। जयशंकर प्रसाद के पश्चात नाटक साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य, दोनों शैलियों का यथायोग्य प्रयोग कर अनेक नाटकों की रचना की गयी। स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच का अच्छा विकास हुआ है। दिल्ली में स्थापित 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' तथा कोलकाता, मुंबई आदि नगरों में स्थापित नाटक केंद्रों से हिंदी नाटक की रचना और मंचन के लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। कथा और शिल्प की दृष्टि

'अपनी प्रगति जांचिए'

58. उत्तर और दक्षिण भारत की भाषाओं तथा सांस्कृतिक परंपराओं को जोड़ने का श्रेय किसे जाता है?
59. दक्खिनी हिंदी के प्रथम कवि कौन हैं?
60. उर्दू भाषा का विकास किस भाषा से हुआ है?
61. भारत में यात्रा हेतु आने वाले मुसलमान यात्रियों ने अपने यात्रा विवरणों में किस भाषा का प्रयोग किया?
62. उर्दू कविता का आरंभ किसके प्रश्रय में हुआ?
63. देवनागरी लिपि में प्रथम पत्र कौन–सा प्रकाशित हुआ?
64. 'आज' समाचार पत्र का प्रकाशन कहां से प्रारंभ हुआ?

टिप्पणी

से हिंदी नाटकों का विकास बहुमुखी रहा है और तकनीक की दृष्टि से नाटक में नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। वर्तमान नाटक अधिकतर मनोवैज्ञानिक और समस्या प्रधान होते जा रहे हैं।

निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा, तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किए किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इसी युग में भाषा के मानक रूप और चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत–गौरव, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। भारतेंदु से लेकर द्विवेदी युग से होते हुए हिंदी निबंध लेखन की यात्रा शुक्ल और शुक्लोत्तर युग में अपने चरम उत्कर्ष पर रही। इधर के वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है।

हिंदी उपन्यासों का जन्म सुधारवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में हुआ। प्रेमचंद को ही उपन्यास की विकास यात्रा का केंद्र बिंदु मानकर संपूर्ण विकास क्रम को समझा जा सकता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जो ठोस आधारभूमि दी उससे इस विधा के विकास की चौमुखी राहें खुल गईं। प्रेमचंद के पश्चात समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने वाले उपन्यास लिखे गए। इस युग के उपन्यासों में विषय–वैविध्य है। भाषा और शिल्प के धरातल पर भी कई नवीन प्रयोग मिलते हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग में सत्ता का बदला जाना, आर्थिक विपन्नता, हिंदु–मुस्लिम वैमनस्य के भयंकर हिंसक परिणाम और विभाजन की विभीषिका के बीच रचनाकारों में एक नया भावबोध उत्पन्न हुआ जो घोर सामाजिक और अपूर्व जिजीविषा का भाव लिए हुए था। अतः इस समय हिंदी का उपन्यास साहित्य कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई देता है। इस युग में सामाजिक, समाजवादी यथार्थवादी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, प्रयोगशील और आधुनिकता–बोध से युक्त उपन्यासों की रचना हुई।

कहानी बीसवीं शताब्दी की देन है। सन् 1900 से लेकर आज तक कहानी लेखन का क्रम उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर रहा है। कहानी लेखन के विकास को हम चार भागों में विभाजित करते हुए समझ सकते हैं। पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद–प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी। प्रसाद और प्रेमचंद की रचना प्रक्रिया ने हिंदी कथा साहित्य में दो निश्चित धाराओं को स्वरूप दिया– व्यक्ति और समाज। आगे चलकर प्रसाद की इस व्यक्तिवादी चिंतनधारा को जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय ने और प्रेमचंद की समाजवादी चिंतनधारा को यशपाल, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन और अमरकांत ने आगे बढ़ाया। इलाचंद्र जोशी ने कथा–साहित्य में व्यक्तिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनका चिंतन जैनेंद्र से भिन्न है। वह मानव मन की गहराइयों में झांककर व्यक्ति–मन के भीतर दमित वासनाओं तथा कुंठाओं का विश्लेषण करते हैं। प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिंदी कहानी को नया आयाम देने वालों

टिप्पणी

में जैनेंद्र का नाम प्रमुख है। उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से ऊपर उठाकर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। इस व्यक्तिवादी धारा के साथ ही इस समय यशपाल ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैली सब प्रकार की कुरूपताओं का पर्दाफाश किया। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी थी अतः उनका लक्ष्य एक ही रहा– सामाजिक वैषम्य का उद्‌घाटन करना। प्रत्येक कहानी में उनका समाजवादी चिंतन ही प्रमुख रहा है। इस समाजवादी परंपरा पर आगे चलकर राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन ने सशक्त कहानियां लिखीं। विष्णु प्रभाकर और उपेंद्रनाथ अश्क ने भी इसी समय कहानी के क्षेत्र में अपना नाम स्थापित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में सन् 1950 के बाद व्यक्तिवादी स्वर मुखर होने लगा। मार्क्स और फ्रायड के प्रभाव से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना शीघ्र ही विच्छिन्न हो गयी। विभाजन के साथ जुड़े हुए संहार, ध्वंस और सामूहिक हत्याओं ने मानवीय मूल्यों का जो विघटन किया उसे यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जैनेंद्र और बाद में मोहन राकेश तथा भीष्म साहनी ने चित्रित किया। सन् 1955 में कहानी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। नवीन चेतना की खोज करने वाले कहानीकारों को इस दौर को आगे बढ़ाने का अवसर मिला। उन्होंने 1956–57 में इसका नाम नयी कहानी रख दिया। अब कहानी में नये संदर्भों की खोज होने लगी। इस दौर में उभरने वाले विद्रोह और आक्रोश ने कहानी को एक सपाटबयानी दी। कहानी का रूपबंध बदल गया।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। एकांकी ने नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। बड़े नाटक में वर्णित विस्तृत जीवन के विपरीत इसमें जीवन की एकरूपता, कसावट, चरित्र–चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप–रेखा, कुतूहल की चरम सीमा होती है। हिंदी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखे गए वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित रूप से प्रगतिशील युग कहा जा सकता है।

हिंदी आलोचना का प्रारंभ भी गद्य की अन्य विधाओं के साथ भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में मुद्रण कला का विकास हुआ, राजनीतिक जागृति आई और पत्र–पत्रिकाओं का लगातार प्रकाशन हुआ। द्विवेदी युग में आलोचना के दो मुख्य प्रतिमान रहे– एक, परंपरागत शास्त्रीय दृष्टि जिसके आधार पर आलोच्य कृति के गुण–दोषों का विवेचन किया जाता था। दूसरी, नैतिक सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि जो आलोच्य कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर उसे श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करती थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना क्षेत्र में प्रवेश करते ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया– साहित्यिक रुचि में परिवर्तन। शुक्ल जी ने पूरी साहित्यिक परंपरा का पुनर्गठन किया। शुक्ल परवर्ती युग में हिंदी–समीक्षा का विकास द्रुत गति से हुआ। शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना अपने युग के

प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित हुई। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर पड़ने लगा। इन विश्वव्यापी चिंतनधाराओं से प्रभावित होकर आलोचना का भी विकास हुआ।सन् 1950 के बाद हिंदी आलोचना का विकास नये संदर्भों में नयी आवश्यकता की पूर्ति हेतु सही दिशा में अग्रसर हुआ। 'नयी कविता' या 'नवलेखन' की तर्ज़ पर 'नयी आलोचना' नाम दिया गया। इस वर्ग के आलोचकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य स्वीकार कर साहित्य की नयी मर्यादाओं की स्थापना की। नयी समीक्षा में अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, नेमिचंद्र जैन, लक्ष्मीकांत वर्मा प्रमुख हैं। इन आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह का शीर्ष स्थान है।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी साहित्य में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण और रेखाचित्र साहित्य का भी विकास हुआ। जीवनी और आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधाएं जहां रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन और सुख–दुख का परिचय देती हैं तो संस्मरण और रेखाचित्र रचनाकार के इर्दगिर्द रहे लोगों, परिवेश, यादों तथा अनुभवों का रोचक चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आजकल हिंदी की प्रायः सभी पत्र–पत्रिकाओं में साक्षात्कार या भेंट–वार्ताएं प्रकाशित हो रही हैं, जिससे साक्षात्कार साहित्य का विकास हो रहा है।

साहित्य जगत में विभिन्न विद्वानों द्वारा यात्रा साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन किया गया। यात्रा लेखन में राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे आगे है। मेरी लद्दाख यात्रा (1939), किन्नर देश में (1948), राहुल यात्रावली, एशिया के दुर्गम भूखंडों में (1956) आदि उनके प्रसिद्ध यात्रा वृत्त हैं। उन्होंने 1949 में 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख कर पर्यटकों एवं यायावरों का मार्गदर्शन भी किया।

हिंदी में पत्र साहित्य की दृष्टि से सन् 1904 में महात्मा मुंशीराम द्वारा स्वामी दयानंद सरस्वती के पत्रों का संकलन उल्लेखनीय है। पत्र लेखन का अपना महत्व है। समय और व्यक्तित्व के महत्व को देखते हुए पत्रों का ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है। 'पिता के पत्र–पुत्री के नाम' में पं. जवाहरलाल नेहरू लिखित पत्र बहुत लोकप्रिय हुए। शांतिप्रिय आत्माराम ने औरंगजेब के ऐतिहासिक पत्रों का 'आलमगीर के पत्र' (1931) शीर्षक से संपादन किया।

डायरी लेखन भले ही एक व्यक्तिगत विधा हो लेकिन जब यह निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र न कर युग एवं परिवेश को ध्वनित करती है तो विधा का रूप ले लेती है। उदाहरण के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विश्वविख्यात फ्रेंच शिल्पी दार्शनिक रोमैं रोलां की डायरी है। हिंदी साहित्य में डायरी लेखन की प्रवृत्ति बहुत अधिक समृद्ध नहीं है परंतु इधर डायरी लेखन की प्रवृत्ति उभरी और उसे सामने लाने के प्रयास भी हुए, जिनका विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया गया है।

पत्रकारिता के विकास के साथ ही हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज ने अपने लिए अच्छा–खासा क्षेत्र बना लिया है। रिपोतार्ज लेखन में वरिष्ठ साहित्यकारों ने कलम उठाई और वे सफल हुए। यह साहित्यिक विधा दिन प्रति दिन निखरती जा रही है।

दक्खिनी हिंदी भाषा के विकास की वह कड़ी है जिसमें भारत के उत्तर और दक्षिण भाग की भाषाओं, सांस्कृतिक परंपराओं तथा धार्मिक भावना का समन्वित संबंध दिखाई देता है। जिस तरह मध्यकाल में नवागंतुकों के सम्मिलन से दक्षिणापथ में परिष्कृत महाराष्ट्रीय प्राकृत का रूप प्रकट हुआ उसी भांति नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में महत्वपूर्ण भाषा हिंदी के परिष्करण में इस प्रदेश ने योग दिया। दक्खिनी हिंदी के प्रथम कवि के रूप में 'वली' का नाम लिया जाता है। औरंगजेब के आक्रमण के समय हिंदी और दक्खिनी को पृथक–पृथक बताने की आवश्यकता पड़ी, तभी इसका नाम दक्खिनी पड़ा।

हिंदी भाषा के विकास में उर्दू भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। उर्दू भाषा हिंदी से ही विकसित हुई। उर्दू में कई काव्यरूप विकसित हुए। उर्दू के प्रमुख काव्य–रूप गजल, किता, मसनवी, कसीदा, रुबाई, वासोख्त और गीत आदि हैं। उर्दू का छंदशास्त्र फारसी और अरबी का अनुकरण करता है। हिंदी और उर्दू में एक ही प्रमुख भाषिक अंतर है। दोनों भाषाएं अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। संसार में शायद यही एक उदाहरण है, जहां एक ही भाषा रूप को दो भिन्न भाषाओं के नाम से जाना जाता है।

हिंदी की साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। स्वाधीनता संग्राम में जन–जन की चेतना का वाहक बनी ये पत्र–पत्रिकाएं विषम परिस्थितियों में भी जन–मन की कथा–व्यथा कहने का साहस रख, निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी गद्य अनेकानेक विधाओं का रूप लेकर निरंतर विकसित होता जा रहा है।

5.22 मुख्य शब्दावली

- **वर्णसंकर** : दो विभिन्न जातियों के स्त्री–पुरुष से उत्पन्न संतान
- **यायावर** : घुमक्कड़
- **त्रिपथगा** : तीन चरणों वाला, तीन पदों वाला, गंगा नदी
- **स्वातंत्र्योत्तर** : स्वतंत्रता के बाद
- **अंतर्द्वंद्व** : आंतरिक संघर्ष
- **आलोचना** : समीक्षा करना, देखना
- **परिमार्जित** : त्रुटि रहित
- **अनुसंधानपरक** : खोज युक्त, अन्वेषण युक्त
- **समसामयिकता** : समकालीन
- **सार्वदेशिकता** : सब देशों से संबद्ध
- **अभिहित** : उल्लिखित, कहा हुआ
- **मरसिया** : शोक गीत
- **हिकायत** : कहानी, कथा

- **आरसी** : आईना
- **मसनवी** : उर्दू में वह कविता जिसमें तुकबंदी रहित कई शेर होते हैं
- **हीला** : बहाना, धोखा
- **अजम** : अरब से भिन्न, ईरान
- **कसीदा** : किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा
- **मरसिया करना** : मरने वालों के गुणों का इस प्रकार वर्णन करना कि सुनने वालों के हृदय में करुणा जाग्रत हो जाए।
- **किता** : टुकड़ा
- **मुसाहिब** : सभासद

5.23 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. नहुष
2. भारतेंदु युग
3. देवकीनंदन खत्री
4. पंडित माधव शुल्क
5. जयशंकर प्रसाद
6. उपेंद्रनाथ 'अश्क'
7. कर्बला
8. व्यंग्य विनोद की शैली
9. बालकृष्ण भट्ट
10. एक हजार
11. प्रतापनारायण मिश्र
12. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
13. आठ
14. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
15. फ्रायड, एडलर तथा जुंग
16. परीक्षा गुरु
17. 1918
18. प्रेमचंद
19. वृंदावनलाल वर्मा
20. शेखर एक जीवनी
21. यशपाल
22. फणीश्वरनाथ रेणु
23. मुर्दों का टीला
24. बलचनमा
25. सरस्वती
26. 300 कहानियां
27. जयशंकर प्रसाद
28. सन् 1944
29. स्वतंत्रता के बाद
30. सन् 1960 के बाद
31. मूड या क्षण की
32. प्रेमयोगिनी
33. एक घूंट
34. प्रसादोत्तर युग
35. प्रसादोत्तर युग
36. स्वातंत्र्योत्तर युग
37. निंदा–स्तुति
38. नाट्य
39. पांच
40. महावीर प्रसाद द्विवेदी

41. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
42. स्वच्छंदतावादी
43. इलाचंद्र जोशी
44. अज्ञेय
45. बनारसीदास चुर्वेदी
46. 'कल्याण का पथिक'
47. महादेवी वर्मा
48. श्रीराम शर्मा
49. हरिशंकर परसाई
50. बनारसीदास चतुर्वेदी
51. भारतेंदु युग
52. राहलु सांकृत्यायन
53. महात्मा मुंशीराम
54. हिमांशु जोशी
55. डॉ. नामवर सिंह
56. डॉ. रांगेय राघव
57. अमृतलाल नागर
58. दक्खिनी हिंदी
59. वली
60. हिंदी
61. फारसी
62. दरबारी
63. उदन्त मार्तंड
64. बनारस

5.24 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी नाटक और रंगमंच के वर्तमान स्वरूप की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए।
2. शुक्लोत्तर युग के निबंधों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. उत्तर प्रेमचंद युग के मनोविश्लेषणवादी एवं प्रगतिवादी उपन्यासकारों के रचना संसार एवं रचनाशैली पर प्रकाश डालिए।
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी लेखन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. नयी कहानी की रूपरेखा का विवेचन अपने शब्दों में कीजिए।
6. निम्न से किन्हीं तीन कहानीकारों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए–
   (क) प्रेमचंद (ख) यशपाल (ग) अज्ञेय (घ) विष्णु प्रभाकर (ङ) मन्नू भंडारी।
7. एकांकी से आप क्या समझते हैं? अपने पसंदीदा एकांकी को आधार बनाते हुए एकांकी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
8. नयी समीक्षा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. जीवनी साहित्य के विकास के संदर्भ में उसकी उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
10. राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. हिंदी–उर्दू साहित्य के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट कर उनका महत्व प्रतिपादित कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी नाटक साहित्य के ऐतिहासिक विकास क्रम का विस्तृत वर्णन करते हुए प्रमुख नाटकों के महत्व का विवेचन कीजिए।
2. हिंदी साहित्य में निबंध लेखन की विधा के विकास में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग के योगदान का विवेचन कीजिए।
3. "आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध–साहित्य में एक नया जीवन आया।"– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में शुक्ल युग का मूल्यांकन अपने शब्दों में कीजिए।
4. हिंदी उपन्यास लेखन में प्रेमचंद के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए उनकी प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।
5. स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखे गए उपन्यासों की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. हिंदी साहित्य में कहानी के उद्भव व विकास का विस्तृत विवेचन कीजिए।
7. "प्रसादोत्तर युग में हिंदी एकांकी का स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है।"– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में एकांकी के विकास का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
8. स्वातंत्र्योत्तर युगीन एकांकियों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनमें मौजूद युगीन बोध को परिभाषित कीजिए।
9. आलोचना का अर्थ स्पष्ट करते हुए हिंदी आलोचना साहित्य के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल के योगदान का विस्तृत विवेचन कीजिए।
10. आत्मकथा का लेखक अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के उद्घाटन में कितना सफल हो पाता है? प्रसिद्ध आत्मकथाओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समझाइए।
11. 'संस्मरण गद्य साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है' कैसे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
12. रेखाचित्र से आप क्या समझते हैं? संस्मरण से वह किस प्रकार भिन्न है, स्पष्ट कीजिए।
13. सफल डायरी लेखन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए हिंदी में डायरी लेखन के विकास पर प्रकाश डालिए।
14. दक्खिनी हिंदी साहित्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए उसके क्रमिक विकास का विश्लेषण कीजिए।
15. उर्दू साहित्य के विकास का विवेचन करते हुए उसके विविध काव्यरूपों का परिचय दीजिए।
16. भारतीय नवजागरण में तत्कालीन हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के महत्वपूर्ण योगदान का विवेचन कीजिए।

5.25 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- डॉ. सुरेश चंद्र निर्मल, *साहित्यिक निबंध,* सस प्रकाशन, मेरठ।
- *हिंदी भाषा : इतिहास और वर्तमान,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।
- रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
- सुधीश पचौरी, *भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श,* प्रवीण प्रकाशन।
- डॉ. सोफिया मैथ्यू, *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना,* सूर्यभारती प्रकाशन।
- *समकालीन हिंदी साहित्य : विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
- रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।